एम.ए. उत्तरार्द्ध

समाजशास्त्र, द्वितीय प्रश्नपत्र

परिवर्तन एवं विकास का समाजशास्त्र

(SOCIOLOGY OF CHANGE AND DEVELOPMENT)

मध्यप्रदेश भोज (मुक्त) विश्वविद्यालय – भोपाल

MADHYA PRADESH BHOJ (OPEN) UNIVERSITY - BHOPAL

Reviewer Committee

1. Dr. Madhavi Lata Dubey
   Professor
   Govt Dr Shyama Prasad Mukharjee Science and Commerce College, Bhopal (M.P.)
2. Dr. Deepika Gupta
   Assistant Professor
   IEHE College, Bhopal (M.P.)
3. Dr Archana Chauhan
   Professor
   Govt. S.N.G. (PG) Autonomous College, Bhopal (M.P.)

Advisory Committee

1. Dr Jayant Sonwalkar
   Hon'ble Vice Chancellor
   Madhya Pradesh Bhoj (Open) University, Bhopal (MP)
2. Dr L.S.Solanki
   Registrar
   Madhya Pradesh Bhoj (Open) University, Bhopal (MP)
3. Dr. Anjali Singh
   Director, Student Support
   Madhya Pradesh Bhoj (Open) University, Bhopal (MP)
4. Dr. Madhavi Lata Dubey
   Professor
   Govt Dr Shyama Prasad Mukharjee Science and Commerce College, Bhopal (M.P.)
5. Dr Deepika Gupta
   Assistant Professor
   IEHE College, Bhopal (M.P.)
6. Dr Archana Chauhan
   Professor
   Govt. S.N.G. (PG) Autonomous College, Bhopal (M.P.)

COURSE WRITERS

Dr. Deepika Bhambani, Former Faculty Department of Social Sciences MLB College Jiwaji University Gwalior.
Units (1-5)

Copyright © Reserved, Madhya Pradesh Bhoj (Open) University, Bhopal

All rights reserved. No part of this publication which is material protected by this copyright notice may be reproduced or transmitted or utilized or stored in any form or by any means now known or hereinafter invented, electronic, digital or mechanical, including photocopying, scanning, recording or by any information storage or retrieval system, without prior written permission from the Registrar, Madhya Pradesh Bhoj (Open) University, Bhopal.

Information contained in this book has been published by VIKAS® Publishing House Pvt. Ltd. and has been obtained by its Authors from sources believed to be reliable and are correct to the best of their knowledge. However, the Madhya Pradesh Bhoj (Open) University, Bhopal, Publisher and its Authors shall in no event be liable for any errors, omissions or damages arising out of use of this information and specifically disclaim any implied warranties or merchantability or fitness for any particular use.

Published by Registrar, MP Bhoj (Open) University, Bhopal in 2020

VIKAS®

Vikas® is the registered trademark of Vikas® Publishing House Pvt. Ltd.

VIKAS® PUBLISHING HOUSE PVT. LTD.
E-28, Sector-8, Noida - 201301 (UP)
Phone: 0120-4078900 • Fax: 0120-4078999
Regd. Office: A-27, 2nd Floor, Mohan Co-operative Industrial Estate, New Delhi 1100 44
• Website: www.vikaspublishing.com • Email: helpline@vikaspublishing.com

SYLLABI-BOOK MAPPING TABLE

परिवर्तन एवं विकास का समाजशास्त्र

Syllabi	Mapping in Book
इकाई–1 सामाजिक परिवर्तन का अर्थ एवं परिभाषा; सामाजिक परिवर्तन का स्वरूप – परिवर्तन के आंतरिक और बाह्य स्रोत – जातीयता, सांस्कृतिक पहचान और परिवर्तन; सामाजिक परिवर्तन के सिद्धांत एवं कारक – सामाजिक परिवर्तन के जनसांख्यिकीय कारक – सामाजिक परिवर्तन के आर्थिक कारक – सामाजिक परिवर्तन के धार्मिक कारक – सामाजिक परिवर्तन में प्रौद्योगिकी की भूमिका।	**इकाई 1** : सामाजिक परिवर्तन का अर्थ एवं स्वरूप। **(पृष्ठ 3–65)**
इकाई–2 समकालीन भारत में सामाजिक परिवर्तन की प्रवृत्तियां – परिवर्तन की प्रक्रियाएं – संस्कृतीकरण – पश्चिमीकरण – आधुनिकीकरण – धर्मनिरपेक्षीकरण; विकास की बदलती अवधारणाएं – आर्थिक विकास – मानव विकास – सामाजिक विकास – सतत विकास – सामाजिक–सांस्कृतिक स्थिरता के प्रश्न।	**इकाई 2** : समकालीन भारत में सामाजिक परिवर्तन **(पृष्ठ 67–116)**
इकाई–3 विकास पर महत्वपूर्ण परिप्रेक्ष्य – मनुष्य और उसकी पारिस्थितिकी – उदारवादी – मार्क्सवादी; विकास और अविकसितता के सिद्धांत – आधुनिकीकरण – विकास के सिद्धांत पर निर्भर : केंद्र–परिधि, असमान विनिमय, विश्व–प्रणाली।	**इकाई 3** : विकास पर महत्वपूर्ण परिप्रेक्ष्य : पारिस्थितिक और मार्क्सवादी **(पृष्ठ 117–156)**
इकाई–4 विकास के विभिन्न आयाम – पूंजीवादी – समाजवादी – मिश्रित अर्थव्यवस्था –गाँधीवादी – राज्य – बाजार – गैर सरकारी संगठन (एनजीओ); सामाजिक संरचना और विकास – एक सहायक/अवरोधक के रूप में संरचना – विकास और सामाजिक–आर्थिक विषमताएं – लिंग और विकास – संस्कृति और विकास – परंपरा का विकास और विस्थापन –जातीयता का विकास और उत्थान।	**इकाई 4** : विकास के मार्ग एवं साधन **(पृष्ठ 157–207)**
इकाई–5 विकास का भारतीय अवलोकन – भारत में पंचवर्षीय योजना – बारहवीं अंतिम पंचवर्षीय योजना एवं नीति आयोग – गरीबी उन्मूलन कार्यक्रम और पंचवर्षीय योजनाएँ – आर्थिक सुधारों के सामाजिक परिणाम – वैश्वीकरण : सांस्कृतिक और सामाजिक पहलू – सूचना–तकनीक क्रांति के सामाजिक प्रभाव; सामाजिक नीतियाँ और कार्यक्रम तैयार करना – नीति और परियोजना कार्यान्वयन – कार्यप्रणाली की निगरानी और मूल्यांकन।	**इकाई 5** : विकास का भारतीय अवलोकन : पंचवर्षीय योजनाओं का समाजशास्त्रीय मूल्यांकन **(पृष्ठ 209–258)**

विषय–सूची

परिचय **1–2**

इकाई 1 सामाजिक परिवर्तन का अर्थ एवं स्वरूप। **3–65**

1.0 परिचय
1.1 उद्देश्य
1.2 सामाजिक परिवर्तन का अर्थ एवं परिभाषा
1.3 सामाजिक परिवर्तन का स्वरूप
1.3.1 परिवर्तन के आंतरिक और बाह्य स्रोत
1.3.2 जातीयता, सांस्कृतिक पहचान और परिवर्तन
1.4 सामाजिक परिवर्तन के सिद्धांत एवं कारक
1.4.1 सामाजिक परिवर्तन के जनसांख्यिकीय कारक
1.4.2 सामाजिक परिवर्तन के आर्थिक कारक
1.4.3 सामाजिक परिवर्तन के धार्मिक कारक
1.4.4 सामाजिक परिवर्तन में प्रौद्योगिकी की भूमिका
1.5 अपनी प्रगति जांचिए प्रश्नों के उत्तर
1.6 सारांश
1.7 मुख्य शब्दावली
1.8 स्व–मूल्यांकन प्रश्न एवं अभ्यास
1.9 सहायक पाठ्य सामग्री

इकाई 2 समकालीन भारत में सामाजिक परिवर्तन **67–116**

2.0 परिचय
2.1 उद्देश्य
2.2 समकालीन भारत में सामाजिक परिवर्तन की प्रवृत्तियां
2.3 परिवर्तन की प्रक्रियाएं
2.3.1 संस्कृतीकरण
2.3.2 पश्चिमीकरण
2.3.3 आधुनिकीकरण
2.3.4 धर्मनिरपेक्षीकरण
2.4 विकास की बदलती अवधारणाएं
2.4.1 आर्थिक विकास
2.4.2 मानव विकास
2.4.3 सामाजिक विकास
2.4.4 सतत विकास
2.4.5 सामाजिक–सांस्कृतिक स्थिरता के प्रश्न
2.5 अपनी प्रगति जांचिए प्रश्नों के उत्तर
2.6 सारांश
2.7 मुख्य शब्दावली
2.8 स्व–मूल्यांकन प्रश्न एवं अभ्यास
2.9 सहायक पाठ्य सामग्री

इकाई 3 विकास पर महत्वपूर्ण परिप्रेक्ष्य : पारिस्थितिक और मार्क्सवादी **117–156**

3.0 परिचय
3.1 उद्देश्य
3.2 विकास पर महत्वपूर्ण परिप्रेक्ष्य
3.2.1 मनुष्य और उसकी पारिस्थितिकी
3.2.2 उदारवादी
3.2.3 मार्क्सवादी
3.3 विकास और अविकसितता के सिद्धांत
3.3.1 आधुनिकीकरण
3.3.2 विकास के सिद्धांत पर निर्भर : केंद्र–परिधि, असमान विनिमय, विश्व–प्रणाली
3.4 अपनी प्रगति जांचिए प्रश्नों के उत्तर
3.5 सारांश
3.6 मुख्य शब्दावली
3.7 स्व–मूल्यांकन प्रश्न एवं अभ्यास
3.8 सहायक पाठ्य सामग्री

इकाई 4 विकास के मार्ग एवं साधन **157–207**

4.0 परिचय
4.1 उद्देश्य
4.2 विकास के विभिन्न आयाम
4.2.1 पूंजीवादी
4.2.2 समाजवादी
4.2.3 मिश्रित अर्थव्यवस्था
4.2.4 गाँधीवादी
4.2.5 राज्य
4.2.6 बाजार
4.2.7 गैर सरकारी संगठन (एनजीओ)
4.3 सामाजिक संरचना और विकास
4.3.1 एक सहायक/अवरोधक के रूप में संरचना
4.3.2 विकास और सामाजिक–आर्थिक विषमताएं
4.3.3 लिंग और विकास
4.3.4 संस्कृति और विकास
4.3.5 परंपरा का विकास और विस्थापन
4.3.6 जातीयता का विकास और उत्थान
4.4 अपनी प्रगति जांचिए प्रश्नों के उत्तर
4.5 सारांश
4.6 मुख्य शब्दावली
4.7 स्व–मूल्यांकन प्रश्न एवं अभ्यास
4.8 सहायक पाठ्य सामग्री

इकाई 5 विकास का भारतीय अवलोकन : पंचवर्षीय योजनाओं का समाजशास्त्रीय मूल्यांकन

209–258

5.0 परिचय
5.1 उद्देश्य
5.2 विकास का भारतीय अवलोकन
  5.2.1 भारत में पंचवर्षीय योजना
  5.2.2 बारहवीं अंतिम पंचवर्षीय योजना एवं नीति आयोग
  5.2.3 गरीबी उन्मूलन कार्यक्रम और पंचवर्षीय योजनाएँ
  5.2.4 आर्थिक सुधारों के सामाजिक परिणाम
  5.2.5 वैश्वीकरण : सांस्कृतिक और सामाजिक पहलू
  5.2.6 सूचना–तकनीक क्रांति के सामाजिक प्रभाव
5.3 सामाजिक नीतियाँ और कार्यक्रम तैयार करना
  5.3.1 नीति और परियोजना कार्यान्वयन
  5.3.2 कार्यप्रणाली की निगरानी और मूल्यांकन
5.4 अपनी प्रगति जांचिए प्रश्नों के उत्तर
5.5 सारांश
5.6 मुख्य शब्दावली
5.7 स्व–मूल्यांकन प्रश्न एवं अभ्यास
5.8 सहायक पाठ्य सामग्री

परिचय

टिप्पणी

प्रस्तुत पुस्तक 'परिवर्तन एवं विकास का समाजशास्त्र' विश्वविद्यालय द्वारा निर्धारित समाजशास्त्र (उत्तरार्द्ध) के पाठ्यक्रम के अनुसार लिखी गई है। परिवर्तन प्रकृति का नियम है। हर एक चीज परिवर्तित होती रहती है, जैसे समय, समय की स्थिति, समाज, ऋतुएं, जीव एवं उनका व्यवहार, सोच एवं सिद्धांत, जीवित और निर्जीव हरएक वस्तु आदि। अब प्रश्न यह उठता है कि क्या परिवर्तन ही विकास है या विकास की तरफ उठता हुआ एक कदम है। अपने चारों तरफ अगर ध्यान से अन्वेषण किया जाये तो हम पायेंगे कि हर एक छण कुछ न कुछ नया हो रहा है। क्या नवीनता और परिवर्तन एक ही चीज है। ये कुछ ऐसे प्रश्न हैं जो हमेशा से हर एक के मन और मस्तिष्क को झझोरते रहते हैं। मनुष्य इसका उत्तर जानते हुए भी अनजान बना रहता है या फिर अनजान बने रहने में ही अपनी भलाई समझता है। यहां पर सामाजिक परिवर्तन और नयी सोच के बारे में कुछ विचार व्यक्त किए जा रहे हैं। आदिकाल से मनुष्य को दूसरे के बारे में सोचना और उसकी नकल करना अच्छा लगता है। प्रतिस्पर्धा करना जैसे मनुष्यों की आदत बन गयी है, और मनुष्यों की ही बात नहीं पशु पक्षी भी एक–दूसरे की नकल और एक दूसरे से स्पर्धा करते हैं। हर जीव दूसरे जीव से अपने आप को अलग और बेहतर साबित करने की कोशिश हमेशा करता रहता है अर्थात विभिन्न समाज में विभिन्न प्रकार के वर्गीकरण की प्रक्रिया स्वतः उत्पन्न होती है। जिस तरह आवश्यकता आविष्कार की जननी है उसी तरह श्रेष्ठता और विकास की यह अवधारणा एक सामाजिक परिवर्तन की नींव बनती है या यूँ कहें कि इस प्रकार के सामाजिक संघर्ष से उत्पन्न श्रेष्ठ परिवर्तन भविष्य में उच्च विकास की परिधि को प्राप्त करता है। यह एक सतत प्राकृतिक प्रक्रिया है। जीवों के विकास के सम्बन्ध में डार्विनवाद और न्यूडार्विनवाद का सिद्धांत भी यही कहता है। प्रस्तुत पुस्तक में परिवर्तन एवं विकास के समाजशास्त्र का विधिवत विवेचन किया गया।

अध्ययन की सुविधा के लिए पुस्तक को पांच इकाइयों में समायोजित किया गया है। प्रत्येक इकाई के आरंभ में परिचय के पश्चात विषय–विश्लेषण से पूर्व उसके निहित उद्देश्यों को स्पष्ट किया गया है। सभी इकाइयों के बीच–बीच में 'अपनी प्रगति जांचिए' स्तंभ के जरिए छात्रों को अपने मूल्यांकन का अवसर भी दिया गया है। इसके अतिरिक्त मुख्य शब्दावली के अंतर्गत कठिन शब्दों के अर्थ दिए गए हैं और अंत में स्व–मूल्यांकन हेतु लघु एवं दीर्घ उत्तरीय प्रश्न भी दिए गए हैं। पुस्तक की समस्त इकाइयों का वर्णन निम्न प्रकार है–

पहली इकाई में सामाजिक परिवर्तन के अर्थ एवं संरचना पर प्रकाश डाला गया है तथा सामाजिक परिवर्तन के विभिन्न सिद्धांतों तथा कारकों की विवेचना की गई है।

दूसरी इकाई में समकालीन भारत में हुए सामाजिक परिवर्तनों की समीक्षात्मक व्याख्या की गई है। इसके अंतर्गत संस्कृतीकरण, पश्चिमीकरण, आधुनिकीकरण तथा धर्मनिरपेक्षता का अध्ययन किया गया है तथा विकास की बदलती अवधारणाओं की समीक्षा की गई है।

तीसरी इकाई में विकास के आलोचनात्मक परिप्रेक्ष्यों की व्याख्या की गई है। इसके अंतर्गत विकास के पारिस्थितिक, उदारवादी तथा मार्क्सवादी सिद्धांतों की चर्चा की गई है।

टिप्पणी

चौथी इकाई में विकास के मार्गों एवं माध्यमों का उल्लेख किया गया है। इस इकाई में पूंजीवादी, समाजवादी तथा मिश्रित अर्थव्यवस्था का विवेचन किया गया है तथा गांधीवादी, राज्य बाजार तथा गैर सरकारी संस्थाओं का विवेचन किया गया है।

पांचवीं इकाई में विकास के भारतीय अनुभव का विश्लेषण प्रस्तुत किया गया है। इसके अंतर्गत भारत की पंचवर्षीय योजनाओं की विस्तृत विवेचना की गई है तथा अन्य पहलुओं का अध्ययन किया गया है।

प्रस्तुत पुस्तक में परिवर्तन एवं विकास के समाजशास्त्र संबंधी समस्त पहलुओं को सरल भाषा में रोचक तरीके से वर्णित किया गया है। हमें पूर्ण विश्वास है कि यह पुस्तक पाठकों की जिज्ञासा को शांतकर परिवर्तन तथा प्रगति के समाजशास्त्र के स्वरूप को समझने में सहायक सिद्ध होगी।

इकाई 1 सामाजिक परिवर्तन का अर्थ एवं स्वरूप।

टिप्पणी

संरचना

1.0 परिचय
1.1 उद्देश्य
1.2 सामाजिक परिवर्तन का अर्थ एवं परिभाषा
1.3 सामाजिक परिवर्तन का स्वरूप
  1.3.1 परिवर्तन के आंतरिक और बाह्य स्रोत
  1.3.2 जातीयता, सांस्कृतिक पहचान और परिवर्तन
1.4 सामाजिक परिवर्तन के सिद्धांत एवं कारक
  1.4.1 सामाजिक परिवर्तन के जनसांख्यिकीय कारक
  1.4.2 सामाजिक परिवर्तन के आर्थिक कारक
  1.4.3 धार्मिक कारक
  1.4.4 सामाजिक परिवर्तन में प्रौद्योगिकी की भूमिका
1.5 अपनी प्रगति जांचिए प्रश्नों के उत्तर
1.6 सारांश
1.7 मुख्य शब्दावली
1.8 स्व–मूल्यांकन प्रश्न एवं अभ्यास
1.9 सहायक पाठ्य सामग्री

1.0 परिचय

सामाजिक व्यवस्था में समय–समय पर होने वाले परिवर्तनों को ही सामाजिक परिवर्तन कहा जाता है। मानव समाज और संस्कृति, परिवर्तनशील होते हैं। परिवर्तन प्रकृति और समाज का शाश्वत और सार्वभौमिक नियम है। आज विश्व में सामाजिक परिवर्तन पहले के समय की तुलना में बहुत तेज गति से हो रहे हैं। यह देखा गया है कि शहरी व विकसित समाजों में ग्रामीण व अविकसित समाजों की तुलना में सामाजिक परिवर्तन तेज गति से होता है। हालाँकि, यह परिवर्तन बहुआयामी है। मैकाइवर और पेज ने लिखा है कि समाज एक सतत, परिवर्तनशील, जटिल व्यवस्था है। यह सामाजिक संबंधों का जाल है और यह हर समय बदलता रहता है। अब तक, ऐसा कोई समाज नहीं देखा गया है जो परिवर्तनशील न हो।

प्रस्तुत इकाई में हमारे समाज में होने वाले विभिन्न परिवर्तनों के अभिप्राय तथा उसके स्वरूप का विस्तार से अध्ययन किया गया है।

1.1 उद्देश्य

इस इकाई को पढ़ने के बाद आप–

- सामाजिक परिवर्तन का अर्थ समझ पाएंगे;
- सामाजिक परिवर्तन की विशेषताओं का विश्लेषण कर पाएंगे;
- सामाजिक परिवर्तन के सिद्धांतों की व्याख्या कर पाएंगे;
- सामाजिक परिवर्तन के स्वरूप की समीक्षा कर पाएंगे।

टिप्पणी

1.2 सामाजिक परिवर्तन का अर्थ एवं परिभाषा

सामाजिक परिवर्तन से तात्पर्य किसी समाज की सामाजिक व्यवस्था में आये परिवर्तन से है। समाजशास्त्रियों ने प्रारंभ से ही विकासवाद, प्रगति एवं सामाजिक परिवर्तन पर विचार किया है, सामाजिक परिवर्तन इन धारणाओं का ही अर्थ है, लेकिन 1922 में, ओगबर्न ने उनके बीच वास्तविक अंतर को परिभाषित किया। इसके बाद समाजशास्त्र में इस शब्दावली का अत्यधिक प्रयोग किया गया है। अब सामाजिक विद्वानों के विचारों पर ध्यान दिया जाएगा कि सामाजिक परिवर्तन का अर्थ क्या है? जिससे सामाजिक परिवर्तन की अवधारणा को स्पष्ट रूप से समझा जा सके। मैकाइवर और पेज के अनुसार, "समाजशास्त्र सामाजिक संबंधों के बारे में रिश्तों का नेटवर्क है, जिसे हम समाज कहते हैं"। इस प्रकार मैकाइवर और पेज समाज को सामाजिक संबंधों के नेटवर्क के रूप में संदर्भित करते हैं। अतः सामाजिक सम्बन्धों में होने वाला परिवर्तन ही सामाजिक परिवर्तन है।

किंग्सले डेविस का मत है, "सामाजिक परिवर्तन से तात्पर्य केवल ऐसे परिवर्तनों से है जो सामाजिक संगठन, अर्थात् समाज की संरचना और कार्यों में होते हैं"। इस प्रकार, डेविस ने सामाजिक परिवर्तन को एक पूर्ण संरचनात्मक–कार्यात्मक परिप्रेक्ष्य के रूप में देखा है। दूसरे शब्दों में, उनके अनुसार, सामाजिक परिवर्तन को तभी पहचाना जाता है जब समाज की विभिन्न इकाइयों, जैसे संगठनों, समुदायों, समितियों, समूहों आदि में परिवर्तन होता है और इन परिवर्तनों के कारण इन सामाजिक इकाइयों की कार्यक्षमता में भी परिवर्तन होता है।

जॉनसन के विचार में, "सामाजिक परिवर्तन को लोगों के करने और सोचने के तरीके में संशोधन के रूप में परिभाषित किया जा सकता है"। इस प्रकार जॉनसन ने मानव के व्यवहार और विचारों में परिवर्तन को सामाजिक परिवर्तन में शामिल किया है। जॉनसन के दृष्टिकोण के अनुसार, अपने मूल अर्थ में सामाजिक परिवर्तन का अर्थ सामाजिक संरचना में परिवर्तन है। जॉनसन ने कहा है कि सामाजिक मूल्यों, संगठनों, समुदायों, पुरस्कारों, लोगों व उनकी भावनाओं व क्षमताओं में परिवर्तन को भी सामाजिक परिवर्तन कहा जा सकता है। उपर्युक्त सभी परिभाषाओं के आधार पर, यह निष्कर्ष निकालता है कि सामाजिक परिवर्तन में वे परिवर्तन शामिल हैं जो मानवीय गतिविधियों, सामाजिक प्रक्रियाओं, व्यवहारों, संगठनों, परंपराओं, कार्यों और सामाजिक संरचना के कारण होते हैं। सामाजिक परिवर्तन में निम्नलिखित तथ्य शामिल हो सकते हैं–

(1) सामाजिक परिवर्तन समाज के संगठन और कार्यों में परिवर्तन है।

(2) सामाजिक परिवर्तन को किसी व्यक्ति में व्यक्तिगत परिवर्तन या व्यक्तियों के समूह में परिवर्तन के रूप में मान्यता नहीं दी जाती है, लेकिन यह तभी पहचाना जाता है जब बहुसंख्यक या समाज के सभी लोग अपनी जीवन शैली और विचार प्रक्रिया में परिवर्तन को स्वीकार करते हैं।

(3) सामाजिक परिवर्तन एक सार्वभौमिक सत्य है, इसलिए परिवर्तन हर युग में होता है।

(4) सामाजिक परिवर्तन मानव के सामाजिक संबंधों में परिवर्तन से संबंधित है।

टिप्पणी

सामाजिक परिवर्तन की विशेषताएं

विभिन्न विद्वानों ने सामाजिक परिवर्तन की निम्न विशेषताएँ बताई हैं, जो सामाजिक परिवर्तन की अवधारणा को और अधिक रूपों से परिभाषित करती हैं–

सामाजिक प्रकृति : सामाजिक परिवर्तन पूरे समाज में होने वाले परिवर्तन से संबंधित है, हालाँकि सामाजिक परिवर्तन केवल व्यक्तिगत स्तर पर होने वाला परिवर्तन नहीं है। दूसरे शब्दों में, सामाजिक परिवर्तन तभी सामान्य होता है जब परिवर्तन पूरे समाज की इकाइयों में होता है, जैसे कि जाति, समूह, समुदाय स्तर पर। हालाँकि, समाज की किसी एक इकाई में होने वाले परिवर्तन को सामाजिक परिवर्तन नहीं कहा जाता है।

सार्वभौमिक परिघटना : सामाजिक परिवर्तन चिरस्थायी और सार्वभौमिक रूप से स्वीकार्य है। इस दुनिया में कोई भी समाज ऐसा नहीं है जहाँ बदलाव न हुआ हो। हालांकि विभिन्न समाजों में, परिवर्तन की दर और प्रकृति भिन्न हो सकती है क्योंकि कोई भी दो समाज समान नहीं होते हैं उनके इतिहास, संस्कृति, प्रकृति आदि में विविधता होती है जिससे वे एक–दूसरे की प्रतिकृति नहीं हो सकते हैं– प्राचीन समय के समाजों के दौरान सामाजिक परिवर्तन की दर अत्यंत धीमी रही है, जबकि दूसरी ओर पश्चिमी देशों में, विशेष रूप से अमेरिका में, सामाजिक परिवर्तन की दर अत्यंत तेज है। परिवर्तन प्रकृति का शाश्वत सत्य है, इस प्रकार, सामाजिक स्तर पर यह सभी युगों और समाजों में किसी न किसी रूप में मौजूद है।

प्राकृतिक और अपरिहार्य : परिवर्तन आवश्यक रूप से होता है क्योंकि यह प्रकृति का शाश्वत सत्य है। इसलिए, इसे एक प्राकृतिक प्रक्रिया कहा जाता है। समाज भी स्वाभाविक रूप से बदलता रहता है।अक्सर, मानव स्वभाव परिवर्तन का विरोध करता है, लेकिन फिर भी परिवर्तन होता रहता है क्योंकि परिवर्तन के लिए व्यक्ति की आवश्यकताएँ, इच्छाएँ, परिस्थितियाँ जिम्मेदार हैं। उदाहरण के लिए, प्राचीन काल में घरों का डिजाइन विभिन्न प्रकार का हुआ करता था, लेकिन आधुनिक समय में, जब सभी प्रकार के कार्यों के लिए मशीनों पर निर्भर रहना पड़ता है, स्वाभाविक रूप से घरों के प्रकारों में परिवर्तन हुआ, जिसे काफी असंभव माना जाता था। इस प्रकार, मनुष्य अपनी बदलती परिस्थितियों को समायोजित करने के लिए आवश्यक रूप से होने वाले परिवर्तनों को स्वीकार करता है। हालाँकि, यह एक प्राकृतिक घटना है।

तुलनात्मक और असमान गति : सामाजिक परिवर्तन सभी समाजों में देखा जाता है लेकिन विभिन्न समाजों में परिवर्तन की दर अलग–अलग होती है। ग्रामीण समाजों में परिवर्तन बहुत धीमी गति से होता है। इसका कारण यह है कि होने वाले परिवर्तन के लिए जिम्मेदार कारक विभिन्न प्रकार के होते हैं, जबकि शहरी समाज में परिवर्तन अपेक्षाकृत तेज गति से होता है। अतः, ग्रामीण समाजों की तुलना में शहरी समाजों में सामाजिक परिवर्तन तीव्र गति से होता है। उदाहरण के लिए यहाँ हम इन दो प्रकार के समाजों में सामाजिक परिवर्तन की दर के अंतर को निर्धारित करने में सक्षम हैं। सामाजिक परिवर्तन का देश, काल और परिस्थितियों से घनिष्ठ सम्बन्ध होता है। दूसरे शब्दों में, हर देश की अलग–अलग परिस्थितियाँ होती हैं, इसलिए प्रत्येक देश में सामाजिक परिवर्तन भी अलग–अलग दर से होता है, जिसे तुलनात्मक रूप से जाना जा सकता है।

टिप्पणी

जटिल परिघटना : दो समाजों में होने वाले परिवर्तनों के तुलनात्मक विश्लेषण के आधार पर, यह स्पष्ट है कि एक सामाजिक परिवर्तन हुआ है, लेकिन यह स्पष्ट नहीं है कि परिवर्तन कितना और किस स्तर पर हुआ है? इसको समझना संभव नहीं है, उदाहरण के लिए, आज के विचार, मूल्य, परम्पराएँ, रीति– रिवाज प्राचीन युग से भिन्न रहे हैं, लेकिन अंतर की सीमा का मूल्यांकन करना संभव नहीं है क्योंकि घटना परिवर्तन प्रकृति में गुणात्मक है। इसलिए, सामाजिक परिवर्तन की विशेषता एक जटिल घटना है, इसकी प्रकृति को समझना आसान नहीं है।

भविष्यवाणी असंभव : परिवर्तन तो होता है, लेकिन उसकी दिशा क्या होगी? इसकी प्रकृति क्या होगी? परिवर्तन किस स्थान पर होगा यह नहीं बताया जा सकता है। उदाहरण के लिए, तकनीकी विकास के प्रभाव ने सारे देश को प्रभावित किया। विभिन्न क्षेत्र, जैसे जीवन स्तर, भोजन की व्यवस्था, आवागमन, भौतिकवादी आराम आदि इससे प्रभावित होते हैं। यद्यपि, यह एक कठिन कार्य है, लोगों के विचारों, विश्वास और मूल्यों के प्रभाव की सीमा का विश्लेषण करना असंभव है। औद्योगीकरण एवं शहरीकरण ने संयुक्त परिवारों, विवाह, जाति प्रथा आदि विभिन्न क्षेत्रों को प्रभावित किया है, जिनके पूर्ण प्रभाव की निश्चित रूप से भविष्यवाणी नहीं की जा सकती। हालांकि, केवल संभावनाओं का विश्लेषण किया जा सकता है।

अपनी प्रगति जांचिए

1. "समाजशास्त्र सामाजिक संबंधों के बारे में रिश्तों का नेटवर्क है, जिसे हम समाज कहते हैं।"– यह किसका कथन है?

   (क) मैकाइवर एवं पेज का (ख) मार्क्स का

   (ग) डेविस का (घ) जॉनसन का

2. सामाजिक परिवर्तन किसके संगठन और कार्यों में परिवर्तन है?

   (क) परिवार के (ख) समाज के

   (ग) राष्ट्र के (घ) धर्म के

1.3 सामाजिक परिवर्तन का स्वरूप

एक समाज में, सामाजिक परिवर्तन विभिन्न कालखंडों में आने वाली विविधता की व्याख्या करता है, लेकिन यह निश्चित नहीं है कि समाज में परिवर्तन किस देश में, किस कानून के तहत या किस सिद्धांत के आधार पर हो रहा है। सामाजिक परिवर्तन के स्वरूप को अनेक समाजशास्त्रियों द्वारा परिभाषित किया गया है, जैसे– मैकाइवर और पेज, हर्बर्ट स्पेंसर, हॉबहाउस और सोरोकिन आदि। सामाजिक परिवर्तन के स्वरूप को निम्न शीर्षकों के अंतर्गत समझा जा सकता है–

प्रक्रिया : प्रक्रिया का तात्पर्य परिवर्तन की निरंतरता से है। प्रक्रिया या तो प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से हो सकती है या किसी भी दिशा में कम या ज्यादा हो सकती है। यह परिवर्तन की घटना का एक निश्चित क्रम है जिसके कारण एक राज्य दूसरे में बदल जाता है। मैकाइवर ने कहा है कि प्रक्रिया अनिवार्य रूप से वर्तमान शक्तियों की

टिप्पणी

गतिविधि के निरंतर परिवर्तन की स्थिति है। उदाहरण के लिए, जब हम कहते हैं कि आज समाज तकनीकी प्रक्रिया की स्थिति में है, तो हमारा कहना है कि प्राचीन मूल्य, परंपराएँ आदि लगातार बदल रही हैं और ये परंपराएँ आधुनिकीकरण में समाहित हो रही हैं।

विकासवाद : विकासवाद की अवधारणा सबसे पहले डार्विन ने दी थी। उन्होंने कहा कि सादगी से जटिलता की ओर निर्देशित कोई भी चीज विकासवाद है। सादगी से जटिलता की दिशा की प्रक्रिया कुछ निश्चित चरणों में होती है। विकास के रूप में, सामाजिक परिवर्तन को सबसे पहले हर्बर्ट स्पेंसर द्वारा परिभाषित किया गया था जिसमें उन्होंने डार्विन के सिद्धांत को समाज पर लागू किया था।

हर्बर्ट के अनुसार, विकास पदार्थ का एकीकरण और गति के सहवर्ती अपव्यय है, जिसके दौरान मामला अनिश्चितकालीन,असंगत, समरूपता से एक निश्चित सुसंगत विषमता तक जाता है और जिसके दौरान प्रतिधारित गति एक समानांतर परिवर्तन से गुजरती है। स्पेंसर ने सामाजिक विकास के चार स्तरों पर चर्चा की, अर्थात बर्बर राज्य, देहाती राज्य, कृषि राज्य और औद्योगीकरण राज्य।

मैकाइवर और पेज के लिए, विकासवादी परिवर्तन की एक स्थिति है जिसमें विभिन्न राज्यों को उस पदार्थ के बारे में देखा जाता है जो बदल रहा है, जो उस मामले की वास्तविकता को निर्धारित करता है। दूसरे शब्दों में, मैकाइवर के अनुसार, प्रत्येक पदार्थ जो विकासवादी है, भविष्य में व्यक्त होने वाले विकास से गुजरने की संभावना है। एक राज्य को विकास से गुजरना कहा जा सकता है जब परिवर्तन निश्चित दिशा में लगातार होता है और यह इसकी संरचना और गुणों में भी होता है। किसी पदार्थ के विकास में, उसके आंतरिक गुणों में परिवर्तन होता है।

प्रगति : विकास का अर्थ केवल परिवर्तन की घटना से लिया जाता है, लेकिन विकास के कारण होने वाले परिवर्तनों का हमेशा यह अर्थ नहीं होता है कि वे समाज के विकास में मदद करते हैं। इसके विपरीत प्रगति से होने वाले परिवर्तन विकास से संबंधित हैं। प्रगति के लिए उन परिवर्तनों पर विचार किया जाता है जो समाज के विकास के लिए होते हैं। दूसरे शब्दों में, प्रगति उस परिवर्तन से संबंधित है जो समाज के लक्ष्यों के अनुरूप है। जो परिवर्तन समाज की भलाई के लिए होता है उसे प्रगति कहते हैं। अक्सर योजना बनाई जाती है, जिससे समाज विशेष परिवर्तन को उसके लिए अच्छा मानता है, यह उस समाज के लिए प्रगति है। आमतौर पर प्रगति समाज के मूल्यों और सिद्धांतों से जुड़ी होती है, वे सिद्धांत जिन्हें एक समाज उचित समझता है। इसके लिए और इस दिशा में हो रहे परिवर्तनों को समाज के लिए प्रगति कहा जाता है। यह आमतौर पर नैतिकता से संबंधित है। यह भी संभव है कि एक समाज जो कुछ मूल्यों को मानता हो व इसके लिए उपयुक्त सिद्धांत इसकी प्रगति में परिणत होते हैं, जबकि समान मूल्यों और सिद्धांतों के परिणामस्वरूप किसी अन्य समाज के लिए गिरावट का कारण भी हो सकते हैं जो मूल्यों और सिद्धांतों पर विचार नहीं करता है। इस तरह, प्रगति को समरूप किया जाता है। प्रगति की अवधारणा विविध है। साथ ही, प्रगति को मापना संभव है। प्रगति सभी समाजों के लिए सार्वभौमिक नहीं हो सकती क्योंकि प्रगति मूल्य, सिद्धांत और नैतिकता से संबंधित है, जो विभिन्न समाजों के लिए भिन्न हो सकते हैं।

प्रगति के विषय पर ऑगबर्न और निमकॉफ ने लिखा है कि, प्रगति का अर्थ बेहतरी के लिए परिवर्तन से संबंधित है और इस वजह से यह प्रगति का निर्धारण करने लायक है। इस प्रकार, प्रगति एक वांछित परिवर्तन है।

टिप्पणी

विकास : विकास का तात्पर्य किसी वस्तु में होने वाले परिवर्तन से है जो श्रेष्ठता की ओर निर्देशित होती है। यहाँ तक कि जब एक बच्चा शैशवावस्था से किशोरावस्था तक विकसित होता है, तब भी वह शारीरिक, मानसिक, भावनात्मक, सामाजिक और नैतिक परिवर्तनों से गुजरता है, जो उसे एक अच्छी तरह से समायोजित व्यक्ति बनाता है। इसी प्रकार, जब कोई समाज भी आर्थिक, सामाजिक और नैतिक दृष्टि से परिवर्तन से गुजरता है, तो उसे विकसित समाज कहा जाता है। इस प्रकार विकास परिवर्तन का सूचक है जो श्रेष्ठता की ओर बढ़ता है। भारतीय समाज की तुलना में पश्चिमी समाज को विकसित माना जाता है क्योंकि वहाँ अर्थव्यवस्था, प्रौद्योगिकी, शिक्षा आदि के सभी क्षेत्र बदल गए हैं। समाज की प्रगति के लिए विकास आवश्यक है– विकास के लिए सोच–समझकर प्रयास किए जा रहे हैं।

अनुकूलन : अनुकूलन भी परिवर्तन की एक प्रक्रिया है जिसमें एक व्यक्ति दूसरे व्यक्ति या परिस्थिति के साथ तालमेल बैठाने का प्रयास करता है। अनुकूलन की प्रक्रिया में दो बातें महत्वपूर्ण हैं–

1. एक व्यक्ति को परिस्थिति के अनुसार खुद को ढाल लेना चाहिए।
2. उसे अपनी आवश्यकताओं के अनुसार परिस्थितियों को बदलना चाहिए।

अनुकूलन सामाजिक स्तर पर भी होता है, अर्थात् समायोजन, आत्मसात और एकीकरण आदि शब्दों का प्रयोग किया जाता है, जो अनुकूलन की सीमा को इंगित करते हैं। इस प्रकार, अनुकूलन परिवर्तन का एक रूप भी है।

क्रांति : समाज में जब शोषण, अत्याचार, तनाव में वृद्धि होती है, तब राजनीतिक व्यवस्था में भारी गड़बड़ी होती है और साथ ही साथ सामाजिक मूल्यों में कमी आती है। यह सब समाज में भारी परिवर्तन लाते हैं, जिसे क्रांति कहा जाता है। आमतौर पर समाज में क्रांति आर्थिक और राजनीतिक क्षेत्रों में तीव्रता से होती है।

हॉपर ने क्रांति की अवधारणा का वर्णन करते हुए कहा कि सामाजिक क्रांति एक गतिशील परिवर्तन है जिसमें राजनीतिक राज्य जो लोगों को दूसरों से जोड़ता है, वह दिक्कत में है। सरकार में कार्य करने की शक्ति नहीं हो सकती – इस अवस्था में समाज की प्राथमिक एकता नष्ट हो जाती है और सामाजिक और नैतिक मूल्य कम होने लगते हैं। यदि कोई क्रांति गतिशील है, तो अधिकांश प्रमुख संस्थान बदलते हैं। इस तरह राज्य, धर्म, परिवार और शिक्षा अपने मूल रूप से बदल जाते हैं।

वृद्धि : विकास भी परिवर्तन का एक रूप है जो किसी वस्तु में निश्चित परिवर्तन को इंगित करता है। आमतौर पर आकार में परिवर्तन को वृद्धि कहा जाता है, जिसकी एक सीमा होती है और एक बार सीमा प्राप्त हो जाने पर, विकास रुक जाता है और किसी विशेष दिशा या क्षेत्र में परिवर्तन का संकेत देता है।

इस तरह, विकास परिवर्तन का एक रूप है, जिसे मापा जा सकता है, उदाहरण के लिए, किसी समाज में जन्म और मृत्यु दर निर्धारित की जा सकती है।

टिप्पणी

जो लोग समाज को एक संरचना या बुनियादी ढांचे के रूप में देखते हैं, वे इसकी समग्र रूप से ऐसे संगठनों के रूप में कल्पना करते हैं जो समाज के लिए मौलिक संरचना साबित होते हैं। इस दृष्टिकोण के अनुसार, समाज न केवल संगठनों का एक संग्रह है, बल्कि यह संगठनों की एक जटिल संरचना है। ये संगठन एक–दूसरे से जुड़े हुए हैं और एक–दूसरे पर हावी हैं। गिन्सबर्ग के अनुसार, यह उन्हें उन लोगों से अलग बनाता है जो परस्पर जुड़े नहीं हैं या व्यवहार के अलावा ऐसे संबंध हैं। स्थिति और भूमिका की अवधारणाओं के आलोक में समाज को एक संरचना या आधारभूत संरचना के रूप में देखा जाता है।

एक निर्माण या बुनियादी ढांचे के रूप में यदि हम चारों ओर देखते हैं, तो व्यवहार के विभिन्न मानदंड या मानक दिखाई देते हैं। इनमें बहुत कम मानक हैं जो सभी पर समान रूप से लागू होते हैं। कुछ मानक पूरे समूह पर लागू होते हैं, जबकि कुछ केवल एक व्यक्ति पर। इसलिए प्रत्येक सभ्य समाज मानता है कि कानून की दृष्टि से हत्या एक बहुत ही गंभीर और दंडनीय अपराध है। यह एक सार्वभौमिक नियम है, लेकिन अगर यह साबित हो जाता है कि कोई व्यक्ति अपने आप को बचाने के लिए जबरदस्ती घर में घुसे गुंडे को मारता है, और तब संभावना है कि उस व्यक्ति को दंडित नहीं किया जा सकता है। उसी तरह जब कोई सैनिक युद्ध के मैदान में लोगों को मारता है, तो उसे कानून द्वारा सजा नहीं मिलती है। इन दृष्टिकोणों से, यह स्पष्ट है कि प्रश्न का उत्तर देने के लिए यदि कोई सामाजिक मानक केवल कुछ लोगों के लिए लागू होता है, तो यह उन पर निर्भर है। एक मानक से जुड़ी सामाजिक स्थिति कुछ अलग–अलग मानकों वाले अन्य लोगों द्वारा पूरी तरह से अस्वीकार्य होगी। इसे प्रोटोटाइप के कनेक्शन का रोल कहा जाता है। पद और भूमिका एक ही सिक्के के दो पहलू हैं। यह स्थिति अन्य स्थितियों की तुलना में एक महत्वपूर्ण स्थिति है। भूमिका आचार संहिता का वह सिद्धांत है, जिसकी अपेक्षा उन लोगों से की जाती है जो विशेष दर्जे के अंतर्गत आते हैं। जाहिर है, हैसियत केवल सामाजिक पहचान का प्रतीक है। किसी भी जटिल समाज में लोगों के बीच बड़ी मात्रा में सामाजिक अंतःक्रिया होती है। व्यक्तिगत परस्पर क्रिया के बजाय, स्थितियों की परस्पर क्रिया होती है। नाई, बस कंडक्टर, बस चालक और कई अन्य लोग– सभी एक–दूसरे से सामाजिक रूप से संबंधित हैं। यह जानना दिलचस्प है कि हालांकि हम इन लोगों के नाम और पते नहीं जानते हैं, लेकिन हम उनकी स्थिति से अवगत हैं, और उनके साथ हमारा सामाजिक संबंध है। एक बस में यात्रियों के बीच, यात्रियों और बस कंडक्टर के बीच एक स्थिति–केंद्रित अंतःक्रिया होती है, लेकिन वहाँ व्यक्तिगत परिचितों के आधार पर उनके बीच परस्पर क्रिया करने की संभावना बहुत कम होती है।

यदि हम किसी विशेष समय के बिंदु पर विचार करें, तो स्थिति और भूमिका दोनों की अवधारणाएँ स्थिर मानी जाती हैं। स्थिति निश्चित और अपरिवर्तनीय है। भूमिका के मामले में भी यही सच है। इस दृष्टि से देखा जाए तो समाज वास्तव में एक संरचना या आधारभूत संरचना है। लेकिन जब हम किसी समय की अवधि के बारे में सोचते हैं, तो स्थिति और भूमिका दोनों की अवधारणाएँ गतिशील मानी जाती हैं। अन्य स्थितियों की तुलना में समय– समय पर किसी विशेष स्थिति में परिवर्तन होता रहता है। भूमिका के अनुसार परिवर्तन भी होता है। उदाहरण के लिए, शिक्षकों और छात्रों के बीच का

टिप्पणी

संबंध वैसा नहीं है जैसा पचास साल पहले हुआ करता था। स्थिति और भूमिका के परिप्रेक्ष्य में एक अच्छा बदलाव देखा गया है। अब हम आसानी से कल्पना कर सकते हैं कि भविष्य में समय के साथ परिवर्तन होता रहेगा। कभी–कभी, किसी विशेष स्थिति में नई सख्ती और नई जिम्मेदारियों का समावेश होता रहेगा, जबकि पुरानी सख्ती और पुरानी जिम्मेदारियाँ कम होती रहेंगी।

उदाहरण के लिए, यदि कोई नया नियम यह प्रावधान प्रदान करता है कि छात्र समिति के महासचिव को शासकीय निकाय का आधिकारिक सदस्य होना चाहिए, तो यह अतिरिक्त जिम्मेदारी इस विशेष व्यक्ति की स्थिति और भूमिका दोनों को बदल देगी। हम एक ही पद के लिए नामित दो अलग–अलग व्यक्तियों की स्थिति पर भी विचार कर सकते हैं (वे जो एक ही स्थिति के हैं), जो बिल्कुल अलग–अलग भूमिका निभाते हैं, दूसरे शब्दों में, वे अपने कार्यों को पूरी तरह से अलग–अलग तरीके से निष्पादित करते हैं। लगभग हर क्षेत्र में, एक ही पद पर नियुक्त दो अलग–अलग व्यक्ति अलग–अलग तरीकों से अपनी जिम्मेदारियों का निर्वहन करते हैं। उदाहरण के लिए, एक कॉलेज में, एक ही पद पर क्रमबद्ध तरीके से नामित दो प्राचार्य अनुशासन बनाए रखने के लिए अलग–अलग तरीका अपना सकते हैं।

कालखंड के संदर्भ में यह माना जाता है कि समाज एक प्रक्रिया है और सामाजिक संबंध निरंतर गतिशील या प्रगति की स्थिति में होते हैं। यदि समाज में कोई संतुलन है, तो हम विश्वास कर सकते हैं कि यह एक गतिशील संतुलन है। यह स्पष्ट है कि समाज को दोनों रूपों में देखा जा सकता है – एक प्रक्रिया के रूप में और एक संरचना के रूप में। इसलिए जो लेखक समाज को एक प्रणाली या प्रक्रिया के सामाजिक संबंधों के रूप में देखते हैं, उन्हें अपने विश्लेषण में संगठनों (यानी, स्थिति और भूमिका की जटिल संरचना) को जगह देनी होगी। जो लोग समाज को एक संरचना या बुनियादी ढांचे के रूप में देखते हैं, उन्हें सामाजिक संबंधों को वरीयता देनी होती है, स्पष्ट रूप से याद रखना है जो समय के साथ बदल रहा है। अतः स्पष्ट है कि दोनों दृष्टिकोण एक–दूसरे के पूरक हैं।

अंत में, हमें इस बात से सहमत होना होगा कि समाज का अध्ययन करने वाले व्यक्ति के लिए, समाज के बारे में ये दो दृष्टिकोण अनिवार्य रूप से जवाबदेह नहीं हैं। जैसा कि मैकाइवर ने कहा है, समाज केवल एक समय अवधि में जीवित है। यह एक सतत प्रक्रिया है। यह संश्लेषित या निर्मित उत्पाद नहीं है। यह समाज का सार है, फिर भी यदि हम समाज का विश्लेषण करना चाहते हैं और विभिन्न रहस्यों को परिभाषित करना चाहते हैं तो इसके तत्वों के अंतर्संबंध का विश्लेषण करके, इसे एक संरचना के रूप में मानने के अलावा और कोई विकल्प नहीं है। यदि विश्लेषण का विषय निरंतर बदलता रहता है और उसमें कोई मौलिकता नहीं मिलती है, तो इस प्रकार का विश्लेषण संभव नहीं है। एक चिकित्सा विज्ञान का छात्र मानव जीव विज्ञान के बारे में अधिक जानने के लिए मानव कंकाल का अध्ययन करता है। उसी प्रकार समाज का एक संरचना के रूप में अध्ययन उसकी सर्वश्रेष्ठता को समझने की दिशा में एक कदम है।

टिप्पणी

1.3.1 परिवर्तन के आंतरिक और बाह्य स्रोत

समाजशास्त्रियों ने अपने स्वयं के दिशानिर्देशों से सामाजिक परिवर्तन देखा है। हाल ही में, सामाजिक परिवर्तन के अध्ययन के लिए योगेंद्र सिंह ने एक नया सिद्धांत दिया है। इस संदर्भ में हमें 'भारतीय परंपरा के आधुनिकीकरण, 1995' पर उनकी पुस्तक का विवरण अवश्य देना चाहिए। योगेंद्र सिंह की मान्यता है कि भारतीय समाज में कुछ परम्पराएँ हैं, जो सामाजिक संरचनाएं हैं। परंपरा और संरचना एक समाज का निर्माण करती हैं। आज जो आधुनिकीकरण की बड़ी प्रक्रिया चल रही है, वह परंपरा और सामाजिक संरचना दोनों को प्रभावित करती है। जब हम आंतरिक स्रोतों की बात करते हैं, तो इसका मतलब है कि हर परंपरा और संरचना में कुछ ऐसा होता है कि परिवर्तन आंतरिक शक्तियों के कारण ही होता है। उदाहरण के लिए – जाति व्यवस्था में, जब कोई जाति बाहरी स्रोत से नहीं बदली जाती है और जब वह अपनी शक्तियों से आंतरिक रूप से बदलती है, तो उसके परिवर्तन का स्रोत आंतरिक होता है। कभी–कभी, परिवर्तन का स्रोत सामाजिक संरचना के बाहर से होता है।

योगेंद्र सिंह इसे बहिर्जात स्रोत कहते हैं। इस प्रकार परिवर्तन के ये दोनों स्रोत – बहिर्जात और अंतर्जात, सामाजिक परंपरा और संरचना को बदलते हैं और आधुनिकीकरण एक ऐसी प्रक्रिया है जो इन दोनों स्रोतों को परिवर्तन लाने के लिए तैयार करती है।

इस सिद्धांत को प्रस्तुत करते हुए योगेंद्र सिंह कहते हैं कि हमने अक्सर सामाजिक संरचना में होने वाले परिवर्तन का अध्ययन किया है और परंपरा को छोड़ दिया है। उनका तर्क है कि समाज में बदलाव को समझने के लिए हमें परंपरा और संरचना दोनों का अध्ययन करना चाहिए। यहाँ हम योगेंद्र सिंह द्वारा दिए गए दोनों स्रोतों का विश्लेषण करेंगे।

भारत में सामाजिक परिवर्तन की प्रक्रिया

सामाजिक परिवर्तन के आंतरिक और बाह्य दोनों स्रोतों के आधार पर, हम देश में निम्न मुख्य प्रक्रियाओं को देखने में सक्षम हैं –

(1) संस्कृतीकरण

(2) छोटी और महान परम्पराएँ

(3) आधुनिकीकरण

संस्कृतीकरण

संस्कृतीकरण की अवधारणा भारत की पारंपरिक सामाजिक संरचना में सांस्कृतिक गतिशीलता का विश्लेषण करती है। इस अवधारणा के जनक एम. एन. श्रीनिवास हैं। श्रीनिवास ने कूर्ग का अध्ययन किया और उन्होंने पाया कि इस दौरान निम्न जातियों ने अपनी स्थिति को उन्नत करने के लिए ब्राह्मणों के रीति–रिवाजों को आत्मसात किया। ऐसा करते हुए निम्न जातियों ने अपनी कुछ परंपराओं को त्याग दिया। उन्होंने शराब के सेवन पर प्रतिबंध लगा दिया, मांसाहारी भोजन करना बंद कर दिया और अपने देवी–देवताओं को पुरुष बलि चढ़ाने की परंपरा को बंद कर दिया। उन्होंने ब्राह्मणों की

टिप्पणी

परंपरा को अपनाया। वे उन्हीं की तरह कपड़े पहनते थे और अपनी धार्मिक प्रक्रियाओं को भी अपनाते थे। श्रीनिवास का कहना है कि इन निम्न जातियों को उम्मीद है कि अगली एक या दो पीढ़ियों में जातियों की व्यवस्था में उनका स्थान उच्च जातियों में शामिल हो जाएगा।

संस्कृतीकरण की अवधारणा ब्राह्मणीकरण की अवधारणा से बहुत बड़ी है, इसका परिवेश विशाल है। श्रीनिवास ने महसूस किया कि नीची जातियाँ न केवल ब्राह्मणों का अनुकरण करती हैं, बल्कि अन्य श्रेष्ठ जातियों का भी अनुकरण करती हैं। क्षत्रिय भी श्रेष्ठ जातियों में आते हैं। इसके तहत जाट और वैश्य भी हो सकते हैं। इस पूरे सांस्कृतिक परिवर्तन में, महत्वपूर्ण बात यह है कि जातियों की कैस्केड व्यवस्था में अपनी स्थिति को उन्नत करना है जो कोई भी जाति हो सकती है। लेकिन श्रीनिवास एक बात अवश्य कहते हैं कि किसी भी स्थान पर निम्न जातियों ने शूद्र जातियों को अपनी नकल का आदर्श नहीं बनाया है।

संस्कृतीकरण के लक्षण

मैसूर की जातियों के अध्ययन के आधार पर श्रीनिवास ने संस्कृतीकरण की अवधारणा को रखा, कई आलोचनाएँ हुईं। इन सबके बावजूद आज सांस्कृतिक परिवर्तन के क्षेत्र में इस अवधारणा को महत्वपूर्ण माना जाता है। इसकी विशेषताएं निम्नलिखित हैं–

(1) संस्कृतीकरण की अवधारणा सामाजिक और सांस्कृतिक गतिशीलता का विश्लेषण करती है।

(2) यह परिवर्तन आंतरिक स्रोतों के कारण होता है। जाति व्यवस्था एक प्रक्रिया है। इसमें जब पायदान पर खड़ी कोई जाति खुद को उन्नत करने की कोशिश करती है तो इस बदलाव का कारण जाति व्यवस्था के अंदर ही मौजूद होता है। निम्न जातियां जाति व्यवस्था के बाहर अपनी स्थिति में सुधार नहीं करना चाहती हैं। इस वजह से हम सांस्कृतिक परिवर्तन के स्रोत को आंतरिक समझते हैं।

(3) संस्कृतीकरण लंबवत है।

(4) संस्कृतीकरण की अवधारणा का केंद्र परंपरा है और हर जाति की एक ऐतिहासिक परंपरा होती है। इस परंपरा के अनुसार, जाति की यह प्रपात व्यवस्था में (ऊपर ने नीचे), कुछ जातियाँ शीर्ष पर हैं, कुछ मध्य में और कुछ नीचे के स्तर पर हैं। संस्कृतीकरण का इतिहास बहुत बड़ा है। इसकी शुरुआत ब्राह्मणीकरण से हुई और फिर श्रेष्ठ जातियों की नकल को संस्कृतीकरण कहा जाने लगा। आज हमारे देश में जब आदिवासी, मुसलमान या अन्य गैर–हिंदू जातियाँ श्रेष्ठ जातियों के मूल्यों को अपनाती हैं, तो उसे संस्कृतीकरण कहा जाता है। परिवर्तन की इस दिशा को देखने के बाद, संस्कृतीकरण की नवीनतम परिभाषा के लिए, श्रीनिवास कहते हैं कि यह वह प्रक्रिया है जिसके कारण निम्न हिंदू जातियाँ या उप जातियाँ या अन्य समूह अपने रीति–रिवाजों, धार्मिक प्रक्रियाओं, विचार प्रक्रिया में सामाजिक और सांस्कृतिक परिवर्तन लाते हैं। जीवन–शैली आदि प्राप्त करने के लिए उच्च जातियों की शैली अपनाते हैं।

टिप्पणी

छोटी और महान परम्पराएँ

छोटी और महान परंपराओं की अवधारणा को सबसे पहले रॉबर्ट रेडफी एल्ड ने मैक्सिको के गाँवों पर अपने अध्ययन के दौरान लागू किया था। इस प्रयोग से मिल्टन सिंगर और मैककिम मैरियट प्रभावित हुए, इन दोनों मानवतावादियों ने रेडफी एल्ड की अवधारणा को भारतीय गाँवों पर लागू किया। सिंगर और मैरियट ने जब भारतीय गाँवों का अध्ययन किया, तो उन्होंने दो तत्वों को महत्व दिया। पहला तत्व है, भारतीय सभ्यता और दूसरा तत्व है परंपरा। वे कहते हैं कि विकास सभ्यता और परंपरा दोनों के लिए होता है। पहला विकास आंतरिक स्रोतों के कारण होता है और दूसरा विकास बाहरी या विषम प्रक्रियाओं के कारण होता है। भारतीय सभ्यता और परंपरा दोनों पर बाहरी संस्कृतियों या सभ्यताओं का प्रभाव रहा है। परम्पराएँ और सभ्यता लगातार बदलती रहती है। प्रथम चरण में हमारी सभ्यता या परंपरा लोक प्रधान रही है। यह लोक सभ्यता महान परंपरा बन जाती है। इस महान परंपरा में, वहाँ के संस्कृत लेखन, वेद, पुराण, उपनिषद और अन्य लेखन की प्रधानता है। इस महान परंपरा में ब्राह्मणों की भूमिका प्रभावशाली है। इस प्रकार महान परंपरा वह है जिसमें सभ्यता और परंपराएं ऐतिहासिक हैं, जिसमें शास्त्रीय लेखन है और जिसमें श्रेष्ठ जातियों की प्रधानता है।

मैककिम मैरियट ने अलीगढ़ जिले के किशनगढ़ी गाँव में छोटी और महान परंपरा का अध्ययन किया है। यहाँ, मैककिम मैरियट द्वारा दी गई दो और अवधारणाएँ प्रस्तुत की गई हैं–

(1) सार्वभौमीकरण

(2) संकीर्णता

सार्वभौमीकरण वह है जो संपूर्ण हिंदू जातियों द्वारा मान्यता प्राप्त है। यह पवित्र धारणा पर आधारित है। महाकाव्यों और संस्कृत लेखों में जिन धार्मिक प्रक्रियाओं की व्याख्या की गई है, वे पवित्र प्रक्रियाएँ हैं। देश के विभिन्न क्षेत्रों में महान परंपरा को कोई भी संदेह की नजर से नहीं देखता है। यह परंपरा सभी जातियों के लिए अनुकरणीय है। जब स्थानीय स्तर पर महान परंपरा आती है, तो उसके अनुकूलन में अंतर होता है। किसी गाँव की नदी या पास में बहने वाली एक नदी को गंगा नदी माना जाता है। महान परंपरा की गंगा, यमुना, सरस्वती गाँव में नहीं आ सकती हैं और इस वजह से गाँव की किसी भी नदी को गंगा कहा जाता है। यह महान परंपरा का संकीर्णीकरण है। सार्वभौमीकरण और संकीर्णता दो प्रक्रियाएँ हैं, जो महान परंपरा और छोटी परंपरा के बीच परस्पर क्रिया को स्थापित करती हैं। यहाँ यह तर्कपूर्ण ढंग से कहा जाना चाहिए कि महान और छोटी परंपरा में परस्पर क्रिया की प्रक्रिया निरंतर चलती रहती है। इस परस्पर क्रिया के कारण जहाँ महान परंपरा में परिवर्तन होता रहता है, वहीं छोटी परंपरा शक्तिशाली होती रहती है।

आधुनिकीकरण

एम एन श्रीनिवास ने सामाजिक और सांस्कृतिक गतिशीलता के विश्लेषण के लिए पश्चिमीकरण की अवधारणा दी। इसका तात्पर्य यह था कि पश्चिमी संस्कृति, यानी ब्रिटिश संस्कृति के भारतीय जाति व्यवस्था के साथ संबंध के कारण एक बड़ा अंतर देखा गया। इसके अनुसार पाश्चात्य संस्कृति से संबंध के फलस्वरूप जातियों में जो

टिप्पणी

परिवर्तन हुआ वह पश्चिमीकरण है, वे लिखते हैं– पश्चिमीकरण का तात्पर्य 150वर्षों से अधिक के ब्रिटिश शासन के परिणामस्वरूप भारतीय समाज और संस्कृति में आए परिवर्तनों से है और यह शब्द विभिन्न स्तरों – प्रौद्योगिकी, संस्थानों, विचारधारा, मूल्यों पर होने वाले परिवर्तनों को समाहित करता है। पश्चिमीकरण के अनुसार श्रीनिवास ने मानवतावाद और तार्किकता पर अधिक बल दिया। यह ब्रिटिश शासन का ही परिणाम था कि हमारे देश में विज्ञान का विकास हुआ, प्रौद्योगिकी में सुधार हुआ, शिक्षणसंस्थानों की स्थापना हुई, राष्ट्रीयता का विकास हुआ और एक नए प्रकार की राजनीतिक संस्कृति का जन्म हुआ। यह सब पश्चिमीकरण है। बाद में श्रीनिवास ने अपनी पुस्तक "सोशल चेंज इन मॉडर्न इंडिया, 1996" में पश्चिमीकरण के स्थान पर आधुनिकीकरण शब्द का प्रयोग किया। इसका उपयोग करने के बावजूद, उनकी प्राथमिकता पश्चिमीकरण है। उनका कहना है कि पश्चिमीकरण के प्रभाव से भारत और ब्रिटिश शासन का सम्बंध ऐतिहासिक है। दूसरे, पश्चिमीकरण की अवधारणा में मानवतावाद और तर्कसंगतता है, जो आधुनिकीकरण में मौजूद नहीं है। यह सब होते हुए भी आधुनिकीकरण को एक वैश्विक प्रक्रिया के रूप में समझा जाता है और इसी कारण हम यहाँ इसका विस्तार से वर्णन करेंगे।

भारतीय सभ्यता और परम्पराएँ प्राचीन हैं। हम उन्हें महान परंपरा में देख सकते हैं। यह महान परंपरा बहिर्जात स्रोतों से प्रभावित हुई है। पहले के दिनों में, ये बहिर्जात स्रोत मुस्लिम, पारसी, ब्रिटिश आदि की परंपराओं से संबंधित थे। आज, ये स्रोत विविध हैं और आधुनिकीकरण, वैश्वीकरण और उदारीकरण के इन स्रोतों में बड़े स्रोत हैं। इन सभी स्रोतों में आंतरिक स्रोतों को आत्मसात किया जाता है, जिसने भारतीय समाज और इसकी संस्कृति को बहुत प्रभावित किया है।

आधुनिकीकरण की कई परिभाषाएँ हैं। योगेंद्र सिंह मूल्यों पर अधिक जोर देते हैं। ये मूल्य मानव अधिकार, मानवता, सामाजिक न्याय, विकास का अधिकार, नागरिक अधिकार आदि से जुड़े हुए हैं। यदि हम आधुनिकीकरण के अर्थ को समाजशास्त्र के संस्थापकों के संदर्भ में रखते हैं, तो हमें इस शब्द की निश्चितता मिलती है। यूरोप में आधुनिकीकरण दुर्खीम के समय में आया। 18वीं शताब्दी में तकनीकी क्रांति की शुरुआत हुई। यांत्रिक समाज तकनीकी समाज में बदल गया। व्यापार और आवास उद्योग बंद होने के कगार पर थे। इस राज्य में, दुर्खीम ने आधुनिकीकरण को परिभाषित किया। उन्होंने कहा कि 'यांत्रिक समाज का तकनीकी समाज में परिवर्तन आधुनिकीकरण है। दूसरे शब्दों में, जब तकनीकीकरण बढ़ता है, तो आधुनिकीकरण शुरू होता है या आधुनिकीकरण तकनीकीकरण लाता है।'

कार्ल मार्क्स ने भी आधुनिकीकरण के प्रभाव को देखा। उन्होंने कहा कि यह वह चरण है जिसमें पदार्थों का कमोडिटीकरण होता है। इसका मतलब है कि एक समाज में, अर्थव्यवस्था ही सब कुछ है। कला, साहित्य, सौंदर्य, सब कमोडिटी बन जाते हैं, यह आधुनिकीकरण है। इस समाज में हर वस्तु बाजार में बिकने के लिए होती है। आदमी गाता है, नाचता है, साहित्य लिखता है, पैसा पाकर खेल खेलता है इस प्रकार, मार्क्स के अनुसार 'आधुनिकीकरण वस्तुकरण के अलावा और कुछ नहीं है।'

हमारे समाजशास्त्र के तीसरे संस्थापक मैक्स वेबर हैं। वेबर ने औद्योगीकरण भी देखा। उन्होंने इस प्रक्रिया को आधुनिकीकरण से जोड़ा और उन्होंने कहा कि यूरोप

टिप्पणी

में औद्योगीकरण ने नौकरशाही समाज की स्थापना की है। उन्होंने इस नौकरशाही को धर्म में भी पाया। नौकरशाही का मुख्य आधार तर्कसंगतता है। आधुनिकीकरण एक आदर्श प्रारूप है जिसके द्वारा हम भारतीय समाज में हो रहे परिवर्तन की व्याख्या कर सकते हैं। हाल ही में, दीपांकर गुप्ता द्वारा अपनी पुस्तक 'मिस्टेकन मॉडर्निटी, 2000 ' में संक्षेप में बताया गया है कि हमारे देश में आधुनिकता के बारे में भ्रांतियाँ हैं। उनका कहना है कि आमतौर पर हमारे देश में आधुनिकता का अर्थ तकनीकी विकास से लिया जाता है। इसे दूसरे, अर्थ में समकालीन लिया गया है। हम समझते हैं कि अगर हमारे पास एक मोटरकार का आधुनिक मॉडल है और वह बहुत प्रचलित है, तो इसका मतलब है कि हम आधुनिक हैं। दीपांकर गुप्ता इस अर्थ से सहमत नहीं हैं। यह एक प्रकार का वेस्टटॉक्सिकेशन है। उनके अनुसार आधुनिकीकरण वह है जिसमें निम्नलिखित विशेषताएँ होती हैं–

(1) किसी व्यक्ति की गरिमा

(2) सार्वभौमिक मानकों की स्वीकृति

(3) अर्जित राज्य को स्वीकार करना और अप्राप्त राज्य को अस्वीकार करना

(4) सार्वजनिक जीवन के लिए जिम्मेदार

दीपांकर गुप्ता ने जिन विशेषताओं को बताया है, वे लोगों से संबंधित हैं। वास्तव में लोगों के साथ हमारे संबंध हैं। सामाजिक संबंधों में, हमें यह समझना चाहिए कि सभी लोग समान हैं, न कोई श्रेष्ठ है और न कोई हीन। भारतीय समाज में हम सभी नागरिक हैं।

यह सच है कि हमारे देश में आधुनिकीकरण की शुरुआत ब्रिटिश शासन के दौरान हुई थी। जब हमने महसूस किया कि अंग्रेजों के सहयोग से हमारे देश में परिवर्तन हो रहे हैं, तो हमने अपनी परंपराओं का व्यवस्थित ढंग से अध्ययन किया। 20वीं सदी की शुरुआत में डी.पी. मुखर्जी ने कहा था कि उपनिवेशवाद संस्कृति के संदर्भ में हमें अपनी परंपराओं को अपने इतिहास के संदर्भ में समझना चाहिए। यह देखा जाना चाहिए कि हमारी परम्पराएँ विदेशी संस्कृति को कैसे अपनाती हैं। योगेंद्र सिंह कहते हैं कि पिछले 50 वर्षों में भारतीय समाजशास्त्रियों ने विश्लेषण किया है कि बहिर्जात स्रोतों सहित पश्चिमी संस्कृति का रूप हमारी परंपराओं को क्या आधार देता है। इन दशकों में, समाजशास्त्रियों ने भारतीय संस्कृति के अनुभवजन्य–नृवंशविज्ञान विश्लेषण का अध्ययन किया है। इन अध्ययनों में से एक खंड भारतीय समाजशास्त्री का है, जिन्होंने विभिन्न परंपराओं का अध्ययन किया और उनके बीच संबंध की पहचान करने का प्रयास किया। दूसरा खंड अमेरिकी सामाजिक मानवतावादी का है, जिन्होंने भारतीय संदर्भ में इस स्थान के समुदायों का अध्ययन किया। उन्होंने बताया कि भारतीय सामाजिक परिवर्तन लोक समुदायों से कृषक समुदायों में होता है और फिर आधुनिक समाज पर रुक जाता है।

हाल ही में, सामाजिक विश्लेषण का एक तीसरा खंड भी सामने आया है। यह खंड पीपल ऑफ इंडिया (पीओआई) के प्रकाशन से आया है। के. एस. सिंह के मार्गदर्शन में 4000 से अधिक लोगों का अध्ययन भारतीय समुदायों में पूरा किया गया है। इसके परिणाम व्यापक हैं, उदाहरण के लिए, के. एस. सिंह बताते हैं कि भारत में

अब क्षेत्रीय स्वायत्तता उभर रही है। हर क्षेत्र अपनी जरूरतों के लिए संघर्ष कर रहा है। अब ये सेक्टर और मजबूत होते जा रहे हैं।

इस शोध के इन तीन खंडों को ध्यान में रखते हुए, हम भारतीय समाज में आधुनिकीकरण के कारण होने वाले परिवर्तनों का विश्लेषण और विस्तार करेंगे।

टिप्पणी

समसामयिक परिवर्तन

भारतीय समाज में 1991 के बाद बड़े बदलाव हुए हैं। वैश्वीकरण और उदारीकरण के कारण हुए परिवर्तनों का भारतीय समाज पर बड़ा प्रभाव पड़ा है। ढाँचे में संक्रमणकालीन परिवर्तन की पर्याप्त नीति के गठन होने के कारण बाजार और विदेशी निवेश इस देश की जमीनी हकीकत बन गए हैं। आर्थिक नीति, और कीमतों में भारी वृद्धि होने के कारण निर्यात लाभ की दरों में कमी आई है और आयात लगातार बढ़ रहा है। आज देश में बहुत से लोग गरीबी रेखा के नीचे जीवन यापन कर रहे हैं आर्थिक क्षेत्र में सुधार की शुरुआत के साथ तुलना भी हुई। इसका मतलब है कि देश में गरीबी बढ़ी है, वैश्वीकरण और उदारीकरण का विपरीत प्रभाव पड़ा है। सामाजिक विकास के उद्देश्य पर गतिविधियां, जैसे– गरीबी उन्मूलन, रोजगार में वृद्धि और सामाजिक सुविधाओं में वृद्धि, देश में अधिक हो रही हैं। पूंजीवाद की जड़ें मजबूत होती जा रही हैं।

आधुनिकीकरण के कारण हुए सामाजिक परिवर्तन में जनसंचार माध्यमों की भूमिका बहुत शक्तिशाली है, जिसे आधुनिक समाज कहा जाता है। इसकी प्रमुख विशेषता मास मीडिया और बाजार है। मीडिया का ही नतीजा है कि दूर का गाँव न्यूयॉर्क और पेरिस से सीधे जुड़ जाता है। आमतौर पर मीडिया का मतलब प्रिंट मीडिया और इलेक्ट्रॉनिक मीडिया होता है। जहाँ समाचार–पत्र, पत्रिकाएँ, आदि प्रिंट मीडिया में शामिल हैं, वहाँ इलेक्ट्रॉनिक मीडिया में टेलीविजन, कंप्यूटर, सेलुलर फोन, रेडियो, फैक्स आदि शामिल हैं। मीडिया के इन माध्यमों ने दूरियां कम कर दी हैं। आधुनिकीकरण के कारण हुए परिवर्तनों की चर्चा में शिक्षा और संचार भी महत्वपूर्ण साधन हैं। योगेंद्र सिंह बताते हैं कि आर्थिक और तकनीकी क्षेत्रों में परिवर्तन के अलावा, सामाजिक और सांस्कृतिक क्षेत्रों में आधुनिकीकरण द्वारा महत्वपूर्ण परिवर्तन प्रस्तुत किए गए हैं। पूरे देश में लोगों की जीवन शैली व अवकाश की गतिविधियाँ बदल गई हैं। अब उपयोग की प्रणाली बदल गई है। किसी भी शहर के किसी भी कोने में फास्ट–फूड की दुकानें मिल जाती हैं। कपड़े पहनने की शैली बदल गई है। सिंथेटिक चीजों का ज्यादा इस्तेमाल हो रहा है। आने–जाने के साधन सभी नए हैं और अब मांस और शराब का सेवन आनंददायक रुचियों के साधन हैं। मजे की बात यह है कि आम आदमी ने भी फल खाना शुरू कर दिया है, सब्जियाँ खाने की प्रथा अधिक प्रचलित है और लोग अब दूध और दूध उत्पादों का अधिक उपयोग करने लगे हैं। 1970 की हरित क्रांति व श्वेत क्रांति ने इसे पूरक बनाया है, भारत में ये सभी बदलाव बड़े बदलाव हैं। इस अनिवासी हिंदू समाज में के एस सिंह बताते हैं कि 90% लोग हैं जो मांसाहारी हैं और केवल 10% शाकाहारी हैं। राष्ट्रीय नमूना सर्वेक्षण भी ऐसे परिवर्तनों को प्रदर्शित करता है। सामाजिक और सांस्कृतिक क्षेत्रों में परिवर्तन की दिशा पूरी तरह क्रांतिकारी है। अब जातियों, उपजातियों, अल्पसंख्यकों या जोनल समूहों में क्षेत्रवाद की भावना अधिक है। इस बात के सबूत हैं कि लोकतांत्रिक और धर्मनिरपेक्ष ताकतें शक्तिशाली हो

टिप्पणी

रही हैं। पंचायत व्यवस्था में हमने दलित वर्ग को आरक्षण देकर प्रोत्साहित किया है। महिलाओं का प्रमोशन हुआ है। एक क्षेत्र से दूसरे क्षेत्र में लोग बिना झिझक एक जगह से दूसरी जगह जा पाते हैं, यानी दक्षिण भारत में राजस्थान के मारवाड़ी और उत्तर भारत में केरल के ईसाई। यह एकीकरण की नई ताकत है। भारत के लोक परियोजना (पीओआई) से पता चलता है कि हमारे देश में कुल 91 सांस्कृतिक क्षेत्र हैं। और लगभग हर राज्य में है एक से अधिक संस्कृतिक क्षेत्र हैं। केवल गोवा ही वह स्थान है जिसका कोई उप–क्षेत्र नहीं है।भारतीय समाज में आधुनिकीकरण के कारण जो विविधता और एकता हुई है, वह स्पष्ट रूप से इंगित करती है कि इस समाज में परंपराओं का केंद्रीय स्थान है। इन परंपराओं के कारण ही इतने सारे बदलावों के बावजूद भारतीय समाज की पहचान को बनाए रखा है। अब हम इस समाज की जातीयता और सांस्कृतिक पहचान को आधुनिकीकरण द्वारा लाए गए परिवर्तनों के संदर्भ में देखेंगे।

1.3.2 जातीयता, सांस्कृतिक पहचान और परिवर्तन

राजनीतिक, सामाजिक और आर्थिक विकास के परिणामस्वरूप व्यापार क्षेत्र में बड़े बदलाव आए हैं। बड़े बदलाव होने के बावजूद समाज के विभिन्न हिस्सों में एक जुड़ाव है। विवेकशील होते हुए भी जातियाँ, उपजातियाँ, धार्मिक समूह, सांस्कृतिक क्षेत्र आदि आपस में जुड़े हुए हैं। यहाँ तक सब कुछ ठीक है। देश में एकीकरण का विकास हुआ है लेकिन राजनीतिक कारकों ने भी एक नई माँग विकसित की है। अब लोग सांस्कृतिक स्वायत्तता के बारे में चर्चा करने लगे हैं। मसलन, देश के आदिवासी फिर से अपने धर्म में लौटने की सोच रहे हैं. एक तरफ उन्हें हिंदू बनाया जा रहा है और दूसरी तरफ उन्हें ईसाई बनाया जा रहा है। वे घबराई हुई अवस्था में कहते हैं कि उन्हें अपने धर्म में वापस लौट जाना चाहिए। के एस सिंह का कहना है कि अब उत्पीड़ित लोग जोरदार आवाज उठा रहे हैं कि हमें अपनी सांस्कृतिक पहचान को बनाए रखना चाहिए। उत्पीड़ित लोगों की इस प्रकार की माँग यह दर्शाती है कि वे चाहते हैं कि वे स्वयं को ब्राह्मण व्यवस्था से अलग कर लें।

उच्च हिंदू जातियों में उनकी अब कोई दिलचस्पी नहीं है। के.एस. सिंह के इस विचार को गेल ओमव्रेड्ट और एम.एस. गोर ने समर्थन दिया है। इस प्रक्रिया ने मीडिया को सामाजिक निरंतरता और राजनीतिक भागीदारी ने अधिक निरंतरता दी है। जिस धर्म का राजनीतिकरण किया गया है, उसने भी मुश्किलें बढ़ा दी हैं।

आधुनिकीकरण और परिवर्तन की समस्याएँ

आधुनिकीकरण ने भारतीय समाज में अनेक समस्याओं को जन्म दिया है। आधुनिकीकरण ने उस संतुलन को विकृत कर दिया है जो पहले औद्योगीकरण के कारण व्यवस्था में मौजूद था। निर्माण की प्रक्रिया बदल गई है और इसके परिणामस्वरूप सामाजिक और राजनीतिक संगठनों में परिवर्तन आया है। यह देखा गया है कि पिछले 50–70 वर्षों में, इस देश ने क्रांतियों का अनुभव किया है। पहली क्रांति औद्योगिक क्रांति है और दूसरी लोकतांत्रिक है।इन दोनों क्रांतियों ने पारंपरिक संतुलन को बिगाड़ दिया है। औद्योगिक क्रांति राष्ट्र निर्माण की बात करती है। इसका परिणाम यह होता है कि हम वैश्विक समुदाय या वैश्विक सभ्यता से जुड़े होते हैं। जब ऐसा होने लगे तो मूल सबसे बड़ा खतरा स्थानीय और अंचल की सांस्कृतिक पहचान का है।

जब हम राष्ट्र निर्माण के काम में शामिल होते हैं, तब औद्योगिक और आर्थिक विकास होता है। यह विकास असमानता को जन्म देता है। उदाहरण के लिए, हरी और श्वेत क्रांतियों ने असमानता को बढ़ावा दिया है। उसी तरह औद्योगीकरण ने पर्यावरण को बिगाड़ दिया है। अस्वच्छ टाउनशिप बस गए हैं। दिलचस्प बात यह है कि देश में इन प्रक्रियाओं के परिणामस्वरूप विभिन्न क्षेत्रों में सांस्कृतिक पहचान का मुद्दा सामने आया है। अब आदिवासी समुदायों और क्षेत्रीय समूहों ने अपनी पहचान पर जोर देना शुरू कर दिया है। हर दिन, नए देवी–देवता प्रकट हो रहे हैं। आए दिन नए जुलूस निकाले जा रहे हैं। यह कहीं नहीं देखा जा रहा है कि हम उद्यम और उप–उद्यम के विकास के स्तर पर मानवीय समस्याओं से परिचित नहीं हो रहे हैं। नतीजतन, हमारे संयुक्त परिवार की परंपरा टूट रही है। गाँवों की एकता कम हो रही है और शहर का वातावरण घातक है।

इस आधुनिकीकरण की प्रक्रिया में हमारे सांस्कृतिक मूल्य खतरे में हैं। अगर ऐसा ही चलता रहा तो कुछ ही समय में हम विध्वंस के मुहाने पर खड़े होंगे। योगेंद्र सिंह का कहना है कि आधुनिकीकरण का हमारे मूल्यों, सांस्कृतिक व्यवहार, स्थितिजन्य,मानसिक और शारीरिक स्वास्थ्य और जीवन की गुणवत्ता पर जो प्रभाव पड़ता है, उसका परिणाम हमारे लिए विनाशकारी होगा।हमारे सांस्कृतिक संघर्ष की जड़ें बहुत गहरी हैं। आधुनिकीकरण ने हमारी परंपराओं और नए मूल्यों को एक अनोखे तरीके से पेश किया है। इस वजह से हमारे पारंपरिक मूल्य समाप्त हो गए हैं, सार्वजनिक संस्कृति का ढाँचा कमजोर हो गया है और इसने हमारी सांस्कृतिक परंपरा को कमजोर कर दिया है और इसका संबंध नए बाजार की संस्कृति से जोड़ा गया है। हमारे अनुसार यदि आधुनिकीकरण के इस दौर में हमारी परम्परागत परिवार व्यवस्था टूट जाती है और गाँवो और शहरों के संबंध कमजोर हो जाते हैं, तो अन्य विकसित समाजों की तरह हमारे समाज की सामाजिक और सांस्कृतिक व्यवस्था में भी संकट पैदा हो जाएगा।

अपनी प्रगति जांचिए

3. विकास के रूप में सामाजिक परिवर्तन को सबसे पहले किसने परिभाषित किया था?
   (क) डार्विन ने (ख) पेज ने
   (ग) हर्बर्ट स्पेंसर ने (घ) सोरोकिन ने
4. सामाजिक परिवर्तन के अध्ययन के लिए किसने एक नया सिद्धांत दिया?
   (क) योगेंद्र सिंह ने (ख) डार्विन ने
   (ग) न्यूटन ने (घ) हॉपर ने

1.4 सामाजिक परिवर्तन के सिद्धांत एवं कारक

सामाजिक परिवर्तन के रैखिक सिद्धांतवादी विकासवादियों से प्रभावित थे। वे इस विचार से सहमत नहीं थे कि परिवर्तन चक्रीय गति से होता है लेकिन उनका विचार है कि परिवर्तन हमेशा एक सीधी रेखा में नीचे से ऊपर की ओर विभिन्न चरणों में होता है। विकासवाद और रैखिक सिद्धांतकारों में कॉम्टे, स्पेंसर, हॉबहाउस आदि प्रमुख हैं।

टिप्पणी

कॉम्टे का मानना था कि विकासवादी रूप के एकाधिक स्तर हैं (धार्मिकता से वैज्ञानिकता तक),

स्पेंसर का मानना था कि चार स्तर हैं (शिकार युग से लेकर औद्योगिक युग तक) और मार्क्स का मानना था कि पाँच स्तर हैं (प्राथमिक कम्युनिस्ट से आधुनिक कम्युनिस्ट तक)।

मार्क्स और वेब्लेन ने न केवल सामाजिक परिवर्तन के रैखिक क्रम को प्रस्तुत किया, बल्कि दोनों ने आर्थिक और तकनीकी कारकों को भी महत्व दिया; इसलिए, उनके सिद्धांतों को नियतात्मक सिद्धांत भी कहा जाता है।

कॉम्टे का सिद्धांत

कॉम्टे ने सामाजिक परिवर्तन को मनुष्य के बौद्धिक विकास से जोड़ा है। वह इस बात से सहमत हैं कि मानसिक विकास और सामाजिक परिवर्तन के तीन चरण हैं–

(क) धार्मिक चरण (ख) आध्यात्मिक चरण (ग) वैज्ञानिक चरण

थियोलॉजिकल स्टेज पहला चरण था जिसमें मनुष्य ने हर घटना को ईश्वर और धर्म के संदर्भ में समझने की कोशिश की। संसार की सभी प्रक्रियाओं को धर्म और ईश्वर का मूल आधार माना गया है। उस दौरान विभिन्न स्थानों पर धर्मों के विभिन्न रूप थेय जैसे कि बहुदेववाद, एकेश्वरवाद एवं पर्यावरण की पूजा प्रचलित थी।

सामाजिक परिवर्तन का दूसरा चरण आध्यात्मिक चरण है जिसमें मनुष्य अपने गुणों के आधार पर घटनाओं की व्याख्या करता था। इस चरण में, अलौकिक शक्तियों में मनुष्य का विश्वास कम हो गया और जीवित प्राणियों में मौजूद अमूर्त शक्ति को ही सभी घटनाओं के लिए जिम्मेदार माना गया।

सामाजिक विकास की तीसरी अवस्था वैज्ञानिक अवस्था है जो वर्तमान समय में विद्यमान है। वैज्ञानिक अवस्था में मनुष्य सामाजिक घटनाओं की व्याख्या धर्म, ईश्वर और अलौकिक शक्तियों के आधार पर नहीं, बल्कि तर्क और वैज्ञानिक नियमों के आधार पर करता है। वह काम और उसके सहसंबंध के कारणों को जानकर नियमों और सिद्धांतों का प्रदर्शन करता है, मानवीय घटनाओं के अवलोकन से वह उनकी तार्किक और वैज्ञानिक व्याख्या करके सच्चाई तक पहुँचने की कोशिश करता है। इस प्रकार दर्शन के विकास के साथ सामाजिक संरचना, संघ और व्यवस्थाओं का विकास और परिवर्तन हुआ है।

इसमें कोई संदेह नहीं है कि कॉम्टे द्वारा समाज में होने वाले परिवर्तनों का योजनाबद्ध और क्रमिक विवरण प्रशंसनीय है, लेकिन इस सिद्धांत को पूरी तरह से स्वीकार नहीं किया जा सकता है। उन्होंने मानव दर्शन और सामाजिक विकास के तीन चरणों की ओर इशारा किया है; यह अनिवार्य नहीं है कि प्रत्येक समाज इन सभी चरणों से गुजरा हो। ये चरण या तो पहले चरण में हो सकते हैं, या एक साथ दो चरणों में हो सकते हैं।

स्पेंसर का सिद्धांत

स्पेंसर ने सामाजिक परिवर्तन का विकासवादी सिद्धांत भी प्रस्तुत किया। उन्होंने प्राकृतिक चयन के आधार पर सामाजिक परिवर्तन को व्यक्त किया है। स्पेंसर डार्विन

टिप्पणी

के विकासवादी सिद्धांत से प्रभावित थे। डार्विन ने जीवित प्राणियों के विकास के सिद्धांत को प्रतिपादित किया, जिसे स्पेंसर ने समाज पर लागू किया। डार्विन का विचार था कि अस्तित्व के लिए संघर्ष जीवित प्राणियों में पाया जाता है। इस संघर्ष में योग्यतम की उत्तरजीविता और अयोग्य का उन्मूलन विद्यमान है। क्योंकि पर्यावरण भी ऐसे जीवों का चयन करता है जो सक्षम और कुशल हैं, इसलिए इस सिद्धांत को प्राकृतिक चयन का सिद्धांत भी कहा जाता है।

मनुष्य एक सामाजिक प्राणी है, इसलिए उसके चयन या जन्म और मृत्यु दर का सामाजिक कारकों, जैसे परंपराओं, मूल्यों और सिद्धांतों पर प्रत्यक्ष और अप्रत्यक्ष प्रभाव पड़ता है। इस चयन में सबसे ऊपर वाला मनुष्य ही जीवित रहता है जो समाज का निर्माण करता है और उसमें परिवर्तन लाता है। हर नई पीढ़ी ज्ञान और विज्ञान के क्षेत्र में पुरानी पीढ़ियों की तुलना में अधिक प्रगति करती है और समाज को आगे की दिशा में इस तरह से आगे बढ़ाती है कि समाज क्रमिक रूप से आगे बढ़ता है व बदलता रहता है। इस प्रकार, स्पेंसर का मानना है कि सामाजिक परिवर्तन का आधार अप्राकृतिक एवं सामाजिक चयन है।

स्पेंसर के अलावा, गोबिन्यू और लोपेज भी प्रख्यात हैं जो मानते थे कि सामाजिक परिवर्तन के लिए जैविक कारक जिम्मेदार हैं। ये विद्वान मानते हैं कि समाज का निर्माण और प्रगति उन्हीं लोगों के द्वारा संभव है जो नस्लीय दृष्टिकोण से श्रेष्ठ हैं। जब जाति की दृष्टि से किसी भी समाज में कम लोग होते हैं तो उस समाज का पतन होता है और जब शारीरिक और मानसिक दृष्टि से श्रेष्ठ लोग होते हैं तो वह समाज प्रगति करता है। कई विद्वानों ने स्पेंसर और जीवनवादियों के सिद्धांतों की यह कहकर आलोचना की है कि प्राकृतिक चयन को मानव समाज पर लागू नहीं किया जा सकता है। उन्होंने परिवर्तन के कई सिद्धांतों का तिरस्कार किया है।

कार्ल मार्क्स का सिद्धांत

कार्ल मार्क्स ने माना है कि सामाजिक परिवर्तन तकनीकी और आर्थिक कारकों से उत्पन्न होता है। इसलिए, उनके सिद्धांत को आर्थिक नियतिवाद या सामाजिक परिवर्तन का तकनीकी सिद्धांत कहा जाता है। वर्तमान समय में मार्क्स के सिद्धांत को सबसे महत्वपूर्ण और क्रांतिकारी सिद्धांत माना जाता है। उन्होंने इतिहास को भौतिक रूप से समझाया और कहा कि मानव इतिहास में जो भी परिवर्तन हुए हैं, वे केवल उत्पादन के तरीके में बदलाव के कारण हुए हैं। उनके अनुसार जनसंख्या के कारणों, भौगोलिक परिस्थितियों और अन्य कारणों का मानव जीवन पर प्रभाव पड़ता है, लेकिन ये परिवर्तन के निर्णायक कारक नहीं हैं। निर्णायक कारक आर्थिक कारक है, यानी उत्पादन का तरीका।

मार्क्स ने अपने सिद्धांत का वर्णन करते हुए लिखा है कि मनुष्य को अपने जीवन यापन के लिए कुछ भौतिकवादी मूल्यों (जैसे भोजन, वस्त्र, घर आदि) की आवश्यकता होती है। इन मूल्यों या आवश्यकताओं के संग्रह के लिए मनुष्य को इनका निर्माण करना पड़ता है। निर्माण के लिए, अच्छे साधनों की आवश्यकता होती है। वह साधन जिसके लोग तकनीक द्वारा उत्पादन करते हैं। तकनीक में छोटे उपकरण और बड़ी मशीनें शामिल हैं।

टिप्पणी

जब तकनीकी में बदलाव आता है तो यह उत्पादन में भी आता है। उत्पादन के तरीके दो तरह से जुड़े होते हैं, एक–उत्पादन या प्रौद्योगिकी के उपकरण, श्रम शक्ति, उत्पादन का अनुभव और श्रम कौशल, और दूसरा–उत्पादन की लिंक। किसी भी चीज के उत्पादन के लिए उपकरण, श्रम, अनुभव और कौशल की आवश्यकता होती है। साथ ही जो लोग उत्पादन के काम में लगे होते हैं, उनमें कुछ के बीच आर्थिक संबंध जैसे कृषि में किसान श्रम क्षेत्र, सुनार, लोहार जो उत्पादन के दौरान उसके द्वारा बनाए गए उत्पादों के साथ संबंध विकसित करते है। जब उत्पादन के तरीके में बदलाव होता है, तो समाज में भी बदलाव आता है। उत्पादन के तरीके की विशेषता यह है कि यह किसी भी राज्य में स्थिर नहीं होता है, यह बदलता रहता है। उत्पादन का तरीका समाज का मानक है और इसी पर समाज की सामाजिक, सांस्कृतिक, धार्मिक और राजनीतिक रचनाएँ, आस्था, कला, साहित्य, परंपराएँ, विज्ञान और दर्शन आधारित हैं। सुपर–स्ट्रक्चर नोट्स (समाज की सर्वोच्च संरचना) जिसमें धर्म, परम्पराएँ, राजनीति, साहित्य, कला, विज्ञान और संस्कृति आदि सभी शामिल हैं, उत्पादन के तरीके की तरह ही बनते हैं। जब उत्पादन का तरीका बदलता है, तो सबसे ऊपरी संरचना में भी परिवर्तन आता है, सामाजिक संगठन बदलते हैं और सामाजिक परिवर्तन भी आता है।

मार्क्स ने कहा था कि जब मानवीय चक्की की मदद से उत्पादन होता था तब समाज अलग था और आज जब बिजली की चक्की का उपयोग किया जाता है, तो समाज अलग प्रकार का है, जो पिछले समाज से बहुत अलग है। इसी प्रकार जब किसानों का काम हल से किया जाता था और कुटीर उद्योगों में छोटे–छोटे औजारों की मदद और बैलों से उत्पादन का काम किया जाता था, तब समाज, संस्कृति, धर्म और राजनीति विशेष रूप से अलग प्रकार की होती थी और आज जब कृषि में ट्रैक्टर और वैज्ञानिक साधनों का प्रयोग हो रहा है और बड़ी मशीनों और कारखानों की मदद से औद्योगिक उत्पादन किया जा रहा है, तो एक अलग प्रकार का समाज देखा जाता है। इन दोनों चरणों में राजनीति, धर्म, संस्कृति, कला, साहित्य, दर्शन, परंपरा, नैतिकता और लोकाचार में बहुत अंतर है। अतः यह स्पष्ट है कि समाज में परिवर्तन से उत्पादन के तरीके में परिवर्तन होता है। उत्पादन में शामिल लोगों के आपसी संबंधों में भी परिवर्तन होता है। इस कारण आज के समय के पूंजीपतियों और श्रम के बीच के संबंध कृषि युग के दौरान जमींदारों और श्रम के बीच के संबंधों से बहुत अलग हैं।

मार्क्स के अनुसार, उत्पादन के संबंधों के पूर्ण संयोजन से समाज की आर्थिक संरचना का निर्माण होता है। उदाहरण के लिए, कृषि युग में,जमींदारों, किसानों और खेतिहर मजदूरों के बीच संबंध ने एक विशेष प्रकार की आर्थिक संरचना का निर्माण किया, जिसे हम कृषि अर्थशास्त्र कहते हैं। वर्तमान समय में पूंजीपतियों, कारखानों के मालिकों और मजदूरों के संबंधों से बना आर्थिक ढाँचा कृषि युग के आर्थिक ढाँचे से अलग है। इसे हम औद्योगिक आर्थिक संरचना या औद्योगिक अर्थशास्त्र कहते हैं। संक्षेप में, मार्क्स के अनुसार, उत्पादन का तरीका केवल सामाजिक परिवर्तन के लिए जिम्मेदार है, यदि परिवर्तन उत्पादन के साधनों (प्रौद्योगिकी), उत्पादन में विशेषज्ञता, ज्ञान, उत्पादन के संबंधों आदि में आता है, जो निर्माण में मदद करता है। आर्थिक संरचना का परिवर्तन पूरे सामाजिक–सांस्कृतिक में भी आता है, जिसे हम सामाजिक परिवर्तन कहते हैं।

टिप्पणी

मार्क्स की दृष्टि में इतिहास के प्रत्येक युग में दो वर्ग रहे हैं। मानव समाज का इतिहास इन दो वर्गों के संघर्ष का ही इतिहास है। उन्होंने समाज के विकास को पाँच युगों में बाँटा और हर युग में मिलने वाली दो श्रेणियों की व्याख्या की। एक वर्ग वह है जिसके पास उत्पादन के साधनों का स्वामित्व है और दूसरा वह है जो शारीरिक श्रम के माध्यम से जीवन जीता है।

इन दोनों श्रेणियों में एक दूसरे के लाभ के लिए संघर्ष होता है। प्रतियोगिता से हर वर्ग नए समाज और नई श्रेणियों के उदय के साथ समाप्त हो जाता है। वर्तमान समय में भी पूंजीपति और श्रमिक दो श्रेणियाँ हैं, जो अपने लाभ के लिए प्रतिस्पर्धी हैं। मार्क्स का कहना है कि श्रेणियों की रचना और प्रकृति ही सामाजिक व्यवस्था को निर्धारित करती है। श्रेणी– प्रतियोगिता के परिणामस्वरूप नई श्रेणियाँ बनती हैं, जो नई सामाजिक व्यवस्था को जन्म देती हैं। इस प्रकार, श्रेणी–प्रतियोगिता और उसके परिणामस्वरूप नई श्रेणियों की उत्पत्ति के कारण समाज में परिवर्तन होता है। इस प्रकार मार्क्स सिद्धांत में सामाजिक परिवर्तन में वर्ग–प्रतियोगिता की भूमिका को भी काफी महत्वपूर्ण माना जाता है।

मार्क्स ने सामाजिक परिवर्तन के लिए जिम्मेदार केवल एक आर्थिक कारक (उत्पादन का तरीका) को स्वीकार किया है और अन्य सभी कारकों की उपेक्षा की है। सामाजिक, धार्मिक, भौगोलिक और जनसंख्या कारकों की भी सामाजिक परिवर्तन में महत्वपूर्ण भूमिका होती है और आर्थिक कारक स्वयं अन्य कारकों से प्रभावित होते हैं।

मार्क्स का कहना है कि सामाजिक परिवर्तन प्रौद्योगिकी, आर्थिक संबंधों और आर्थिक संरचना में परिवर्तन के कारण होता है, लेकिन वे यह बताने में सक्षम नहीं हैं कि प्रौद्योगिकी में परिवर्तन क्यों होता है, और क्या कारक है जो परिवर्तन का कारण बनते हैं?

मार्क्स द्वारा प्रयुक्त शब्दय जैसे आर्थिक कारक, ऊर्जा और उत्पादन के संबंध, आर्थिक सुधार, प्रौद्योगिकी आदि को पूर्ण रूप से स्पष्ट नहीं किया गया है। कुछ विद्वानों में केवल आर्थिक पद्धति शामिल हैं,जबकि एंजेल और सेलिगमैन आदि ने उत्पादन से संबंधित सभी शर्तों को आर्थिक कारकों में शामिल किया है।

मार्क्स ने वर्ग–प्रतियोगिता पर अधिक जोर दिया है, लेकिन समाज का आधार प्रतिस्पर्धा पर आधारित नहीं है; यह समर्थन पर आधारित है। इस प्रकार हम देखते हैं कि मार्क्स ने सामाजिक परिवर्तन के सिद्धांत को वैज्ञानिक ढंग से प्रस्तुत करने का भरसक प्रयास किया, फिर भी उन्होंने आर्थिक कारकों की आवश्यकता पर अधिक बल दिया। मनुष्य केवल अपनी आर्थिक आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए एक पुतला नहीं है। मैक्स वेबर ने मार्क्स के सिद्धांत की आलोचना की है। वह धर्म को सामाजिक परिवर्तन के आर्थिक कारकों का आधार मानते हैं।

थोरस्टीन वेब्लेन का सिद्धांत

वेब्लेन तकनीकी परिस्थितियों को सामाजिक परिवर्तन के लिए उत्तरदायी मानते हैं। उनका विचार है कि तकनीकी परिस्थितियाँ सामाजिक परिवर्तन के लिए प्रत्यक्ष रूप से उत्तरदायी होती हैं। इस वजह से उनके सिद्धांत को तकनीकी जाँच कहा जाता है। वेब्लेन ने मानवीय विशेषताओं को दो भागों में वर्गीकृत किया है–

टिप्पणी

1. **स्थिर लक्षण** : जिनका मानव प्रवृत्ति और प्रेरणाओं के साथ संबंध है जिसमें परिवर्तन बहुत कम होता है।

2. **परिवर्तनशील लक्षण** : जैसे कि आदतें, विचार, मनोविज्ञान आदि।

मनुष्य अपनी आदतों के वश में हो जाता है और उनका दास हो जाता है। उसकी आदतें कैसी होंगी, यह मनुष्य के भौतिकवादी वातावरण पर निर्भर करता है, भौतिकवादी वातावरण में भी यह विशेष रूप से तकनीक पर निर्भर करता है। जब भौतिकवादी वातावरण या तकनीक में परिवर्तन होता है, तो यह मनुष्य की आदतों में भी होता है। मनुष्य की आदतें कैसे बनती हैं? इसका उत्तर देते हुए वेब्लेन कहते हैं कि मनुष्य जिस प्रकार कार्य और तकनीकीता के द्वारा अपना जीवन जीता है, उसी प्रकार उसकी अपनी आदतें और स्वभाव हैं। मनुष्य द्वारा प्रयुक्त तकनीकी का प्रकार तकनिकीकृत है क्योंकि उसके जीवन का उपयोग उसकी आदतों को उसके अनुसार स्वीकार करने के लिए भी किया जाता है। ये आदतें मनुष्य को एक निश्चित जीवन शैली के लिए अपना जीवन व्यतीत करने के लिए बाध्य करती हैं और उसके द्वारा किया गया कार्य उसके विचारों को प्रभावित करता है। मनुष्य जैसा सोचता है वैसा ही काम करता है। उदाहरण के लिए सैनिक, किसान, डॉक्टर, इंजीनियर आदि द्वारा किया गया कार्य भी उनके विचारों और आदतों को प्रभावित करता है। मनुष्य अपनी जीवन शैली के लिए किस प्रकार का कार्य करता है यह उसके भौतिकवादी वातावरण पर निर्भर करता है। भौतिकवादी वातावरण मनुष्य के कार्य को परिभाषित करता है और उसका कार्य उसके विचारों और आदतों को परिभाषित करता है। उदाहरण के लिए, कृषि युग में, जीवित व्यक्ति ने अपने काम लिए एक विशेष तकनीक का इस्तेमाल किया, इसके अनुसार उसका केवल भौतिकवादी वातावरण बनाया गया।

कृषि कार्य के आधार पर ही उसकी आदतों और स्वभाव का निर्माण हुआ, लेकिन जब मशीनों का आविष्कार हुआ तो मनुष्य का भौतिकवादी वातावरण बदल गया, तकनीक बदल गई, काम की प्रकृति बदल गई और साथ ही मनुष्य की आदतें और स्वभाव भी बदल गए। आदतें स्थापित और मजबूत होने के बाद ही संगठन का रूप लेती हैं। संगठन केवल सामाजिक संरचना का निर्माण करते हैं। अतः जब परिवर्तन आता है तो समाज में भी परिवर्तन आता है।

संक्षेप में, हम वेब्लेन के विचारों को इस प्रकार व्यक्त कर सकते हैं–मनुष्य को उसकी अपनी आदतों से नियंत्रित किया जा रहा है, भौतिकवादी वातावरण और तकनीक के आधार पर आदतों का निर्माण किया जाता है, आदतों से ही सामाजिक संगठन बनते हैं और सामाजिक संगठन सामाजिक संरचना का निर्माण करते हैं। अतः जब प्रौद्योगिकी और भौतिकवादी वातावरण में परिवर्तन होता है तो मनुष्य के स्वभाव, संगठनों और सामाजिक संरचना में भी परिवर्तन होता है। सामाजिक संरचना में परिवर्तन ही सामाजिक परिवर्तन है। इस प्रकार वेब्लेन का मानना है कि सामाजिक परिवर्तन नवीन प्रौद्योगिकी और तकनीकी कारकों से जुड़ा है। यही कारण है कि उन्हें तकनीकी निर्धारक के रूप में जाना जाता था। वेब्लेन भौतिकवादी वातावरण में परिवर्तन को एक प्राकृतिक घटना मानते हैं। वेब्लेन के सिद्धांत में भी मार्क्स के सिद्धांत जैसी ही कमियाँ पाई गई हैं क्योंकि मार्क्स की तरह उन्होंने भी प्रौद्योगिकी को सामाजिक परिवर्तन के कारक के रूप में माना है।

टिप्पणी

वेब्लेन ने मनुष्य को अपनी आदतों के कारण एक नियंत्रित जीव माना है, लेकिन यह सही नहीं है। मनुष्य अपनी आदत के बजाय अपनी बुद्धि से अधिक नियंत्रित होता है। सामाजिक परिवर्तन के साथ तकनीकी परिवर्तन आता है, यह कहना सही नहीं है क्योंकि कभी–कभी भौतिकवादी वातावरण कभी नहीं बदलता है, लेकिन फिर भी नैतिक, धार्मिक और अन्य कारकों के कारण परिवर्तन होता है।

वेब्लेन का सिद्धांत भी एकतरफा है उसी तरह जैसे अन्य निर्धारकों और समाजशास्त्रियों के सिद्धांत। यह सामाजिक परिवर्तन किसी एक कारक का परिणाम नहीं है बल्कि यह कई कारकों का परिणाम है। यह एक जटिल प्रक्रिया है, जिसे वेबलेन द्वारा बहुत ही सरल तरीके से प्रस्तुत किया गया है।

उपर्युक्त सिद्धांतों के अलावा, कुछ अन्य सिद्धांत भी हैं जिनका हम यहाँ संक्षेप में वर्णन करेंगे। माल्थस ने सामाजिक परिवर्तन के लिए बढ़ी हुई जनसंख्या का सिद्धांत प्रस्तुत किया। उनके अनुसार, मानव समाज में खाद्य पदार्थों के उत्पादन में वृद्धि की तुलना में जनसंख्या की दर में वृद्धि हुई है। जनसंख्या दर ज्यामितीय रूप में बढ़ती है, जैसे 1, 2, 4, 8, 16, 32, 64 आदि के क्रम में। इसकी तुलना में, खाद्य पदार्थों में वृद्धि 1, 2 के निम्नलिखित क्रम में होती है, 1, 2, 3, 4, 5, 6, 7 आदि परिणाम के रूप में, एक समय आता है जब खाद्य सामग्री की कमी होती है यदि बढ़ती जनसंख्या दर को नियंत्रित नहीं किया जाता है, तो किसी भी देश की जनसंख्या 25 वर्षों में दोगुनी हो जाती है और जब जनसंख्या दर या तो बढ़ जाती है या घट जाती है, तो सामाजिक परिवर्तन होता है।

सैडलर ने जनसंख्या दर से संबंधित सिद्धांत का भी समर्थन किया और जनसंख्या दर में वृद्धि को मनुष्य की भलाई और आपसी संबंधों से जोड़ा है। उनका मानना है कि मनुष्य के विकास के साथ–साथ उसकी प्रजनन क्षमता में कमी आई है और उसकी भलाई में वृद्धि हुई है। ये सभी चीजें सामाजिक परिवर्तन के लिए भी जिम्मेदार हैं।

थॉमस का मानना है कि विभिन्न संस्कृतियों का संयोजन और ध्यात्मिक एकता सामाजिक परिवर्तन के लिए जिम्मेदार है।

मैक्स वेबर ने अपनी पुस्तक 'द प्रोटेस्टेंट एथिक एंड द स्पिरिट ऑफ कैपिटलिज्म'में सामाजिक परिवर्तन के लिए धर्म को जिम्मेदार माना है। उनके विचार में, जब यूरोप में रोमन कैथोलिक धर्म था, समाज का एक अलग प्रकार था, लेकिन जब प्रोटेस्टेंट धर्म अस्तित्व में आया तो आधुनिक पूंजीवाद के समाज की स्थापना हुई। छह मुख्य धर्मों (हिंदू, ईसाई, मुस्लिम, चीनी आदि) का अध्ययन करने के बाद उन्होंने कहा कि केवल प्रोटेस्टेंट धर्म में ही वे चीजें थीं, जो आधुनिक पूंजीवाद को जन्म दे सकती थीं। उनके विचार में प्रत्येक धर्म की आचार संहिता में ऐसे नियम पाए जाते हैं, जो लोगों के विचारों और व्यवहार को तय करते हैं। इसलिए जब धर्म बदलता है तो समाज में भी बदलाव आता है। वह धर्म को परिवर्तन लाने वाला परिवर्तनशील मानते है।

प्रोटेस्टेंट धर्म की आचार संहिता में कुछ तत्व निम्नलिखित हैं–

ईमानदारी सबसे अच्छी नीति है, एक सिक्के को बचाना एक सिक्का अर्जित करना है, समय धन है, धन धन को जन्म देता है, जल्दी सोना और जल्दी उठना मनुष्य को स्वस्थ, धनवान और बुद्धिमान बनाता है।

टिप्पणी

आचार संहिता के इन सभी नियमों ने प्रोटेस्टेंट सिद्धांतकारों के जीवन और व्यवहार को प्रभावित किया और उत्पत्ति दी आधुनिक पूंजीवाद के लिए, जिसने सामाजिक व्यवस्था को बदल दिया।

वेबर के सिद्धांत की भी आलोचना की जाती है। वह यह स्पष्ट नहीं कर पाए हैं कि धर्म में परिवर्तन क्यों होता है।

ऑगबर्न ने 1922 में अपनी पुस्तक 'सोशल चेंज ' में सामाजिक परिवर्तन के सांस्कृतिक अंतराल के सिद्धांत का प्रदर्शन किया है। उन्होंने संस्कृति को दो भागों में वर्गीकृत किया– भौतिक और अभौतिक संस्कृति।

भौतिक संस्कृति में हजारों भौतिक चीजें शामिल हैं, जैसे हवाई जहाज, ट्रेन, पंखा, घड़ी, बर्तन, फर्नीचर, कपड़े, किताबें आदि। अभौतिक संस्कृति में, हम धर्म, कला, दर्शन, ज्ञान, विज्ञान, विश्वास, साहित्य आदि की गणना कर सकते हैं।

ऑगबर्न का मानना है कि पिछले वर्षों में इन दोनों संस्कृतियों का काफी विकास हुआ है। उनके विचार में, भौतिक संस्कृति, अभौतिक संस्कृति की तुलना में तेजी से बदलती है। इससे भौतिक संस्कृति बढ़ती है और अभौतिक संस्कृति पिछड़ जाती है। भौतिक परिवर्तन के आगे बढ़ना और अभौतिक संस्कृति से पिछड़ जाना सांस्कृतिक अंतराल के रूप में जाना जाता है। संस्कृति में यह स्थिति असंतुलन की स्थिति है। इस असंतुलन को समाप्त करने के लिए आवास और अनुकूलन के प्रयास किए जाते हैं, इस चरण के दौरान समाज में परिवर्तन होते हैं। उसी तरह जब इन दोनों संस्कृतियों में असंतुलन होता है, तो इसका समाज पर प्रभाव पड़ता है और यह उसमें बदलाव भी लाता है। ओगबर्न के इस सिद्धांत का वर्णन सामाजिक परिवर्तन के सांस्कृतिक कारकों में किया गया है।

सामाजिक परिवर्तन के रैखिक सिद्धांत

कुछ विचारक सामाजिक परिवर्तन के रैखिक सिद्धांत की सदस्यता लेते हैं। उनके अनुसार, समाज धीरे–धीरे सभ्यता की और भी उच्च अवस्था की ओर बढ़ता है और यह एक रैखिक फैशन में, और सुधार की दिशा में आगे बढ़ता है। अगस्टे कॉम्टे ने सामाजिक परिवर्तन के तीन चरणों को निरूपित किया है–

धार्मिक, आध्यात्मिक और सकारात्मक

मनुष्य पहले दो चरणों से गुजर चुका है, भले ही जीवन के कुछ पहलुओं में वे अभी भी प्रबल हैं, और धीरे–धीरे सकारात्मक चरण में पहुँच रहे हैं। पहले चरण में मनुष्य का मानना घ्ध्था कि अलौकिक शक्तियों ने दुनिया को नियंत्रित और डिजाइन किया है। वह धीरे–धीरे बुत और देवताओं में विश्वास से एकेश्वरवाद की ओर बढ़ा।

इस चरण ने आध्यात्मिक चरण को रास्ता दिया, जिसके दौरान मनुष्य अमूर्त का सहारा लेकर घटनाओं की व्याख्या करने का प्रयास करता है। सकारात्मक स्तर पर मनुष्य अंतिम कारणों की खोज को निराशाजनक मानता है और उन व्याख्यात्मक तथ्यों की तलाश करता है जिन्हें अनुभवजन्य रूप से देखा जा सकता है। इसका तात्पर्य उस प्रगति से है जो कॉम्टे के अनुसार सुनिश्चित होगी यदि मनुष्य प्राकृतिक और सामाजिक घटनाओं की समझ में सकारात्मक दृष्टिकोण अपनाता है।

टिप्पणी

हर्बर्ट स्पेंसर, जिन्होंने समाज की तुलना एक जीव से की, ने कहा कि मानव समाज धीरे–धीरे एक बेहतर अवस्था की ओर बढ़ रहा है। अपने आदिम राज्य में, सैन्यवाद की स्थिति में, समाज को युद्धरत समूहों द्वारा, अस्तित्व के लिए एक निर्दयी संघर्ष द्वारा चित्रित किया गया था। सैन्यवाद से समाज उद्योगवाद की स्थिति में चला गया। उद्योगवाद के चरण में समाज को इसके भागों के अधिक विभेदीकरण और एकीकरण द्वारा चिह्नित किया जाता है। एक एकीकृत प्रणाली की स्थापना विभिन्न समूहों–सामाजिक, आर्थिक और नस्लीय के लिए शांति से रहना संभव बनाती है।कुछ रूसी समाजशास्त्रियों ने भी सामाजिक परिवर्तन के रैखिक सिद्धांत की सदस्यता ली।

निकोलाई के. मिखाइलोव्स्की का मत था कि मानव समाज तीन चरणों से होकर गुजरता है; (1) उद्देश्य मानवकेंद्रित, (2) सनकी, और (3) व्यक्तिपरक मानवकेंद्रित। पहले चरण में, मनुष्य स्वयं को ब्रह्मांड का केंद्र मानता है और अलौकिक में रहस्यवादी विश्वासों में व्यस्त रहता है। दूसरे चरण में, मनुष्य को अमूर्तन के हवाले कर दिया जाता है; अमूर्त उसके लिए वास्तविक से अधिक ''वास्तविक'' है। तीसरे चरण में, मनुष्य अनुभवजन्य ज्ञान पर भरोसा करने लगता है जिसके द्वारा वह अपने लाभ के लिए प्रकृति पर अधिक से अधिक नियंत्रण करता है। आदिवासी, राष्ट्रीय सरकार और सार्वभौमिक भाईचारे की अवधि के रूप में तीन चरणों की एकल–दृष्टिकोण की कल्पना की गई।

प्रीतिरिम सोरोकिन ने परिवर्तनशील पुनरावृत्ति की अपनी अवधारणा में चक्रीय और रैखिक दोनों परिवर्तनों को शामिल करने का प्रयास किया है। उनके विचार में संस्कृति एक निश्चित दिशा में एक समय के लिए आगे बढ़ सकती है और इस प्रकार एक रैखिक सूत्र के अनुरूप प्रतीत होती है। लेकिन अंततः, संस्कृति के भीतर आंतरिक शक्तियों के परिणामस्वरूप, दिशा में बदलाव होगा और विकास की एक नई अवधि की शुरुआत होगी। शायद नई प्रवृत्ति भी रैखिक है, शायद यह दोलन कर रही है, शायद यह अनुरूप है किसी विशेष प्रकार के वक्र के लिए। किसी भी मामले में, यह सीमा तक पहुँच जाता है और फिर भी एक और प्रवृत्ति इसकी जगह लेती है।

सोरोकिन द्वारा दिया गया विवरण लगभग किसी भी संभावना, गिरावट, प्रगति या चक्रीय परिवर्तन के लिए जगह बनाता है और इसलिए, समाजशास्त्री उसके विवरण के साथ थोड़ा झगड़ा पाते हैं। लेकिन किसी भी दर पर, सोरोकिन की परिवर्तनशील घटना स्वीकार है कि समाजशास्त्रीय ज्ञान की वर्तमान स्थिति लंबे समय तक चलने वाली प्रवृत्ति या सामाजिक परिवर्तन के चरित्र के बारे में सिद्धांतों के निर्माण की गारंटी नहीं देती है।

चाहे समकालीन सभ्यता आंतरिक विघटन या परमाणु युद्ध के माध्यम से कबाड़–ढेर के लिए नेतृत्व कर रही है, या कुछ स्थिर और सामाजिक संबंधों की आदर्शवादी प्रणाली द्वारा प्रतिस्थापित किया जाना नियत है, विश्वास के आधार पर अन्य पर भविष्यवाणी नहीं की जा सकती है। हमारे पास जो तथ्यात्मक साक्ष्य उपलब्ध हैं, वे हमें केवल यह टिप्पणी करने के लिए प्रेरित कर सकते हैं कि भविष्य में सामाजिक परिवर्तन जो भी दिशा लेगा, वह दिशा स्वयं मनुष्य द्वारा निर्धारित की जाएगी।

टिप्पणी

सामाजिक परिवर्तन के चक्रीय सिद्धांत

चक्रीय सिद्धांतकारों की दृष्टि में समाज में परिवर्तन का एक ही चक्र चलता है। हम घूम–घूम कर उसी जगह पहुँच जाते हैं जहाँ से हमने शुरुआत की थी। इस प्रकार के प्रेरक विचार विद्वानों को प्रकृति से ही मिले हैं। हम देखते हैं कि प्रकृति में ऋतुओं का एक चक्र चलता है और एक के बाद एक शीत, ग्रीष्म और वर्षा ऋतु आती है। इसी प्रकार रात के बाद दिन का चक्र और दिन के बाद रात का चक्र भी चलता रहता है। जीवित प्राणी भी जीवन और मृत्यु के चरण से गुजरते हैं। हम जन्म लेते हैं, जवान होते हैं फिर बूढ़े होते हैं और फिर हम मर जाते हैं। हम मरने के बाद फिर से जन्म लेते हैं, और फिर वही सिलसिला दोहराया जाता है। इसकी पुष्टि के लिए उन्होंने दुनिया की कई सभ्यताओं का वर्णन किया और कहा कि इतिहास गवाह है कि आज जो सभ्यताएँ विकसित हो रही हैं और प्रगति के शीर्ष पर हैं, वे कभी आदिम और पिछड़ी अवस्था में थी और आज जो सभ्यताएँ परित्यक्त प्रतीत होती हैं, वे अतीत में दुनिया की श्रेष्ठ सभ्यताएँ लगती हैं। इस प्रकार चक्रीय सिद्धांतकार सामाजिक परिवर्तन को जीवन चक्र के रूप में देखते हैं। चक्रीय सिद्धांतकारों में, स्पेंगलर, टॉयनबी, पारेटो और सोरोकिन प्रख्यात सिद्धांतकार हैं। हम यहाँ उनके सिद्धांतों का वर्णन करेंगे –

ओसवाल्ड स्पेंगलर का सिद्धांत

सामाजिक परिवर्तन के बारे में जर्मन विद्वान ओसवाल्ड स्पेंगलर ने 1918 में अपनी पुस्तक 'दि डिक्लाइन ऑफ द वेस्ट ' में अपना चक्रीय सिद्धांत प्रस्तुत किया। इस पुस्तक में उन्होंने सामाजिक परिवर्तन के विकासवादी सिद्धांतों की आलोचना की है और कहा है कि परिवर्तन कभी भी एक सीधी रेखा में नहीं होता है। स्पेंगलर के अनुसार सामाजिक परिवर्तन एक चक्र में होता है, जहाँ से हम रोमिंग के बाद शुरू करते हैं, हम फिर से उसी स्थान पर पहुँच जाते हैं। जैसे मनुष्य जन्म लेता है, जवान हो जाता है, बूढ़ा हो जाता है और फिर मर जाता है और फिर जन्म लेता है। यह चक्र मानव समाज और सभ्यताओं में भी पाया जाता है। मानव सभ्यता और संस्कृति भी उत्थान और पतन, गठन और विनाश से गुजरती है। मानव शरीर की तरह, वे भी जन्म, विकास और मृत्यु को प्राप्त करते हैं। अपने मत को सिद्ध करने के लिए उन्होंने विश्व की आठ सभ्यताओं (अरब, मिस्र, मेगन, माया, रूस और पश्चिमी संस्कृति आदि) का वर्णन किया और उनके उत्थान और पतन को प्रस्तुत किया।

स्पेंगलर ने पश्चिमी संस्कृति के बारे में कहा है कि यह विकास के अपने सर्वोच्च स्थान पर पहुँच गया है। व्यापार और विज्ञान के क्षेत्र में इसने अभूतपूर्व प्रगति की है, लेकिन धीरे–धीरे यह क्षीणन और स्थिरता के अपने चरण में पहुँच रहा है; अतः उसका विनाश निश्चित है। उन्होंने जर्मन संस्कृति के बारे में अपने समान विचार दिए हैं और कहा है कि यह अपने उच्चतम स्थान पर पहुंच गया है और इसका पतन निकट है। उनके विचार से भविष्य में पाश्चात्य समाजों का जो वैभव आज के समय में है वह कम हो जायेगा और उनका वैभव और शक्ति नष्ट हो जायेगी। उन्होंने कहा कि दूसरी ओर, एशिया के देश जो विकसित नहीं था, कमजोर और सुस्त था, अपनी आर्थिक और सैन्य शक्ति के साथ प्रगति और उत्पादन की राह पर आगे बढ़ेगा। वे पश्चिमी देशों के लिए

टिप्पणी

चुनौती बन जाएँगे। इस प्रकार, पश्चिमी और एशियाई समाजों के उदाहरणों के साथ, स्पेंगलर ने सामाजिक परिवर्तन की चक्रीय प्रकृति को समझाया है।

स्पेंगलर के इस सिद्धांत ने बहुत से लोगों को लंबे समय तक आकर्षित किया, लेकिन इसे पूरी तरह से स्वीकार नहीं किया जा सकता है। स्पेंगलर ने संस्कृति और सभ्यता की तुलना व्यापार से की है, जिसे आज कोई भी स्वीकार नहीं करता है। उन्होंने ऐतिहासिक तथ्यों को संशोधित करके अपने पक्ष की पुष्टि की और काल्पनिक आधार पर उन्होंने युद्धों द्वारा पश्चिमी समाज के विनाश की घोषणा की। स्पेंगलर ने यह भी बताया कि किसी भी सभ्यता, समाज और संस्कृति का अंत बिंदु जिसके बाद उसका पतन शुरू होता है। पाश्चात्य समाज के विकास के बारे में उनका यह दृष्टिकोण कि यह अपने सर्वोच्च रूप को प्राप्त कर चुका है, दोषपूर्ण है, क्योंकि अभी भी इनके विकास का कार्य जारी है। हम स्पेंगलर के सिद्धांतों को पूरी तरह से वैज्ञानिक नहीं मान सकते। उनका सिद्धांत उनके निराशावाद को दर्शाता है।

टॉयनबी का सिद्धांत

अर्नोल्ड जे. टॉयनबी एक अंग्रेज इतिहासकार थे। उन्होंने दुनिया की 21 सभ्यताओं का अध्ययन किया और सामाजिक परिवर्तन के अपने सिद्धांत को अपनी पुस्तक ' ए स्टडी ऑफ हिस्ट्री' में प्रस्तुत किया। विभिन्न सभ्यताओं के विकास का अध्ययन करने के बाद, उन्होंने एक सरल उदाहरण पाया और अपना सिद्धांत बनाया। टॉयनबी के सिद्धांत को सामाजिक परिवर्तन की चुनौती और प्रतिक्रिया सिद्धांत भी कहा जाता है। उनका कहना है कि प्रत्येक सभ्यता को प्रारंभ में प्रकृति और मनुष्य द्वारा एक चुनौती दी जाती है। इस चुनौती का सामना करने के लिए मनुष्य को अनुकूलन की आवश्यकता होती है और इस चुनौती का सामना करने के लिए भी वह सभ्यता और संस्कृति का निर्माण करता है। इसके बाद भौगोलिक चुनौतियों के स्थान पर सामाजिक चुनौतियाँ दी जाती हैं। ये चुनौतियाँ आंतरिक समस्याओं के रूप में या बाहरी समाजों द्वारा दी जाती हैं। जो समाज इन चुनौतियों का सफलतापूर्वक सामना करता है वह अक्षुण्ण रहता है और जो ऐसा नहीं कर पाता वह नष्ट हो जाता है। इस तरह एक समाज गठन और विनाश और गठबंधन और विघटन के दौर से गुजरता है।

सिंधु और नील घाटियों में, एक ही बात हुई, जहाँ प्राकृतिक पर्यावरण ने चुनौती दी है। इन जगहों के लोग ने जिसका जवाब संघटित होकर दिया। सिंधु और मिस्र की सभ्यताओं का विकास इसी तरह हुआ है। गंगा और वोल्गा नदी ने भी यही चुनौती दी, लेकिन इसका उचित उत्तर वहाँ रहने वाले लोगों ने नहीं दिया। इसलिए, सभ्यताएँ वहाँ विकसित नहीं हुईं।

टॉयनबी का सिद्धांत वैज्ञानिक तर्क से बहुत दूर था और एक दार्शनिक सिद्धांत प्रतीत होता था, लेकिन टॉयनबी स्पेंगलर की तुलना में अधिक आशावादी है। उन्होंने परिवर्तन की समाजशास्त्रीय व्याख्या करने का प्रयास किया।

पारेटो का सिद्धांत

विल्फ्रेड पारेटो ने सामाजिक परिवर्तन के चक्रीय सिद्धांत का प्रदर्शन किया, जिसे अपनीपुस्तक 'माइंड एंड सोसाइटी' में 'योरी ऑफ सर्कुलेशन ऑफ एलीट्स' कहा जाता

टिप्पणी

है। उन्होंने चक्रीय परिवर्तनों के आधार पर सामाजिक परिवर्तन में श्रेणीबद्ध प्रणाली की व्याख्या की है। उनके विचार में, हम प्रत्येक समाज में दो श्रेणियाँ देखते हैंरू उच्च या कुलीन वर्ग और निम्न वर्ग। ये दोनों श्रेणियाँ स्थिर नहीं हैं, लेकिन इनमें परिवर्तन का एक चक्रीय क्रम पाया जाता है। निम्न वर्ग के लोग अपने गुणों और दक्षता को बढ़ाकर कुलीन वर्ग में आत्मसात कर लेते हैं। संभ्रांत वर्ग के लोगों की दक्षता और क्षमता धीरे–धीरे कम होने लगती है और वे अपने गुणों को खोने लगते हैं और भ्रष्ट हो जाते हैं। इस तरह वे निम्न वर्ग की ओर बढ़ते हैं। उच्च या कुलीन वर्ग में रिक्त स्थान को भरने के लिए, निम्न वर्ग लोग उच्च दिशाओं में आगे बढ़ते हैं जो बुद्धिमान, राजसी, कुशल, सक्षम और साहसी होते हैं। इस प्रकार उच्च वर्ग से निम्न वर्ग तथा निम्न वर्ग से उच्च वर्ग में जाने का क्रम चलता रहता है। इस चक्रीय दर के कारण सामाजिक संरचना में परिवर्तन हो सकता है। चूँकि यह परिवर्तन चक्रीय दर में होता है, इसलिए इसे सामाजिक परिवर्तन का चक्रीय या कुलीनों के संचलन का सिद्धांत कहा जाता है। पारेटो ने राजनीतिक, आर्थिक और वैचारिक क्षेत्रों में सामाजिक परिवर्तन के चक्र को समझाया है।

सामाजिक परिवर्तन के वक्रीय सिद्धांत

समाजशास्त्रीय, वक्रतावादी सिद्धांत बताता है कि बाहरी या बाहरी वर्गों के बजाय एक भाषण समुदाय के सामाजिक आर्थिक पदानुक्रम में केंद्रीय वर्गों के सदस्यों से उत्पन्न होने के लिए नीचे से भाषाई परिवर्तन की प्रवृत्ति है।

विलियम लेबोव द्वारा परिभाषित, वक्रतावादी सिद्धांत उन्नीसवीं सदी की पारंपरिक धारणाओं से हटकर है कि भाषा परिवर्तन आम तौर पर समाज के उच्चतम या निम्नतम वर्गों में उत्पन्न होता है। इसके बजाय, इसमें कहा गया है कि भाषा परिवर्तन की ओर ले जाने वाले भिन्न रूपों को आम तौर पर मध्यवर्ती समूहों–उच्च–मजदूर वर्ग और निम्न–मध्यम वर्ग द्वारा पेश और प्रेरित किया जाता है।

सिद्धांत को समाजशास्त्र में एक महत्वपूर्ण प्रश्न के एक प्रतिक्रिया के रूप में देखा जा सकता है जिसे एम्बेडिंग समस्या के रूप में जाना जाता है, एक समस्या ''भाषाई और परिवर्तन के अतिरिक्त–भाषाई संदर्भ दोनों में नियमित पैटर्न निर्धारित करने से संबंधित है।'' दूसरे शब्दों में, एम्बेडिंग समस्या उन अन्य परिवर्तनों या कारकों की पहचान करना चाहती है जिनका वास्तविक भाषाई परिवर्तन के साथ गैर–संयोगात्मक संबंध है। वक्रीय सिद्धांत इस तरह के गैर–तुच्छ कारक की पहचान करता है कि एक वक्ता का वर्ग उस डिग्री को इंगित कर सकता है जिससे वह भाषाई परिवर्तन को प्रेरित करता है।

सिद्धांत का नाम वक्रीय सहसंबंध को संदर्भित करता है जो वक्ताओं के वर्ग के संबंध में एक भाषाई चर की भिन्नता की साजिश रचने के परिणामस्वरूप होता है। क्योंकि निम्नतम और उच्चतम वर्ग आम तौर पर केंद्रीय वर्गों की तुलना में नए उभरते रूपों का कम बार उपयोग करते हैं।

फिलाडेल्फिया अध्ययन

द फिलाडेल्फिया अध्ययन में, विलियमलेबोव ने भाषण एकीकरण के विभिन्न चरणों में भाषाई चर की एक श्रृंखला की जाँच की ताकि मूल्यांकन किया जा सके कि आंतरिक वर्ग वास्तव में भाषाई परिवर्तन के नवप्रवर्तक थे या नहीं। समुदाय के भीतर प्रत्येक वक्ता

टिप्पणी

की सामाजिक स्थिति को निर्धारित करने के लिए, लैबोव ने शिक्षा और व्यवसाय के आधार पर एक सामाजिक आर्थिक स्थिति सूचकांक बनाया, प्रत्येक को 0 से 6 के स्तर पर स्थान दिया गया, जहाँ 6 शिक्षा या व्यवसाय का उच्चतम स्तर था। उन्होंने ''नए और जोरदार'' स्वर परिवर्तनों की एक श्रृंखला का अध्ययन किया, जिसमें (aw) अव और (ey) इव के सामने और ऊपर उठाना और (ay) एव का केंद्रीकरण शामिल है। शोध में पाया गया कि उच्च श्रमिक वर्ग और निम्न मध्यम वर्ग के सदस्य निम्न या उच्च वर्ग के सदस्यों की तुलना में इन चरों का अधिक बार उपयोग करते हैं। इसने उनकी वक्रीय परिकल्पना की पुष्टि की क्योंकि मध्य वर्ग इन ''नए और जोरदार'' भाषाई परिवर्तनों के उपयोग का नेतृत्व कर रहे थे।

विकास की बदलती धारणा

विकास की अवधारणा बहुत पुरानी नहीं है। जैसा कि शुरुआत में कहा गया है, यह केवल पिछली शताब्दी के उत्तरार्ध तक ही मुद्रा में आया, शायद तभी जब वर्तमान समय के अधिकांश कम विकसित देश औपनिवेशिक शासन में लंबे समय तक अधीन रहने के बाद स्वतंत्र राष्ट्र के रूप में उभरे और अपनी योजनाबद्ध आर्थिक प्रगति के मार्ग पर निकल पड़े।

विकास, आधुनिकीकरण की तरह, एक अवधारणा है, जिसका उपयोग औपनिवेशिक देशों में पुनर्जागरण और औद्योगिक क्रांति के बाद पश्चिम द्वारा प्राप्त प्रगति की तर्ज पर सामाजिक, आर्थिक और राजनीतिक प्रगति के स्तर का विश्लेषण करने के लिए किया गया था।

पश्चिमी यूरोप में हुए सामाजिक, राजनीतिक और आर्थिक परिवर्तन इस पथ पर विकासशील देशों द्वारा की गई। प्रगति के स्तर का आकलन करने के लिए विकास और आधुनिकीकरण के मानदंड बन गए।

सोरोकिन की सांस्कृतिक गतिकी का सिद्धांत

सोरोकिन ने अपनी पुस्तक 'सोशल एंड कल्चरल डायनेमिक्स' में सामाजिक परिवर्तन की सांस्कृतिक गतिशीलता का सिद्धांत प्रस्तुत किया है। उन्होंने मार्क्स, पारेटो और वेब्लेन द्वारा दिए गए परिवर्तन से संबंधित सिद्धांतों की आलोचना की है। उनके विचार में, घड़ी के पेंडुलम की तरह ऊपर उठने के रूप में सामाजिक परिवर्तन एक स्थिति से दूसरी स्थिति के बीच होता है। उन्होंने मुख्य रूप से दो संस्कृतियों (आदर्श और सनसनीखेज) की व्याख्या की। प्रत्येक समाज संस्कृति के इन दो धुरी के साथ घूमता है; दूसरे शब्दों में यह सनसनीखेज से आइडियल और आइडियल से सेंसेशनल कल्चर की ओर आता और जाता है। एक राज्य से दूसरे राज्य में जाने के दौरान बीच में एक राज्य होता है जहाँ सनसनीखेज और वैचारिक संस्कृतियों का मेल होता है। सोरोकिन इसे आदर्श संस्कृति कहते हैं। विभिन्न संस्कृतियों से गुजरने के बाद समाज में भी परिवर्तन आता है। इन तीन प्रकार की संस्कृतियों की विशेषताओं का संक्षेप में यहां वर्णन किया गया है–

1. **सनसनीखेज संस्कृति** : सनसनीखेज संस्कृति को भौतिक संस्कृति भी कहा जाता है। यह संस्कृति मानव इंद्रियों और अंगों से संबंधित है, अर्थात इसका ज्ञान देखने, सूंघने और छूने से प्राप्त किया जा सकता है। ऐसी संस्कृति में

टिप्पणी

भौतिक आवश्यकताओं और इच्छाओं की पूर्ति पर अधिक बल दिया जाता है। सनसनीखेज संस्कृति में व्यक्तिगत और सामूहिक पक्ष शामिल हैं। पश्चिमी समाज इसका उदाहरण है

2. **वैचारिक संस्कृति** : यह सनसनीखेज संस्कृति के बिल्कुल विपरीत है। यह भावनाओं, ईश्वर, धर्म, आत्मा और नैतिकता से संबंधित है। इस संस्कृति को अध्यात्मवादी संस्कृति कहा जाता है। इसमें भौतिक सुख के स्थान पर आध्यात्मिक उन्नति, ज्ञान और ईश्वर प्राप्ति को अधिक महत्व दिया जाता है। सभी चीजों को भगवान की कृपा माना जाता है। धर्म और ईश्वर की प्रधानता सभी विचारों, आदर्शों, कला, साहित्य, दर्शन और कानून में पाई जाती है; रीति–रिवाजों और परंपराओं पर अधिक जोर दिया जाता है। इस संस्कृति में तकनीक और विज्ञान पिछड़ गए हैं।

3. **आदर्श संस्कृति** : यह संस्कृति सनसनीखेज और वैचारिक दोनों संस्कृतियों का संयोजन है; इसलिए, इस संस्कृति में दोनों संस्कृतियों की विशेषताएँ पाई जाती हैं। इसमें धर्म का संतुलित रूप और विज्ञान, भौतिक और आध्यात्मिक सुख प्राप्त होते हैं। सोरोकिन इस प्रकार की संस्कृति को उत्कृष्ट मानते हैं। इसी कारण वे इसे आदर्श संस्कृति कहते हैं।

सोरोकिन को देखते हुए, दुनिया की सभी संस्कृतियाँ एक पालने में सनसनी से लेकर वैचारिक संस्कृति तक झूलती हैं; प्रत्येक संस्कृति अपने सर्वोच्च स्थान पर पहुँचने के बाद फिर से दूसरे प्रकार की संस्कृति में चली जाती है। जैसा कि देखा जाता है कि सनसनीखेज और वैचारिक संस्कृतियाँ केवल परिवर्तन की सीमाएँ हैं, समाज में अधिकांश समय आदर्श संस्कृति प्रचलित है। संस्कृति में यह परिवर्तन क्यों होता है? सोरोकिन ने माना है कि इसका कारण प्राकृतिक कानून और संस्कृति के आंतरिक कारक हैं क्योंकि परिवर्तन प्रकृति का नियम है; इस प्रकार, इस कानून के कारण संस्कृति भी बदलती है। इसके अलावा, संस्कृति की आंतरिक स्थितियाँ भी उनके परिवर्तन के लिए जिम्मेदार हैं।

सोरोकिन ने कहा है कि 20वीं शताब्दी में पश्चिमी सभ्यता सनसनीखेज संस्कृति के अपने शीर्षतम स्थान पर पहुँच गई है और अब यह फिर से अपनी वैचारिक संस्कृति में वापस आ जाएगी। क्योंकि समाज का संस्कृति से घनिष्ठ संबंध है; इसलिए, जब संस्कृति में परिवर्तन होता है तो वह समाज में भी होता है।

यद्यपि सोरोकिन ने अपने सिद्धांत को वैज्ञानिक बनाने की कोशिश की है, लेकिन फिर भी निम्न कमियां हैं–

एक संस्कृति को एक चरण से दूसरे चरण तक पहुँचने में लंबा समय लगता है इस सामाजिक परिवर्तन की प्रकृति को प्रस्तुत करना कठिन है,जो इस पर आधारित है।

ऐतिहासिक तथ्यों के आधार पर यह साबित करना संभव नहीं है कि सभी समाज एक प्रकार की संस्कृति से दूसरे प्रकार की संस्कृति में परिवर्तन के चरण से गुजरते हैं

सोरोकिन भी सामाजिक परिवर्तन के कारकों को समझने में असमर्थ रहे हैं। यह कहना कि प्राकृतिक कारकों के कारण परिवर्तन होता है, यह तथ्य वैज्ञानिक के लिए पर्याप्त नहीं है।

टिप्पणी

राजनीतिक क्षेत्र में, हम दो प्रकार के स्वभाव के लोगों को देख सकते हैं – बाघ और लोमड़ी। बाघ लोगों का वैचारिक लक्ष्यों में दृढ़ विश्वास होता है और इन लक्ष्यों को प्राप्त करने के लिए वे सत्ता का सहारा लेते हैं। टाइगर लोग वे लोग हैं जो सत्ता में हैं, क्योंकि बाघ लोग शक्ति का प्रयोग करते हैं; इसलिए, समाज में एक गंभीर प्रतिक्रिया हो सकती है, इस प्रकार वे कूटनीति का सहारा लेते हैं और खुद को बाघ से लोमड़ियों में बदल लेते हैं और वे चालाकी से शासन करते हैं व सत्ता में बने रहते हैं, लेकिन कुछ लोमड़ियाँ निम्न वर्ग में भी मौजूद हैं जो इस सत्ता को हथियाने की तलाश में रहती हैं। एक समय आता है जब उच्च वर्ग की लोमड़ियों से सत्ता निम्न वर्ग की लोमड़ियों के हाथ में आती है। ऐसी अवस्था में सत्ता परिवर्तन के कारण राजनीतिक व्यवस्था और संगठन में भी परिवर्तन होता है।

परेटो के दृष्टिकोण से सभी समाजों में शासन के लिए तर्क के स्थान पर शक्ति का सर्वाधिक प्रयोग होता है। जब इच्छा में कमजोरी हो और शासन करने वाले लोगों में बल प्रयोग करने की शक्ति, फिर सत्ता के स्थान पर वे लोमड़ियों की तरह चालाकी से अपना काम करवाते हैं। शासक वर्ग की लोमड़ियाँ अधिक चालाक होती हैं इसलिए, वे उच्च वर्ग से सत्ता हड़प लेती हैं। इसलिए, जब प्रशासक बदलते हैं और सत्ता बदल जाती है तो समाज में भी परिवर्तन होता है। आर्थिक क्षेत्र में, पारेटो ने दो वर्गों – सट्टेबाजों और किराएदारों की व्याख्या की है। प्रथम वर्ग के लोगों की कोई निश्चित आय नहीं होती–कभी कम तो कभी अधिक। इस वर्ग के लोग अपनी बुद्धि से धन कमाते हैं। इसके विपरीत दूसरे वर्ग की आय निश्चित होती है। प्रथम श्रेणी के लोग आविष्कारक, उद्योगपति और कुशल व्यवसायी हैं, लेकिन इस वर्ग के लोग अपने हितों की रक्षा और भ्रष्ट तकनीकों को अपनाने के लिए शक्ति और चालाकी का उपयोग करते हैं। इससे वे बर्बाद हो जाते हैं और उनकी जगह पर दूसरे वर्ग के लोग कब्जा कर लेते हैं जो ईमानदार होते हैं। इस वर्ग में परिवर्तन के साथ–साथ समाज की अर्थव्यवस्था में भी परिवर्तन होता है।

वैचारिक क्षेत्र में भी दो तरह के लोग पाए जाते हैं– विश्वसनीय और अविश्वासी। कभी–कभी समाज में भरोसेमंद लोगों की प्रधानता होती है, लेकिन जब वे रूढ़िबद्ध हो जाते हैं तो उनका पतन हो जाता है और उनकी जगह दूसरे वर्ग के लोग ले लेते हैं।

हर घटना के पीछे कोई न कोई कारण जरूर होता है। सामाजिक परिवर्तन भी कुछ कारकों का परिणाम है। सामाजिक परिवर्तन को समझने के लिए हमें उन कारकों या कारणों को जानना होगा जो परिवर्तन के लिए जिम्मेदार हैं। विभिन्न विद्वानों ने सामाजिक परिवर्तन के लिए जिम्मेदार विभिन्न कारकों पर विचार किया है, जैसे मार्क्स को आर्थिक कारक को माना है, कॉम्टे ने खुफिया विकास को माना, स्पेंसर ने भेदभाव की सार्वभौमिक प्रक्रिया को माना, वेबर ने धर्म को माना, सोरोकिन ने संस्कृति को माना और ओगबर्न ने सांस्कृतिक अंतराल को माना।

सच्चाई यह है कि सामाजिक परिवर्तन के लिए केवल एक या कुछ कारक जिम्मेदार नहीं होते हैं, बल्कि ये परिवर्तन कई कारकों के सामूहिक प्रभावों के कारण होता हैं।

टिप्पणी

1.4.1 सामाजिक परिवर्तन के जनसांख्यिकीय कारक

जनसांख्यिकीय कारक भी सामाजिक परिवर्तन लाने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं। जनसंख्या, जन्म दर, मृत्यु दर, प्रवास, लिंगानुपात, शिशुओं की संख्या, युवा और वृद्ध आदि सामाजिक संरचना, सामाजिक संगठन और अर्थव्यवस्था को प्रभावित करते हैं। परिवार और विवाह की प्रकृति, गरीबी, बेरोजगारी, समृद्धि, परिवार नियोजन, जन्म नियंत्रण से संबंधित सरकारी नीति आदि सभी जनसांख्यिकीय कारकों से प्रभावित होते हैं। किसी देश की जनसंख्या के आधार पर ही उस देश की सामाजिक संरचना का पता चलता है। पिछड़े देशों की बढ़ती आबादी ने उनके आर्थिक विकास को प्रभावित किया है, श्रम शक्ति बर्बाद हुई है, असंतोष बढ़ा है और अपराध और तोड़फोड़ की कार्यवाही हुई है।

किसी देश का भविष्य बनाने और उसे समृद्ध बनाने में उस देश की जनसंख्या का बहुत बड़ा योगदान होता है। जनसंख्या की कमी और अधिकतम उत्पादन, आर्थिक विकास, राजनीतिक संबंधों और नियोजित परिवर्तनों के लिए नियम निर्धारित करने के अलावा, ये कारक सरकार और समाज की नीतियों को भी प्रभावित करते हैं।

जनसांख्यिकीय कारक जनसंख्या के आकार, घनत्व, संरचना, निर्माण और निरंतरता को दर्शाते हैं। सोरोकिन जनसांख्यिकीय कारकों को परिभाषित करते हुए कहते हैं कि जनसांख्यिकीय कारक जनसंख्या के आकार और घनत्व में वृद्धि और कमी का संकेत देते हैं।

इस प्रकार, हम जनसंख्या के जनसांख्यिकीय कारकों के गुणात्मक पहलुओं का अध्ययन नहीं करते हैं, लेकिन हम इसके मात्रात्मक पहलुओं का अध्ययन करते हैं, जैसे जन्म दर, मृत्यु दर, प्रवासन–प्रवास की दर, वृद्धि और कमी की दर, पुरुषों और महिलाओं का अनुपात, आयु अनुपात इत्यादि। यहाँ हमारा उद्देश्य यह समझना है कि परिवर्तन लाने में जनसांख्यिकीय कारक क्या भूमिका निभाता है?

जनसंख्या के आकार का प्रभाव

जनसंख्या का आकार भी समाज को प्रभावित करता है। जनसंख्या के आकार और समाज की विभिन्न समस्याओं जैसे जीवन शैली, गरीबी, बेरोजगारी, निरक्षरता, स्वास्थ्य आदि के बीच घनिष्ठ संबंध है। हमारे सामाजिक मूल्य, आदर्श, स्वभाव, जीवन शैली, सब कुछ जनसंख्या के आकार पर निर्भर करता है। राजनीतिक और सैन्य दृष्टिकोण से भी जनसंख्या का आकार महत्वपूर्ण है। जिन देशों की जनसंख्या अधिक होती है उन्हें शक्तिशाली माना जाता है, चीन एक ऐसा उदाहरण है और जिन देशों की जनसंख्या कम है उन्हें कमजोर माना जाता है। इसी प्रकार जिन देशों की जनसंख्या कम होती है उनकी जीवन शैली अपेक्षाकृत अधिक अच्छी होती है।

ऑस्ट्रेलिया, न्यूजीलैंड, कनाडा और अमेरिका के लोगों की जीवन शैली चीन और भारत के लोगों की तुलना में अधिक अच्छी है क्योंकि इन देशों में जनसंख्या कम है। गाँव और कस्बे के बीच का अंतर भी जनसंख्या पर आधारित होता है। जनसंख्या का आकार निम्नलिखित दो कारकों से प्रभावित होता है– (1) जन्म दर और मृत्यु दर (2) आप्रवास और उत्प्रवास।

टिप्पणी

(1) जन्म दर और मृत्यु दर : जन्म दर और मृत्यु दर जनसंख्या के आकार को प्रभावित करती है। जब किसी देश में मृत्यु दर कीतुलना में जन्म दर अधिक होती है तो जनसंख्या में वृद्धि होती है। दूसरी ओर, इसके विपरीत, जनसंख्या घट जाती है। जब जन्म दर और मृत्यु दर में कमी होती है या इसे संतुलित किया जाता है तो उस देश में स्थिर पाया जाता है। जिन देशों में जनसंख्या वृद्धि पाई जाती है, उन देशों में ऐसी परम्पराएँ और रीति–रिवाज पाए जाते हैं जो जन्म दर को कम करने में मदद करते हैं। उदाहरण के लिए, वहाँ वृद्ध और अयोग्य लोगों को मारने की परंपरा स्वीकार्य है, गर्भपात की अनुमति है और जन्म नियंत्रण और परिवार नियोजन पर बहुत जोर दिया जाता है। ऐसे देशों में छोटे परिवारों पर ज्यादा जोर दिया जाता है। उदाहरण के लिए भारत में जनसंख्या वृद्धि के कारण परिवार नियोजन का कार्यक्रम तीव्र गति से क्रियान्वित होता है। इसके अलावा गर्भपात से जुड़े नियमों में उदारता दिखाई गई है। गर्भनिरोधक के लिए सरकार द्वारा मुफ्त सस्ते साधन जैसे कंडोम, लूप, गर्भनिरोधक गोलियाँ आदि वितरित किए गए हैं और पुरुषों और महिलाओं के लिए नसबंदी ऑपरेशन की सुविधा प्रदान की जा रही है। इसके विपरीत जिन देशों में जनसंख्या घटती है, वहाँ महिलाओं की सामाजिक स्थिति ऊँची होती है और जन्म नियंत्रण, परिवार नियोजन और गर्भपात की विपरीत अवधारणाएँ पाई जाती हैं। इसके अलावा, वहाँ जन्म दर में वृद्धि को प्रेरणा दी जाती है।

द्वितीय विश्व युद्ध में, रूस और जर्मनी की आबादी को बहुत नुकसान हुआ था; इसलिए, ऐसे कानून बनाए गए और जनसंख्या बढ़ाने के लिए प्रेरित किए गए।

(2) आप्रवासन और उत्प्रवास : सामाजिक परिवर्तन के लिए जनसंख्या गतिशीलता भी जिम्मेदार है। जब किसी देश में रहने के उद्देश्य से दूसरे देशों के लोगों की संख्या बढ़ जाती है तो उस देश की जनसंख्या बढ़ जाती है और यदि किसी देश के लोग बड़ी संख्या में दूसरे देशों में जाकर वहाँ रहने लगते हैं, तो उस देश की जनसंख्या घटने लगती हैं। विदेशों से हमारे देश में आने वाली जनसंख्या को आप्रवासन कहा जाता है और हमारे देश से विदेशों में पलायन को उत्प्रवास कहा जाता है।

जनसंख्या गतिशीलता भी दो प्रकार की हो सकती है– दैनिक या कुछ समय के लिए और स्थायी आधार के लिए। बड़े शहरों में लोग रोज खान पान व ऑफिस में काम करने आस पास के इलाकों से आते हैं। यात्रा के लिए भी लोग इधर–उधर आते जाते हैं। कुछ लोग बाढ़, भूकंप, युद्ध और अन्य कारणों से एक स्थान से दूसरे स्थान पर स्थायी रूप से रहने लगते हैं। आप्रवास और उत्प्रवास के कारण, विभिन्न संस्कृतियों के विभिन्न प्रकार के लोग एक दूसरे के संपर्क में आते हैं। वे एक दूसरे के विचारों, भाषा, परंपराओं, रीति– रिवाजों, कला, ज्ञान, आविष्कारों, खाने की आदतों, वेशभूषा, जीवन स्तर, धर्म आदि से परिचित हो जाते हैं। संपर्कों के कारण, एक संस्कृति दूसरी संस्कृति को प्रभावित करती है। जनसंख्या भी गतिशीलता के विघटन को जन्म देती है। आधुनिक समय में, परिवहन के साधनों की सुविधा के साथ गतिशीलता में भारी वृद्धि हुई है।

टिप्पणी

जनसंख्या और सामाजिक परिवर्तन की संरचना

जनसंख्या की संरचना का सामाजिक परिवर्तन पर प्रभाव पड़ता है। जनसंख्या का महत्व लिंग अनुपात, आयु, विवाह संबंध, व्यवसाय, नस्ल और राष्ट्रीयता आदि की संरचना को तय करने के लिए आवश्यक है। जब इन कारकों में परिवर्तन होता है तो समाज में भी परिवर्तन आता है। हम यहाँ इनमें से कुछ कारकों का वर्णन करेंगे–

आयु : यदि किसी देश में वृद्धों की तुलना में युवा और बच्चे अधिक हैं तो उस देश में परिवर्तन को तुरंत स्वीकार कर लिया जाएगा क्योंकि वृद्ध लोग रूढ़िबद्ध होते हैं और परिवर्तन का विरोध करते हैं और परंपराओं का पालन करने पर अधिक जोर देते हैं। अगर वर्द्धों की जनसंख्या अधिक होगी तो सैन्य दृष्टिकोण से समाज कमजोर होता है। किसी देश और समाज में युवाओं की बढ़ती संख्या उन्हें नए आविष्कारों की खोज करने में सक्षम बनाती है। ऐसे देशों का कार्यबल अधिक होती है। यही कारण है कि वे अधिक निर्माण कार्य करने में सक्षम होते है। ऐसे समाज में सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक क्रांतियों की संभावना बढ़ जाती है, लेकिन दूसरी ओर, युवा आबादी की बढ़ी हुई दर से अनुभवहीन लोगों के बढ़ने की संभावना बढ़ जाती है। अनुभव की कमी के कारण समाज मे कई गलतियों की संभावना भी होती है। इस प्रकार हम देखते हैं कि सामाजिक परिवर्तन लाने में आयु संरचना एक महत्वपूर्ण कारक है।

लिंग : समाज में पुरुषों और महिलाओं का अनुपात भी सामाजिक परिवर्तन को प्रभावित करता है। जिन समाजों में पुरुषों की तुलना में महिलाओं की संख्या अधिक है, उन समाजों में महिलाओं की सामाजिक स्थिति कम है और वहाँ बहुविवाह की परंपरा प्रचलित है। दूसरी ओर जहाँ स्त्रियों की अपेक्षा पुरुषों की संख्या अधिक है वहाँ बहुपतित्व की परम्परा प्रचलित है। पति चुनने की परंपरा पाई जाती है और पत्नी रखने के लिए पुरुषों को प्रतियोगिताओं में भाग लेना पड़ता है। ऐसे समाजों में महिलाओं की सामाजिक स्थिति भी उच्च होती है। जिस समाज में पुरुषों की संख्या अधिक होती है, वहाँ समाज और परिवार में पुरुषों की प्रधानता पाई जाती है। जब किसी समाज में लिंगानुपात में अंतर आता है तो उस समाज में परिवर्तन होता है।

वैवाहिक स्थिति : विवाह समाज का प्रमुख सामाजिक संगठन है। महिलाओं और पुरुषों की वैवाहिक स्थिति सामाजिक परिवर्तन का एक महत्वपूर्ण कारक है। जिन समाजों में पुरूषों की संख्या अधिक पायी जाती है वहाँ बहुपति प्रथा तथा जिन समाजों में स्त्रियों की संख्या अधिक पायी जाती है वहाँ बहुविवाह की परम्परा पायी जाती है। उसी तरह बाल विवाह और देर से विवाह की परम्पराएँ सामाजिक परिवर्तन के लिए जिम्मेदार हैं। जहाँ बाल विवाह प्रचलित है वहाँ परिवार का निर्माण प्रारंभिक अवस्था में होता है और कम उम्र में ही व्यक्ति के लिए जिम्मेदारियाँ आती हैं। व्यक्ति का मानसिक विकास और शिक्षा रुक जाती है, कमजोर और बीमार बच्चे पैदा होते हैं। इससे समाज में मृत्यु दर में वृद्धि होती है। ऐसे विवाहों से पैदा हुए बच्चे शारीरिक और मानसिक आधार से गठन और परिवर्तन कार्य करने में असमर्थ होते हैं। वहीं दूसरी ओर देर से विवाह से पैदा हुए बच्चे शारीरिक और मानसिक दृष्टि से सक्षम होते हैं। लेकिन

टिप्पणी

कभी–कभी देर से होने वाली शादियाँ अनैतिक व्यवहार को जन्म देने के लिए जिम्मेदार होती हैं। इसी प्रकार एक समाज में विधवाओं और विधुरों की संख्या तथा जनसंख्या का सामाजिक तथा मानसिक स्वास्थ्य सामाजिक परिवर्तन लाने में सहायक होता है। यदि किसी समाज में जनसंख्या वृद्धि होती है तो इसके गंभीर सामाजिक परिणाम होते हैं–

परंपरा और प्रथा का प्रभाव : यदि किसी देश की जनसंख्या में वृद्धि हुई है तो जन्म नियंत्रण, परिवार नियोजन और कानूनी गर्भपात के प्रयास किए जाते हैं।

सामाजिक समस्याएँ : जनसंख्या में वृद्धि के साथ निरक्षरता, गरीबी, बेरोजगारी, भीख का व्यवसाय, कुपोषण, अपर्याप्त आवास, औसत बस्तियाँ, चिकित्सा, परिवहन, प्रशासन, श्रम, समस्याओं आदि से संबंधित अनेक समस्याएँ समाज में विद्यमान हैं। खर्च, बीमारी, अकाल और दुर्घटनाएँ भी बढ़ जाती हैं।

जीवन शैली : जनसंख्या में वृद्धि के साथ लोगों की जीवन शैली कमतर होती जाती है।

जनसंख्या और आर्थिक परिवर्तन

यदि किसी देश में जनसंख्या में वृद्धि होती है तो जनसंख्या शक्ति में भी वृद्धि होती है। नतीजतन, श्रम सस्ता है और सस्ते उत्पाद निर्मित होते हैं, लेकिन दूसरी ओर जनसंख्या में वृद्धि से उत्पादों की अधिक माँग होती है। इस प्रकार, निर्माण को बढ़ाने के लिए नए आविष्कारों की आवश्यकता है। कभी–कभी अधिक जनसंख्या राष्ट्रीय अर्थव्यवस्था को बढ़ाने में सहायक होती है और कभी–कभी इसका विपरीत प्रभाव भी पड़ता है, जैसे भारत में जनसंख्या वृद्धि ने आर्थिक समृद्धि को चोट पहुँचाई है, जबकि रूस में आर्थिक समृद्धि के लिए जनसंख्या वृद्धि को महत्वपूर्ण माना गया है।

सामाजिक संगठन और जनसंख्या

शहरीकरण तब बढ़ता है जब किसी देश में जनसंख्या का घनत्व और आकार बढ़ता है, विशेषज्ञता और कार्य वितरण भी बढ़ता है, परिवार और विवाह के विभिन्न रूप अस्तित्व में आते हैं। जनसंख्या में वृद्धि और कमी संयुक्त परिवार और एकल (नाभिक) परिवार के गठन को भी प्रभावित करती है।

राजनीति और जनसंख्या

राजशाही, लोकतंत्र, समाजवाद, साम्यवाद, पूंजीवाद आदि का जनसंख्या के आकार पर बहुत प्रभाव पड़ता है। किसी भी देश की जनसंख्या बढ़ने से उस देश की सैन्य शक्ति में वृद्धि होती है। ऐसे देश उपनिवेशवाद और साम्राज्यवाद का पोषण करते हैं। दासता और सामंतवाद भी जनसंख्या वृद्धि का परिणाम है।

युद्ध और जनसंख्या

कई विद्वानों ने इसे समझाया है कि अधिक जनसंख्या युद्धों को जन्म देती है। अंतिम दो इस तथ्य के प्रमाण हैं। जनसंख्या वृद्धि के साथ आर्थिक साधनों की अधिकाधिक आवश्यकता होती है और उन्हें प्राप्त करने के लिए अन्य देशों के साथ युद्ध करने की आवश्यकता होती है।

टिप्पणी

क्रांति और जनसंख्या टिप्पणी

जब किसी भी देश में जनसंख्या में भारी वृद्धि या जनसंख्या में गिरावट होती है तो यह राज्य क्रांति के लिए जिम्मेदार होता है क्योंकि इससे समाज में सामाजिक, आर्थिक और राजनीतिक उतार–चढ़ाव आते हैं, निम्न वर्ग और उच्च वर्ग में असंतुलन होता है। जनसंख्या वृद्धि के कारण लोगों को पर्याप्त आर्थिक सुविधाएँ नहीं मिल पा रही हैं। इसलिए उनके मन में प्रशासन के लिए विरोध और विद्रोह पैदा हो जाता है। संघर्ष की स्थिति उत्पन्न होती है और लोग विद्रोह और परिवर्तन के लिए प्रयास करते हैं। करली का मानना है कि जनसंख्या में वृद्धि मुख्य रूप से विद्रोह के लिए जिम्मेदार है।

जनसंख्या और वैचारिक परिवर्तन

जनसंख्या के आकार और घनत्व में परिवर्तन के साथ लोगों के विचारों में भी परिवर्तन होता है। जब जनसंख्या में गतिशीलता होती है तो समानता, लोकतंत्र, सहनशीलता और सांस्कृतिक संबंध के विचार पनपते हैं। गतिशीलता की कमी संकीर्ण मानसिकता को जन्म देती है।

सामाजिक प्रगति और जनसंख्या

विभिन्न जनसांख्यिकीविदों ने सामाजिक प्रगति और विनाश को जनसांख्यिकीय कारकों से जोड़ा है। जब किसी स्थान की जनसंख्या में अत्यधिक वृद्धि होती है तो उसका अंतिम परिणाम तबाही के रूप में होता है। इसी तरह यदि जनसंख्या धीरे–धीरे कम होती रही तो सामाजिक विनाश की संभावना भी बढ़ जाती है। इसलिए संपूर्ण सामाजिक, आर्थिक, औद्योगिक, साहित्यिक और कलात्मक प्रगति के लिए संतुलित जनसंख्या का होना आवश्यक है।

1.4.2 सामाजिक परिवर्तन के आर्थिक कारक

जिस प्रकार सभी अंगों के संयोग से जैविक संरचना का निर्माण होता है, उसी प्रकार आर्थिक ढाँचे या आर्थिक संरचना का निर्माण कई कारकों द्वारा होता है। इन आर्थिक कारकों के भीतर खपत, उपज, विनिमय, वितरण और आर्थिक नीति शामिल हैं। मुख्य आर्थिक कारकों का अध्ययन निम्न शीर्षकों के अंतर्गत किया जा सकता है–

उपभोग की प्रकृति : मनुष्य अनंत इच्छाओं का स्वामी है। मनुष्य की इच्छा उसकी पिछली इच्छा पूरी होने पर उत्पन्न होती है। परिणामस्वरूप वह अपनी इच्छाओं को पूरा करने में लगा रहता है। स्वभाव से ही मनुष्य परिवर्तनशील है और अपनी इच्छा की पूर्ति के लिए वह अपनी एक इच्छा के लिए अनेक विकल्प खोजता है, जैसे गृहिणी प्रतिदिन एक प्रकार का भोजन नहीं बनाती, बल्कि वह अनेक प्रकार के खाद्य पदार्थ बनाती है और अपनी शान और क्षमता का परिचय देती है। वैसे तो खाद्य पदार्थों का सेवन भूख को संतुष्ट करने के लिए ही होता है, लेकिन अपने स्वभाव के कारण मनुष्य को उसमें परिवर्तन की आवश्यकता होती है। यही कारण है कि वह आए दिन अपने खाने पीने के तरीके और रहन–सहन में बदलाव करता रहता है। अब प्रश्न उठता है कि क्या मनुष्य के पास अपनी सभी इच्छाओं की पूर्ति के लिए सभी साधन उपलब्ध हैं? जब घटनाओं के सामान्य क्रम में समाज में अधिकांश लोग उपभोग के साधन और

टिप्पणी

सुविधाएँ प्राप्त करने में सक्षम होते हैं, तो जीवन शैली सामान्य होती है और सामाजिक परिवर्तन की दर भी सामान्य होती है, लेकिन जब समाज में अधिकांश लोग उपभोग के साधन प्राप्त करने में सक्षम नहीं होते हैं उनकी जीवन शैली कम हो जाती है और इससे निम्न जीवन शैली के परिवर्तन की दर में बाधा उत्पन्न होती है। लेकिन यह राज्य के बड़े पैमाने पर क्रांतिकारी बदलाव का कारण बन जाता है। जीवन शैली और मनुष्य के अपने स्वार्थ के लिए वृद्धि के साथ परिवर्तन तेजी से होता है पुराने मूल्यों, परंपराओं और अतार्किक व्यवहार का त्याग और सामाजिक स्तरीकरण ही सामाजिक परिवर्तन है।

उत्पादन का तरीका : मार्क्स के अनुसार, उत्पादन के तरीकों में बदलाव के साथ आर्थिक संबंधों में परिवर्तन होता है, जो सभी सामाजिक संगठनों को प्रभावित करता है। मार्क्स ने कहा है कि यदि उत्पादन को अपना पूरा परिणाम मिलता है तो सामाजिक व्यवस्था एकजुट होती है, लेकिन ऐसा नहीं है। कुछ लोगों का उत्पादन के साधनों पर एकाधिकार होता है। जो इस असंतोष की स्थिति के परिणामस्वरूप उत्पन्न होता है, और वो क्रांति के लिए जिम्मेदार होता है। मार्क्स के अनुसार सामाजिक संरचना उत्पादन के स्वरूप के अनुरूप होगी। कम उत्पादन कम सामाजिक गतिशीलता का सूचक है और बड़ा उत्पादन अधिक गतिशीलता का प्रतीक है। यदि जीवन यापन का मुख्य व्यवसाय कृषि है तो सामाजिक व्यवस्था पर जमींदारों का एकाधिकार होगा और यदि व्यापार के माध्यम से जीवन यापन किया जाता है तो बड़े उद्योगपति और पूंजीपति समाज में महारत हासिल करेंगे। इस प्रकार उत्पादन की प्रकृति सामाजिक व्यवस्था को प्रभावित और परिवर्तित करती है। मार्क्स का मानना था कि जब उत्पादन पद्धति में परिवर्तन आता है तो समाज में भी परिवर्तन होता है। हम आगामी इकाइयों में परिवर्तन से संबंधित मार्क्स के सिद्धांत का वर्णन करेंगे।

वितरण प्रणाली : वितरण प्रणाली का अर्थ है समाज के सदस्यों के बीच उत्पादित चीजों का विभाजन। हर समाज में अलग–अलग तरीकों से आर्थिक और भौतिक संसाधन वितरित किए जाते हैं। कहीं यह वितरण राज्य द्वारा किया जाता है और कहीं वितरण प्रणाली स्वतंत्र पाई जाती है। यदि समाज के सभी व्यक्तियों को उनकी आवश्यकता के लिए सभी संसाधन मिलें तो शायद कोई आर्थिक समस्या नहीं होगी, लेकिन समाज में कुछ लोगों को अधिक से अधिक संसाधन मिलते हैं जबकि कुछ लोगों को जरूरी आवश्यकता एँ भी नहीं मिलती हैं। इस प्रकार प्रत्येक समाज में व्यक्तियों को कुछ न कुछ आर्थिक समस्याओं का सामना करना पड़ता है। व्यक्ति इन समस्याओं का सामना विभिन्न तरीकों से करते हैं, जो सामाजिक परिवर्तन की प्रक्रिया को प्रभावित करते हैं।

एकाधिकार और पूंजीवादी व्यवस्था की उत्पत्ति धन, पूंजी और संसाधनों के असमान वितरण के कारण हुई है। पूँजीवाद का विरोध करने के लिए साम्यवाद और समाजवाद की नींव रखी गई जो पूँजी के समान वितरण पर बल देती हैं। पूंजीवाद और समाजवाद विभिन्न प्रकार के वितरण पर आधारित हैं। इस प्रकार, जब एक प्रकार की वितरण प्रणाली का स्थान दूसरे प्रकार की वितरण प्रणाली द्वारा लिया जाता है तो समाज में परिवर्तन होता है।

टिप्पणी

आर्थिक नीतियाँ : उत्पादन, उपभोग और वितरण को व्यवस्थित करने के लिए, आर्थिक नीतियाँ निर्धारित की जाती हैं। यदि इन नीतियों को राज्य के हस्तक्षेप से लागू किया जाता है तो राज्य सभी व्यक्तियों को आवश्यक संसाधन उपलब्ध कराने के लिए हर संभव प्रयास करता है, लेकिन बिना राज्य के हस्तक्षेप के कुछ व्यक्तियों का उत्पादन व सामाजिक व्यवस्था के कुछ संसाधनों पर एकाधिकार होता है। भारत में स्वतंत्रता के बाद और रूस में जार के शासन से स्वतंत्रता के बाद आर्थिक नीतियों में परिवर्तन हुए फलस्वरूप वहाँ अनेक सामाजिक परिवर्तन हुए।

औद्योगीकरण : औद्योगीकरण का अर्थ है मशीनों के माध्यम से तेजी से उत्पादन। वर्तमान में औद्योगीकरण के परिणाम में उपनिवेशवाद, विशेषज्ञता और कार्य वितरण फला– फूला है, खाने– पीने और रहने के तरीके में परिवर्तन हुआ है, अस्पृश्यता में कमी हुई है और शिक्षा का विस्तार हुआ है, आस्था और अंधविश्वास भी कम हुआ है। तार्किक व्यवहार से नई आस्थाओं का पोषण हुआ है, महिलाओं में शिक्षा का संचार हुआ है और उनकी सामाजिक स्थिति में वृद्धि हुई है। औद्योगीकरण के कारण, अंतर्राष्ट्रीय संबंध और व्यवसाय उन्नत हुए हैं। इन सभी परिवर्तनों ने सामाजिक व्यवस्था को झटका दिया है और इसके परिणामस्वरूप नए झुकाव हुए हैं।

श्रम विभाजन : उत्पादन का कार्य एक व्यक्ति द्वारा नहीं किया जा सकता है, लेकिन इसके लिए कई लोगों के समर्थन की आवश्यकता होती है। उत्पादन के लिए बड़े पैमाने पर भी यह आवश्यक है कि काम का वितरण किया जाए और इसे छोटे और छोटे भागों में विभाजित किया जाए। इसे ही श्रम विभाजन कहते हैं। श्रम का यह विभाजन औद्योगीकरण का परिणाम है जिसने विशेषज्ञता को प्रोत्साहित किया है। इसमें जिस तरह आज के समय में श्रम विभाजन ने और विशेषज्ञता ने आपसी निर्भरता की स्थिति स्थापित कर दी है। एक काम के लिए या एक प्रकार के उत्पादन के लिए निर्माता को कई लोगों पर निर्भर रहना पड़ता है। दुर्खीम ने श्रम विभाजन पर आधारित समाज के दो प्रकारों की व्याख्या की है। एक समाज यांत्रिक एकजुटता पर आधारित था, जो सरल और एकजुट था जिसमें प्रत्येक व्यक्ति अपनी आवश्यकताओं को अपने दम पर पूरा करने में सक्षम था। दूसरा समाज जैविक एकजुटता पर आधारित था जिसकी प्रकृति जटिल है और जिसमें अधिक से अधिक विशेषज्ञता और पारस्परिक निर्भरता और विविधता पाई जाती है। श्रम विभाजन और विशेषज्ञता में प्रगति ने कई बदलाव प्रदान किए हैं। आज हम सभी क्षेत्रों में विशेषज्ञता और श्रम विभाजन देख पा रहे हैं।

आर्थिक प्रतिस्पर्धा : आर्थिक प्रतिस्पर्धा अनिवार्य रूप से सामाजिक परिवर्तन को प्रभावित करती है चाहे वह स्वतंत्र हो या नियंत्रित, प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष। आर्थिक प्रतिस्पर्धा में सफलता नए आविष्कारों को जन्म देती है इसलिए असफलता संघर्ष, तनाव और हताशा का सूचक है। आमतौर पर, आर्थिक प्रतिस्पर्धा के अधिकांश संबंध संघर्षों से होते हैं। आधुनिक समय में आर्थिक प्रतिस्पर्धा के परिणामस्वरूप, मिल मालिकों और मजदूरों के बीच संघर्ष बढ़ गया है, तालाबंदी की वृद्धि, मारपीट और तोड़फोड़ हुई है। श्रम कल्याण की सुरक्षा के लिए नए कानून बनाए गए हैं और कई कल्याण कार्य शुरू

किए गए हैं। इन सभी परिस्थितियों ने भी समाज मे परिवर्तन लाया है। उत्पादन, उपभोग, वितरण, श्रम विभाजन, आर्थिक प्रतिस्पर्धा आदि सामाजिक परिवर्तन में महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं।

टिप्पणी

आर्थिक कारक और सामाजिक परिवर्तन

सामाजिक सम्बंधों, प्रणालियों और संगठनों को प्रभावित करके सामाजिक परिवर्तन लाने में आर्थिक कारक सहायक होते हैं। अब हम इस दृष्टिकोण के बारे में अध्ययन करेंगे–

आर्थिक कारक और सामाजिक सम्बंध

आर्थिक कारक भी सामाजिक सम्बंधो में परिवर्तन लाते हैं। भारत में, औद्योगीकरण व उपनिवेशवाद के परिणामस्वरूप संयुक्त परिवारों का विघटन हुआ। जातियों, अस्पृश्यता आदि के बीच मतभेद समाप्त, शिक्षा का विस्तार, महिलाओं को रोजगार के अवसर मिले, अंतर्जातीय विवाह, प्रेम विवाह, विधवा पुनर्विवाह आदि शुरू हुए। जाति संबंधी प्रतिबंधों में ढील दी गई है। व्यवसायों में परिवर्तन आया है। ग्रामीणों के बीच शिक्षा का विस्तार हुआ है। जनसंख्या गतिशीलता में वृद्धि हुई है और बैंकों की स्थापना की गई है। अब मुकदमों के लिए कोर्ट के दरवाजे खटखटाए जा रहे हैं। वर्तमान समय में पुराने रीति–रिवाजों और मूल्यों का प्रभाव कम हुआ है। मनोरंजन को एक व्यवसाय के रूप में माना गया है। उसी तरह जब आर्थिक उतार–चढ़ाव और जल्दबाजी और अवसाद होता है तो सामाजिक सम्बन्धो पर भी इसका प्रभाव पड़ता है। आर्थिक समृद्धि के दौरान विवाह और जन्म दर में वृद्धि होती है जिससे परिवार का आकार बढ़ता है। दूसरी ओर, आर्थिक मंदी के दौरान, विवाह और जन्म दर में कमी होती है, परिवारों का आकार घटता है और तलाक की दर बढ़ जाती है। इस तरह, ये आर्थिक परिस्थिति परिवार और विवाह सम्बंधो को प्रभावित करती है। वर्तमान समय में नई आर्थिक परिस्थितियों के कारण परिवार के कई कार्य अन्य संघटनों द्वारा हड़प लिए गए हैं, ग्राम पंचायतों का विघटन हो गया है, मेजबानी की परंपरा समाप्त हो गई है और मौद्रिक अर्थशास्त्र शुरू हो गया है। जाहिर है कि जब आर्थिक परिस्थितियाँ बदलती हैं तो वे सीधे तौर पर सामाजिक संघटनों पर हमला करती हैं।

आर्थिक कारक और धार्मिक संघ

विज्ञान की प्रगति और नए आविष्कारों ने आर्थिक समृद्धि प्रदान की जिसके कारण धार्मिक संघ प्रभावित हुए हैं। वैज्ञानिक आविष्कारों ने धार्मिक प्रतिष्ठा को कम कर दिया है। अब विज्ञान ने सिद्ध कर दिया है कि मनुष्य का जन्म, सूर्य, चन्द्र, तारे,बारिश, सर्दी, गर्मी आदि सभी पर्यावरणीय तथ्य हैं। अब मनुष्य परमेश्वर की तुलना में धन की पूजा करता है। समाज के बहुत से लोग अब धार्मिक प्रार्थना को कपट और पाखंड मानते हैं। आज की स्थिति समाज में मनुष्य का निर्धारण उसकी आर्थिक स्थिति के आधार पर होता है। समाज अमीरों को ही सम्मान देता है और अधिकांश लोग उन्हें अपना आदर्श मानते हैं और उनके अनुसार बनने की कोशिश करते हैं। वर्तमान में, आर्थिक समृद्धि के साथ–साथ ईश्वर में आस्था कम हुई है, अधर्म बढ़ा है। इस प्रकार आर्थिक समृद्धि धार्मिक पतन को जन्म देती है।

टिप्पणी

आर्थिक कारक और राजनीतिक व्यवस्था

राजनीतिक व्यवस्था की उत्पत्ति का आधार केवल धन है। राज्य का गठन समाज में धन के असमान वितरण को रोकने के कारण हुआ है। और राज्य के एकाधिकार कानून, संविधान, योजना, नियम आदि आर्थिक कारकों से प्रेरित होते हैं। यहाँ तक कि चुनाव लड़ने के लिए, विधायक और सांसद बनने के लिए भी धन की आवश्यकता होती है। राजनीतिक संगठनों का उद्देश्य अपने क्षेत्र के लोगों को काम व सुविधाएं प्रदान करना व उनकी समस्याओं का समाधान करना है। राज्य कानूनों और नियोजन की सहायता से ऐसी प्रणाली तैयार करने का प्रयास करता है जो सभी को संतुष्ट करने में सक्षम हो। लोगों की जरूरी आवश्यकताएँ जैसे बैंकों की स्थापना, आवश्यक चीजों का उचित वितरण, आयकर का कार्यान्वयन, बांधों और झीलों का निर्माण, अंतर्राष्ट्रीय व्यापार, आर्थिक सुरक्षा, पिछड़ी जातियों व वर्गों का उत्थान, शोषण से मुक्ति आदि कार्य राज्य द्वारा किए जाते हैं। लेकिन अभी भी ये कुछ पूंजीपति राज्यों में पाए जाते हैं जिनके धन की वजह से शाही गरिमा की महारथ राजनीतिक संघों पर अब भी है। जब किसी देश की आर्थिक स्थिति में नुकसान शुरू होती है तो आर्थिक विषमता चरम पर पहुँचती है, शोषण बढ़ता है लोगों की आवश्यकतापूर्ति कठिन हो जाती हैं, फिर सत्ता भी कमजोर हो जाती है, क्रांति होती है और साम्यवाद का विस्तार होता है। असमृद्धि के दौर में पूंजीवादी व्यवस्था खत्म हो जाती है।

आर्थिक कारक तथा जन्म दर और मृत्यु दर

यदि किसी समाज में बहुसंख्यक लोगों का जीवन उच्च शैली का व लोगों की जरूरी आवश्यकताओं को आसानी से पूरा किया जाता है, तो ऐसे समाज में ज्यादा बच्चो का जन्म होता है या जन्म दर बढ़ जाती है क्योंकि बच्चों का लालन–पालन आसान होता है, लेकिन निम्न जीवन शैली होने से मृत्यु दर में वृद्धि होती है मृत्यु दर के कारण लोग अपने पालन–पोषण व बीमारियों का इलाज और नियंत्रण करने में असमर्थ होते हैं। उचित भोजन, स्वास्थ्य और इलाज की कमी के कारण मृत्यु दर बढ़ जाती है। इस प्रकार जनसंख्या का आकार निर्धारित करने के लिए, आर्थिक कारक महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं।

आर्थिक कारक और पलायन

ऐसा मानना है कि अकाल, बाढ़, सूखा, उत्पादन के साधनों की कमी और बेरोजगारी आदि मनुष्य को उन स्थानों पर पलायन करने के लिए प्रेरित किया जाता है जो आर्थिक दृष्टि से समृद्ध हैं। इसका कारण, प्रत्येक व्यक्ति को भोजन, वस्त्र और घर की आवश्यकता है। औद्योगीकरण और अधिक धन की लालसा ने मनुष्य को गतिशील बना दिया है जिससे वह अपनी मातृभूमि को छोड़ने के लिए भी तैयार है और उन जगहों पर रहना, जहाँ वह अधिक धन अर्जित करने में सक्षम हो। पलायन के कारण जनसंख्या का आकार में परिवर्तन होता है। पलायन के कारण, विभिन्न संस्कृतियों के लोग संपर्क में आते हैं एक दूसरे की संस्कृति भाषा, खाने की शैली, कपड़े आदि इन तत्वों प्राप्त करते हैं। इस वजह से उनकी सामाजिक जिंदगी में बदलाव आता है। कई बार पलायन को लेकर विवाद भी खड़ा हो जाता है। अतः स्पष्ट है कि आर्थिक

परिस्थितियाँ जनसंख्या का पलायन प्रोत्साहित करती है पलायन के कारण सामाजिक परिवर्तन होता है।

टिप्पणी

आर्थिक कारक तथा जनसंख्या के भौतिक और मानसिक लक्षण

धन की कमी व अधिकता का मनुष्य की शारीरिक और मानसिक विशेषताओं के साथ घनिष्ठ संबंध है। यदि आर्थिक स्थिति उच्च है, तो मनुष्य स्वच्छ भोजन और अच्छा घर और शिक्षा प्राप्त कर सकेगा, जो उसे मानसिक तनाव से मुक्त करने के लिए सक्षम होगी, लेकिन धन की कमी और स्वच्छ भोजन की कमी के कारण, घर, शिक्षा और अन्य सुविधाओं से उसकी मानसिक क्षमता का विनाश होगा। ऐसे लोगो के बच्चे शारीरिक रूप से कमजोर, व कम कद के होंगे। गरीबी लोगों को अपराध करने के लिए प्रेरित करती है।

आर्थिक कारक, अपराध और आत्महत्या

यदि मनुष्य को उपभोग की चीजें, शिक्षा व रोजगार के अवसर मिल सके तो आमतौर पर वह अपराध नहीं करता, गरीबी के कारण व्यक्ति अपने नैतिक मूल्यों का परित्याग कर देता है,जो अनैतिक कार्यों को करने में सहायक होती है। इस तरह गरीबी से अपराध दर में वृद्धि होती है। विलियम बोनजोर और फोरेन साड़ी डी वारसी ने अपने अनुसंधान में पाया है कि अधिकांश कानून तोड़ने वालों ने गरीबी और कमजोर आर्थिक स्थिति के कारण अपराध किया था लोग गरीबी के कारण व्यापार में घाटा होने पर, दिवालिया होने, अपराध करते रंगेहाथ पकड़े जाने पर हताशा से आत्महत्या कर लेते हैं। कभी–कभी आर्थिक समृद्धि वेश्यावृत्ति शराब, जुआ और अन्य समस्याओं की ओर भी ले जाती है। उपरोक्त तथ्यों से यह स्पष्ट है कि सामाजिक परिवर्तन लाने में आर्थिक कारक महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं।

मैक्स वेबर ने अपनी पुस्तक 'द प्रोटेस्टेंट एथिक एंड स्पिरिट ऑफ कैपिटलिज्म' में धर्म को सामाजिक परिवर्तन के लिए जिम्मेदार माना है। उनके विचार में, जब यूरोप में रोमन कैथोलिक धर्म था तब एक अलग प्रकार का समाज था, लेकिन जब प्रोटेस्टेंट धर्म अस्तित्व में आया तो वहाँ समाज में आधुनिक पूंजीवाद की स्थापना हुई। उन्होंने कहा छह मुख्य धर्मों (हिंदू, ईसाई, मुस्लिम, चीनी, बौद्ध आदि) में केवल प्रोटेस्टेंट धर्म में ही वे चीजें हैं, जो आधुनिकता को जन्म दे सकती हैं। उनके विचार में, प्रत्येक धर्म की आचार संहिता में पूँजीवाद के नियम पाए जाते हैं,जो लोगों के विचार और व्यवहार तय करते हैं। इसलिए जब धर्म बदलता है तो समाज में भी परिवर्तन होता है। वह धर्म परिवर्तन को परिवर्तनशीली लाने वाला मानता है।

प्रोटेस्टेंट धर्म की आचार संहिता में निम्नलिखित कुछ तत्व है : ईमानदारी सबसे अच्छी नीति है, एक सिक्का बचाना एक सिक्का अर्जित करना है, समय धन है, धन धन को जन्म देता है, जल्दी सोना व जल्दी उठना मनुष्य को स्वस्थ धनवान, बुद्धिमान बनाता है और काम ही पूजा है आदि। प्रोटेस्टेंट सिद्धांतकारों की आचार संहिता के इन सभी नियमों ने जीवन व व्यवहार को प्रभावित किया एवं आधुनिक पूंजीवाद को जन्म दिया, जिसने सामाजिक व्यवस्था को बदल दिया। वेबर के सिद्धांत की भी आलोचना की गई है। वह यह स्पष्ट नहीं कर पाए हैं कि धर्म में परिवर्तन क्यों होता है।

टिप्पणी

1.4.3 सामाजिक परिवर्तन के धार्मिक कारक

मैक्स वेबर इस दृष्टिकोण से मार्क्स से सहमत नहीं थे कि केवल आर्थिक कारक ही सामाजिक परिवर्तन को जन्म देते हैं। वेबर ने देखा कि एक जनजाति की प्रथागत नैतिकता और उसकी अर्थव्यवस्था के बीच एक सीधा संबंध है, लेकिन उन्होंने इस बात से इनकार कर दिया कि अर्थव्यवस्था नैतिकता को निर्धारित करती है। उन्होंने इस विचार को 18वीं शताब्दी में पश्चिमी यूरोप में पूंजीवाद और विकास के संदर्भ में विकसित किया।

मैक्स वेबर का उद्देश्य पश्चिमी पूंजीवाद की महत्वपूर्ण विशेषताओं को लाना था क्योंकि वे इसे एक अद्वितीय ऐतिहासिक घटना मानते थे। उन्होंने स्थापित किया कि पूंजीवाद की उत्पत्ति दुनिया में अलग–अलग समय में अलग–अलग जगहों पर हुई। लेकिन उन्होंने अपने आप से यह सवाल पूछा– आधुनिक पूंजीवाद को अद्वितीय क्यों बना दिया? जैसा कि वेबर ने देखा, इस प्रकार का पूंजीवाद संघटनों के जटिल समूह और संघबद्ध व्यवहार का प्रतिनिधित्व करता था,यह संयुक्त रिजर्व कंपनी, रिजर्व एक्सचेंज प्लांट, विभिन्न प्रकार की मुद्रा और मौद्रिक विनिमय के साधनों के आधार पर स्थापित किया गया है। लेकिन कुछ राजनीतिक घटनाक्रम भी आधुनिक पूंजीवाद से जुड़े हुए हैं, जहाँ पूंजीवाद की आवश्यकता की पहचान की गई, जिसे उन्होंने इसकी आत्मा कहा। उनके अनुसार, जो चीज आधुनिक पूंजीवाद को विशिष्ट बनाती है, उसमें आर्थिक रोमांच को प्राप्त करने या बंधने की क्षमता नहीं होती है। लेकिन ये सभी सर्वव्यापी हैं जो कई गतिविधियों में पाए जाते हैं और जो अन्य युगों और स्थानों में पाए जाते हैं।

वेबर ने अपना ध्यान आधुनिक पूंजीवाद की वांछित नैतिकता पर रखा है। यह नैतिक दृष्टिकोण था और जीवन के प्रति व्यवहार का एक संग्रह था। उन्होंने आधुनिक पूंजीवाद की अनिवार्यता पर जोर दिया कि, आखिरकार, जिन कारणों से पूंजीवाद को जन्म दिया, वे वैध स्थिर व्यवसाय, वैध गणना, वैध तकनीक, वैध कानून आदि थे, लेकिन इन सभी के अलावा कुछ आवश्यक पूरक कारक भी थे। जैसे वैध चिल्लाना; आम तौर पर, प्रासंगिक जीवन और आर्थिक नैतिकता के संचालन में कंपनी को वेबर धार्मिक परिवर्तनशील कारक तत्व मानते हैं और धर्म के आर्थिक आचरण को अपने अध्ययन का आधार मानते हैं और इसी आधार पर धर्म के आर्थिक जीवन पर पड़ने वाले प्रभावों का पता लगाने का प्रयास करते हैं। धर्म के आर्थिक आचरण के बारे में, वेबर ने न केवल धर्म से संबंधित विभिन्न आध्यात्मिक सिद्धांतों और विचारों को शामिल किया है, बल्कि चरित्र के व्यवहार के सभी तरीकों को भी शामिल किया है जो एक धर्म अपने सदस्यों के लिए तय करता है। उनके अनुसार, आर्थिक आचरण और धार्मिक आस्था के बीच एक संबंध है। इसके अलावा, आर्थिक कारकों के अलावा आचरण के प्रभावी रूप के निर्माण में कई अन्य कारकों का योगदान होता है, फिर भी उनमें से धर्म महत्वपूर्ण कारकों में से एक है।

प्रोटेस्टेंट नैतिकता और पूंजीवाद का उदय

उपर्युक्त धारणाओं को सिद्ध करने के लिए मैक्स वेबर ने विश्व के छह महान धर्मों को चुना है। ये धर्म हैं– कन्फ्यूशियस, हिंदू, बौद्ध, ईसाई, इस्लाम और यहूदी धर्म। वेबर

टिप्पणी

ने विश्लेषण किया है और प्रत्येक धर्म के आर्थिक आचरण और फिर उन आचरणों के प्रभाव को उनके विशिष्ट धर्म के लोगों के आर्थिक और सामाजिक संगठनों पर सिद्ध किया। इस संदर्भ में मैक्स वेबर का सबसे महत्वपूर्ण और पूर्ण सामान्य परिणाम उनकी पुस्तक 'द प्रोटेस्टेंट एथिक एंड स्पिरिट ऑफ कैपिटलिज्म ' में मिलता है। इसमें उन्होंने प्रोटेस्टेंट धर्म और पूंजीवाद के बीच संबंध को पूर्ण विवरण के साथ प्रस्तुत किया है।

उनके दृष्टिकोण के अनुसार, प्रोटेस्टेंट धर्म में कुछ विशेषताएँ हैं जिन्होंने उन आर्थिक व्यवस्था के नियमों को विकसित करने में मदद की है जिन्हें हम पूंजीवाद कहते हैं एवं यह केवल प्रोटेस्टेंट धर्म ही था जिसने पूंजीवादी अर्थव्यवस्था के विकास के लिए प्रत्यक्ष प्रेरणा प्रदान की। लेकिन इसका अर्थ यह नहीं है कि केवल प्रोटेस्टेंट धर्म ही कारक है। वेबर ने हमेशा एक बात पर जोर दिया कि आधुनिक पूंजीवाद के विकास के लिए कई परस्पर स्वतंत्र शर्तें आवश्यक हैं। फिर भी उसी दृढ़ता के साथ उन्होंने यह भी कहा कि विरोधात्मक आचरण एक आवश्यक कारक था इसके बिना पूंजीवाद के विकास का उद्देश्य सभी इरादों से अलग होना चाहिए था।

प्रोटेस्टेंट धर्म और पूँजीवाद के उक्त सम्बन्ध को सिद्ध करने के लिए वेबर ने उनके आदर्श–प्रारूपों का चयन किया है। आधुनिक पूंजीवाद की विशिष्ट विशेषताएँ इस प्रकार हैं– इस अर्थव्यवस्था में शामिल उद्योग, व बड़े पैमाने पर व्यापार व वाणिज्य वैज्ञानिक आधार पर आधारित हैं और विवेकपूर्ण रूप से एकजुट और शासित हैं। व्यक्तिगत धन पूरी व्यवस्था का सबसे महत्वपूर्ण हिस्सा है। उत्पादन कार्य बड़ी मिलों और कारखानों में लोगों द्वारा उपयोग की जाने वाली मशीनों की सहायता से किया जाता है; और इस तरह उत्पादित वस्तुओं को विपणन योग्य प्रणाली के अनुसार व्यवस्थित किया जाता है; अधिकतम कारीगरी के लिए श्रम विभाजन और विशेषज्ञता पर अधिकतम बल दिया जाता है; और सबसे महत्वपूर्ण उद्देश्य अधिकतम लाभ प्राप्त करना है। पूंजीवादी व्यवस्था में काम ही जीवन है और चतुराई ही धन है। प्रत्येक व्यक्ति को अधिकतम उत्साह और अधिकतम चतुराई के साथ कार्य करना होगा। इस अवस्था में इस आत्म–विश्वास, आज्ञाकारिता और निष्ठा के कारण बहुत अधिक जोखिम की संभावना रहती है। इसे ही व्यावसायिक आचरण कहते हैं। जो व्यक्ति अपने कार्य में कुशल होते हैं, उन्हें धन और सम्मान दोनों प्राप्त होते हैं; और जो कम कार्यकुशल होते हैं, वे धन और सम्मान दोनों से रहित होते हैं। पूंजीवादी व्यवस्था में जो कुछ भी अकुशल और पुराना है, उसका पतन अनिवार्य है। संक्षेप में, यही पूंजीवाद का मुख्य तत्व है। लेकिन यहाँ सवाल यह है कि ऐसी कौन सी शक्ति है जो ऐसी आर्थिक व्यवस्था को संभव बनाती है और उसे स्थिरता प्रदान करती है? वेबर के अनुसार यह शक्ति प्रोटेस्टेंट धर्म का आर्थिक आचरण अनुरक्षण करती है। लोगों द्वारा पूंजीवादी व्यवस्था का आवश्यक आचरण आमतौर पर उन नेताओं से प्राप्त होता है जो प्रोटेस्टेंट धर्म के प्रवचनों से प्रभावित होते हैं। उदाहरण के लिए, बेंजामिन फ्रैंकलिन, जो आधुनिक पूंजीवाद के मूल सिद्धांतों को प्रारंभिक प्रतिपादक मानते हैं, ने अपनी जीवनी में ऐसे लोगों को कई प्रवचन दिए हैं जो सफलता प्राप्त करना चाहते हैं या व्यवसाय में समृद्ध बनना चाहते हैं। ये प्रवचन प्रोटेस्टेंट आचरण से प्रभावित एवं उनके अनुसार हैं।

टिप्पणी

इन प्रवचनों में से कुछ इस प्रकार हैं– समय ही धन है, धन से ही धन अर्जित किया जाता है, एक सिक्का बचाना एक सिक्का अर्जित करना है, ईमानदारी सबसे अच्छी नीति है जल्दी सोना और जल्दी उठना, मनुष्य को धनवान, स्वस्थ और बुद्धिमान बनाता है यदि हम इन प्रवचनों के पीछे छिपी भावनाओं पर ध्यान दें तो स्पष्ट रूप से हम पाएँगे कि ये सभी निर्देश एक विशेष बात पर जोर देते हैं और वह है काम करना। काम करना सबसे बड़ा गुण है और इस वजह से हमें कम से कम इतना विवेकपूर्ण होना चाहिए कि हम कड़ी मेहनत करें व पैसा कमाएँ और इसे बचाएँ, ताकि हम स्वस्थ रहें और संपन्न भी बनें। इस प्रकार भाव रहित आधुनिक पूँजीवादी सिद्धान्त संभव नहीं होता। ये मानकीकृत सिद्धांत, जैसा कि निम्नलिखित आलोचनात्मक विवरण से स्पष्ट होगा, प्रोटेस्टेंट धर्म के लोगों को प्राप्त हुए हैं। पूंजीवाद के विकास में प्रोटेस्टेंट धर्म के आचरण के प्रभाव निम्नलिखित हैं–

(1) पहला, काम करना सबसे बड़ा गुण है कैथोलिक विचार इस प्रकार के आचरण का विरोध करने वालों में एक है। इस प्रकार के विचार का कोई अन्य आचरण नहीं पाया जाता है। कैथोलिक धर्म में एक प्रसिद्ध कथा से यह बात स्पष्ट होती है। कहानी इस प्रकार है कि स्वर्ग में आदम और हव्वा ने पेड़ों के अच्छे और बुरे ज्ञान के फल खाए; इस अपराध की सजा के रूप में भगवान ने उन दोनों को स्वर्ग से बाहर कर दिया व उन्हें यह सजा दी कि अब से वे हव्वा और उसकी बेटियाँ दर्द सहकर बच्चों को जन्म देंगी और आदम और उसके बेटों को पसीना बहाकर बहुत मेहनत करनी होगी और आजीविका के लिये कमाई करनी होगी। जिससे यह स्पष्ट है कि कैथोलिक आचरण में श्रम एक गुण नहीं है, बल्कि यह एक सजा है। इसके विपरीत प्रोटेस्टेंट आचरण में कार्य एक ऐसी प्रक्रिया या आचरण है जिसे करना उचित है व कार्य स्वयं लिए किया जाना चाहिए। काम ही पूजा है या काम से ही ईश्वर की प्राप्ति होती है ये आचरण केवल प्रोटेस्टेंट धर्म के हैं, और इनका सबसे बड़ा उपहार पूंजीवाद के विकास में है।

(2) प्रोटेस्टेंट धर्म का दूसरा उपहार व्यावसायिक आचरण है, जो पूंजीवाद के विकास में सहायक रहा है। इसका संबंध उस आस्था से है जिसे केल्विनवाद, के रूप में जाना जाता है। जिसमें प्रत्येक व्यक्ति की मृत्यु के बाद आत्मा या तो स्वर्ग या नरक में जाती है एवं एक व्यक्ति के जीवनकाल में कोई भी कार्य उसके भाग्य को नहीं बदल सकता है। लेकिन उनके जीवनकाल में कुछ ऐसी विशेषताएँ मौजूद हैं जो उसे यह संकेत देने में सक्षम हैं कि उसकी आत्मा या तो स्वर्ग में जाएगी या नर्क में? यदि किसी व्यक्ति को अपने काम या व्यवसाय में अधिक से अधिक सफलता मिलती है, तो यह इस बात का संकेत है कि उसकी आत्मा स्वर्ग में जाएगी।

आस्था के इस माध्यम से प्रत्येक व्यक्ति पर एक नैतिक दबाव डाला जाता है ताकि वह अपने पेशे या व्यवसाय में कड़ी मेहनत करे और उसके प्रति पूरी निष्ठा प्रदर्शित करे ताकि वह और अधिक सफलता प्राप्त कर सके। किसी के कार्य को दक्षता से और सफलतापूर्वक करना ईश्वर की इच्छाओं की स्तुति करना है। केवल चर्च जाने या तीर्थयात्रा पर जाने से मोक्ष नहीं मिलता है; मोक्ष केवल किसी के कर्मों से या किसी के व्यवसाय को उचित तरीकों से करने से ही प्राप्त होता है। एक व्यक्ति न केवल चर्च

टिप्पणी

में अपने धार्मिक कर्तव्यों का पालन कर सकता है, बल्कि वह बाजारों में भी उनका पालन कर सकता है। यह प्रोटेस्टेंट आचरण पूँजीवाद के विकास में अनिवार्य रूप से साबित हुआ है,जो स्वयं के विकास में सबसे अधिक सहायक माना जाता है क्योंकि पूँजीवाद की सफलता और विकास इसी बात पर निर्भर करती है कि प्रत्येक व्यक्ति अपने व्यवसाय क्षेत्र में अधिकतम उत्साह और निष्ठा के साथ कार्य करे।

(3) प्रोटेस्टेंट धर्म का पूंजीवाद को तीसरा उपहार, यह है कि धर्म में किसी भी दायित्व पर ब्याज लेने या स्वीकार करने की अनुमति है। जैसा कि बेंजामिन फ्रैंकलिन ने पहले ही कहा है, धन से धन अर्जित किया जाता है इसका स्पष्ट अर्थ यह है कि किसी के धन में धन की मुख्य राशि, जिसमें ब्याज के रूप में प्राप्त धन शामिल होता है, उसे अर्जित करने के लिए उपयोग किया जाता है। कैथोलिक धर्म में व्याज लेना खराब माना जाता है। इसके विपरीत, प्रोटेस्टेंट धर्म में इस प्रकार के धन लेने की अनुमति है। अतः इस धन का बिना किसी ईश्वरीय दंड या भय के धन कमाने या ब्याज लेने के लिए खुलेआम उपयोग करें। ये सभी चीजें पूंजीवाद के विकास में सहायक रही हैं।

(4) पूंजीवाद के विकास में प्रोटेस्टेंट धर्म का चौथा उपहार यह है कि इस धर्म ने बताया है कि शराब पीना अच्छा नहीं है व ईमानदारी को उच्च स्थान दिया है। धार्मिक आचरण के परिणामस्वरूप शराब के कम सेवन से आलसी होने की आदत कम होती जा रही थी और उनकी दक्षता में वृद्धि हुई थी। पूंजीवादी आर्थिक व्यवस्था पर शराबबंदी का बहुत महत्व है क्योंकि इस व्यवस्था के भीतर लोगों को मशीनों पर काम करना पड़ता है। शराब पीने के बाद जुताई, व मवेशियों को तो चराया जा सकता है, लेकिन मशीन पर काम करना मुश्किल होता है और ऐसा करने से जीवन और संपत्ति की हानि हो सकती है।

(5) प्रोटेस्टेंट आचरण द्वारा पूंजीवाद के विकास पर अंतिम प्रभाव यह है कि कैथोलिक आचरण की तरह यह अधिक छुट्टियों के पक्ष में नहीं है। प्रोटेस्टेंट के लिए केवल काम पूजा है। पूंजीवादी व्यवस्था की सफलता के लिए अधिक काम और कम छुट्टियाँ जरूरी हैं।

इस प्रकार, यह स्पष्ट है कि प्रोटेस्टेंट धर्म और उसका आर्थिक आचरण वह प्रभावशाली शक्ति है जो पूंजीवाद के विकास का मुख्य कारक रहा है, लेकिन जैसा कि पहले ही कहा जा चुका है, इसका किसी भी तरह से मतलब यह नहीं है कि प्रोटेस्टेंट आचरण ही एकमात्र कारक है पूंजीवाद विकास का। इस दिशा में अन्य कारकों का भी योगदान रहा है। इस संबंध में, मैक्स वेबर को एक–सिद्धांतवादी के रूप में नहीं, बल्कि बहु–सिद्धांतवादी के रूप में माना जाना चाहिए पूंजीवाद और प्रोटेस्टेंट आचरण के बीच के संबंध को स्पष्ट करने के लिए, वेबर ने कई ऐतिहासिक साक्ष्य प्रस्तुत किए हैं। उन्होंने दिखाया है कि पूंजीवाद का सबसे बड़ा विकास इंग्लैंड, अमेरिका, हॉलैंड आदि देशों में हुआ है जहाँ लोग प्रोटेस्टेंट धर्म के अनुयायी हैं। इसके विपरीत इटली, स्पेन आदि पूंजीवादी के लोग कैथोलिक धर्म के अनुयायी होने के कारण उन्नति नहीं कर पाए हैं।

टिप्पणी

इसी तरह मैक्स वेबर ने कई ऐसे सबूत दिए हैं जो यह साबित करने में सक्षम हैं कि आधुनिक पूंजीवादी प्रोटेस्टेंट धर्म से काफी प्रभावित रहे हैं। यद्यपि यह धर्म पूंजीवाद के उत्पाद और विकास का एकमात्र कारक नहीं है, फिर भी यह अनिवार्य रूप से सबसे प्रभावी कारक या शक्ति रहा है।

इसी तरह मैक्स वेबर ने कन्फ्यूशियस धर्म, बौध धर्म, हिंदू धर्म, इस्लाम धर्म और यहूदी धर्म का विश्लेषण किया है और यह साबित करने की कोशिश की है कि आर्थिक और सामाजिक संगठन समाज के इन सभी धर्मों के आर्थिक आचरण के अनुसार तय किया गया है। उदाहरण के लिए, हिंदू धर्म पर विचार करें। मैक्स वेबर द्वारा हिंदू धर्म के तरीके और प्रस्तुति से पता चलता है कि हिंदू धर्म में मोक्ष का मानकीकृत अर्थ केवल कर्मों के चक्र से मुक्ति है लेकिन अन्य लोगों की तुलना में अधिक सांसारिक सफलता प्राप्त करके इस लक्ष्य को प्राप्त नहीं किया जा सकता है। दूसरे शब्दों में, यदि आप अन्य लोगों की तुलना में अधिक सांसारिक सफलता प्राप्त करने में सक्षम हैं, तो वे सफलताएँ आपको मोक्ष दिलाने में सहायक नहीं होंगी। खुद को अलग करके या खुद को धन, इच्छाओं और रुचियों से पूरी तरह दूर रखकर और अपने आप को भगवान ब्रह्मा के साथ एकाग्र धारणा में आत्मसात करके मोक्ष प्राप्त किया जा सकता है। संक्षेप में, हिंदू धर्म ने अपने विश्वासियों को भौतिक प्रगति, या सांसारिक सफलताओं और सांसारिक लक्ष्यों को प्राप्त करने के लिए प्रेरणा देने का कोई प्रत्यक्ष सूत्र नहीं दिया है। इसी कारण हिन्दू धर्म के मानने वाले भौतिक उन्नति में नहीं आध्यात्मिक उन्नति में विश्व में आगे हैं। इसके अलावा, इस धर्म ने हिंदू सामाजिक संगठन के आकार को तय करने के लिए पर्याप्त योगदान प्रदान किया है।

आध्यात्मिक उद्देश्यों को प्राप्त करने के लिए यह आवश्यक था कि धार्मिक मानदंडों को सख्ती से लागू किया जाए। यही कारण है कि हम सामाजिक व्यवस्था में और काम करने के तरीके में कट्टरता देख पा रहे हैं। इस धर्म के कट्टरपंथियों में हिंदू की जाति प्रथा सामाजिक अभिव्यक्ति है। कार्यों के सिद्धांत की भूमिका ने जाति प्रथा को स्थिर करने में पर्याप्त योगदान दिया है। अच्छे व्यवहार का एकमात्र निर्धारक जाति प्रथा के पारंपरिक कर्तव्यों, विशेष रूप से धार्मिक नैतिक मूल्यों या कर्तव्यों को सच्चाई से पूरा करना है। सभी को यह विश्वास दिया जाता है कि जाति प्रथा के अंतर्गत प्रत्येक जाति को जिसे कोई कार्य दिया गया है, वह व्यक्ति अगले जन्म में अपना कार्य करके और निष्ठा से अपने कर्तव्यों का पालन करके उच्च जाति प्राप्त कर सकता है और तभी वह अंतर्निहित धार्मिक स्थिति में सुधार की कुछ उम्मीद करने में सक्षम होगा।

इस प्रकार हम कह सकते हैं कि इस समाज के आर्थिक और सामाजिक संगठन को तय करने में हिंदू धर्म ने पर्याप्त योगदान दिया है।

उपर्युक्त विवरण से यह स्पष्ट है कि मैक्स वेबर की धर्म की मानकीकृत विशेषता में धर्म और आर्थिक सामाजिक संरचना के बीच संबंध का एक सिद्धांत है। जैसा कि वेबर ने बार–बार कहा है कि धार्मिक स्वार्थ विचारों को प्रोत्साहित नहीं करता है, लेकिन वे कार्यो को प्रोत्साहित करते हैं और ये कार्य आर्थिक और सामाजिक संरचना को तय करते हैं। यह धर्म के समाजशास्त्र का मूल तत्व है।

टिप्पणी

1.4.4 सामाजिक परिवर्तन में प्रौद्योगिकी की भूमिका

आधुनिक समय में प्रौद्योगिकी सामाजिक परिवर्तन का एक महत्वपूर्ण कारक है। यह अतिश्योक्ति नहीं होगी यदि यह कहा जाए कि पिछले दिनों हुए परिवर्तनों के पीछे प्रौद्योगिकी मुख्य कारण थी। यह एक वास्तविकता है कि पाँच सौ सालों से विज्ञान के क्षेत्र में हुए विकास ने कई आविष्कारों को जन्म दिया है। आविष्कारों से मशीनीकरण में वृद्धि हुई है और मशीनीकरण के परिणामस्वरूप निर्माण प्रणालियों में क्रांतिकारी परिवर्तन हुए हैं। जब भी निर्माण प्रणाली बदली है इसने सामाजिक संबंधों, स्थितियों और भूमिकाओं, सामाजिक व्यवस्था और सामाजिक संरचना में बदलाव लाए हैं। यही सामाजिक परिवर्तन है।

सामाजिक परिवर्तन में प्रौद्योगिकी की भूमिका की व्यापक समझ विकसित करने से पहले प्रौद्योगिकी के अर्थ को समझना महत्वपूर्ण है।

प्रौद्योगिकी क्या है?

वे सभी पद्धतियाँ जो भौतिक लक्ष्यों को प्राप्त करने में हमारी सहायता करती हैं, प्रौद्योगिकी के अंतर्गत आती हैं। कार्यप्रणाली में विभिन्न उपकरण और मानव ज्ञान शामिल हैं। प्रौद्योगिकी का अर्थ आधुनिक युग में तेज मशीनीकरण नहीं है, बल्कि तकनीक हर युग और हर समाज में व्याप्त रही है। समाज चाहे सरल हो या जटिल, नागरिक सभ्य हो या असभ्य, पारंपरिक हो या आधुनिक प्रत्येक की अपनी तकनीक है जो लोगों की विभिन्न आवश्यकताओं को पूरा करने में योगदान करती है।

कार्ल मार्क्स ने प्रौद्योगिकी के अर्थ को स्पष्ट करते हुए लिखा है, प्रौद्योगिकी प्रकृति के साथ मानव अंतःक्रिया की उस प्रक्रिया के बारे में बताती है जिसके द्वारा मानव जीवित रहता है और अपने स्वयं के सामाजिक रिश्ते और मानसिक विश्वास जो विभिन्न मानवीय आवश्यकतओ पूरा करने में योगदान करती है। " यह परिभाषा बताती है कि प्रौद्योगिकी एक पद्धति है और सामाजिक संबंध इसके आधार पर आकार लेते हैं।

लैपेयर के अनुसार, प्रौद्योगिकी का अर्थ उन विधियों, ज्ञान और विशेषज्ञता को शामिल करता है जो मनुष्यों को भौतिक और जैविक तथ्यों को नियंत्रित करने और उनका उपयोग करने में मदद करते है। इससे निश्चित रूप से हमें पता चलता है कि भौतिक और जैविक तथ्यों को नियंत्रित किया जा सकता है और प्रौद्योगिकी की मदद से मानवीय जरूरतों को पूरा किया जा सकता है। दूसरे शब्दों में, प्रौद्योगिकी एक ऐसी विधि है जो मानवीय लक्ष्यों को पूरा करने में योगदान करती है।

ऑगबर्न ने उल्लेख किया है कि प्रौद्योगिकी किसी भी पद्धति से संबंधित है। इसके अंतर्गत विभिन्न प्रकार के उपकरण और ज्ञान की शाखाएँ आती हैं और इसके आधार पर निर्माण की कला का विकास होता है। प्रौद्योगिकी भौतिक संस्कृति और औद्योगिक कलाओं से संबंधित है।

प्रौद्योगिकी और सामाजिक परिवर्तन

प्रौद्योगिकी या तकनीकी कारक और सामाजिक परिवर्तन के बीच गहरा संबंध है। आधुनिक समय में विभिन्न समाजों में तेजी से बदलाव का मूल कारण नई तकनीक का

टिप्पणी

विकास, नए आविष्कार और उत्पादन के नए तरीके हैं। यहाँ तक कि मैकाइवर और पेज ने भी कहा है कि हमारे समय की सबसे महत्वपूर्ण घटना पूंजीवाद नहीं बल्कि मशीनीकरण है और पूंजीवाद सिर्फ मशीनीकरण का उत्पाद है। अब हम अनुभव कर सकते हैं कि इस मशीनीकरण ने न केवल हमारे जीने के तरीके को बदल दिया है बल्कि हमारे विचारों को भी काफी हद तक बदल दिया है। आज तकनीकी ने सामाजिक संबंधों, स्थितियों और भूमिकाओं में व्यापक परिवर्तन लाने में महत्वपूर्ण योगदान दिया है।

मशीनीकरण और सामाजिक परिवर्तन

आज के विज्ञान और प्रौद्योगिकी की दुनिया में आविष्कारों और खोजों का विशेष महत्व है। आधुनिक समय में प्रेस, पहिया, भाप इंजन, जहाज, मोटर कार, विमान, ट्रैक्टर, टेलीफोन, रेडियो, टेलीविजन, बिजली, टाइपराइटर, कंप्यूटर, बारूद, परमाणु शक्ति आदि के आविष्कार जीवन के विभिन्न क्षेत्रों में मूलभूत परिवर्तन लाए हैं। .

मैकाइवर का कहना है कि भाप इंजन के आविष्कार ने राजनीतिक और सामाजिक जीवन को इस हद तक प्रभावित किया था कि भाप इंजन के आविष्कारक ने भी इसकी कल्पना नहीं की होगी।

ऑगबर्न ने 150 परिवर्तनों का उल्लेख किया है जो रेडियो के आविष्कार के कारण हो सकते हैं।

स्पाइसर ने कई अध्ययनों का उल्लेख किया है जो बताते हैं कि छोटे उपकरणों के उपयोग ने मानवीय संबंधों में व्यापक और अप्रत्याशित परिवर्तन लाए हैं। उदाहरण के लिए; कार में सेल्फ–स्टार्टर के परिणामस्वरूप कई सामाजिक परिवर्तन हुए हैं। इस सरल उपकरण ने महिलाओं की स्वतंत्रता को बढ़ाने में मदद की है। महिलाओं के लिए कार चलाना आसान हो गया है, उन्होंने क्लब जाना शुरू कर दिया है, उनकी गतिशीलता में वृद्धि हुई है और यहाँ तक कि उनका पारिवारिक जीवन भी बहुत प्रभावित हुआ है।

भारत में, लोगों को काम की तलाश में अलग–अलग जगहों पर जाना पड़ता था और विभिन्न जातियों के लोगों को एक साथ काम करना पड़ता था। जब नई फैक्ट्रियां खुलीं और नवीनतम मशीनों से उत्पादन शुरू हुआ। इसके परिणामस्वरूप जाति व्यवस्था, अस्पृश्यता के प्रभाव में कमी आई और संयुक्त परिवार प्रणाली का विघटन हुआ। इससे वर्ग–व्यवस्था का विकास भी हुआ और महिलाओं की स्वतंत्रता में सुधार हुआ।

ममफोर्ड आधुनिक युग के निर्माण में मशीनीकरण के महत्व को मानते हैं। मशीनीकरण ने लोगों के जीवन और विचार प्रक्रिया को पूरी तरह से बदल दिया है। यह वह तकनीक है जो आधुनिक पूंजीवाद, औद्योगीकरण और शहरीकरण के लिए जिम्मेदार रही है। औद्योगीकरण और पूंजीवाद के परिणामस्वरूप ग्रामीण समुदायों में परिवर्तन हुए हैं, शहरों में घनी आबादी वाली मलिन बस्तियों का विकास हुआ है और

टिप्पणी

जीवन का मशीनीकरण हुआ है। सामाजिक संबंधों में औपचारिकताएँ विकसित हुईं, अपराध बढ़े और श्रम विभाजन और विशेषज्ञता बढ़ी। श्रम की समस्याएँ और संघर्ष बढ़े, दुर्घटनाएँ और बीमारियाँ बढ़ीं और जीवन के प्रति शारीरिक दृष्टिकोण विकसित हुआ।

मशीनीकरण के परिणामस्वरूप कई सामाजिक परिवर्तन हुए हैं। लोगों ने मशीनों के साथ तालमेल बिठाने की कोशिश की है और इस तरह के प्रयासों के परिणामस्वरूप जीवन के विभिन्न क्षेत्रों में कई बदलाव आए हैं। कुछ उदाहरण हैं; कार्य में विशेषज्ञता में वृद्धि, समय सीमा से चिपके रहने की प्रवृत्ति, जीवन की सामान्य सुख–सुविधाओं में वृद्धि, जीवन स्तर में वृद्धि, प्रतिस्पर्धा में वृद्धि, काम करने और उत्पादन के पुराने तरीकों का महत्व कम होना, पुराने शिल्प कौशल को नए शिल्प कौशल से बदलना आदि। इसके परिणामस्वरूप जटिल आर्थिक संबंधों का विकास हुआ और राजनीतिक नियंत्रण में वृद्धि हुई। इन परिवर्तनों के अलावा कई नए वर्ग सामने आए हैं। परंपराओं का और पड़ोस का महत्व कम हो गया है। संयुक्त परिवार और जाति अब उतने महत्वपूर्ण नहीं हैं जितने पहले थे। आधुनिक समय में, मशीनीकरण ने एक ही पेशे में लोगों को संगठन और एकीकरण का अवसर दिया है। कई और संघ बनाए गए हैं जिनके माध्यम से लोग अपने हितों की रक्षा करना चाहते हैं। लोगों में धन और शक्ति प्राप्त करने की होड़ मची हुई है। पूंजीवाद का विस्तार हुआ है। ग्रामीण जीवन पर शहरी जीवन शैली के प्रभाव में वृद्धि हुई है।

मशीनीकरण और सामाजिक मूल्यों में परिवर्तन

मशीनीकरण के परिणामस्वरूप सामाजिक मूल्यों में भी बदलाव आया है। सामाजिक मूल्य हमारे जीवन में विशेष रूप से महत्वपूर्ण हैं और हम उनके अनुसार अपने व्यवहार को आकार देते हैं। व्यक्तिगत संपत्ति और शक्ति का महत्व आज बढ़ गया है और समुदाय की भावना का मूल्य कमजोर हो गया है। अब संपत्ति के बढ़ते महत्व और प्रभाव के कारण व राजनीतिक सत्ता में उन लोगों को अधिक सम्मान और महत्व मिलता है जो अमीर, बड़े उद्योगपति या व्यवसायी, राजनेता या नौकरशाह होते हैं। अब बेदाग किरदारों के लोगों को पहले की तरह उतना महत्व नही मिलता जो लोग अच्छी तरह से शिक्षित हैं, अच्छे चरित्र वाले हैं और जो समाज सेवा या धार्मिक सेवा पर ध्यान केंद्रित करते हैं, अब जिन्होंने बहुत पैसा कमाया है और जो किसी भी तरह सत्ता में आते हैं उन्हें महत्व मिलता है। मशीनीकरण ने परंमरागत रूप से शक्तिशाली लोगों की तुलना में अधिग्रहित लोगों को सामर्थ्यवान बनाने में अधिक योगदान दिया है। मशीनीकरण ने लोगों और लोगों के समूहों के बीच एक दूसरे के ऊपर निर्भरता को कम कर दिया है और इसके बजाय व्यक्तित्व और संकीर्ण दृष्टिकोण बढ़ाने में मदद की है। अब, एक व्यक्ति दूसरों के बारे में उतना नहीं सोचता जितना वह अपने बारे में सोचता है। एक व्यक्ति न तो पारंपरिक है और न ही प्रगतिशील है बल्कि वह अवसरवादी बन गया है; जिसका सबसे बड़ा धर्म अपने स्वार्थ की सेवा के लिए कोई भी उपाय करना है। इस प्रकार, मशीनीकरण ने सामाजिक मूल्यों को बदलकर सामाजिक परिवर्तन का मार्ग प्रशस्त किया है।

टिप्पणी

जैव–तकनीकी कारक

सामाजिक परिवर्तन एक जटिल प्रक्रिया है। यह कई कारकों के कारण होता है। सामाजिक परिवर्तन के सभी कारक एक दूसरे से घनिष्ठ रूप से जुड़े हुए हैं। लेकिन साथ ही प्रत्येक व्यक्तिगत कारक समाज में अपने तरीके से बदलाव लाता है। तद्नुसार जैव प्रौद्योगिकी कारक सामाजिक परिवर्तन के कारक में महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है। सामान्यतया जैव–तकनीक कारक उन लोगों को संदर्भित करता है जो मानव के आनुवंशिक गठन से संबंधित हैं।

एक जैव–तकनीक कारक में गैर–मनुष्य जैसे पशु, पक्षी, जड़ी–बूटियाँ, कीड़े, पौधे आदि और मनुष्य दोनों शामिल हैं। मनुष्य अपनी संस्कृति की दिशा के अनुसार पशु, पक्षी, पौधे और जड़ी–बूटियों का उपयोग करता है। साथ ही मनुष्य विभिन्न हानिकारक तत्वों से अपनी रक्षा करता है। यदि इन जानवरों, पक्षियों, पौधों आदि में वृद्धि या कमी होती है तो यह मानव समाज में कई बदलाव लाएगा।

उपयोगी जानवरों, पक्षियों और पौधों की तेजी से गिरावट भी मानव समाज में कई समस्याएं पैदा करेगी और सामाजिक परिवर्तन को प्रभावित करेगी। इसी प्रकार जनसंख्या में तेजी से वृद्धि या कमी भी समाज में कई बदलाव लाती है। मानव प्रजनन, प्रजनन क्षमता और मृत्यु दर जैसी विभिन्न जैविक प्रक्रियाएं भी समाज में परिवर्तन की दर को प्रभावित करती हैं। आकार, घनत्व, प्रवासन, आप्रवास आदि समाज में अनेक परिवर्तन लाते हैं।

तेजी से जनसंख्या वृद्धि हमारे पर्यावरण को प्रभावित करती है जिससे गरीबी, भोजन की कमी और कई स्वास्थ्य समस्याएं होती हैं और इस तरह समाज में बदलाव आता है। प्रवासन शहरीकरण की प्रक्रिया को भी तेज करता है। शहरीकरण स्लम, स्वास्थ्य की गुणवत्ता और जीवन शैली जैसी कई समस्याएं पैदा करता है। बढ़ते शहरीकरण और उपयोगी जानवरों और पक्षियों की घटती संख्या हमारे पर्यावरण को प्रभावित करती है।

इसी प्रकार किसी समाज में मनुष्य की प्रकृति और गुण सामाजिक परिवर्तन की दर को प्रभावित करते हैं।

पैरेटो जैसे समाजशास्त्री का मत है कि मानव जाति का जैविक विकास सामाजिक परिवर्तन लाता है। एक समाज में अभिजात वर्ग विरासत में मिली जैविक प्रवृत्ति से निर्धारित होता है। इसके अलावा जनसंख्या की संरचना सामाजिक परिवर्तन को भी प्रभावित करती है।

आयु संरचना और लिंग संरचना दोनों ही सामाजिक परिवर्तन से बहुत निकट से संबंधित हैं। उत्पादक आयु वर्ग में जनसंख्या की संख्या सामाजिक परिवर्तन की दर और गति को गहराई से प्रभावित करती है। यदि बच्चों की संख्या और अनुत्पादक या वृद्ध जनसंख्या में वृद्धि होती है, तो एक देश को कई आर्थिक समस्याओं का सामना करना पड़ता है। यदि वृद्ध जनसंख्या की संख्या घटती है, तो युवा ज्ञान और अनुभव से वंचित हो सकते हैं जिसके परिणामस्वरूप धीमी गति से परिवर्तन हुआ।

टिप्पणी

प्राकृतिक चयन की प्रक्रिया के अलावा, सामाजिक चयन सामाजिक परिवर्तन की दर और गति को भी प्रभावित करता है। प्राकृतिक चयन की प्रक्रिया अनुकूलन और विनाश जैसे जुड़वां विकल्पों के माध्यम से काम करती है। यहाँ मनुष्य को प्राकृतिक वातावरण के अनुकूल होने की आवश्यकता है। लेकिन सामाजिक चयन में मानव समाज के भीतर निर्मित और मानवीय संबंधों के माध्यम से संचालित होने वाली ताकतें ऐसी स्थितियाँ पैदा करती हैं जो जनसंख्या की प्रजनन प्रक्रिया और जीवित रहने की दर को गहराई से प्रभावित करती हैं।

समाज में मीडिया और सामाजिक परिवर्तन

सूचना तकनीक और मीडिया आपस में जुड़े हुए हैं, और इसे अधिकांश कोर और अर्ध–परिधीय राष्ट्रों में समकालीन; समाज से अलग नही किया जा सकता है। मीडिया एक ऐसा शब्द है जो संचार के सभी प्रिंट, डिजिटल और इलेक्ट्रॉनिक माध्यमों को संदर्भित करता है। जब से प्रिंटिंग प्रेस बनाया गया था (और पहले भी), तकनीक ने प्रभावित किया है कि जानकारी कैसे और कहाँ साझा की जाती है। आज, सूचना तकनीक परिवर्तन की "तेज गति को संबोधित किए बिना मीडिया और, समाज के संचार के तरीकों पर चर्चा करना असंभव है। बीस साल पहले, यदि आप अपने बच्चे के जन्म या नौकरी में पदोन्नति की खबर साझा करना चाहते थे, तो आपने फोन किया या पत्र लिखा होगा। आप मुट्ठी भर लोगों को बता सकते हैं, लेकिन आप शायद अपने पुराने हाई स्कूल के रसायन विज्ञान शिक्षक सहित कई सौ लोगों को बताने के लिए फोन नहीं करेँगे। अब, एक मंचित इंस्टाग्राम तस्वीर के माध्यम से अपनी गर्भावस्था की घोषणा करने से पहले ही माता–पिता एक ऑनलाइन समुदाय में शामिल हो सकते हैं। संचार का दायरा पहले से कहीं अधिक व्यापक है और इसके विपरीत जब हम इस बारे में बात करते हैं कि समाज प्रौद्योगिकी के साथ कैसे जुड़ता है, तो हमें तकनीक मीडिया को ध्यान में रखना चाहिए।

आपने अपनी बेटी के लिए जो कॉमिक बुक खरीदी है, वह मीडिया का एक रूप है, जैसा कि वह फिल्म, जिसे आपने पारिवारिक रात के लिए स्ट्रीम किया था, जिस वेब साइट का इस्तेमाल आप टेकआउट के लिए करते थे, वह बिलबोर्ड जिसे आपने अपना खाना लेने के लिए रास्ते में पारित किया था, और वह अखबार/जिसे आपने पढ़ा था, जब आप उसका इंतजार कर रहे थे। प्रौद्योगिकी, के बिना, मीडिया मौजूद नहीं होगा, लेकिन याद रखें, प्रौद्योगिकी केवल उस मीडिया से कहीं अधिक है जिससे हम परिचित हैं।

मास मीडिया और सामाजिक परिवर्तन

सामाजिक परिवर्तन शब्द का प्रयोग मानवीय अंतःक्रियाओं और अंतर्संबंधों में होने वाले परिवर्तनों को इंगित करने के लिए किया जाता है। कोई भी परिवर्तन जो मूल रूप से सामाजिक रिश्ते के स्थापित रूप को बदल देता है इस प्रकार कछ हद तक एक सामाजिक संरचना को बदलना, सामाजिक परिवर्तन है। इसमें समाज की संरचना और कार्यो में परिवर्तन शामिल है। मास मीडिया एक शब्द है जिसका उपयोग सूचना, विचारों और मनोरंजन के प्रसार के लिए किया जाता है।

टिप्पणी

रेडियो और टेलीविजन, सिनेमा, प्रेस और विज्ञापन जैसे तकनीकी मीडिया है,वे महत्वपूर्ण पारंपरिक मीडिया जैसे– लोक गीत और नृत्य, नाटक, कठपुतली, आदि के साथ सह–अस्तित्व में बने हुए हैं। इन सभी को जनसंचार माध्यम के रूप में संदर्भित किया जाता है, क्योंकि यह बहुत बड़ी संख्या में लोगों से युक्त जन दर्शकों के लिए संचार करता है।

मास मीडिया डिजिटल क्रांति की एक प्रक्रिया लेकर आया है, जिसमें संचार के अपने पारंपरिक रूप से पहले समाज, सामाजिक–सांस्कृतिक, मनोवैज्ञानिक, आर्थिक, राजनीतिक, आदि जैसे विभिन्न रूपों और तरीकों में तेजी से बदलता है। यह सामाजिक परिवर्तन का एक एजेंट है। पश्चिमीकरण की प्रक्रिया के माध्यम से भारत में मास मीडिया की शुरुआत हुई है। जनसंचार माध्यम एक ऐसा उपकरण है जो अपेक्षित ज्ञान और मनोवृत्तियों को शीघ्रता और व्यापक रूप से फैला सकता है। यहाँ तक कि डेविड लर्नर मास मीडिया को मोबाइल गुणक' कहते हैं। कनाडा के मीडिया सिद्धांतकार मार्शल मैकलुहान (964) ने तर्क दिया कि विभिन्न प्रकार के मीडिया का समाज पर अलग–अलग प्रभाव पड़ता है। उनकी प्रसिद्ध कहावत है "एक समाज मीडिया संदेश के माध्यम से बहुत अधिक प्रभावित होता है, न कि सामग्री या संदेशों से जो इसके द्वारा व्यक्त किए जाते हैं। वह आगे कहते हैं कि इलेक्ट्रॉनिक मीडिया एक वैश्विक गाँव बनाने की प्रवृति रखता है जिसमें दुनिया भर के लोग प्रमुख घटनाओं को देखते हैं प्रकट करते हैं और इसलिए उनमें एक साथ भाग लेते हैं।

हम सूचना के उत्पादन, वितरण, उपभोग आदि में अभिसरण की प्रक्रिया देख रहे हैं। समाचार पत्र ऑनलाइन पढ़ सकते हैं, मोबाइल फोन के उपयोग से विस्फोट हो रहा है और उपग्रह प्रसारण सेवाओं के साथ डिजिटंल टेलीविजन दर्शकों को देखने के लिए पसंद की एक अभूतपूर्व विविधता की अनुमति देता है। इसके विस्तार के साथ वॉयस रिकग्निशन, ब्रॉडबैंड–ट्रांसमिशन, वेब कास्टिंग और केबल लिंक, इंटरनेट जैसी तकनीकें, पारंपरिक मीडिया के साथ भेद को मिटाने और मीडिया दर्शकों के लिए सूचना, मनोरंजन, विज्ञापन और वाणिज्य के वितरण के लिए प्राथमिक आचरण बनने की धमकी देता है।

मास मीडिया के कार्य

मास मीडिया के कार्य निम्न प्रकार से हैं–

1. **सूचना** : मीडिया हमें हमारे समाज और दुनिया के बारे में सूचनाओं का एक निरंतर प्रवाह प्रदान करता है, जिसमें वेबकैम और रेडियो रिपोर्ट से लेकर ट्रैफिक जाम, रोलिंग मौसम की रिपोर्ट, शेयर बाजार और उन मुद्दों के बारे में नई कहानियाँ शामि हैं जो हमें व्यक्तिगत रूप से प्रभावित कर सकते हैं।
2. **सहसंबंध** : मीडिया हमें जो जानकारी देता है, उसका अर्थ समझाने और समझने में हमारी मदद करता है। इस तरह मीडिया स्थापित सामाजिक मानवंडों के लिए समर्थन प्रदान करता है और बच्चों के समाजीकरण में महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है, घटनाओं व्याख्या के लिए एक साझा ढाँचा प्रदान करता है।
3. **निरंतरता** : प्रमुख संस्कृति को व्यक्त करने, नए सामाजिक विकास को पहचानने और सामान्य मूल्यों को बनाने में मीडिया का एक निश्चित कार्य है। यह समाज के दर्पण और प्रहरी के रूप में कार्य करता है।

टिप्पणी

4. **मनोरंजन** : मीडिया मनोरंजन प्रदान करता है, काम की कठोरता से व्यक्ति को तनाव को कम करने के लिए कार्य करता है। यह अनिवार्य रूप से समाज के लिए एक रिलीज वाल्व का कार्य है, जो लोगों को कम से कम अस्थायी रूप से अपनी समस्याओं और संघर्षों को अलग रखने में सहायता देता है।

5. **लामबंदी** : मीडिया का उपयोग लोगों को आर्थिक विकास में योगदान करने, नैतिक नियमों का समर्थन करने और बनाए रखने और युद्ध के समय आबादी को जुटाने के लिए, प्रोत्साहित करने के लिए किया जा सकता है। यह बहुत प्रत्यक्ष सार्वजनिक अभियानों के माध्यम से हो सकता है, लेकिन बहुत कुछ में भी अधिक सूक्ष्म तरीके, जैसे कि सोप ओपेरा या फिल्मों के भीतर नैतिक कहानियाँ।

अन्य कार्य

1. जनसाधारण के सामाजिक दृष्टिकोण में परिवर्तन लाने में समाचार पत्रों और पत्रिकाओं ने जबरदस्त भूमिका निभाई है। ग्रामीण भारत में, रेडियो और टीवी अभी भी जनमत और ज्ञान निर्माण के लिए सबसे महत्वपूर्ण स्रोत हैं क्योंकि अधिकांश ग्रामीण वर्ग अभी भी निरक्षर हैं।
2. फिल्में मनोरंजन और विचारों के प्रसार का अन्य प्रभावी श्रव्य–दृश्य माध्यम हैं। इसने ड्रेसिंग पैटर्न, हेयरस्टाइल, बोली जाने वाली भाषा, रीतिवाद और सामाजिक मानदंडों में बदलाव को भी बढ़ावा दिया है।
3. युवा और महिला सशक्तिकरण को लक्षित करने वाले कार्यक्रम भी सामाजिक परिवर्तन को बढ़ावा दे रहे हैं।

वर्गीकरण प्रौद्योगिकी

प्रौद्योगिकी को श्रेणियों में विभाजित करने का कोई एक तरीका नहीं है, हालांकि मशीन–आधारित या दवा–आधारित या इसी तरह के नवाचारों को वर्गीकृत करना आसान हो सकता है, तकनीकी विकास के परस्पर जुड़े पहलुओं का मतलब है कि एक क्षेत्र में प्रगति दर्जनों अन्य में दोहराई जा सकती है। संक्षेप में, हम देखेंगे कि यू.एस. पेटेंट कार्यालय, जो दुनिया भर में लगभग सभी प्रमुख नवाचारों के लिए पेटेंट आवेदन प्राप्त करता है, पेटेंट को कैसे संबोधित करता है?

सह नियामक संस्था तीन तरह के इनोवेशन का पेटेंट करा सकती है।

उपयोगिता पेटेंट – ये किसी नई और उपयोगी प्रक्रिया उत्पाद, या मशीन के आविष्कार या खोज के लिए या मौजूदा तकनीकों में महत्वपूर्ण सुधार के लिए दिए जाते हैं।

दूसरे प्रकार का पेटेंट एक डिजाइन पेटेंट है– आमतौर पर वास्तुकला और औद्योगिक डिजाइन में सम्मानित, इसका मतलब है कि किसी ने निर्मित उत्पाद के लिए एक नए और मूल डिजाइन का आविष्कार किया है।

अंतिम प्रकार का पेटेंट प्लांट पेटेंट है – नए पौधों के प्रकारों की खोज को पहचानते है जिन्हें अलैंगिक रूप से पुनः पेश किया जा सकता है। जबकि आनुवंशिक

टिप्पणी

रूप से संशोधित भोजन इस श्रेणी के भीतर हॉट–बटन मुद्दा है, किसान लंबे समय से नए संकर बना रहे हैं और उनका पेटेंट करा रहे हैं।

एक और आधुनिक उदाहरण विशाल खाद्य उद्यम मोनसेंटो हो सकता है, जो अंतर्निर्मित कीटनाशक (यू.एस. पेटेंट और ट्रेडमार्क कार्यालय 204) के साथ मकई पेटेंट करता है।

एंडरसन और टशमैन (4990) तकनीकी परिवर्तन के एक विकासवादी मॉडल का, सुझाव देते हैं, जिसमें प्रौद्योगिकी के रूप में एक सफलता कई विविधताओं की ओर ले जाती है। एक बार उनका आवक ने बाद, एक प्रोटोटाइप उभरता है, और फिर प्रौद्योगिकी में मामूली समायोजन की अवधि, एक सफलता से बाधित होती है। उदाहरण के लिए, फ्लॉपी डिस्क में सुधार किया गया और अपग्रेड किया गया, फिर जिप डिस्क द्वारा प्रतिस्थापित किया गया, जो बदले में प्रौद्योगिकी की सीमाओं में सुधार हुआ और फिर फ्लैश ड्राइव द्वारा प्रतिस्थापित किया गया। यह अनिवार्य रूप से प्रौद्योगिकी को वर्गीकृत करने के लिए एक पीढीगत मॉडल है, जिसमें पहली पीठी की तकनीक अपेक्षाकृत अपरिष्कत कूढ़–बंद बिंदु है जो इसी तरह एक बेहतर दूसरी पीढ़ी की ओर ले जाती है।

सामाजिक संस्थाओं में परिवर्तन

सूचना तकनीक ने हमारे जीवन के तौर–तरीकों को बहुत बदल दिया है। सूचना तकनीक ने सामाजिक संस्थाओं को इसके प्रभाव से नहीं बख्शा है। परिवार, धर्म, नैतिकता, विवाह, राज्य, संपत्ति की संस्थाओं को बदल दिया गया हि उद्योग को घर से दूर ले जाने की आधुनिक तकनीक ने परिवार के संगठन को मौलिक रूप से बदल दिया है। परिवार के कई कार्यों को अन्य एजेंसियों ने छीन लिया है। विवाह अपनी पवित्रता खो रहा है। इसे एक पवित्र बंधन की तुतनना में एक नागरिक अनुबंध के रूप में माना जाता है।

शादियाँ अधिक से अधिक अस्थिर होती जा रही हैं। तलाक, परित्याग और अलगाव के मामले बढ़ रहे हैं। प्रोद्योगिकी ने महिलाओं की स्थिति को ऊँचा किया है लेकिन इसने घर में पुरुषों और महिलाओं के बीच संबंधों में तनाव में भी योगदान दिया है। धर्म सदस्यों पर पकड़ खो रहा है। लोग अपने दृष्टिकोण में अधिक धर्मनिरपेक्ष, तर्कसंगत और वैज्ञानिक लेकिन कम धार्मिक होते जा रहे हैं।

विज्ञान में आविष्कारों और खोजों ने धर्म की नींव को हिला दिया है। राज्य के कार्य या राज्य गतिविधि के क्षेत्र का विस्तार किया गया है। आधुनिक तकनीक ने राज्यों को इस तरह के कार्य करने के लिए मजबूर किया है, जैसे – वृद्ध, कमजोर वर्ग और अल्पसंख्यकों की सुरक्षा, शिक्षा, स्वास्थ्य देखभाल आदि के लिए प्रावधान करना आदि। पूरे राज्य की सरकार परिवहन और संचार, आविष्कार स्थानीय सरकार से केंद्र में कार्यों को स्थानांतरित कर रहे हैं।

आधुनिक आविष्कारों ने भी राष्ट्रवाद को मजबूत किया है। नौकरशाही के माध्यम से शासन करने वाली आधुनिक सरकारों ने मानवीयता को और अधिक अवैयक्तिक बना दिया है। आधुनिक समय में सबसे महत्वपूर्ण आर्थिक संगठन में परिवर्तन है। उद्योग

टिप्पणी

घर से दूर हो गए हैं और नए प्रकार के आर्थिक संगठन स्थापित किए गए हैं जैसे कारखाने, स्टोर बैंक, निगम आदि।

सूचना और संचार प्रौद्योगिकियाँ (आईसीटी) आधुनिक समाज के सभी पहलुओं में महत्वपूर्ण भूमिका निभाती हैं। आईसीटी ने, जिस तरह से हम एक दूसरे के साथ संवाद करते हैं, जिस तरह से हम आवश्यक जानकारी प्राप्त करते हैं, काम करते हैं, व्यापार करते हैं, सरकारी एजेंसियों के साथ बातचीत करते हैं, और हम अपने सामाजिक जीवन को कैसे प्रबंधित करते हैं, इसे बदल दिया है। जैसा कि आईसीटी रोजमर्स के जीवन को प्रभावित करता है, वे व्यापक आर्थिक विकास को भी प्रभावित करते हैं, जो आगे चल्कर बुनियादी ढाँचे और जीवन स्तर में सुधार को सक्षम करके समाज को प्रभावित करता है।

यद्यपि सामाजिक आर्थिक विकास की अवधारणा अनुसंधान और व्यवहार में व्यापक रूप से लागू होती है, इसका अर्थ हमेशा स्पष्ट नहीं हो सकता है। शब्द विकास का तात्पर्य प्रगति से है, और इसे होशपूर्वक या अवचेतन रूप से समाज में सुधार के उद्देश्य से समग्र गतिविधि के रूप में परिभाषित किया जा सकता है।

योग्यता सामाजिक आर्थिक जो स्वयं दो शब्दों का एक संयोजन हैं, शिक्षा और पेशे जैसे सामाजिक कारकों के साथ–साथ आय और संसाधनों जैसे आर्थिक कारकों से संबंधित है। इस प्रकार सामाजिक, आर्थिक विकास को सामाजिक और आर्थिक स्थितियों में परिवर्तन या सुधार की एक प्रक्रिया के रूप में परिभाषित किया जा सकता है क्योंकि वे एक व्यक्ति, एक संगठन या समग्र रूप से समाज से संबंधित होते हैं (रोज्टोकी एंड वीस्ट्रोफर, 206)।

संचार माध्यम और सामाजिक परिवर्तन के आधुनिक साधन

संचार एक प्रभावशाली तकनीकी कारक है और संचार के आधुनिक साधनों के विकास ने जटिल सामाजिक परिवर्तनों को जन्म दिया है। संचार के कई साधन हैं, जिनमें टेलीग्राम, टेलीफोन, मोबाइल फोन, फैक्स, ई–मेल, रेडियो, टेलीविजन आदि मुख्य हैं। यह संचार साधन है जो सामाजिक संबंधों का आधार है। जब तक लोगों के बीच कोई संवाद नहीं है, सामाजिक संबंधों की स्थापना नहीं होगी। लोगों के विचारों, विश्वासों और मानसिकता को बदलने में सिनेमा या फिल्म का बहुत बड़ा योगदान है। इसके अतिरिक्त, इसने पारिवारिक, सामाजिक और जाति–आधारित संबंधों को भी प्रभावित किया है। अब, रेडियो की मदद से कोई भी संदेश, सूचना या विचार कुछ ही समय में लाखों लोगों तक पहुँच सकता है। रेडियो भी मनोरंजन का एक स्वस्थ माध्यम है। रेडियो और टेलीविजन ने एक परिवार के सदस्यों को एक साथ खाली समय बिताने के लिए प्रेरित किया है। इससे परिवार के सदस्यों को अब मनोरंजन के लिए इधर–उधर जाने की जरूरत नहीं पड़ती और परिवार के सदस्यों के बीच जुड़ाव भी बढ़ जाती है। संचार के नए और आधुनिक साधनों के विकास ने जीवन में गतिशीलता को बढ़ाया है। भौगोलिक दूरियाँ कम हो गई हैं, इसलिए ग्रामीण और शहरी जीवन के बीच विभाजन हो गया है। संचार के आधुनिक साधनों के विकास के कारण व संचार के विभिन्न माध्यमों के कारण, विभिन्न सांस्कृतिक समूहों को एक दूसरे को समझने का अवसर मिला है और उन्होंने एक दूसरे के सांस्कृतिक लोकाचार को भी आत्मसात

टिप्पणी

किया है। संचार के आधुनिक साधनों के कारण ही बड़ी राजनीतिक संरचनाएँ एक वास्तविकता बन सकीं और लोकतांत्रिक विचारों का प्रसार हुआ।

कृषि और सामाजिक परिवर्तन में नई तकनीक

कृषि में आधुनिक तकनीक का उपयोग एक ऐसा कारक है जिसने जीवन में कई बदलाव लाने में योगदान दिया है। कृषि में बेहतर पशु नस्ल, उर्वरक, उच्च उपज किस्म के बीज और समय बचाने वाली मशीनों के उपयोग से दोनों मात्रात्मक व गुणात्मक कृषि उत्पादन में वृद्धि हुई है।इन सबका असर न सिर्फ आर्थिक जीवन पर बल्कि सामाजिक जीवन पर भी पड़ा है। पहले कृषि गतिविधियों को ठीक से चलाने के लिए अन्य लोगों के सहयोग की आवश्यकता थी जिसने ग्रामीणों के बीच सहयोग और समुदाय की भावना के महत्व को सुनिश्चित किया। अब समय बचाने वाली मशीनों के कारण किसान को अब दूसरे लोगों के सहयोग की आवश्यकता नहीं रह गई है। परिणामस्वरूप समुदाय की भावना के बजाय व्यक्तिवाद का महत्व बढ़ गया। इसके अतिरिक्तय खेती में मशीनों के बढ़ते उपयोग के कारण लोगों की आवश्यकता कम हो गई है और परिणामस्वरूप संयुक्त परिवार की तुलना में एकल परिवार का महत्व बढ़ गया है।

खेती में लोगों की कम आवश्यकता ने लोगों को आजीविका की तलाश में शहरों की ओर पलायन करने के लिए मजबूर किया है। कुछ देशों में कृषि उत्पादन इतना बढ़ गया है कि उन्हें अपनी उपज के लिए नए बाजार खोजने की समस्या का सामना करना पड़ रहा है। आधुनिक तरीकों ने सामाजिक संबंधों, लोगों के दृष्टिकोण और मानसिकता को काफी हद तक बदल दिया है। ग्रामीण क्षेत्रों में भी रिश्तों की गर्माहट ने औपचारिकताओं और रिश्तों में बनावटीपन को जगह दी है। कृषि उत्पादन में वृद्धि से ग्रामीण लोगों की आय में भी वृद्धि हुई है और उनके जीवन स्तर में भी सुधार हुआ है। इस प्रकार कृषि में आधुनिक तकनीक के प्रयोग ने ग्रामीण जीवन को अनेक प्रकार से प्रभावित किया है।

उत्पादन प्रणाली और सामाजिक परिवर्तन

उत्पादन प्रणाली महत्वपूर्ण तकनीकी कारकों में से एक है जिसने समय–समय पर सामाजिक संबंध और सामाजिक संरचना को काफी हद तक बदल दिया है। पहले जब मशीनों का आविष्कार नहीं हुआ था लोग काम करने के लिए अपने हाथों का इस्तेमाल करते थे और परिवार उत्पादन की मुख्य इकाई हुआ करता था। उस स्थिति में परिवार के प्रत्येक सदस्य के लिए समान हित और लक्ष्य थे और इसलिए उनके संबंधों में गर्मजोशी थी। उन दिनों कोई औद्योगिक या श्रमिक समस्या नहीं थी क्योंकि उत्पादन छोटे पैमाने पर हुआ करता था। लोग अपनी उपज को दूसरे लोगों की उपज के साथ बेच देते थे और इस तरह एक–दूसरे की जरूरतों को पूरा करते थे। इसी तरह, वे भी अपनी सेवाओं का आदान–प्रदान करते थे। इसने ग्रामीण समुदायों में एकता और ताकत सुनिश्चित की लेकिन उत्पादन प्रणाली अब बदल गई है। आजकल, शहरी क्षेत्रों में माल का उत्पादन जारी रखने के लिए कारखानों में मशीन का उपयोग किया जाता है। मानवीय कामकाज ने अपना महत्व खो दिया है और कुशल श्रमिक जो मशीनों को संचालित कर सकते हैं उन्होंने महत्व प्राप्त कर लिया है। श्रम और विशेषज्ञता का विभाजन उल्लेखनीय रूप से विकसित हुआ है। कई बैंक और बड़े व्यापारिक घरानों

टिप्पणी

की स्थापना की गई है। प्रतिस्पर्धा और प्रचार का महत्व बढ़ गया है। बड़े शहरों का विकास हुआ है, परिणामस्वरूप शहरीकरण और श्रम–सम्बन्धों की समस्याएँ उत्पन्न हुई हैं। यहाँ तक कि लोगों का जीवन भी यंत्रीकृत हो गया है और सामाजिक संबंधों में औपचारिकताएँ बढ़ गई हैं।

मशीनों के इस युग में,प्राथमिक संबंधों और समूहों के महत्व के बजाय दूसरो से संबंधों और समूहों को महत्व प्राप्त हुआ है। नई उत्पादन प्रणाली ने सामाजिक रूप से आर्थिक, राजनीतिक यहाँ तक कि सांस्कृतिक जीवन को नाटकीय रूप से बदल दिया है। इस नई व्यवस्था ने विभिन्न सामाजिक संस्थाओं को प्रभावित किया है; जैसे विवाह, परिवार, जाति आदि और सामाजिक परिवर्तन की गति को भी तेज किया।

परमाणु ऊर्जा और सामाजिक परिवर्तन पर नियंत्रण

परमाणु ऊर्जा का उपयोग मानव लक्ष्यों और जरूरतों की पूर्ति की दिशा में एक युगांतरकारी खोज है। अन्य खोजों की तरह आधुनिक विज्ञान परमाणु ऊर्जा का उपयोग दोनों रचनात्मक और विनाशकारी कार्यों के लिए किया जा सकता है। एक ओर, परमाणु ऊर्जा का उपयोग चारों ओर समृद्धि लाने व लोगों के जीवन की गुणवत्ता को बढ़ाने के लिए किया जा सकता है, दूसरी ओर, परमाणु ऊर्जा का उपयोग मनुष्यों और मनुष्यों की सभी रचनाओं को नष्ट करने के लिए भी किया जा सकता है। विभिन्न क्षेत्रों में परमाणु ऊर्जा के उपयोग की क्रमिक वृद्धि के साथय सामाजिक परिवर्तन की गति बढ़ेगी।

प्रौद्योगिकी के प्रत्यक्ष और अप्रत्यक्ष प्रभाव

प्रौद्योगिकी में परिवर्तन के परिणामस्वरूप विभिन्न क्षेत्रों में कई बदलाव हुए हैं। उनमें से कुछ को प्रत्यक्ष प्रभावों के रूप में वर्गीकृत किया जा सकता है और कुछ अन्य को अप्रत्यक्ष प्रभावों के रूप में वर्गीकृत किया जा सकता है। वे प्रभाव जो समाज में अपरिहार्य और त्वरित परिवर्तन लाते हैं, प्रत्यक्ष परिवर्तन कहलाते हैं। प्रत्यक्ष परिवर्तन को स्पष्ट रूप से देखा जा सकता हैं। वे प्रभाव जो अप्रत्यक्ष रूप से प्रौद्योगिकी में परिवर्तन के परिणामस्वरूप आते हैं, अप्रत्यक्ष परिवर्तन कहलाते हैं। अप्रत्यक्ष परिवर्तन उन परिवर्तनों के माध्यम से आते हैं जो प्रौद्योगिकी में परिवर्तन के कारण आए।

प्रौद्योगिकी के प्रत्यक्ष प्रभाव इस प्रकार हैं–

श्रम और विशेषज्ञता का विभाजन : प्रौद्योगिकी में परिवर्तन के कारण उत्पादन अब बड़े कारखानों में और बड़े पैमाने पर होता है। फैक्ट्रियों में अलग–अलग लोगों को अलग–अलग काम दिए जाते थे क्योंकि विभिन्न कार्यों की उचित दक्षता के लिए विभिन्न प्रशिक्षणों और क्षमताओं वाले लोगों की आवश्यकता थी। यदि कोई व्यक्ति किसी विशेष कार्य को लंबे समय तक करता रहता है तो यह उसे उस कार्य के बारे में विशेष ज्ञान प्राप्त करने में मदद करता है। इस प्रकार, श्रम विभाजन के साथ–साथ विशेषज्ञता भी बढ़ी। बाद में विशेष प्रशिक्षण देने की व्यवस्था की गई ताकि विभिन्न कार्यों को ठीक से पूरा किया जा सके।

श्रम संघों का गठन : नई उत्पादन प्रणालियों के उपयोग के आगमन से पहले, सामान्य रूप से श्रम की कोई समस्या नहीं थी। लोग हाथ से काम करते थे और वह चीजों का उत्पादन भी अपने घरों में करते थे। हालात बदले और काम मशीनों से और

फैक्ट्रियों में हो रहा था, नतीजतन, कारीगर मजदूरों में बदल गए। काम के घंटे, मजदूरी, काम की शर्तें आदि जैसी चीजें तय की जा रही थीं। अपने लाभ को बढ़ाने के लिए, मिल मालिकों ने मजदूरों से अधिक काम लेना शुरू कर दिया और उन्हें कम और कम मजदूरी देने की कोशिश की। परिणामस्वरूप, मजदूर एकजुट होने लगे और श्रमिक संघ बनाने लगे। मजदूरों ने समय– समय पर मिल मालिकों और सरकार से तरह–तरह की माँगें रखना शुरू कर दीं। इससे मजदूरों की आर्थिक स्थिति में सुधार लाने में मदद मिली। उनमें एक वर्ग चेतना का विकास हुआ जिसके परिणामस्वरूप सामाजिक व्यवस्था में क्रांतिकारी परिवर्तन हुए।

शहरीकरण : जब कारखानों में उत्पादन शुरू हुआ, तो ग्रामीण क्षेत्रों के कई लोग आजीविका की तलाश में शहरी क्षेत्रों में चले गए। अनेक कारणों से नगरीय क्षेत्रों में कारखानों का उदय हुआ और इस प्रकार ग्रामीण लोग नगरों में आकर वहाँ बसने लगे। इसके परिणामस्वरूप शहरी आबादी में तेजी से वृद्धि हुई। शहरी आबादी की त्वरित वृद्धि ने मलिन बस्तियों के प्रसार के रूप में शहरीकरण की कई समस्याएँ पैदा कीं। शहरों के भीड़–भाड़ वाले वातावरण में व्यक्ति अकेलापन महसूस कर सकता है। यह कहा जा सकता है कि औद्योगीकरण के परिणामस्वरूप शहरीकरण की दर तेज हुई और इन दोनों ने सामाजिक जीवन को असंख्य तरीकों से प्रभावित किया और सामाजिक परिवर्तन में योगदान दिया।

गतिशीलता में वृद्धि : तकनीकी परिवर्तन ने भौगोलिक गतिशीलता के साथ–साथ सामाजिक गतिशीलता को बढ़ाने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है। भौगोलिक गतिशीलता का अर्थ है एक जगह से दूसरी जगह जाने की प्रवृत्ति में वृद्धि। सामाजिक गतिशीलता का अर्थ है, एक सामाजिक स्थिति से दूसरी सामाजिक स्थिति में, एक सामाजिक समूह से दूसरे सामाजिक समूह में परिवर्तन। आधुनिक समय में संचार के साधनों का बहुत तेजी से विकास हुआ है। लोग विभिन्न स्थानों, समूहों, वर्गों, व्यवसाय आदि के बारे में जागरूक हो गए हैं। अब वे विभिन्न प्रकार के लोगों और विभिन्न प्रकार की संस्कृति के साथ अपनी पहचान बना सकते हैं। इसके परिणामस्वरूप अपने समूह या संस्कृति को श्रेष्ठ मानने की प्रवृत्ति कम हो गई है। अब लोगों को अपनी क्षमताओं और संसाधनों में सुधार कर अपने समूह की स्थिति को बदलने के लिए मौका भी मिलता है। स्पष्ट है कि प्रौद्योगिकी ने गतिशीलता बढ़ाने में योगदान दिया है।

सामाजिक संबंधों में परिवर्तन : प्रौद्योगिकी के परिणामस्वरूप सामाजिक संबंधों के रूप बड़े पैमाने पर बदल गए हैं। पारिवारिक, सामाजिक और आर्थिक संबंधों के दृष्टिकोण से कई बदलाव आए हैं और संबंधों की जटिलताएँ बढ़ी हैं। पहले एक व्यक्ति कुछ चुनिंदा लोगों से परिचित हुआ करता था जैसे परिवार में वयस्क, रिश्तेदार और ग्रामीण समुदाय के कुछ लोग लेकिन अब तो इंसान के रिश्तों में भी इजाफा हो गया है। अब व्यक्ति को शिक्षा के लिए स्कूल, किसी कारखाने या ऑफिस या बिजनेस हाउस पर आजीविका के लिए निर्भर रहना पड़ता है। मनोरंजन के उद्देश्य से कोई भी क्लब, सोसायटी या समिति का सदस्य बन सकता है। विशेषज्ञता के इस युग में, सभी प्रकार के वैकल्पिक समूहों का प्रसार हुआ है और व्यक्ति अपनी आवश्यकताओं को पूरा करने के लिए उनमें से कुछ का सदस्य बन जाता है। फलस्वरूप उसके संबंधों का मार्ग

टिप्पणी

प्रशस्त होता है। वर्तमान समय में घनिष्ठता के स्थान पर आमने–सामने और अनौपचारिक संबंध, पेशेवर, अप्रत्यक्ष और औपचारिक संबंध बढ़ रहे हैं।

ग्रामीण क्षेत्रों में शहरी विशेषताओं का प्रसार : अधिकांश लोग दो प्रकार के समुदाय में रहते हैं– शहरी समुदाय में या ग्रामीण समुदाय में। ये दोनों समुदाय सामाजिक जीवन के विभिन्न रूपों को प्रस्तुत करते हैं। प्रौद्योगिकी के कारण शहरी क्षेत्रों में सामाजिक परिवर्तन की गति तेज है लेकिन इसका असर ग्रामीण इलाकों में भी देखने को मिल रहा है। कई मजदूर गॉवों से शहरों में आते हैं। उस दौरान नए वातावरण के साथ ढलने के प्रयास से उनके विश्वासों, मूल्यों, आदतों एवं व्यवहारों में कई बदलाव आते हैं। ये लोग इन नई चीजों को ग्रामीण इलाकों में ले जाते हैं। परिवहन और संचार के साधनों में वृद्धि के परिणामस्वरूप ग्रामीण क्षेत्रों में शहरी विशेषताओं का प्रसार हुआ है। अब ग्रामीण लोग भी आधुनिक गैजेट्स का उपयोग करने लगे हैं जो उन्हें आधुनिक जीवन की सुख–सुविधाओं का आनंद लेने में मदद करते हैं, उदाहरण– बिजली, पंखा, हीटर, रेडियो, ट्रांजिस्टर, टेप– रिकॉर्डर, टेलीविजन आदि।

प्रौद्योगिकी के अप्रत्यक्ष प्रभाव इस प्रकार हैं–

प्रतिस्पर्धा में वृद्धि : श्रम विभाजन और विशेषज्ञता को बढ़ाने के अलावा, नई तकनीक ने प्रतिस्पर्धा को भी काफी बढ़ा दिया है। आज के औद्योगीकरण के युग में हर जगह प्रतिस्पर्धा का महत्व बढ़ गया है। प्रतिस्पर्धा को विभिन्न क्षेत्रों में देखा जा सकता है, जैसे –शिक्षा, नौकरी और व्यवसाय। उद्योगपतियों के बीच गलाकाट प्रतिस्पर्धा है। बढ़ी हुई प्रतिस्पर्धा के कई फायदे हैं, लेकिन कुछ कमियाँ भी हैं। प्रतिस्पर्धा के परिणामस्वरूप, कभी–कभी उत्पादन आवश्यकता से अधिक बढ़ जाता है जिससे व्यापार में गड़बड़ी होती है और कई लोग आर्थिक अपराध भी करते हैं। बढ़ी हुई प्रतिस्पर्धा ने सामाजिक संबंधों के साथ–साथ आर्थिक संबंधों को अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर विस्तारित किया है। बढ़ी हुई प्रतिस्पर्धा ने समूह के महत्व को कम कर दिया है और व्यक्तित्व में वृद्धि हुई है।

विभिन्न वर्गों का उदय : प्रौद्योगिकी ने नए आर्थिक समूहों के गठन को सुगम बनाकर सामाजिक संरचना को बदलने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है। नई तकनीक ने सक्षम लोगों को बड़े कारखानों के मालिक बनने का अवसर दिया है ताकि वे अधिक कमा सकें और पूंजीपति बन सकें। दूसरी ओर उसी तकनीक ने इन कारखानों में लाखों लोगों को श्रम के रूप में काम करने के लिए मजबूर किया है। परिणामस्वरूप पूंजीपतियों और श्रम के दो अलग–अलग वर्ग उभरे हैं। इसके अतिरिक्त, बीच में एक नया वर्ग उभरा है उन्हें जिसे मध्यम वर्ग के नाम से जाना जाता है। मध्यम वर्ग के पास श्रमिक वर्ग की तुलना में आय का बेहतर स्रोत है और वे व्यवसायों और व्यवसायों में विभिन्न नौकरियों में लगे हुए हैं। मध्यम वर्ग की सामाजिक स्थिति श्रमिक वर्ग की तुलना में अच्छी है। नई तकनीक ने भारतीय समाज में जाति व्यवस्था के प्रभाव को कम करने में मदद की है और आर्थिक वर्गों के महत्व को बढ़ाने में मदद की है।

बेरोजगारी में वृद्धि : नई तकनीक के कारण कई श्रम कम करने वाली मशीनों का विकास किया गया है। एक मशीन एक घंटे में इतना काम कर सकती है कि एक मजदूर एक महीने में भी पूरा नहीं कर सकता। नतीजतन नई तकनीक ने लघु उद्योग को नष्ट कर दिया है और बेरोजगारी को बढ़ा दिया है। बेरोजगारी अपने आप में एक सामाजिक–आर्थिक समस्या है जो व्यक्ति और उसके पारिवारिक जीवन को नष्ट कर

टिप्पणी

देती है। जब एक समाज में निराश लोगों और परिवारों की संख्या बढ़ जाती है, तो यह पूरी सामाजिक व्यवस्था को प्रभावित करती है जिससे सामाजिक जीवन अस्त–व्यस्त हो जाता है। लेकिन यह याद रखना महत्वपूर्ण है कि यह केवल नई तकनीक नहीं है जिसके परिणामस्वरूप हमेशा बेरोजगारी बढ़ती है।

पारिवारिक जीवन में परिवर्तन : प्रौद्योगिकी ने विवाह और परिवार के क्षेत्रों में भी कई महत्वपूर्ण परिवर्तनों की शुरुआत की है। नई तकनीक ने व्यक्तिवाद को बढ़ाया है और समुदाय की भावना के महत्व को कम किया है। अब लोग स्वार्थ की दृष्टि से अधिक सोचने लगे हैं। इसके अतिरिक्त लोग अपने गाँव और अपने संयुक्त परिवारों को छोड़ने के बाद शहरों में बसने लगे हैं।। घरों की कमी और शहरों में व्यक्तिवाद और स्वार्थी मानसिकता लोगों को एकल परिवारों में रहने के लिए प्रेरित कर रही है। एक औसत परिवार का आकार भी पहले की तुलना में कम हो गया है। परिवार नियोजन के नए तरीकों ने भी परिवार के आकार को कम करने में मदद की है। कई कार्य जो पहले परिवार में किया जाता था अब अन्य समितियों में स्थानांतरित हो गए हैं। नई तकनीक ने महिलाओं पर काम काबोझ कम किया है। अब वे प्रेशर कुकर, गैस, बिजली और कई समय बचाने वाले उपकरणों का उपयोग करके समय बचा रही हैं। महिलाओं की शिक्षा और रोजगार के अवसर बढ़े हैं। कई महिलाएँ अब कारखानों, कार्यालयों, स्कूलों और विभिन्न व्यवसायों में जाती हैं और अब पुरुषों तक के काम करना शुरू कर चुकी हैं।

वे अपने अधिकारों के प्रति जागरूक हो गई हैं। इन विकासों ने महिलाओं की सामाजिक स्थिति में सुधार लाने में मदद की है। तकनीकी परिवर्तनों ने विवाह की संस्था को भी प्रभावित किया है। अब प्रेम–विवाह, देर से विवाह और अंतर्जातीय विवाह अधिक आम हो गए हैं। इनके अलावा पारिवारिक संबंधों में बदलाव लाकर नई तकनीक ने घरेलू कलह और तलाक की संख्या में वृद्धि में भी योगदान दिया है।

सामाजिक जीवन में परिवर्तन : मूल्यों, विश्वासों, सिद्धांतों आदि को बदलकर नई तकनीक ने लोगों को जीवन के प्रति नया दृष्टिकोण विकसित करने के लिए मजबूर किया है। अब लोग सामुदायिक जीवन की बजाय व्यक्तिवादी जीवन में अधिक रुचि लेने लगे हैं। नई तकनीक ने पारंपरिक जाति–आधारित भारतीय समाज को आधुनिकीकरण की ओर बढ़ने के लिए प्रेरित किया है। लोग अब जाति के बारे में ज्यादा नहीं सोचते हैं। यह स्पष्ट है कि प्रौद्योगिकी ने एक स्थिर समाज को एक प्रगतिशील समाज में बदलने और एक पारंपरिक समाज को एक आधुनिक समाज में बदलने में मदद की है।

धार्मिक जीवन में परिवर्तन : नई तकनीक ने विज्ञान दर्शन और ज्ञान के महत्व को बढ़ाकर रूढ़िवादी धार्मिक मान्यताओं को कमजोर कर दिया है। आधुनिक लोग धर्म में अंध विश्वास को अनुचित महत्व नहीं देते हैं। आज धर्म के मानवीय और उदार पक्ष पर अधिक बल दिया जा रहा है। लोग धार्मिक कर्मकांडों में उतना विश्वास नहीं करते जितना पहले करते थे। नई तकनीक ने विभिन्न धर्मों के लोगों को एक–दूसरे के संपर्क में आने के अवसर पैदा करने में मदद की है। नतीजतन लोगों ने अन्य धर्मों में रुचि विकसित की है। आजकल संकीर्ण धार्मिक मानसिकता कम हुई है और अन्य धर्मों के प्रति सहिष्णुता बढ़ी है। यह स्पष्ट है कि तकनीकी कारकों ने सामाजिक परिवर्तन लाने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है।

टिप्पणी

अपनी प्रगति जांचिए

5. किसने सामाजिक परिवर्तन को मनुष्य के बौद्धिक विकास से जोड़ा है?

(क) स्पेंसर ने (ख) मार्क्स ने

(ग) वेब्लेन ने (घ) कॉम्टे ने

6. जनसंख्या का आकार किसे प्रभावित करता है?

(क) समाज को (ख) परिवार को

(ग) धर्म को (घ) व्यवहार को

1.5 अपनी प्रगति जांचिए प्रश्नों के उत्तर

1. (क)
2. (ख)
3. (ग)
4. (क)
5. (घ)
6. (क)

1.6 सारांश

सामाजिक परिवर्तन से तात्पर्य किसी समाज की सामाजिक व्यवस्था में आये परिवर्तन से है। समाजशास्त्रियों ने प्रारंभ से ही विकासवाद, प्रगति एवं सामाजिक परिवर्तन पर विचार किया है, सामाजिक परिवर्तन इन धारणाओं का ही अर्थ है, लेकिन 1922 में, ओगबर्न ने उनके बीच वास्तविक अंतर को परिभाषित किया। इसके बाद समाजशास्त्र में इस शब्दावली का अत्यधिक प्रयोग किया गया है। अब सामाजिक विद्वानों के विचारों पर ध्यान दिया जाएगा कि सामाजिक परिवर्तन का अर्थ क्या है? जिससे सामाजिक परिवर्तन की अवधारणा को स्पष्ट रूप से समझा जा सके। मैकाइवर और पेज के अनुसार, "समाजशास्त्र सामाजिक संबंधों के बारे में रिश्तों का नेटवर्क है, जिसे हम समाज कहते हैं"। इस प्रकार मैकाइवर और पेज समाज को सामाजिक संबंधों के नेटवर्क के रूप में संदर्भित करते हैं। अतः सामाजिक सम्बन्धों में होने वाला परिवर्तन ही सामाजिक परिवर्तन है।

किंग्सले डेविस का मत है, "सामाजिक परिवर्तन से तात्पर्य केवल ऐसे परिवर्तनों से है जो सामाजिक संगठन, अर्थात् समाज की संरचना और कार्यों में होते हैं"। इस प्रकार, डेविस ने सामाजिक परिवर्तन को एक पूर्ण संरचनात्मक–कार्यात्मक परिप्रेक्ष्य के रूप में देखा है। दूसरे शब्दों में, उनके अनुसार, सामाजिक परिवर्तन को तभी पहचाना जाता है जब समाज की विभिन्न इकाइयों, जैसे संगठनों, समुदायों, समितियों, समूहों

टिप्पणी

आदि में परिवर्तन होता है और इन परिवर्तनों के कारण इन सामाजिक इकाइयों की कार्यक्षमता में भी परिवर्तन होता है।

एक समाज में, सामाजिक परिवर्तन विभिन्न कालखंडों में आने वाली विविधता की व्याख्या करता है, लेकिन यह निश्चित नहीं है कि समाज में परिवर्तन किस देश में, किस कानून के तहत या किस सिद्धांत के आधार पर हो रहा है। सामाजिक परिवर्तन के स्वरूप को अनेक समाजशास्त्रियों द्वारा परिभाषित किया गया है, जैसे– मैकाइवर और पेज, हर्बर्ट स्पेंसर, हॉबहाउस और सोरोकिन आदि।

जो लोग समाज को एक संरचना या बुनियादी ढांचे के रूप में देखते हैं, वे इसकी समग्र रूप से ऐसे संगठनों के रूप में कल्पना करते हैं जो समाज के लिए मौलिक संरचना साबित होते हैं। इस दृष्टिकोण के अनुसार, समाज न केवल संगठनों का एक संग्रह है, बल्कि यह संगठनों की एक जटिल संरचना है। ये संगठन एक–दूसरे से जुड़े हुए हैं और एक–दूसरे पर हावी हैं। गिन्सबर्ग के अनुसार, यह उन्हें उन लोगों से अलग बनाता है जो परस्पर जुड़े नहीं हैं या व्यवहार के अलावा ऐसे संबंध हैं। स्थिति और भूमिका की अवधारणाओं के आलोक में समाज को एक संरचना या आधारभूत संरचना के रूप में देखा जाता है।

यदि हम किसी विशेष समय के बिंदु पर विचार करें, तो स्थिति और भूमिका दोनों की अवधारणाएँ स्थिर मानी जाती हैं। स्थिति निश्चित और अपरिवर्तनीय है। भूमिका के मामले में भी यही सच है। इस दृष्टि से देखा जाए तो समाज वास्तव में एक संरचना या आधारभूत संरचना है। लेकिन जब हम किसी समय की अवधि के बारे में सोचते हैं, तो स्थिति और भूमिका दोनों की अवधारणाएँ गतिशील मानी जाती हैं। अन्य स्थितियों की तुलना में समय– समय पर किसी विशेष स्थिति में परिवर्तन होता रहता है। भूमिका के अनुसार परिवर्तन भी होता है। उदाहरण के लिए, शिक्षकों और छात्रों के बीच का संबंध वैसा नहीं है जैसा पचास साल पहले हुआ करता था। स्थिति और भूमिका के परिप्रेक्ष्य में एक अच्छा बदलाव देखा गया है। अब हम आसानी से कल्पना कर सकते हैं कि भविष्य में समय के साथ परिवर्तन होता रहेगा। कभी–कभी, किसी विशेष स्थिति में नई सख्ती और नई जिम्मेदारियों का समावेश होता रहेगा, जबकि पुरानी सख्ती और पुरानी जिम्मेदारियाँ कम होती रहेंगी।

इसमें कोई संदेह नहीं है कि कॉम्टे द्वारा समाज में होने वाले परिवर्तनों का योजनाबद्ध और क्रमिक विवरण प्रशंसनीय है, लेकिन इस सिद्धांत को पूरी तरह से स्वीकार नहीं किया जा सकता है। उन्होंने मानव दर्शन और सामाजिक विकास के तीन चरणों की ओर इशारा किया है; यह अनिवार्य नहीं है कि प्रत्येक समाज इन सभी चरणों से गुजरा हो। ये चरण या तो पहले चरण में हो सकते हैं, या एक साथ दो चरणों में हो सकते हैं।

स्पेंसर ने सामाजिक परिवर्तन का विकासवादी सिद्धांत भी प्रस्तुत किया। उन्होंने प्राकृतिक चयन के आधार पर सामाजिक परिवर्तन को व्यक्त किया है। स्पेंसर डार्विन के विकासवादी सिद्धांत से प्रभावित थे। डार्विन ने जीवित प्राणियों के विकास के सिद्धांत को प्रतिपादित किया, जिसे स्पेंसर ने समाज पर लागू किया। डार्विन का विचार था कि अस्तित्व के लिए संघर्ष जीवित प्राणियों में पाया जाता है। इस संघर्ष में योग्यतम की उत्तरजीविता और अयोग्य का उन्मूलन विद्यमान है। क्योंकि पर्यावरण भी ऐसे जीवों का

चयन करता है जो सक्षम और कुशल हैं, इसलिए इस सिद्धांत को प्राकृतिक चयन का सिद्धांत भी कहा जाता है।

टिप्पणी

मार्क्स के अनुसार, उत्पादन के संबंधों के पूर्ण संयोजन से समाज की आर्थिक संरचना का निर्माण होता है। उदाहरण के लिए, कृषि युग में,जमींदारों, किसानों और खेतिहर मजदूरों के बीच संबंध ने एक विशेष प्रकार की आर्थिक संरचना का निर्माण किया, जिसे हम कृषि अर्थशास्त्र कहते हैं। वर्तमान समय में पूंजीपतियों, कारखानों के मालिकों और मजदूरों के संबंधों से बना आर्थिक ढाँचा कृषि युग के आर्थिक ढाँचे से अलग है। इसे हम औद्योगिक आर्थिक संरचना या औद्योगिक अर्थशास्त्र कहते हैं। संक्षेप में, मार्क्स के अनुसार, उत्पादन का तरीका केवल सामाजिक परिवर्तन के लिए जिम्मेदार है, यदि परिवर्तन उत्पादन के साधनों (प्रौद्योगिकी), उत्पादन में विशेषज्ञता, ज्ञान, उत्पादन के संबंधों आदि में आता है, जो निर्माण में मदद करता है। आर्थिक संरचना का परिवर्तन पूरे सामाजिक–सांस्कृतिक में भी आता है, जिसे हम सामाजिक परिवर्तन कहते हैं।

1.7 मुख्य शब्दावली

- **शाश्वत** : नित्य, निरंतर।
- **सतत** : सर्वदा, हमेशा।
- **तात्पर्य** : आशय, मतलब, अभिप्राय।
- **नैतिकता** : नीति के अनुसार आचरण।
- **स्वायत्तता** : अपने ही अधीन होना।

1.8 स्व–मूल्यांकन प्रश्न एवं अभ्यास

लघु–उत्तरीय प्रश्न

1. सामाजिक परिवर्तन से क्या तात्पर्य है?
2. सामाजिक परिवर्तन की विशेषताएं क्या हैं?
3. सामाजिक परिवर्तन के आंतरिक और बाह्य स्रोतों से आप क्या समझते हैं?
4. प्रख्यात चक्रीय सिद्धांतकार कौन–कौन हैं?
5. जनसंख्या का आर्थिक परिवर्तन पर क्या प्रभाव पड़ता है?

दीर्घ–उत्तरीय प्रश्न

1. सामाजिक परिवर्तन का अर्थ स्पष्ट करते हुए इसकी विभिन्न परिभाषाएं दीजिए।
2. सामाजिक परिवर्तन के स्वरूप की समीक्षा कीजिए।
3. सामाजिक परिवर्तन के प्रमुख सिद्धांतों की विवेचना कीजिए।
4. सामाजिक परिवर्तन के कारकों का विश्लेषण कीजिए।
5. सामाजिक परिवर्तन में प्रौद्योगिकी की भूमिका की समीक्षा कीजिए।

1.9 सहायक पाठ्य सामग्री

जे.पी. सिंह, *समाजशास्त्र : अवधारणाएं एवं सिद्धांत*, पीएचआई लर्निंग प्रा. लि., दिल्ली, 2013.

जे.पी. सिंह, *आधुनिक भारत में सामाजिक परिवर्तन*, पीएचआई लर्निंग प्रा. लि., दिल्ली, 2016.

श्यामाचरण दुबे, *विकास का समाजशास्त्र*, दिवि पब्लिशर्स, 1996.

डॉ. पूरन चंद्र जोशी, *परिवर्तन और विकास के सांस्कृतिक आयाम*, राजकमल प्रकाशन, 1999.

धीरूभाई शेठ, *सत्ता और समाज*, सं. : अभय कुमार दुबे, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, 2009.

सच्चिदानंद सिन्हा, *भूमंडलीकरण की चुनौतियां*, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली.

साक्षात्कार, अंक 385–390, मध्य प्रदेश शासन साहित्य परिषद, भोपाल, 2012.

टिप्पणी

इकाई 2 समकालीन भारत में सामाजिक परिवर्तन

टिप्पणी

संरचना

2.0 परिचय
2.1 उद्देश्य
2.2 समकालीन भारत में सामाजिक परिवर्तन की प्रवृत्तियां
2.3 परिवर्तन की प्रक्रियाएं
  2.3.1 संस्कृतीकरण
  2.3.2 पश्चिमीकरण
  2.3.3 आधुनिकीकरण
  2.3.4 धर्मनिरपेक्षीकरण
2.4 विकास की बदलती अवधारणाएं
  2.4.1 आर्थिक विकास
  2.4.2 मानव विकास
  2.4.3 सामाजिक विकास
  2.4.4 सतत विकास
  2.4.5 सामाजिक–सांस्कृतिक स्थिरता के प्रश्न
2.5 अपनी प्रगति जांचिए प्रश्नों के उत्तर
2.6 सारांश
2.7 मुख्य शब्दावली
2.8 स्व–मूल्यांकन प्रश्न एवं अभ्यास
2.9 सहायक पाठ्य सामग्री

2.0 परिचय

आधुनिकता और आधुनिकीकरण की अवधारणा अत्यधिक कुख्यात हैं, मुख्यतः उनकी अस्पष्टता के कारण। प्रत्येक का कोई सटीक अर्थ नहीं है। आधुनिकीकरण ने विशेष रूप से द्वितीय विश्व युद्ध की समाप्ति के बाद, 1950 और 1960 के दशक में बहुत अधिक महत्व ग्रहण कर लिया है। इंग्लैंड में औद्योगिक क्रांति और कुछ हद तक फ्रांस में फ्रांसीसी क्रांति ने आधुनिकीकरण को सुर्खियों में ला दिया। इन अवधारणाओं के बारे में लिखे गए साहित्य के संस्करणों में कई विरोधाभासी अवलोकन और निष्कर्ष हैं। परिणामस्वरूप, भारत में सामाजिक परिवर्तन के लिए आधुनिकीकरण की प्रक्रिया की व्याख्या करने के लिए आधुनिकीकरण का कोई एक सिद्धांत उचित रूप से प्रस्तुत नहीं किया गया है। आधुनिकीकरण की प्रक्रिया पुनर्जागरण और जीवन के सभी क्षेत्रों जैसे साहित्य, विज्ञान धर्म आदि में गठन के युग की है।

भारतीय समाज अब जो आकार ले रहा है, अतीत में हुए सांस्कृतिक आदान–प्रदान का परिणाम है, जो स्वतंत्रता के बाद के भारत में पैदा हुई नई राजनीतिक, सामाजिक, आर्थिक, धार्मिक आदि स्थितियों के योगदान से बनता है।

प्रस्तुत इकाई में समकालीन भारत में होने वाले सामाजिक परिवर्तनों पर विधिवत प्रकाश डाला गया है तथा परिवर्तन की प्रक्रियाओं की व्याख्या की गई है।

टिप्पणी

2.1 उद्देश्य

इस इकाई को पढ़ने के बाद आप–

- समकालीन भारत में होने वाले सामाजिक परिवर्तनों को समझ पाएंगे;
- भारत में सामाजिक परिवर्तन की प्रक्रियाओं के बारे में जान पाएंगे;
- संस्कृतीकरण, पश्चिमीकरण, आधुनिकीकरण व धर्मनिरपेक्षीकरण का विश्लेषण कर पाएंगे;
- विकास की बदलती अवधारणा की विवेचना कर पाएंगे।

2.2 समकालीन भारत में सामाजिक परिवर्तन की प्रवृत्तियां

हम भारत में सामाजिक परिवर्तन की प्रक्रिया को दो भागों में विभाजित करके विश्लेषण कर सकते हैं, अर्थात् औपनिवेशिक शासन के दौरान और स्वतंत्रता के बाद।

प्रत्येक बीतते दिन के साथ, ग्रामीण आबादी शहर की ओर पलायन कर रही है और गति पहले से कहीं अधिक तेज होती जा रही है। यहाँ तक कि कई गाँव कस्बों और शहरों में बदल रहे हैं। ग्रामीण लोग गैर–कृषि व्यवसाय अपना रहे हैं और खेती से संबंधित व्यवसाय छोड़ रहे हैं। परिवहन और संचार के साधनों में विकास के कारण रेलवे, सड़क परिवहन, टेलीविजन, रेडियो आदि जैसे ग्रामीण और शहरी आबादी के बीच संपर्क उल्लेखनीय रूप से बढ़ा है। इसके परिणामस्वरूप ग्रामीण क्षेत्रों में शहरी विशेषताओं का प्रसार हुआ है। ग्रामीण और शहरी क्षेत्रों के बीच अंतर मौलिक सामाजिक और सांस्कृतिक लक्षणों के संदर्भ में तेजी से कम हुआ है। ग्रामीण क्षेत्रों में खेती अब आधुनिक उपकरणों और तकनीकों का उपयोग करके की जाती है, जैसे इलेक्ट्रिक मोटर, ट्रैक्टर, उच्च उपज किस्म के बीज, उर्वरक आदिय पारंपरिक तरीकों से किए जाने के बजाय।

लंबे समय से, हस्तशिल्प या हाथ से संचालित मशीनों द्वारा उत्पादन को भारत में मशीनों द्वारा कारखानों में उत्पादन द्वारा प्रतिस्थापित किया गया है। परिवहन, संचार, खेती और कारखानों के क्षेत्र में ऊर्जा चालित मशीनों का उपयोग लगातार बढ़ रहा है। औद्योगिकीकरण उत्पादन के क्षेत्र में तीव्र गति से पूरा किया गया है। ऊर्जा के जो भी नए स्रोतों का आविष्कार और परीक्षण किया जा रहा है, भारत में भी इसका तेजी से पालन किया जा रहा है। यह मानव ऊर्जा की बचत और उत्पादन में बेहतर गुणवत्ता को भी प्रदर्शित कर रहा है। भारत में औद्योगीकरण के परिणामस्वरूप व्यावसायिक शिक्षा, लोगों की जीवन शैली में प्रगति, ज्ञान के स्तर में सुधार और समग्र समृद्धि के क्षेत्र में भी प्रगति हुई है।

इसके अतिरिक्त, औद्योगीकरण ने कई सामाजिक बुराइयों को भी जन्म दिया है जैसे जनसंख्या में वृद्धि, शराब, भ्रष्टाचार, वेश्यावृत्ति, अपराध और किशोर अपराध, असमानता, नशीली दवाओं का दुरुपयोग, श्रमिकों में आक्रोश आदि। भारत में परिवर्तन की कई रचनात्मक और विनाशकारी प्रक्रियाएं देखी जा सकती हैं, जो औद्योगीकरण के कारण हो रहा है।

टिप्पणी

अंग्रेजों के आने और भारत पर शासन करने के बाद उच्च जाति के बहुत से लोग पश्चिमी जीवन शैली, खाने की आदतों, शिक्षा, विचारों और सांस्कृतिक मूल्यों को अपनाने लगे। इस घटना को एम.एन. श्रीनिवासन द्वारा 'पश्चिमीकरण' की संज्ञा दी गई थी। यहाँ तक कि जब अंग्रेजों ने भारत छोड़ दिया; कई भारतीयों ने पश्चिमी देशों की संस्कृति का पालन करना जारी रखा; जैसे इंग्लैंड, फ्रांस, जर्मनी आदि। भारत में पश्चिमीकरण की प्रक्रिया के कारण भारतीय समाज में कई परिवर्तन हुए हैं। वर्तमान में, अमेरिकी संस्कृति का पालन करने की प्रवृत्ति के परिणामस्वरूप वेशभूषा, मशीनों, पश्चिमी लिंगो, सिद्धांतों, विचारों, दर्शन आदि में उल्लेखनीय परिवर्तन हुए हैं और ये परिवर्तन भविष्य में भी जारी रहने की संभावना है। पश्चिमीकरण के कारण भारतीय शिक्षा, साहित्य, दर्शन, प्रशासन, राजनीतिक व्यवस्था और आर्थिक व्यवस्था प्रभावित हो रही है।

ब्राह्मणों ने भारतीय जाति–व्यवस्था में अपनी श्रेष्ठ स्थिति का लाभ उठाया और पश्चिमी संस्कृति का पालन करने के लिए शिक्षा का लाभ उठाया। निचली जातियों के लोगों ने इस जगह पर कब्जा करने की कोशिश की; जो ब्राह्मणों द्वारा खाली कर दिया गया था और उन प्रयासों ने भारत में सामाजिक गतिशीलता की प्रक्रिया शुरू की। पारंपरिक जाति व्यवस्था एक करीबी व्यवस्था थी जिसमें सब कुछ तय था। समाज में व्यक्ति की स्थिति, व्यवसाय, विवाह, खान–पान आदि सब कुछ जाति व्यवस्था के अनुसार निश्चित था। लेकिन पश्चिमीकरण, शहरीकरण, औद्योगीकरण और स्वतंत्रता के बाद के राजनीतिकरण, लोकतंत्रीकरण, उच्च शिक्षा आदि ने भारत में सामाजिक गतिशीलता में तेज गति लाई है। परिणामस्वरूप, निम्न जातियों के लोगों ने समाज में उच्च स्थान प्राप्त करने के लिए बहुत प्रयास किया और वे अपने प्रयासों में सफल भी हुए। जीवन के कई क्षेत्रों में; लोग या उप–जाति एक सामाजिक श्रेणी से दूसरी सामाजिक श्रेणी में जा सकते हैं। निम्न जाति, जनजाति और पिछड़े वर्ग के लोग निम्न सामाजिक स्थिति से मध्यम सामाजिक स्थितियों तक बढ़ सकते हैं और उससे भी अधिक हासिल कर सकते हैं, कुछ कारकों के कारणय जैसे शहरीकरण, अंतर्जातीय विवाह, उच्च शिक्षा, सरकारी आरक्षण। कुछ लोगों और समूहों ने समाज में उच्च वर्ग का दर्जा भी प्राप्त कर लिया है। सामाजिक गतिशीलता की इस प्रक्रिया के कारण भारतीय समाज में अनेक परिवर्तन हुए हैं।

भारत में कई आदिवासी समाजों ने अपनी पारंपरिक मान्यताओं, रीति–रिवाजों, जीवन शैली और धर्म को त्याग दिया है, और हिंदू धर्म और संस्कृति का पालन करना शुरू करके हिंदू समाज में खुद को आत्मसात करने का प्रयास किया है।

एक हिंदू जाति की पहचान प्राप्त कर वे जाति–व्यवस्था में एक निश्चित स्थान प्राप्त करते हैं। लेकिन उनकी स्थिति निम्न जाति या अनुसूचित जाति के बराबर है। इस प्रकार, सामाजिक परिवर्तन भी हिंदूकरण के रूप में आया है।

संस्कृतीकरण का सिद्धांत प्रसिद्ध समाजशास्त्री एम. एन. श्रीनिवासन द्वारा विशेष रूप से प्रतिपादित किया गया है, हिन्दू समाज में परिवर्तन की व्याख्या करने के लिए।

टिप्पणी

वह उल्लेख करता है कि अक्सर यह देखा जाता है कि पारंपरिक निम्न जाति के लोग उच्च जाति के लोगों की संस्कृति का पालन करना शुरू कर देते हैं ताकि उच्च जाति के लोगों की स्थिति में खुद को ऊपर उठा सकें। इसे हासिल करने के लिए वे बहुत कुछ करते हैं, वे उच्च जाति के समाजों में अपना नाम रखते हैं, वे शाकाहारी बन जाते हैं, झूठे परिवार के पेड़ बनाते हैं, सफेद कपड़े और पवित्र धागा पहनना शुरू करते हैं और ऐसे व्यवसाय करते हैं जो अब तक उच्च जाति के लोगों के क्षेत्र में रहे हैं। समाज में उनकी स्थिति दो–तीन पीढ़ियों में बेहतर हो जाती है। उच्च प्रतिष्ठा का व्यवसाय करके, धार्मिक संस्कार करके, पुनर्जन्म जैसे शब्दजाल का उपयोग करके उच्च सामाजिक स्थिति प्राप्त करने की प्रक्रिया को संस्कृतीकरण कहा जाता है। संस्कृतीकरण की प्रक्रिया ने भारतीय समाज में भी परिवर्तन लाए हैं।

भारत में महत्वपूर्ण सामाजिक परिवर्तन लाने वाले धर्म– परिवर्तन की प्रक्रिया प्राचीन काल से ही देखी जाती रही है। विभिन्न धर्मों के अनुयायियों की अपनी जीवन शैली, विश्वास, वेशभूषा और व्यवहार पैटर्न होते हैं। उनमें धर्म परिवर्तन और अंतर्जातीय विवाह के माध्यम से सामाजिक परिवर्तन होते हैं। जैन धर्म और बौद्ध धर्म ने हिंदू समाज में कई बदलाव लाए हैं। बहुत लंबे समय से जैनियों और हिंदुओं में विवाह की परंपरा रही है। अंतर–धार्मिक विवाह हिंदुओं और सिखों में काफी आम थे; किन्तु बहुत पहले नहीं। सांप्रदायिकता और क्षेत्रवाद की वृद्धि के कारण अंतर–धार्मिक विवाह कम हो गए हैं। सिख या हिंदू लड़कियों की शादी मुसलमानों से होती है। ईसाई मिशनरियों के प्रचार के परिणामस्वरूप अनुसूचित जाति और जनजाति के कई लोग ईसाई धर्म में परिवर्तित हो गए हैं। आजादी के बाद, हजारों हरिजनों ने हिंदू धर्म छोड़ दिया और बौद्ध धर्म में परिवर्तित हो गए; अम्बेडकर से प्रभावित होने के बाद पिछले कई वर्षों में लाखों हिंदुओं को मुसलमान बनाया गया। मेव समाज ऐसे ही धर्म परिवर्तन का परिणाम है। धर्म परिवर्तन से समाज और लोगों की संस्कृति में परिवर्तन होता है। भारत में सामाजिक परिवर्तन लाने में धर्म परिवर्तन की प्रक्रिया महत्वपूर्ण रही है।

हमारा संविधान 26 जनवरी, 1950 को लागू हुआ। संविधान ने सभी को समान अधिकार, समान अवसर और सार्वभौमिक वयस्क मताधिकार दिया। सच्चा लोकतंत्र लोकप्रिय चुनावों के माध्यम से स्थापित किया गया था। इसने भारत के सभी नागरिकों के राजनीतिकरण की प्रक्रिया शुरू की; चाहे वे पुरुष हों या महिला, गरीब हों या अमीर, युवा हों या बूढ़े, ग्रामीण हों या शहरी। इसके कारण जीवन के कई क्षेत्रों में सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक, धार्मिक आदि प्रभाव देखे जा सकते हैं। राजनीतिकरण ने सांस्कृतिक संगठनों, नौकरियों, शैक्षणिक संस्थानों, व्यापार, कारखानों, परिवारों और विवाहों को प्रभावित किया है। व्यक्तिवाद की भावना बढ़ी है। जातिवाद, सांप्रदायिकता, भाषाई भावनाएँ और क्षेत्रवाद बढ़ा है। ग्रामीण और शहरी क्षेत्रों में समूहवाद और प्रभाव के नए आदर्श सामने आए हैं। इससे भ्रष्टाचार, मद्यपान, पक्षपात, नौकरी में सगे–संबंधियों को वरीयता आदि में वृद्धि हुई है। राजनीतिकरण के सकारात्मक और नकारात्मक दोनों प्रभाव जीवन के कई पहलुओं में देखे जा सकते हैं।

धर्मनिरपेक्षता की प्रक्रिया के परिणामस्वरूप लोगों के विचारों, व्यवहारों, विश्वासों, विश्वासों आदि में कई बदलाव देखे जा सकते हैं। धर्मनिरपेक्षता के कारण लोग अपनी

टिप्पणी

पसंद और अपने जीवन के लिए क्या अच्छा है या क्या बुरा, इस पर अधिक ध्यान देने लगे हैं। पहले, किसी का पेशा पारंपरिक या पारिवारिक वंश पर आधारित हुआ करता था। लेकिन अब लोग मुख्य रूप से कमाई की क्षमता के आधार पर पेशा चुन रहे हैं। धर्मनिरपेक्षता के कारण ही कोई ब्राह्मण, क्षत्रिय या वैश्य भी बेझिझक चमड़े के जूते का कारखाना, शराब की दुकान, या जूते की दुकान शुरू कर सकता है। विभिन्न जातियों के लड़के और लड़कियाँ अपराध या भय की भावना के बिना अक्सर अंतर्जातीय विवाह करते हैं। त्योहारों, जन्मों, विवाहों आदि के दौरान धार्मिक अनुष्ठान सिर्फ एक औपचारिकता बनकर रह गए हैं। धर्मनिरपेक्षता के कारण कई बदलाव हो रहे हैं।

भारत में आधुनिकीकरण की शुरुआत 19वीं सदी में हुई थी। पाश्चात्य शिक्षा से प्रभावित होने के कारण राजा राममोहन राय ने सभी नागरिकों के बीच और पुरुषों और महिलाओं के बीच समानता लाने की कोशिश की। उन्होंने अनेक सामाजिक कुरीतियों को दूर करने का प्रयास किया। पंचवर्षीय योजनाएँ स्वतंत्रता के बाद शुरू हुईं और परिणामस्वरूप, आर्थिक, सामाजिक और राजनीतिक क्षेत्रों में उत्पादन में वृद्धि हुई और औद्योगीकरण की गति में वृद्धि हुई। सूती वस्त्रों, उर्वरकों, दवाओं, सीमेंट, मशीनों, परमाणु ऊर्जा आदि के लिए कई कारखाने और संयंत्र खोले गए जिससे प्रति व्यक्ति आय में वृद्धि हुई। साक्षरता का प्रतिशत बढ़ा। शिक्षा में विशेषज्ञता बढ़ी है। बुद्धिजीवियों ने समाज के लिए कई नीतियाँ बनाई हैं और राष्ट्र हित में काम किया है। नये नियम जैसे विधवा पुनर्विवाह अधिनियम, बाल विवाह निषेध, सती प्रथा का उन्मूलन आदि ने कई पुरानी परंपराओं को तोड़ा है। औद्योगीकरण और शहरीकरण ने आधुनिकीकरण को बढ़ावा दिया है। पहले आबादी का एक बड़ा हिस्सा गाँवों में रहता था, लेकिन अब शहरों में मजदूरों की आबादी बढ़ गई है। परिणामस्वरूप, परिवार, जाति और संबंध संबद्धता में बदल गया है, और धर्म का प्रभाव कम हो गया है। धर्म, रंग, लिंग, समुदाय, जन्म आदि पर आधारित मतभेदों को देश के कानून के अनुसार समाप्त कर दिया गया और इसके बजाय नागरिकों को स्वतंत्रता और समानता का अधिकार प्रदान किया गया। इससे लोगों को उनके अस्तित्व को स्वीकार करने में मदद मिली।

आधुनिकीकरण ने न केवल सामाजिक और आर्थिक क्षेत्रों में परिवर्तन लाया है बल्कि इसका प्रभाव संस्कृति और राजनीति में भी उल्लेखनीय है। सार्वभौमिक मताधिकार के प्रावधान ने पुरुषों और महिलाओं को समान मतदान का अधिकार दिया है और इसके परिणामस्वरूप चुनावों के दौरान मतदान प्रतिशत में वृद्धि हुई है। सभी क्षेत्रों में आधुनिकीकरण बढ़ा है, जैसे – जाति, परिवार, वंश, संबंध, त्योहार, विश्वास आदि सहित। व्यापार का दायरा बढ़ा है और जाति आधारित व्यवसायों में परिवर्तन आया है। कृषि के क्षेत्र में आधुनिक तकनीक का व्यापक रूप से उपयोग किया जा रहा है। आज प्रत्येक ग्रामीण अपनी आय और आय के स्रोतों को बढ़ाने का प्रयास कर रहा है। आज गाँवों में भी पक्के मकान देखे जा सकते हैं। भौतिक सुख सुविधाओं में वृद्धि हो रही है और जीवन की गुणवत्ता में सुधार हो रहा है। यह कहा जा सकता है कि आधुनिकीकरण की प्रक्रिया ने सामाजिक संगठन के हर पहलू में परिवर्तन लाया है।

टिप्पणी

अपनी प्रगति जांचिए

1. किसने कई सामाजिक बुराइयों को जन्म दिया है?
   (क) अंग्रेजों ने (ख) अमेरिकियों ने
   (ग) औद्योगीकरण ने (घ) विदेशियों ने
2. कहां पर धर्म परिवर्तन की प्रक्रिया प्राचीन काल से ही देखी जाती रही है?
   (क) भारत में (ख) अमेरिका में
   (ग) इंग्लैंड में (घ) रूस में

2.3 परिवर्तन की प्रक्रियाएं

भारत पूरी दुनिया में सबसे पुरानी, निरंतर और अबाधित जीवित सभ्यताओं में से एक है जिसे हिंदू धर्म के रूप में जाना जाता है। भारतीय सभ्यता की प्रमुख विशेषताओं में से एक इसकी 'जाति–व्यवस्था' है। जाति व्यवस्था समाज को स्तरीकृत करने का एक अनूठा तरीका है। इसकी अवधारणा, उत्पत्ति और अभ्यास विशेष रूप से भारत में किया गया है। इसने भारतीय समाज को एक विशिष्ट पहचान दी है। जाति–व्यवस्था भारत के संपूर्ण सामाजिक ताने–बाने में चलने वाली प्रमुख विशेषताओं में से एक है। जातियों की अपनी जातीय जड़ें हैं, जैसा कि ''जाति'' द्वारा दर्शाया गया है, और इसके वर्ण पहलू में एक कर्मकांड और प्रतीकात्मक महत्व है। इसने पूरे भारत की संस्कृति को बहुत प्रभावित किया है। जाति व्यवस्था ने बिना किसी रुकावट के अपनी निरंतरता बनाए रखी है। यह समय के उतार–चढ़ाव से बच गया है, केवल अनुकूलन क्षमता के कारण भीतर से क्षरण और बाहर से हमले से खुद को बचाया है। इसकी शोषक प्रकृति ने विदेशी प्रभावों को आंतरिक कर दिया है। बदलते समय और स्थान के साथ इसने अलग–अलग रंग और अर्थ लिए हैं। सिंधु घाटी सभ्यता के दौरान इसका चरित्र आज के अस्तित्व से बिल्कुल अलग था। यह अभी क्षणिक अवस्था में है। इसकी छाया गाँव, मोहल्ले, क्षेत्र या धर्म के सन्दर्भ में भिन्न है। एक बार बदल जाने के बाद, सिस्टम अपने मूल स्वरूप में कभी नहीं लौटा। इसकी शोषक प्रकृति ने विदेशी प्रभावों को आंतरिक कर दिया है। हालांकि भारतीय समाज जो कि जाति व्यवस्था पर आधारित है, को अक्सर ''बंद समाज'' के रूप में माना जाता है, यह पूरी तरह से परिवर्तनहीन नहीं है। जाति के ढाँचे के भीतर ही किसी प्रकार की गतिशीलता देखी जाती है। भारत में जो सामाजिक–सांस्कृतिक परिवर्तन हुए हैं, उन्हें मुख्य रूप से इन प्रक्रियाओं में वर्गीकृत किया जा सकता है, अर्थात संस्कृतीकरण, पश्चिमीकरण और आधुनिकीकरण। ये तीन प्रक्रियाएं भारतीय जनता की ओर से जाति व्यवस्था के ढाँचे के भीतर और बाहर कुछ मात्रा में गतिशीलता हासिल करने के प्रयास को दर्शाती हैं।

2.3.1 संस्कृतीकरण

भारतीय समाजशास्त्र में संस्कृतीकरण शब्द की शुरुआत प्रो. एम.एन. श्रीनिवास ने की। यह शब्द एक ऐसी प्रक्रिया को संदर्भित करता है जिसके द्वारा निचली जातियों के लोग सामूहिक रूप से उच्च स्थिति प्राप्त करने के लिए प्रारंभिक कदम के रूप में उच्च जाति

टिप्पणी

प्रथाओं और मान्यताओं को अपनाने का प्रयास करते हैं। इस प्रकार, यह सांस्कृतिक गतिशीलता की एक प्रक्रिया को इंगित करता है जो भारत की पारंपरिक सामाजिक व्यवस्था में हुई थी। संस्कृतीकरण का अर्थ कोई नई घटना नहीं है। यह भारतीय इतिहास में सांस्कृतिक परिवर्तन की एक प्रमुख प्रक्रिया रही है, और यह भारतीय उपमहाद्वीप के हर हिस्से में हुई है। यह उस प्रक्रिया को दर्शाता है जिसमें निचली जातियाँ अपनी सामाजिक स्थिति को ऊपर उठाने के लिए संस्कृतीकरण, आधुनिकीकरण और पश्चिमीकरण के प्रयास में उच्च जातियों की जीवन–शैली का अनुकरण करने का प्रयास करती हैं। यह प्रक्रिया स्थानीय ''प्रमुख जाति'' की भूमिका से जुड़ी हुई प्रतीत होती है। एम.एन. श्रीनिवास ने 1971 में प्रकाशित अपने ''सोशल चेंज इन मॉडर्न इंडिया'' में संस्कृतीकरण की परिभाषा दी। इसका अर्थ है ''एक ऐसी प्रक्रिया जिसके द्वारा एक निम्न जाति या एक जनजाति या अन्य समूह अपने रीति–रिवाजों, विचारधारा और जीवन के तरीके को एक उच्च की दिशा में बदल देता है। अक्सर, दो बार जन्म लेने वाली जाति। "संस्कृतीकरण की प्रक्रिया का विश्लेषण ऊर्ध्वगामी गतिशीलता की प्रक्रिया को दर्शाता है। इस प्रक्रिया में, एक जाति, जाति पदानुक्रम में अपनी स्थिति को एक बार में नहीं, बल्कि समय के साथ बढ़ाने की कोशिश कर रही है। इसमें कभी–कभी एक या दो पीढ़ियों का समय लग जाता था। संस्कृतीकरण की प्रक्रिया में शामिल गतिशीलता का परिणाम केवल विशेष जातियों या जातियों के वर्गों के लिए ''स्थितिगत परिवर्तन'' होता है, और जरूरी नहीं कि एक ''संरचनात्मक परिवर्तन'' हो। इसका अर्थ यह है कि जब अलग–अलग जातियाँ ऊपर या नीचे जाती हैं, तो संरचना वैसी ही बनी रहती है। जिन जातियों को उच्च आर्थिक और राजनीतिक शक्ति प्राप्त थी, लेकिन अनुष्ठान रैंकिंग में अपेक्षाकृत कम दर्जा दिया गया था, वे संस्कृतीकरण के बाद चली गईं क्योंकि उन्हें लगा कि उच्च पद के लिए उनका दावा पूरी तरह से प्रभावी नहीं था। आर्थिक सुधार संस्कृतीकरण के लिए एक आवश्यक पूर्व–शर्त नहीं है, न ही आर्थिक विकास अनिवार्य रूप से संस्कृतीकरण की ओर ले जाता है। हालाँकि, कभी–कभी एक समूह (जाति/जनजाति) राजनीतिक शक्ति प्राप्त करके शुरू कर सकता है और इससे आर्थिक विकास और संस्कृतीकरण हो सकता है। संस्कृतीकरण जरूरी नहीं कि हिंदू समुदाय की जातियों तक ही सीमित हो, यह आदिवासी समुदायों में भी पाया जाता है। पश्चिमी भारत के भील, मध्य भारत के गोंड और उरांव और हिमालयी क्षेत्र के पहाड़िया संस्कृतीकरण के प्रभाव में आ गए हैं। ये आदिवासी समुदाय अब खुद को हिंदू होने का दावा कर रहे हैं। संस्कृतीकरण की प्रक्रिया एक ''संदर्भ समूह'' के रूप में कार्य करती है। इस प्रक्रिया के माध्यम से एक जाति समूह अपने विश्वासों, प्रथाओं, मूल्यों, दृष्टिकोणों और ''जीवन–शैली'' को किसी अन्य श्रेष्ठ या प्रभावशाली समूह के संदर्भ में उन्मुख करने का प्रयास करता है, ताकि उसे कुछ मान्यता भी मिल सके। संस्कृतीकरण सभी स्थानों पर एक ही प्रकार से नहीं होता है।

संस्कृतीकरण का प्रभाव

आधुनिक शिक्षा, पश्चिमी साहित्य और लोगों के दर्शन का विस्तार हुआ और परिणामस्वरूप लोगों के मानसिक क्षितिज और दूरदर्शी बदल गए। उन्होंने तर्कसंगतता और अन्य अच्छी विशेषताओं का स्वागत किया और उदार, और मानवीय विचारों और विचारों का अच्छा उपयोग किया। वेदों की कल्पना बौद्धिक चिंतन और अनुभवजन्य अवलोकन के माध्यम से की गई है और मानव कल्पना के निर्माण के लिए उपनिषदों (वेदों या

टिप्पणी

पौराणिक कथाओं की व्याख्या) का उपयोग किया गया है। सुधारवादियों और उनके संगठनों का विशुद्ध रूप से आर्थिक और सामाजिक जोर था। उनका उद्देश्य वैदिक शिक्षाओं और प्रथाओं के आधार पर एक सामाजिक व्यवस्था स्थापित करना था। उन्होंने अज्ञानी और गरीब जनता को फंसाने के लिए कुछ स्वार्थी लोगों द्वारा बनाए गए कर्मकांडों और अंधविश्वासों के मंबो–जंबो (अनावश्यक, जटिल, अस्पष्ट, अंधविश्वासी अनुष्ठानिक प्रथाएं) की आलोचना की। उन्होंने वेदों की तर्कसंगत और वैज्ञानिक तरीके से व्याख्या करने पर जोर दिया। इसने अनुष्ठान और धर्मनिरपेक्ष रैंकिंग के बीच के अंतर को कम कर दिया या हटा दिया। इसने कमजोर व्यक्तियों के उत्थान में भी मदद की। निम्न जाति समूह जो सफलतापूर्वक धर्मनिरपेक्ष सत्ता की सीट पर आ गया, इसने भी ब्राह्मणों की सेवाओं का लाभ उठाने की कोशिश की, विशेष रूप से अनुष्ठानों को देखने, पूजा करने और भगवान को चीजें चढ़ाने के समय। संस्कृतीकरण की मुख्य विशेषताएं इस प्रकार हैं–

1. संस्कृतीकरण की प्रक्रिया निम्न जाति के हिंदुओं, जनजाति और कुछ अन्य समूहों से संबंधित है। उपरोक्त समूहों ने हिंदू जाति व्यवस्था के पदानुक्रम में अपनी सामाजिक स्थिति को बढ़ाने के लिए संस्कृतीकरण का सहारा लिया है। भील, उरांव, संथाल और गोंड और हिमालय के पहाड़ी इलाकों की कुछ जनजातियाँ उन लोगों में शामिल हैं जिन्होंने अपनी सामाजिक स्थिति को बढ़ाने और संस्कृतीकरण के माध्यम से हिंदू समाज का हिस्सा बनने की कोशिश की है। वे लोग जो कभी हिंदू धर्म या संस्कृति से संबंधित नहीं थे; बल्कि अन्य धर्मों या संस्कृतियों से संबंधितय अन्य समूहों के अंतर्गत आते हैं।
2. लोग एक जाति की जीवन शैली का पालन करते हैं जो उनकी जाति से ऊँची है, संस्कृतीकरण की प्रक्रिया से गुजरना। लोग उच्च जाति की परंपराओं, रीति–रिवाजों, खाने की आदतों, विश्वासों और मूल्यों को प्राप्त करते हैं।
3. संस्कृतीकरण के एक से अधिक आदर्श या मॉडल हैं। इसका मतलब है कि यह केवल ब्राह्मण नोट नहीं थे जो वानर थेय लेकिन यहाँ तक कि क्षत्रिय, वैश्य या किसी अन्य स्थानीय श्रेष्ठ जाति का भी पालन किया जाता था और उनकी जीवन शैली की नकल निम्न जाति या आदिवासी समूहों के लोगों द्वारा की जाती थी। पोकॉक ने कहा है कि निचली जाति के लिए आदर्श जातियाँ वे हैं जिनसे उनका संबंध सबसे अधिक होता है। प्रो. श्रीनिवास भी पोकॉक के बयान से सहमत थे।
4. उन्नत समाजीकरण का विचार संस्कृतीकरण की प्रक्रिया में शामिल है। डॉ. योगेंद्र सिंह का मानना है कि संस्कृतीकरण उन्नत समाजीकरण है। इसका अर्थ यह हुआ कि कोई भी निम्न जाति समूह किसी भी उच्च जाति की जीवन शैली के प्रति समाजीकरण की प्रक्रिया से गुजरता है ताकि वह भविष्य में उच्च स्थान प्राप्त कर सके। कोई भी जाति समूह इस प्रयास में आसानी से सफल हो सकता है जब उसकी राजनीतिक और आर्थिक शक्ति बढ़ रही हो या वह किसी मठ या किसी धार्मिक केंद्र के साथ संबंध बनाता हो।

टिप्पणी

5. संस्कृतीकरण की मुख्य विशेषताओं में से एक यह है कि यह प्रक्रिया है जो मौलिक संरचना के बजाय स्थिति में परिवर्तन लाती है। इसका तात्पर्य है कि एक जाति समूह कुछ अन्य समकालीन जातियों के संबंध में आगे बढ़ सकता है लेकिन जाति व्यवस्था में ही स्पष्ट परिवर्तन होता है। संस्कृतीकरण की प्रक्रिया सामाजिक गतिशीलता को प्रकट करती है। यह किसी भी निम्न जाति के ऊपर की ओर गतिशीलता की संभावना पैदा करता है।
6. संस्कृतीकरण की प्रक्रिया सामाजिक और सांस्कृतिक परिवर्तनों को प्रकट करती है। मिल्टन सिंगर ने लिखा है, ''संस्कृतीकरण का सिद्धांत; एम. एन. श्रीनिवास द्वारा; भारतीय सभ्यता में सांस्कृतिक और सामाजिक परिवर्तनों का व्यापक रूप से स्वीकृत मानवशास्त्रीय सिद्धांत है।'' इसका अर्थ यह हुआ कि संस्कृतीकरण न केवल सामाजिक परिवर्तन की एक प्रक्रिया है बल्कि सांस्कृतिक परिवर्तनों की भी एक प्रक्रिया है। भाषा, साहित्य, विज्ञान, दर्शन, चिकित्सा और धार्मिक प्रवचन आदि में परिवर्तन जो संस्कृतीकरण के परिणामस्वरूप हुए हैं, सांस्कृतिक परिवर्तन के अंतर्गत भी आते हैं।
7. संस्कृतीकरण की प्रक्रिया– एक व्यक्ति या एक परिवार के बजाय एक समूह से संबंधित है। कोई भी जाति या आदिवासी समूह इस प्रक्रिया के माध्यम से अपनी स्थिति को बढ़ाने का प्रयास कर सकता है। यदि कोई व्यक्ति या परिवार ऐसा करने का प्रयास करता है तो वह न केवल अन्य जातियों को बल्कि अपनी ही जाति के सदस्यों को भी परेशान करता है।
8. बर्नार्ड कोहेन और हेरोल्ड गोल्ड द्वारा किए गए अध्ययनों के आधार पर; प्रो श्रीनिवास ने कहा है कि जहाँ निम्न जातियाँ अपनी जीवन शैली का संस्कृतीकरण कर रही हैं, वहीं ऊँची जातियाँ आधुनिकीकरण और धर्मनिरपेक्षता की ओर बढ़ रही हैं।

प्रो. श्रीनिवास ने स्वयं महसूस किया कि प्रारंभ में उन्होंने संस्कृतीकरण के ब्राह्मणवादी आदर्शों पर अनावश्यक रूप से बल दिया। वास्तविकता यह है कि ब्राह्मण हमेशा से ही संस्कृतीकरण के आदर्श नहीं रहे हैं। पोकॉक ने क्षत्रिय आदर्शों के अस्तित्व के बारे में चर्चा की है। मिल्टन सिंगर ने कहा है कि संस्कृतीकरण के सिर्फ एक या दो आदर्श नहीं हो सकते, और चार नहीं तो कम से कम तीन आदर्श हो सकते हैं। पहले तीन वर्णों के लोगों को द्विज कहा जाता है क्योंकि उन्हें पवित्र धागा समारोह से गुजरना पड़ता है। वे वैदिक अनुष्ठान करने के भी हकदार हैं जिसमें वेदों के भजनों का पाठ किया जाता है। श्रीनिवास के अनुसारय 'द्विज' में ब्राह्मण इन अनुष्ठानों को करते समय सबसे अधिक सावधान रहते हैं और इसलिए उन्हें दूसरों की तुलना में सबसे अच्छा आदर्श माना जाना चाहिए। लेकिन हमें यह नहीं भूलना चाहिए कि ब्राह्मण जाति में ही बहुत अंतर है। ब्राह्मणों के अलावाय क्षत्रिय और वैश्य भी संस्कृतीकरण के आदर्श रहे हैं। देश के विभिन्न भागों में, वे सभी समूह; जिन्होंने सैन्य सेवाओं और व्यापार की परंपरा को बनाए रखा है, क्रमशः क्षत्रिय या वैश्य होने का दावा। देश के विभिन्न भागों में भी क्षत्रियों और वैश्यों के कर्मकांडों की परंपराओं में शायद ही कोई समानता हो। उनमें से कई उन अनुष्ठानों को नहीं करते हैं जिन्हें द्विज वर्ण के लिए अनिवार्य माना जाता है। कुछ समूहों ने ब्राह्मणों का अनुसरण किया है, कुछ ने क्षत्रियों का अनुसरण

टिप्पणी

किया है और कुछ ने वैश्यों का अनुसरण किया है और अपनी जीवन शैली का पालन किया है।

नाई, कुम्हार, बढ़ई, लोहार, बुनकर, चरवाहा आदि जातियाँ 'अशुद्धता' की रेखा से ठीक ऊपर हैं क्योंकि वे अछूत समूहों के करीब हैं। ये जातियाँ अछूतों का प्रतिनिधित्व करने वाली लगती हैं। प्रो श्रीनिवास की टिप्पणियों के आधार पर; यह अनुभव किया गया है कि शूद्रों की विस्तृत श्रेणी में कुछ अन्य जातियों का कम संस्कृतीकरण हुआ है। कुछ प्रभावशाली कृषक समुदाय संस्कृतीकरण के लिए अपनाए जाने वाले स्थानीय आदर्शों को प्रस्तुत करते हैं। पोकॉक और सिंगर के अनुसार क्षत्रिय (और अन्य) आदर्श ऐसी जातियों के माध्यम से ही प्राप्त किए जा सकते हैं।

स्थानीय प्रभावशाली जाति संस्कृतकिरण की प्रक्रिया में एक महत्वपूर्ण भूमिका निभाती है। यदि स्थानीय प्रभावशाली जाति ब्राह्मण है, तो संस्कृतीकरण का आदर्श ब्राह्मणवादी होगा। इसी तरह, यह क्षत्रिय या वैश्य होगा यदि स्थानीय प्रभावशाली जाति क्रमशः क्षत्रिय या वैश्य है। प्रो. श्रीनिवास के अनुसार यद्यपि निम्न जातियों में ब्राह्मणवादी रीति–रिवाजों और परम्पराओं का प्रसार लम्बे समय से होता आ रहा है, लेकिन इस बीच स्थानीय प्रभावशाली जातियों का भी अन्य लोगों द्वारा पालन किया जाता रहा है और प्रायः इन प्रभावशाली जातियों का पालन नहीं किया जाता था। यह कहा जा सकता है कि ब्राह्मणवादी परंपराएं कई निचली जातियों में प्रक्रियाओं की एक श्रृंखला के माध्यम से पहुँची हैं, यानी प्रत्येक समूह ने उच्च स्तर से कुछ हासिल किया था और निचले स्तर पर लोगों को कुछ दिया था।

संस्कृतीकरण की आलोचना : जे.एफ. स्टॉल के अनुसार, श्रीनिवास और अन्य मानवविज्ञानियों द्वारा प्रयुक्त संस्कृतीकरण एक जटिल अवधारणा या अवधारणाओं का एक वर्ग है। यह शब्द अपने आप में भ्रामक प्रतीत होता है, क्योंकि संस्कृत शब्द से इसका संबंध अत्यंत जटिल है। योगेंद्र सिंह का मत है कि संस्कृतीकरण अतीत और समकालीन भारत में सांस्कृतिक परिवर्तन के कई पहलुओं के लिए जिम्मेदार नहीं है क्योंकि यह गैर–संस्कृत परंपराओं की उपेक्षा करता है। देश के सभी भागों में संस्कृति का प्रभाव सार्वभौमिक नहीं रहा है। अधिकांश उत्तरी भारत में, विशेष रूप से पंजाब में, यह इस्लामी परंपरा थी जिसने सांस्कृतिक नकल के लिए एक आधार प्रदान किया। जब हम संस्कृतीकरण के आलोक में सामाजिक गतिशीलता के क्षेत्र में हुए कुछ परिवर्तनों की व्याख्या करने का प्रयास करते हैं, तो हमें कुछ विरोधाभासों का सामना करना पड़ता है। डॉ. श्रीनिवास के अनुसार, राजनीतिक और आर्थिक ताकतें संस्कृतीकरण के लिए सामान्य रूप से अनुकूल हैं। लेकिन ''आरक्षण की नीति'' निचली जाति और वर्ग के लोगों की स्थिति को ऊपर उठाने के लिए एक राजनीतिक–संवैधानिक प्रयास है, यहाँ एक अलग तस्वीर प्रस्तुत करता है। सैद्धांतिक रूप से आरक्षण की नीति संस्कृतीकरण की समर्थक होनी चाहिए। लेकिन विडंबना यह है कि यह इसके खिलाफ जाता है। जो लोग ''आरक्षण'' का लाभ उठाते हैं, उन्होंने खुद को ''दलित'' या अनुसूचित जाति के लोग कहने में निहित स्वार्थ विकसित किया है। वे आरक्षण के लाभों का स्थायी रूप से लाभ उठाने के लिए ऐसा कहलवाया जाना चाहते हैं।

टिप्पणी

2.3.2 पश्चिमीकरण

भारत में जाति व्यवस्था के पश्चिमीकरण की प्रक्रिया मिशनरियों द्वारा अधिक से अधिक भारतीयों को ईसाई धर्म में परिवर्तित करने के उन्मत्त प्रयासों के साथ शुरू हुई और भारत में ईस्ट इंडिया कंपनी के आने से पहले व्यापार करने के लिए और बाद में भारत में अपनी राजनीतिक शक्ति बढ़ाने के लिए . ईस्ट इंडिया कंपनी ने 1858 तक भारत में सफलतापूर्वक 'ब्रिटिश शाही शासन' की स्थापना की। ब्रिटिश शासन ने भारतीय समाज और संस्कृति में आमूलचूल और स्थायी परिवर्तन किए। अंग्रेज अपने साथ नई तकनीक, संस्थान, ज्ञान, विश्वास और मूल्य लेकर आए। ये व्यक्तियों और समूहों के लिए सामाजिक गतिशीलता का मुख्य स्रोत बन गए हैं। इस संदर्भ में एम.एन. श्रीनिवास ने ''पश्चिमीकरण'' शब्द की शुरुआत मुख्य रूप से ब्रिटिश शासन के माध्यम से पश्चिमी संपर्क के कारण भारतीय समाज और संस्कृति में हुए परिवर्तनों की व्याख्या करने के लिए की थी।

लिंच ने श्रीनिवास के हवाले से लिखा है, ''पश्चिमी वेशभूषा, खाने की आदत, क्या करें और क्या न करें, शिक्षा, तरीके, खेल, मूल्य आदि पश्चिमीकरण में शामिल हैं। इन परिभाषाओं से यह स्पष्ट है कि पश्चिमीकरण के आधार में भारत में वे सभी सामाजिक परिवर्तन और संस्थागत नवीनीकरण शामिल थे जो मुख्य रूप से पश्चिमी देशों के साथ राजनीतिक और सांस्कृतिक जुड़ाव के कारण आए हैं, खासकर इंग्लैंड। पश्चिमीकरण का तात्पर्य विभिन्न परिवर्तनों से है, जैसे वेशभूषा, खाने की आदतें, जीवन शैली आदि। डॉ. योगेंद्र सिंह ने लिखा है, ''मानवतावाद और तर्कवाद पर जोर पश्चिमीकरण का एक हिस्सा है और उस जोर ने भारत में संस्थागत और सामाजिक सुधारों की प्रक्रिया शुरू की थी। देश में वैज्ञानिक, औद्योगिक और शैक्षणिक संस्थानों की स्थापना, राष्ट्रवाद का उदय, नई राजनीतिक संस्कृति और नेतृत्वय ये सभी पश्चिमीकरण के उपोत्पाद हैं।'' यह स्पष्ट है कि पश्चिमीकरण ने भारतीयों को मानवीय दृष्टिकोण का पालन करने और तार्किक रूप से सोचने के लिए प्रेरित किया था। पश्चिमीकरण का मतलब केवल पश्चिमी तरीकों और साधनों को हासिल करना नहीं है। यह जटिल और सार्वभौमिक आधार है। विज्ञान, प्रौद्योगिकी, प्रयोगात्मक रूप से सिद्ध विधियाँ आदि इसके अंतर्गत आते हैं। पश्चिमीकरण ने समानतावादी और धर्मनिरपेक्ष दृष्टिकोण विकसित करने में मदद की है। लोग अब विभिन्न समस्याओं के लिए तार्किक दृष्टिकोण का अनुसरण करने लगे हैं।

एम.एन. श्रीनिवास के अनुसार, ''पश्चिमीकरण'' का अर्थ ''भारतीय समाज और संस्कृति में 150 से अधिक वर्षों के ब्रिटिश शासन के परिणामस्वरूप लाए गए परिवर्तनों से है और यह शब्द विभिन्न स्तरों – प्रौद्योगिकी, संस्थानों, विचारधारा और मूल्यों पर होने वाले परिवर्तनों को समाहित करता है।

पश्चिमीकरण का अर्थ : संस्कृतीकरण की तुलना में पश्चिमीकरण एक सरल अवधारणा है। यह भारतीय समाज और संस्कृति पर पश्चिमी संपर्क (विशेषकर ब्रिटिश शासन) के प्रभाव की व्याख्या करता है। एम.एन. श्रीनिवास ने ''पश्चिमीकरण'' शब्द का प्रयोग उन परिवर्तनों का वर्णन करने के लिए किया था जो एक गैर–पश्चिमी देश

टिप्पणी

पश्चिम (पश्चिमी देश/देशों) के साथ लंबे समय तक संपर्क के परिणामस्वरूप हुए थे। इसका अर्थ है, श्रीनिवास के अनुसार, ''कुछ मूल्य प्राथमिकताएं'', जो बदले में ''मानवतावाद'' जैसे कई मूल्यों को समाहित करती हैं। इसका तात्पर्य जाति, आर्थिक स्थिति, धर्म, आयु और लिंग के बावजूद सभी मनुष्यों के कल्याण के लिए एक सक्रिय सरोकार है। पश्चिमीकरण में न केवल नए संस्थानों की शुरूआत शामिल है, बल्कि पुराने संस्थानों में मूलभूत परिवर्तन भी शामिल हैं। उदाहरण के लिए, अंग्रेजों के आने से बहुत पहले भारत में स्कूल थे, लेकिन वे अंग्रेजों द्वारा शुरू किए गए स्कूलों से अलग थे। सेना, सिविल सेवा और कानून अदालत जैसे अन्य संस्थान भी इसी तरह प्रभावित हुए। हालाँकि, पश्चिमीकरण में वृद्धि संस्कृतीकरण की प्रक्रिया को धीमा नहीं करती है। दोनों एक साथ चलते हैं, और कुछ हद तक पश्चिमीकरण में वृद्धि संस्कृतीकरण की प्रक्रिया को तेज करती है। उदाहरण के लिए, डाक सुविधाएं, रेलवे, बसें और समाचार पत्र मीडिया, जो भारत पर पश्चिमी प्रभाव के फल हैं, अतीत की तुलना में अधिक संगठित धार्मिक तीर्थयात्रा, बैठकें, जाति एकजुटता आदि संभव बनाते हैं।

पश्चिमीकरण के लक्षण : श्रीनिवास ने पश्चिमीकरण की निम्नलिखित विशेषताओं का उल्लेख किया है:

1. नैतिक दृष्टिकोण से निष्पक्ष पश्चिमीकरण – नैतिक दृष्टिकोण से एक निष्पक्ष आधार है, अर्थात यह आधार हमें यह नहीं बताता कि पश्चिमी प्रभाव के कारण भारत में परिवर्तन अच्छे हैं या बुरे। यह केवल परिवर्तनों के बारे में बताता है और आधार अच्छे या बुरे के मूल्यों से स्वतंत्र है।
2. एक सार्वभौमिक आधार– पश्चिमीकरण एक सार्वभौमिक आधार है जिसमें भौतिक और आध्यात्मिक संस्कृतियों से संबंधित सभी परिवर्तन आते हैं। वे सभी परिवर्तन जो प्रौद्योगिकी, धर्म, परिवार और जाति, राजनीति, परंपराओं, विश्वासों, मूल्यों, फैशन, खाने की आदतों, नोट्स जीवन शैली, परिवहन और संचार, कला, साहित्य, शिक्षा, न्यायपालिका, प्रशासन संस्थान और अन्य क्षेत्रों में भी पश्चिम के प्रभावपूर्ण हुए हैं। बी कुप्पुस्वामी का कहना है कि श्रीनिवास द्वारा प्रयोग किए गए पश्चिमीकरण के आधार में निम्नलिखित मुद्दे शामिल हैं: (अ) व्यवहार संबंधी पक्ष जैसे खाने की आदत, वेशभूषा, नृत्य आदि। (ब) ज्ञान के पक्ष जैसे साहित्य, विज्ञान आदि। (स) मूल्य पक्ष जैसे मानवतावाद, समानतावाद, धर्मनिरपेक्षता आदि।
3. एक वैज्ञानिक आधार– चूंकि पश्चिमीकरण का आधार मूल्य के दृष्टिकोण से एक निष्पक्ष आधार है इसलिए यह एक वैज्ञानिक आधार है। हम इस आधार की सहायता से समाज में हो रहे किसी भी परिवर्तन का विश्लेषण कर सकते हैं।
4. कई रूप– हम अंग्रेजी, अमेरिकी, रूसी और विभिन्न यूरोपीय रूपों या पश्चिमीकरण के आदर्शों को देख सकते हैं। कुछ तत्व सभी रूपों में समान हैं। जैसा कि अंग्रेजों ने पश्चिमीकरण के विभिन्न सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक, धार्मिक और भौतिक पहलुओं को पहचानने में भारतीयों की मदद की थी; इसलिए भारत में सभी अंग्रेजी आदर्श प्रचलित हैं। हालांकि अमेरिकी और रूसी रूप वर्तमान समय में प्रभावशाली होने लगे हैं।

टिप्पणी

5. जटिल और बहुस्तरीय प्रक्रिया– श्रीनिवास का कहना है कि पश्चिमीकरण की प्रक्रिया एक जटिल प्रक्रिया है और इसका प्रभाव सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक, धार्मिक, तकनीकी और अन्य स्तरों पर देखा जा सकता है। पश्चिमीकरण का समाज के विभिन्न पहलुओं पर अलग–अलग प्रभाव पड़ा है। कुछ पहलुओं को अत्यधिक प्रभावित किया गया है और कुछ अन्य पहलुओं की तुलना में अधिक परिवर्तनों का अनुभव किया है। कुछ लोगों ने पश्चिमी वेशभूषा और खान–पान की आदतों को हासिल कर लिया है, जबकि कुछ लोगों ने पश्चिमी आदर्शों, मूल्यों और मान्यताओं को हासिल कर लिया है, जबकि कुछ ने पश्चिमी तकनीक हासिल कर ली है। पश्चिमीकरण का प्रभाव समाज के हर पहलू पर एक समान नहीं रहा है। पश्चिमीकरण की गति भारत में हर जगह एक जैसी नहीं रही है। मैसूर के ब्राह्मण पश्चिमीकरण की दौड़ में सबसे आगे रहे हैं।
6. चेतन और अवचेतन प्रक्रिया– भारतीय समाज पर पश्चिमीकरण का प्रभाव चेतन और अवचेतन दोनों स्तरों पर रहा है । हम जानबूझकर कुछ पश्चिमी तत्वों को प्राप्त करते हैं, जबकि उनमें से कुछ अप्रत्यक्ष या अवचेतन रूप से हमें प्रभावित करते हैं और वे हमारे दैनिक जीवन और व्यवहार का हिस्सा बन जाते हैं।

पश्चिमीकरण और सामाजिक परिवर्तन के कुछ प्रभाव

भारत में ब्रिटिश शासन के लगभग 190 वर्षों के दौरान भारतीय समाज और संस्कृति में कई बदलाव आए हैं। यहाँ; हम भारत में खाने की आदतों, जीवन शैली, परंपराओं, धार्मिक, राजनीतिक और सामाजिक संस्थानों में हुए परिवर्तनों का उल्लेख करेंगे।

1. **भोजन और जीवन शैली में परिवर्तन** : अंग्रेजों से संबंध होने के कारण भारतीयों की खाने की आदत और जीवन शैली में कई बदलाव आए हैं। पारंपरिक व्यवस्था में ब्राह्मण और उच्च वर्ग के लोग शाकाहारी थे और वे मांस और शराब का प्रयोग नहीं करते थे। उन्होंने आलू, प्याज, लहसुन और चुकंदर जैसी विभिन्न जड़ों को भी नहीं खाया था। भोजन करने से पहले स्नान करना और पोछा लगाकर आंगन को शुद्ध करना अनिवार्य था, फिर साफ कपड़े पहनकर भोजन किया जाता था। लेकिन अंग्रेजी प्रभाव के कारण सभी जातियों के लोग मांस, शराब और अंडे का उपयोग करने लगे और सभी प्रकार के कंदों का भी उपयोग करने लगे; जैसे आलू, लहसुन, प्याज, चुकन्दर आदि। अब खाना खाने से पहले नहाना या साफ कपड़े पहनना जरूरी नहीं समझा जाता। अब खाने से पहले जूते उतारना जरूरी नहीं समझा जाता है। लोग अब होटलों और रेस्तरां में बने खाद्य पदार्थों का उपयोग करने लगे हैं, जैसे भोजन, चाय, कॉफी, बिस्किट, केक, आइसक्रीम, मिठाई, नाश्ता आदि जो पहले नहीं खाते थे। सिगरेट और चुरूट पीने का चलन भी बढ़ा। अब लोग धोती और कुर्ते की जगह पैंट, कोट, कमीज, टाई और टोपी का प्रयोग करने लगे और बाल रखने की प्रथा बढ़ती गई। महिलाओं ने लहंगा और साड़ी की जगह जींस, मैक्सी, गाउन, टॉपलेस ड्रेस पहनना शुरू कर दिया। बन और

टिप्पणी

बॉब कट बाल रखने का चलन बढ़ा। सौंदर्य प्रसाधनों का उपयोग भी तेजी से बढ़ा है।

2. **सामाजिक जीवन और संस्थाओं में परिवर्तन** : पश्चिमीकरण के परिणामस्वरूप भारतीय सामाजिक जीवन और संस्थाओं में भी कई परिवर्तन हुए। जाति व्यवस्था, संयुक्त परिवार व्यवस्था, विवाह और महिलाओं की सामाजिक स्थिति में परिवर्तन हुए हैं।

   (i) जाति व्यवस्था में बदलाव : अंग्रेजों के भारत आने से पहले, भारत में जाति व्यवस्था पूरी तरह से अनम्य थी। यह वह जाति थी जिसने किसी व्यक्ति की गतिविधियों को जन्म से लेकर मृत्यु तक तय किया। लेकिन जब अंग्रेज भारत आए, तो उन्होंने बड़े उद्योग स्थापित किए, औद्योगीकरण और शहरीकरण की नींव रखी, भारतीयों को परिवहन और संचार के आधुनिक साधनों से परिचित कराया; जैसे रेलवे, बस, रिक्शा, ट्राम, हवाई जहाज, सड़क, डाक सेवाएं, टेलीग्राफ, प्रेस, समाचार पत्र आदि। अब, विभिन्न जातियों के लोग कारखानों में एक साथ काम करने लगे, एक साथ यात्रा करने लगे। उसके कारण अस्पृश्यता कम हुई और जातिवादी श्रेष्ठता या हीनता की भावनाएँ कम हुईं। यहाँ तक कि एक जाति के लोग दूसरी जातियों के व्यवसायों में संलग्न होने लगे। अन्तर्जातीय विवाहों की प्रवृत्ति बढ़ी, तरजीही सम्बन्ध समाप्त हुए और अन्य जातियों की सेवाओं को पैसे के बदले खरीदा जा सकता था। एक व्यक्ति को अब उसकी जाति के आधार पर नहीं बल्कि उसके चरित्र के आधार पर महत्व दिया जाता था। खाने की आदतों पर जाति आधारित प्रतिबंध कम हुए और जाति आधारित पंचायतों का महत्व कम हुआ। पश्चिम के संवैधानिक और समानतावादी मूल्यों ने जातिगत मतभेदों को कम किया और समानता की भावना का प्रचार किया।

   (ii) विवाह में परिवर्तन : पारंपरिक हिंदू समाज में, एक व्यक्ति अपनी जाति में ही विवाह कर सकता था। विधवाओं को पुनर्विवाह की अनुमति नहीं थी और बाल–विवाह प्रचलित था, बहुविवाह की परंपरा थी, और शादी को एक धार्मिक अनुष्ठान माना जाता था और तलाक की कोई प्रवृत्ति नहीं थी। एक ही गोत्र और एक ही वंश के नियमों का पालन किया जाता था, लेकिन पश्चिमी विचारों, मूल्यों और मान्यताओं ने विवाह के नियमों में कई बदलाव लाए। बाल–विवाह कम हुए, देर से विवाह होने लगे, विधवा पुनर्विवाह की अनुमति दी जा रही थी, अंतर्जातीय विवाह, प्रेम–विवाह और कोर्ट मैरिज होने लगी। एक ही गोत्र और एक ही वंश के नियमों में भी थोड़ी ढील दी गई। विवाह को धार्मिक कर्मकांड के स्थान पर समझौता मानने की मानसिकता बढ़ी। पत्नी पति को ईश्वर के स्थान पर मित्र मानकर सिद्ध करने लगी। तलाक की प्रवृत्ति बढ़ी, एक ही कुल में विवाह और बहुविवाह समाप्त हो गया और एक विवाह को सर्वश्रेष्ठ माना गया। इस प्रकार भारत में विवाह की संस्था बदल गई।

टिप्पणी

(iii) परिवार में परिवर्तन : अंग्रेजों के भारत आने से पहले संयुक्त परिवार, परिवार का मुख्य रूप था जिसमें तीन से चार पीढ़ियों के लोग एक साथ रहते थे, एक साथ खाते थे और एक साथ पूजा करते थे और जिनके पास एक साझा संपत्ति हुआ करती थी और जो परिवार के सबसे बड़े व्यक्ति द्वारा नियंत्रित होती थी। लेकिन पश्चिमीकरण के प्रभाव ने संयुक्त परिवार की पारंपरिक व्यवस्था को बदल दिया। पश्चिम ने भारतीयों को व्यक्तिवाद, भौतिकवाद, अस्तित्ववाद और समानता के विचारों को पहचानने में मदद की और परिणामस्वरूप परिवार के सदस्य परिवार के कर्ता से अपने व्यक्तिगत अधिकारों और स्वतंत्रता की मांग करने लगे। लोगों में दूसरों के लिए दान की भावना के स्थान पर व्यक्तिगत रुचि की भावना पैदा हुई। इन सब के संयुक्त प्रभाव से संयुक्त परिवारों पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ा और वे टूटने लगे और छोटे परिवार में रहने की प्रवृति जिसमें पति, पत्नी और बच्चे शामिल थे, बढ़ी।

(iv) महिलाओं की स्थिति में परिवर्तन : पश्चिम के प्रभाव के कारण महिलाओं की पारंपरिक सामाजिक स्थिति बदल गई। महिलाओं की शिक्षा शुरू हुई, जिससे उनके मानसिक विकास में मदद मिली। वे पश्चिमी साहित्य के माध्यम से मूल्यों और आदर्शों से अवगत हो सके और इससे उनमें एक जागृति आई। महिलाओं की स्थिति में सुधार के लिए कई प्रयास किए गए। सती प्रथा को समाप्त कर दिया गया, बाल–विवाह कम हो गए और विधवा पुनर्विवाह होने लगे। महिलाओं का काम अब घर तक सीमित नहीं रह गया था बल्कि वे सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक, सांस्कृतिक आदि क्षेत्रों में काम करने में पुरुषों से बराबरी करने लगीं और पुरुष–महिला समानता के विचार जड़ें जमाने लगे थे।

3. **धार्मिक जीवन में परिवर्तन** : ब्रिटिश शासन से पहले भारत में अनेक धार्मिक अंध–विश्वास, कर्मकांड, दिखावा, पाखंड प्रचलित थे और धर्म के नाम पर अनेक बुराइयां पनप रही थीं। बुराइयां जैसे सती प्रथा, बाल विवाह, जाति व्यवस्था, देवदासी प्रथा, छुआछूत, विधवा–विवाह पर प्रतिबंध, मानव बलि, घूंघट का प्रयोग, मृत्यु भोज आदि सभी भारत में व्याप्त थे। इन सभी को सामाजिक आधार पर मजबूत किया गया। पश्चिमी शिक्षा और ईसाई धर्म के प्रचार के कारण इन बुराइयों को समाप्त करने के लिए कई प्रयास किए गए और कई धार्मिक और सुधारवादी आंदोलन हुए जिसके परिणामस्वरूप सामाजिक बुराइयों को कुछ हद तक समाप्त किया गया और धार्मिक रूढ़िवाद भी समाप्त हुआ।

4. **राजनीतिक जीवन में परिवर्तन** : भारत में अंग्रेजों के आने से पहले कई जागीरें, राजा और राजघराने थे और छोटे भौगोलिक क्षेत्रों में कुलीनों का शासन था। प्रत्येक गाँव में एक ग्राम पंचायत हुआ करती थी जो ग्रामीण प्रशासन के क्षेत्र में कार्य करती थी। प्रशासनिक कार्यों में धार्मिक नियमों का पालन किया जाता था। प्रत्येक सामंत का शासन करने के लिए अपना कानून था। इस प्रकार, भारत प्रशासन के दृष्टिकोण से विभिन्न भागों में विभाजित

टिप्पणी

था और कुलीन एक दूसरे के खिलाफ युद्ध छेड़ते थे। लेकिन जब भारत में ब्रिटिश शासन की स्थापना हुई तो उन्होंने पंचायत के अधिकारों को छीन लिया, प्रशासन में धार्मिक दर्शन के उपयोग का बहिष्कार किया और पूरे भारत को एक राजनीतिक शक्ति के अंतर्गत संगठित किया। देश के विभिन्न हिस्सों में प्रचलित विभिन्न नियमों को संकलित किया गया और एक समान कानून व्यवस्था लागू की गई। पूरे देश के लिए पुलिस और सेना की व्यवस्था की गई थी। परिवहन और संचार के आधुनिक साधनों के विकास के कारण प्रशासन का कार्य आसान हो सकता है। संचार और परिवहन के साधनों के प्रसार, नई शिक्षा प्रणाली, प्रेस और समाचार पत्र और विदेशों से संपर्क के कारण भारतीयों में राष्ट्रवाद की भावनाओं ने जड़ें जमा लीं और एक राजनीतिक जागृति का जन्म हुआ। भारत के विभिन्न हिस्सों में रहने वाले लोग अपने धार्मिक, जातिवादी, उप–जातिवादी और क्षेत्रीय मतभेदों से ऊपर आ गए और अंग्रेजों को भारत से भगा दिया। अंग्रेजों ने ही भारतीयों को आधुनिक लोकतंत्र और संसदीय प्रणाली को पहचानने में मदद की और वर्तमान नौकरशाही भारत के लिए उनका उपहार है।

5. **साहित्य के क्षेत्र में परिवर्तन** : भारतीय साहित्य भी पश्चिमीकरण से प्रभावित हुआ क्योंकि अंग्रेजी साहित्य विश्व प्रसिद्ध और समृद्ध साहित्य है। भारतीय साहित्यकार को विश्व के अन्य साहित्य के बारे में पता चल सका और हिन्दी साहित्य तथा अन्य क्षेत्रीय साहित्य अंग्रेजी भाषा के कारण समृद्ध हुआ। भारतीयों द्वारा अंग्रेजी भाषा के कई शब्दों का प्रयोग किया जाने लगा। हिंदी भाषा में कहानियों, उपन्यासों, निबंधों और गद्य का प्रयोग बढ़ा है।

6. **ललित कलाओं में परिवर्तन** : पश्चिमी संस्कृति ने भी ललित कला के क्षेत्रों को प्रभावित किया। वास्तुकला के अंतर्गत अंग्रेजों ने कई स्मारकों का निर्माण किया जिनमें रोमन–गॉथिक और विक्टोरियन वास्तुकला का संलयन दिखाई देता है। कोलकाता का विक्टोरिया मेमोरियल पश्चिमी वास्तुकला का एक जीवंत उदाहरण है। उदयपुर, जोधपुर, बीकानेर, मैसूर, दिल्ली आदि शहरों में विभिन्न स्मारकों और मंदिरों में भारतीय और पश्चिमी वास्तुकला का उत्कृष्ट संलयन देखा जा सकता है। मुंबई और कोलकाता में कई केंद्र स्थापित किए गए जहाँ नई शैली की इमारतों के नमूने और तस्वीरें प्रस्तुत की गईं।

   चित्रकला में परिवर्तन : शैक्षणिक संस्थानों की स्थापना के अलावा, ब्रिटिश शासकों ने भारत में कला संस्थानों की भी स्थापना की; जहाँ पश्चिमी परंपराओं के अनुसार ड्राइंग, मॉडलिंग और चित्रण के लिए प्रशिक्षण दिया गया था। इसका प्रभाव भारतीय चित्रकला पर भी पड़ा और भारत में चित्रकला के क्षेत्र में एक जागृति आई। ई.बी. हवेल ने भारतीय चित्रकला कला का पुनर्निर्माण किया। रवींद्रनाथ टैगोर ने 1903–04 में पश्चिमी और भारतीय शैलियों के मेल से एक नई शैली का निर्माण किया; जिसे 'बंगाल शैली' के नाम से जाना जाता है। गुजरात और अहमदाबाद में कई कलाकार आए। नंदलाल बोस, रविशंकर रावल, कानू देसाई, हल्दनकर और गांगुली ऐसे कलाकारों के उदाहरण हैं जो पश्चिमी शैली से प्रभावित थे।

टिप्पणी

नृत्य और संगीत में परिवर्तन : संगीत और नृत्य का दायरा काफी संकीर्ण हो गया; भारत में अंग्रेजों के आने से पहले; और यह कुछ शाही परिवारों तक ही सीमित था। लेकिन पश्चिम के प्रभाव के कारण संगीत और नृत्य के क्षेत्र में एक जागृति आई। इस क्षेत्र में रवींद्रनाथ टैगोर एक महत्वपूर्ण व्यक्ति थे; जिसका संगीत 'रवींद्र संगीत' के नाम से जाना जाता है। भारतीय शास्त्रीय संगीत पश्चिमी संगीत से अप्रभावित रहा लेकिन आम संगीत इससे बहुत प्रभावित था। फिल्मों में पाश्चात्य संगीत, वाद्य और नृत्य का चलन बढ़ा। हमें पार्टियों, क्लबों और संगीत सम्मेलनों में पश्चिमी संगीत अधिक सुनने को मिल सकते हैं।

7. **शैक्षिक क्षेत्र में परिवर्तन** : पारंपरिक भारत में शिक्षा के क्षेत्र में गुरुकुल की प्रणाली प्रचलित थी। शिक्षा सभी के लिए उपलब्ध नहीं थी बल्कि केवल एक विशेष जाति (ब्राह्मणों) तक ही सीमित थी। अन्य लोग अपने जाति–आधारित व्यवसाय में शिक्षित हुए और वह भी परिवार में ही। लेकिन जब अंग्रेज भारत आए तो उन्हें ऐसे लिपिकों की आवश्यकता महसूस हुई जो अंग्रेजी पढ़ और लिख सकते थे और इसलिए उन्होंने अंग्रेजी शिक्षा संस्थानों की स्थापना की। अंग्रेजों ने यहाँ सार्वभौमिक शिक्षा प्रणाली की शुरुआत की। अब सभी वर्ग और जाति के लोग अंग्रेजी शिक्षा प्राप्त कर रहे थे। इससे शिक्षा के प्रसार में मदद मिली। सरकारी सेवाओं में अंग्रेजी पढ़े–लिखे लोगों को वरीयता दी जाती थी। उदारवाद, धर्मनिरपेक्षता, वैज्ञानिक स्वभाव, लोकतंत्र, समानता और स्वतंत्रता के आदर्श इस शिक्षा प्रणाली में अंतर्निहित थे। इसलिए, इस शिक्षा को प्राप्त करने वाले भारतीयों के विचारों, आदर्शों, मूल्यों और जीवन शैली में परिवर्तन हुए। अंग्रेजी शिक्षा के कारण कई धार्मिक और सामाजिक बुराइयाँ, अंध विश्वास और दिखावे का समापन हो गया क्योंकि पश्चिमी शिक्षा में शिक्षित कई पुरस्कार विजेताओं ने विभिन्न धार्मिक और सामाजिक सुधार आंदोलनों को अंजाम दिया। वर्तमान समय में कृषि, विज्ञान, चिकित्सा विज्ञान, इंजीनियरिंग, कानून आदि के क्षेत्र में जो शिक्षा और प्रशिक्षण दिया जा रहा है, वह अंग्रेजों की देन है।

8. **आर्थिक क्षेत्र में परिवर्तन** : अंग्रेजों के भारत आने से पहले भारतीय अर्थव्यवस्था एक ग्रामीण अर्थव्यवस्था थी जो कृषि और छोटे पैमाने की इकाइयों पर आधारित थी। प्रत्येक गाँव लगभग एक स्वतंत्र और आत्मनिर्भर इकाई था। गाँवों में उत्पादन स्थानीय आवश्यकताओं के अनुसार होता था। आसपास के क्षेत्रों के लोग साप्ताहिक बाजारों और बाजारों या मेलों में अपनी उपज बेचते थे। मानव और पशु शक्ति का उपयोग करके उत्पादन छोटे पैमाने पर किया जाता था। लेकिन अंग्रेजों ने भारत में बड़ी–बड़ी फैक्ट्रियाँ स्थापित की जिनमें उत्पादन बड़े पैमाने पर और निर्जीव शक्ति की सहायता से मशीनों से और तेज गति से होता था। अब उत्पादन न केवल स्थानीय, क्षेत्रीय या राष्ट्रीय बाजारों के लिए बल्कि अंतरराष्ट्रीय बाजारों के लिए भी किया जाता था। परिवहन और संचार के साधनों ने औद्योगीकरण में मदद की और कच्चे माल को कारखानों और तैयार माल को बाजारों तक पहुँचाने में मदद की। चूँकि छोटे पैमाने की इकाइयों के उत्पाद अच्छी उत्पादित मशीन के साथ

टिप्पणी

प्रतिस्पर्धा नहीं कर सकते थे, इसलिए औद्योगीकरण के परिणामस्वरूप छोटे पैमाने के व्यवसायों का विनाश हुआ। औद्योगीकरण के परिणामस्वरूप अंतर्राष्ट्रीय व्यापार में वृद्धि हुई।

कृषि में भी आधुनिक मशीनों, उर्वरकों और बीजों के उपयोग में वृद्धि हुई जिसके परिणामस्वरूप उत्पादन में वृद्धि हुई। किसानों ने अधिक नकदी फसलों की खेती शुरू की; जैसे तिलहन, गन्ना, कपास, जूट, तंबाकू आदि।

9. **मानवतावाद** : डॉ. श्रीनिवास का मानना है कि पश्चिमीकरण ने भारत को मानवीय मूल्य दिया है। मानवतावाद का अर्थ है धर्म, जाति, लिंग, आयु और आर्थिक स्थिति के आधार पर पूर्वाग्रहों को रखे बिना लोगों के कल्याण में रुचि। प्राचीन भारत में प्रचलित कानूनों के अनुसार, एक ही अपराध के लिए समान दंड की कोई व्यवस्था नहीं थी; बल्कि धर्म, जाति और पद के आधार पर अलग–अलग दंड के प्रावधान थे। अंग्रेजों ने इस असमानता को समाप्त कर पूरे देश में एक ही कानून लागू किया और इसे मानवीय आधार दिया। मानवतावाद में निहित दो तत्व हैं, समानतावाद और धर्मनिरपेक्षता। कई सुधार जो 19वीं शताब्दी के पूर्वार्ध में अंग्रेजों द्वारा लाए गए; मानवतावाद के अंतर्गत आते हैं। उन्होंने विभिन्न धर्मों, जातियों और उप जातियों के लोगों के लिए एक ही शिक्षा की व्यवस्था की। स्कूल, अस्पताल और अनाथालय स्थापित किए गए।

इस प्रकार हम देख सकते हैं कि पश्चिमीकरण के प्रभाव से भारतीय समाज और संस्कृति में कई परिवर्तन हुए और उनका पारंपरिक रूप बदल गया।

एक महत्वपूर्ण समीक्षा कई समाजशास्त्रियों और सामाजिक मानवशास्त्रियों ने पश्चिमीकरण के आधार की आलोचना की है। लर्नर्स का मानना है कि पश्चिमीकरण एक बेकार और संकीर्ण आधार है क्योंकि रूसी समाजवाद भी एक ऐसा रूप है जो शक्तिशाली आधुनिकीकरण ला सकता है। डॉ. श्रीनिवास की पश्चिमीकरण की व्याख्या भारत पर ब्रिटिश प्रभाव से संबंधित है लेकिन यह एक संकीर्ण दृष्टिकोण है। इसका कारण स्वतंत्रता के बाद के भारत पर पश्चिमीकरण के रूसी और अमेरिकी रूपों का स्पष्ट प्रभाव है। डॉ. योगेंद्र सिंह ने कहा है कि भारत और एशिया के कई नए लोगों के लिए पश्चिमीकरण का एक उपचारात्मक अर्थ है क्योंकि यह पश्चिम द्वारा पिछले औपनिवेशिक शासन से संबंधित है। इसलिए, यह आधुनिकीकरण की तुलना में अधिक मूल्यवान है और यही कारण है कि आधुनिकीकरण हमारे लिए एक बेहतर विकल्प लगता है।

देवराज चेन्ना इस बात से सहमत नहीं हैं कि पश्चिमीकरण एक सरल प्रक्रिया है। उनका यह कहना अधिक उचित होगा कि वर्तमान में (पंजाब में) भारतीयकरण की प्रक्रिया चल रही है। इसका तात्पर्य यह है कि सतही पहलुओं में काफी हद तक पश्चिमीकरण के परिणामस्वरूप अधिकांश भारतीय मूल्यों पर फिर से जोर देने की मानसिकता पैदा हुई है जो पश्चिमी मानवीय मूल्यों के साथ मिश्रित हैं। डॉ. योगेंद्र सिंह कहते हैं, ''संस्कृतीकरण और पश्चिमीकरण ऐसे परिक्षेत्र के रूप में जिसमें सैद्धांतिक दृष्टिकोण से निश्चितता का अभाव है, लेकिन सच्चाई पर जोर देने के मामले में उनकी

टिप्पणी

बहुत उपयोगिता और व्यावहारिकता है।'' ये परिक्षेत्र अनुभवात्मक टिप्पणियों पर आधारित हैं और सांस्कृतिक परिवर्तनों के कई पहलुओं के संबंध में अंतर्दृष्टि प्रदान करते हैं। ये परिक्षेत्र केवल सांस्कृतिक परिवर्तनों की व्याख्या करने में सक्षम हैं लेकिन सामाजिक परिवर्तनों की व्याख्या करने में असमर्थ हैं। यहाँ तक कि खुद डॉ. श्रीनिवास भी मानते हैं कि भारतीय समाज में आए बदलाव; संस्कृतीकरण और पश्चिमीकरण के कारण; इसे केवल सांस्कृतिक दृष्टिकोण से समझाया जा सकता है न कि संरचनात्मक दृष्टिकोण से। हम बी कुप्पुस्वामी के विचारों से सहमत हैं कि संस्कृतीकरण और पश्चिमीकरण के परिक्षेत्र उन्नीसवीं सदी के बाद के पचास वर्षों और बीसवीं शताब्दी के पहले दो दशकों के दौरान सतही परिवर्तन प्रक्रियाओं को समझने में हमारी मदद करते हैं। भारतीय समाज में परिवर्तन प्रक्रियाओं के विश्लेषण में इन परिक्षेत्रों की उपयोगिता काफी सीमित है।

संस्कृतीकरण और पश्चिमीकरण के बीच अंतरः–

1. संस्कृतीकरण प्रक्रिया ने पवित्र दृष्टिकोण को बढ़ावा दिया; जबकि पश्चिमीकरण प्रक्रिया ने धर्मनिरपेक्ष दृष्टिकोण को बढ़ावा दिया।
2. संस्कृतीकरण अनुकरण की प्रक्रिया द्वारा ऊर्ध्वगामी गतिशीलता की प्रक्रिया है जबकि पश्चिमीकरण विकास की प्रक्रिया द्वारा ऊर्ध्वगामी गतिशीलता की प्रक्रिया है।
3. संस्कृतीकरण का अर्थ जाति के ढांचे के भीतर गतिशीलता है जबकि पश्चिमीकरण का अर्थ जाति के ढांचे के बाहर गतिशीलता है।
4. जहाँ संस्कृतीकरण मांस खाने और शराब की खपत पर एक निषेध रखता है, वहीं पश्चिमीकरण ने मांस खाने और शराब की खपत को बढ़ावा दिया।

2.3.3 आधुनिकीकरण

कुछ लोगों ने आधुनिकीकरण को एक प्रक्रिया के रूप में लिया है, जबकि कुछ ने इसे एक उपोत्पाद के रूप में लिया है। ईसेनस्टैंड ने इसे एक प्रक्रिया के रूप में ग्रहण किया है और लिखा है, ''ऐतिहासिक दृष्टिकोण से आधुनिकीकरण इस प्रकार की सामाजिक, आर्थिक और राजनीतिक व्यवस्था में परिवर्तन की प्रक्रिया है जो 17वीं से 19वीं शताब्दी के दौरान यूरोप और उत्तरी अमेरिका में और दक्षिण अमेरिका, एशियाई देशों में और 20वीं सदी तक के अफ्रीकी राष्ट्रों में विकसित हुई।'' आधुनिकीकरण एक प्रक्रिया नहीं है जो किसी एक दिशा में घटित होती है बल्कि यह एक बहु–दिशात्मक प्रक्रिया है। इसके अतिरिक्त, यह किसी भी प्रकार के मूल्यों के लिए बाध्य नहीं है। लेकिन कभी–कभी, इसका अर्थ सकारात्मक या वांछित परिवर्तनों के पर्याय के रूप में लिया जाता है। उदाहरण के लिए; जब कोई कहता है कि सामाजिक, आर्थिक और धार्मिक संस्थाओं का आधुनिकीकरण हो रहा है, तो उसका उद्देश्य आलोचना करना नहीं बल्कि सकारात्मक बातें करना होता है।

टिप्पणी

अब तक अनेक पाश्चात्य और भारतीय विचारकों ने आधुनिकीकरण के आधार को स्पष्ट करने के लिए समय–समय पर वाईनर, एप्टर, लर्नर, ब्लैक, एलेक्स एनक्लेक्स, ए. आर. देसाई, वाई सिंह ने अपने विचार व्यक्त किए हैं और इस आधार को अनेक शब्दों से संबोधित किया है। एम एन श्रीनिवासन, एडवर्ड शिल, डब्ल्यू सी स्मिथ आदि कुछ ऐसे उल्लेखनीय विचारक हैं जिन्होंने आधुनिकीकरण पर अपने विचार व्यक्त किए हैं। आधुनिकीकरण के पर्याय के रूप में अंग्रेजीकरण, यूरोपीयकरण, पश्चिमीकरण, शहरीकरण, विकास, विकास, प्रगति आदि शब्दों का प्रयोग किया गया है। औद्योगीकरण, शहरीकरण और पश्चिमीकरण की तरह; आधुनिकीकरण एक जटिल प्रक्रिया है। बैंडिक्स के अनुसार, ''आधुनिकीकरण से मेरा तात्पर्य उस प्रकार के सामाजिक परिवर्तन से है जो 1760–1830 के बीच औद्योगिक क्रांति के दौरान इंग्लैंड में हुए और 1789–1794 के बीच राजनीतिक क्रांति के दौरान फ्रांस में हुए।'' आधुनिक लोकतंत्र, शिक्षा प्रणाली और औद्योगिक क्रांति की शुरुआत मुख्य रूप से पश्चिमी देशों में हुई। इसलिए, सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक और अन्य क्षेत्रों में ऐसे परिवर्तनों की प्रतिकृति; जो पश्चिमी देशों में हुई थी; अन्य देशों में आधुनिकीकरण के रूप में जानी जाएगी। इसलिए, इस तथ्य से इनकार नहीं किया जा सकता है कि यह पश्चिमी देश थे जो शुरुआत में आधुनिकीकरण के रूप बने रहे, चाहे वे रूस, चीन या जापान या किसी अन्य देश में आदर्श रूप थे। रूडोल्फ और रुडोल्फ ने इस तथ्य की पुष्टि की है। उनका विचार है, पश्चिमी मॉडल केवल ऐतिहासिक दृष्टिकोण से पश्चिमी है और सामाजिक दृष्टिकोण से सार्वभौमिक है।

मैरियन जे लेवी ने आधुनिकीकरण को औद्योगिक विकास के रूप में परिभाषित किया है, ''आधुनिकीकरण की मेरी परिभाषा ऊर्जा के निर्जीव स्रोतों और उन उपकरणों पर आधारित है जो प्रयास के प्रभाव को बढ़ाते हैं। मैं इन दोनों तत्वों में से प्रत्येक को सच्चा आधार मानता हूँ।'' उपरोक्त परिभाषा से स्पष्ट है कि लेवी ऊर्जा के निर्जीव स्रोतों को मानता है, जैसे पेट्रोल, डीजल, कोयला, जलविद्युत और परमाणु ऊर्जा और आधुनिकीकरण के आधार के रूप में मशीनों का उपयोग।

डॉ. योगेंद्र सिंह ने कहा है कि आमतौर पर 'फैशनेबल' को आधुनिकीकरण के अर्थ के रूप में लिया जाता है। वह आधुनिकीकरण को एक सांस्कृतिक प्रयास मानते हैं जिसमें तार्किक अभिव्यक्ति, सार्वभौमिक परिप्रेक्ष्य, सहानुभूति, वैज्ञानिक विश्वदृष्टि, मानवता, औद्योगिक विकास आदि शामिल हैं। डॉ. सिंह आधुनिकीकरण के स्वामित्व से किसी एक जाति समूह या सांस्कृतिक समूह से नहीं, बल्कि संपूर्ण मानव समाज के स्वामित्व से सहमत हैं।

डेनियल लर्नर ने अपनी पुस्तक 'द पासिंग ऑफ ट्रेडिशनल सोसाइटी : मॉडर्नाइजिंग द मिडिल ईस्ट' में आधुनिकीकरण के पश्चिमी मॉडल को स्वीकार किया है। उन्होंने आधुनिकीकरण में निहित निम्नलिखित विशेषताओं का उल्लेख किया है : (अ) बढ़ते शहरीकरण (ब) बढ़ती साक्षरता (स) साक्षरता बढ़ने से विचारों के सार्थक आदान–प्रदान में शिक्षित लोगों का योगदान बढ़ता है, समाचार पत्रों, पुस्तकों, रेडियो आदि के माध्यम से। (द) ये सभी मानव क्षमता को बढ़ाते हैं, एक राष्ट्र के आर्थिक लाभ की सुविधा प्रदान करते हैं जो प्रति व्यक्ति आय बढ़ाने में मदद करता है। (य) यह

टिप्पणी

राजनीतिक जीवन की विशेषताओं को बढ़ाने में मदद करता है। शिक्षार्थी उपर्युक्त विशेषताओं को शक्ति, किशोरावस्था और तर्क के रूप में व्यक्त करता है। वह आधुनिकीकरण को मुख्य रूप से एक मानसिक स्थिति के रूप में स्वीकार करता है। वह आधुनिकीकरण को प्रगति के बावजूद विकास की ओर झुकाव और परिवर्तन के अनुसार खुद को ढालने की बेचौनी के रूप में मानते हैं। सहानुभूति भी आधुनिकीकरण का एक प्रमुख तत्व है जिसमें लोगों में सुख–दुख बांटने और कठिन समय में एक–दूसरे की मदद करने की प्रवृत्ति में वृद्धि होती है।

रेजिस्टेंस एंड चेंज' पुस्तक में आइजनस्टेड ने आधुनिकीकरण को इस प्रकार व्यक्त किया है– (अ) अर्थशास्त्र के क्षेत्र में– उच्च स्तर की तकनीक। (ब) राजनीतिक क्षेत्र में – समूह में शक्ति का प्रसार और सभी वयस्कों को शक्ति देना (मतदान के अधिकार के माध्यम से) और संचार के माध्यम से लोकतंत्र में भाग लेना। (स) सांस्कृतिक क्षेत्र में– विभिन्न समाजों के साथ रहने की क्षमता में वृद्धि और दूसरों की स्थिति के लिए सहानुभूति में वृद्धि। (द) संरचनात्मक क्षेत्र में – प्रत्येक संगठन के आकार में वृद्धि, उनमें जटिलता और भिन्नता के दृष्टिकोण से वृद्धि। (य) पारिस्थितिक क्षेत्र में– शहरीकरण में वृद्धि।

सी ई ब्लेक ने ऐतिहासिक रूप में आधुनिकीकरण को स्वीकार किया है और इसे परिवर्तन की एक प्रक्रिया के रूप में माना है जो 17वीं शताब्दी के दौरान पश्चिमी यूरोप और उत्तरी अमेरिका में विकसित; बीसवीं सदी के अमेरिका और यूरोप के लिए सामाजिक, आर्थिक और राजनीतिक व्यवस्था से आगे बढ़ी है। आधुनिकीकरण ऐसी मानसिकता का परिणाम है जिसमें यह माना जाता है कि समाज को बदला जा सकता है और बदला जाना चाहिए और परिवर्तन वांछनीय है। एक व्यक्ति को संगठनों के बदले हुए कार्यों के अनुसार समन्वय करना होता है और इससे व्यक्ति के ज्ञान में वृद्धि होती है और परिणामस्वरूप वह पर्यावरण पर नियंत्रण प्राप्त कर लेता है। ब्लेक के अनुसार आधुनिकीकरण की शुरुआत यूरोप और अमेरिका से हुई लेकिन बीसवीं सदी तक यह पूरी दुनिया में फैल गई और इसने मानवीय संबंधों का रूप बदल दिया।

डॉ. एम.एन. श्रीनिवास ने 'सोशल चेंज इन मॉडर्न इंडिया (1966)' और 'मॉडर्नाइजेशन : ए फ्यू क्वेरीज (1969)' में अपने विचार व्यक्त किए हैं। उनके अनुसार आधुनिकीकरण का अर्थ आमतौर पर सकारात्मकता से लिया जाता है। आधुनिकीकरण किसी भी पश्चिमी राष्ट्र के साथ प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष संपर्क के कारण किसी भी गैर–पश्चिमी देशों में परिवर्तन के लिए लोकप्रिय शब्द है। उन्होंने आधुनिकीकरण के अंतर्गत निम्नलिखित को शामिल किया है : शहरीकरण में वृद्धि, साक्षरता का प्रसार, प्रति व्यक्ति आय में वृद्धि, वयस्क मताधिकार और तर्क का विकास।

डॉ. श्रीनिवास ने आधुनिकीकरण के तीन मुख्य क्षेत्रों का उल्लेख किया है :

1. भौतिकवादी संस्कृति
2. सामाजिक संगठन तथा
3. ज्ञान, मूल्य और मानसिकता।

ये तीन क्षेत्र सतही तौर पर अलग–अलग प्रतीत होते हैं, लेकिन वे परस्पर जुड़े हुए हैं। एक क्षेत्र में परिवर्तन दूसरे क्षेत्रों को प्रभावित करते हैं।

टिप्पणी

आधुनिकीकरण पर भारतीय और पश्चिमी विचारकों के उपरोक्त विचारों से यह स्पष्ट है कि उन्होंने इस आधार का उपयोग पारंपरिक, पिछड़े और उपनिवेशवादी देशों की तुलना पश्चिमी, पूँजीवादी राष्ट्रों से करने के लिए किया है जो औद्योगीकरण और शहरीकरण की ओर जा रहे हैं और यह उनमें हो रहे नए परिवर्तनों की ओर इशारा करता है। बौद्धिक क्षेत्रों में आधुनिकीकरण का अर्थ है भौतिक और सामाजिक घटनाओं का तार्किक रूप से वर्णन करना और उन्हें कार्य–कारण के आधार पर स्वीकार करना। आधुनिकीकरण के फलस्वरूप सामाजिक गतिशीलता में वृद्धि होती है, पुरानी परम्पराओं के स्थान पर नये मूल्यों का जन्म होता है, जटिल संस्थाओं का जन्म होता है तथा परिवार एवं रक्त सम्बन्धों में एक ठण्डापन आता है। राजनीतिक क्षेत्र में सत्ता को अब यह नहीं माना जाता है कि वह आध्यात्मिक शक्तियों और विकेंद्रीकरण से आती है और सरकार का चुनाव मतदान के अधिकार से होता है। आर्थिक क्षेत्रों में मशीनों का प्रयोग बढ़ता है और निर्जीव शक्ति के प्रयोग से उत्पादन होता है। विकास और औद्योगीकरण के परिवहन के साधनों में वृद्धि होती है।

आधुनिकीकरण– एक गलत धारणा

शब्द 'आधुनिकीकरण' अपनी हालिया लोकप्रियता के बावजूद पूरी तरह से गलत है और इसके स्पष्टीकरण की आवश्यकता है।

सबसे पहले, आधुनिकीकरण परंपरावाद का विरोध नहीं है। एक आधुनिक समाज परंपरावाद से पूरी तरह से अलग नहीं है और न ही एक पारंपरिक समाज आधुनिक तत्वों के बिना अस्तित्व में है। उदाहरण के लिए पारंपरिक तत्वों को अलग किए बिना जापान का आधुनिकीकरण किया गया है।

दूसरे, अर्थशास्त्र, समाजशास्त्र, राजनीति विज्ञान, मनोविज्ञान के विद्वानों ने अपने तरीके से आधुनिकीकरण की अवधारणा का अध्ययन किया है जिससे दृष्टिकोण में अधिक भ्रम और असमानता पैदा हुई है।

तीसरा, औद्योगीकरण और शहरीकरण आधुनिकीकरण के लिए आवश्यक पूर्व शर्त नहीं हैं। जापान आधुनिक हुए बिना अत्यधिक औद्योगीकृत है। पंजाब औद्योगीकरण के बिना शहरीकृत है। कई अफ्रीकी देशों में, औद्योगीकरण ने आधुनिकीकरण का अनुसरण किया। हालाँकि यह यूरोप में इसके ठीक विपरीत था जो औद्योगिक क्रांति के बाद आधुनिकीकरण की ओर ले जाता है।

चौथा, आधुनिकीकरण और पश्चिमीकरण पर्यायवाची नहीं हैं, हालाँकि दोनों को अक्सर एक दूसरे के स्थान पर प्रयोग किया जाता है। पश्चिमीकरण का तात्पर्य उन परिवर्तनों से है जो गैर–पश्चिमी देशों में पश्चिमी सांस्कृतिक मूल्यों और तत्वों को अपनाने के माध्यम से लाए गए, जिनके साथ इन देशों का लंबे समय तक संपर्क रहा। गैर–पश्चिमी देशों द्वारा पश्चिमी संस्कृति और मूल्यों की नकल की प्रक्रिया को सरल शब्दों में 'पश्चिमीकरण' कहा जाता है।

भारत में, ब्रिटिश शासन के दौरान पश्चिमी संस्कृति ने जबरदस्त प्रवेश किया और भारतीय समाज और संस्कृति को पाश्चात्य बना दिया। इस प्रकार, भारत में एक आधुनिक व्यक्ति को पश्चिमी आदतों वाला और पश्चिम से आने वाली सभी चीजों की

टिप्पणी

नकल करने के दृष्टिकोण के साथ गलत माना जाता है। अक्सर इन दो शब्दों का प्रयोग भारत में एक दूसरे के स्थान पर किया जाता है, केवल इसलिए कि हम में से अधिकांश लोग नहीं जानते कि पश्चिमी संस्कृति का क्या अर्थ है और हम में से अधिकांश यह समझने में भी असफल होते हैं कि आधुनिक मनुष्य शब्द का हमारे लिए क्या अर्थ होना चाहिए।

इस प्रकार, आधुनिकीकरण का एक व्यापक अर्थ है और पश्चिमीकरण सामाजिक परिवर्तन की इस बड़ी प्रक्रिया का एक हिस्सा मात्र है। आधुनिकीकरण वैज्ञानिक सोच के साथ 'तर्कसंगतीकरण' की एक प्रक्रिया है और इसमें कुल जनसंख्या शामिल है। यह उनकी विचार–प्रक्रिया में विश्वास और आस्था तथा सामाजिक–सांस्कृतिक संरचना में परिवर्तन लाता है और अंततः व्यक्तियों की भूमिका–धारणा का आधुनिकीकरण करता है। गलत आधुनिकीकरण की ऐसी प्रक्रिया में एक भारतीय एक 'अलग–थलग भारत' बन जाता है, जो सांस्कृतिक जड़हीनता और सांस्कृतिक अलगाव का कारण बनता है।

आधुनिकीकरण की विशेषताएं

घटनाओं की तार्किक व्याख्या, सामाजिक गतिशीलता में वृद्धि, धर्मनिरपेक्षता सार्वभौमिक वयस्क मताधिकार के माध्यम से लोगों को सत्ता का हस्तांतरण, बढ़ता शहरीकरण, वैज्ञानिक दृष्टिकोण, औद्योगीकरण, प्रति व्यक्ति आय में वृद्धि, शिक्षा का प्रसार, सहानुभूति, निर्जीव शक्ति का उपयोग, विकास, नए व्यक्तित्व, विरासत में मिले पदों के स्थान पर अर्जित पदों का महत्व, वस्तु विनिमय के बजाय मौद्रिक विनिमय, व्यवसायों में विशेषज्ञता, परिवहन और संचार प्रणालियों का विकास, चिकित्सा और स्वास्थ्य विज्ञान में विकास, कृषि में पुराने तरीकों के बजाय नए तरीकों का उपयोग आदि आधुनिकीकरण की विशेषताएं हैं।

आधुनिकीकरण के आयाम

आधुनिकीकरण चरित्र में बहुआयामी है। इसे सामाजिक, मनोवैज्ञानिक, बौद्धिक, जनसांख्यिकीय, सांस्कृतिक, आर्थिक और राजनीतिक आयामों में वर्गीकृत किया जा सकता है। राजनीतिक स्तर पर आधुनिकीकरण को राजनीतिक आधुनिकीकरण या राजनीतिक विकास के रूप में भी जाना जाता है। राजनीतिक आधुनिकीकरण की अपनी विशिष्ट विशेषताएं हैं। यह सामंती प्रभुओं, धार्मिक प्रमुखों और देव–प्रमुखों तथा पारंपरिक समुदाय के नेताओं जैसे पारंपरिक अधिकारियों को खारिज करता है। बल्कि इसका तात्पर्य एक राजनीतिक व्यवस्था में एक धर्मनिरपेक्ष तर्कसंगत सत्ता के उदय से है, जिसके लिए लोग आदतन आज्ञाकारिता का पालन करते हैं। इसलिए राजनीतिक आधुनिकीकरण में व्यावसायिक समूहों, हित समूहों, राजनीतिक दलों, गैर सरकारी संगठनों और स्वैच्छिक संगठनों के माध्यम से राजनीतिक प्रक्रिया में लोगों की भागीदारी बढ़ाना शामिल है।

इस प्रकार, राजनीतिक आधुनिकीकरण में शामिल हैं :

(अ) समाज के संसाधनों को खोजने और उपयोग करने के लिए राजनीतिक व्यवस्था की क्षमता में वृद्धि।

(ब) एक राजनीतिक व्यवस्था का सामना करने वाली सभी प्रकार की समस्याओं को हल करने के लिए समन्वित सामाजिक कार्रवाई की आवश्यकता में वृद्धि और

(स) राजनीतिक भागीदारी में वृद्धि।

टिप्पणी

मोटे तौर पर आधुनिकीकरण की निम्नलिखित मुख्य विशेषताएं हैं :

1. एक वैज्ञानिक स्वभाव वाला दृष्टिकोण।
2. तर्क और तर्कवाद
3. धर्मनिरपेक्षता
4. उच्च आकांक्षाएं
5. दृष्टिकोण, मानदंडों और मूल्यों में कुल परिवर्तन,
6. विकसित अर्थव्यवस्था,
7. व्यापक राष्ट्रीय हित
8. लोकतंत्रीकरण
9. एक खुला समाज।
10. एक चुनौतीपूर्ण व्यक्तित्व और अंत में
11. सामाजिक–आर्थिक सांस्कृतिक और राजनीतिक आंदोलन को व्यवस्थित करने और सुधार करने के लिए गतिशील नेतृत्व।

आधुनिकीकरण कैसे प्राप्त करें?

आधुनिकीकरण दो तरीकों से प्राप्त किया जा सकता है :

1. परंपरा को संशोधित करके और
2. परंपरा के विषम पहलू की आलोचना करके।

इन दोनों विधियों को दो दिशानिर्देशों द्वारा नियंत्रित किया जाता है – जैसे–

(अ) राष्ट्र की एकता और अखंडता खतरे में नहीं है

(ब) आधुनिकीकरण प्रक्रिया के लाभ समग्र रूप से समाज और समुदाय के लिए उपलब्ध हैं और किसी भी मामले में, समाज और परंपरा से खुद को अलग नहीं करना चाहिए। यह कड़ाई से सुनिश्चित किया जाना चाहिए कि सभी समकालीन परिवर्तन जैसे शैक्षणिक संस्थान में रैगिंग, छेड़खानी, तलाक, बिना शादी किए एक साथ रहना आधुनिक नहीं हैं।

हमें आधुनिकतावादी किसे कहना चाहिए?

आधुनिकीकरणकर्ताओं की विस्तृत सूची में निम्नलिखित शामिल हैं–

अभिजात वर्ग

अभिजात वर्ग वे हैं जो दूसरों की तुलना में अधिक समान हैं। उन्हें सम्माननीयों में प्रथम भी कहा जा सकता है। अभिजात वर्ग में राजनीतिक अभिजात वर्ग, धार्मिक अभिजात वर्ग, सामाजिक अभिजात वर्ग शामिल हैं। व्यापारिक अभिजात वर्ग, अकादमिक अभिजात वर्ग और इस तरह अन्य भी अभिजात वर्ग में आते हैं। ये अभिजात वर्ग पुराने

विचारों को बदलने के लिए नए विचारों का योगदान करते हैं। संभ्रांतों का प्रचलन 'अभिजात वर्ग–संरचना' में परिवर्तन करता है। उनके राजनीतिक अभिजात वर्ग को राजनीतिक आधुनिकीकरण में योगदान देने में सक्षम माना जाता है।

टिप्पणी

1. बुद्धिजीवी : ये नए विचारों, नए अनुभवों और परंपरा से आधुनिकता में परिवर्तन की नई रणनीतियों के 'थिंक–टैंक' या स्टोर हाउस हैं।

2. राजनीतिक नेतृत्व : भारत में, प्रख्यात राष्ट्रवादी और राजनीतिक नेताओं ने भी कुछ विचारधाराओं और राजनीतिक तकनीकों पर अपने विश्वास के साथ आधुनिकतावादियों के रूप में भूमिका निभाई है।

उदाहरण के लिए :

क. गांधी और उनकी अहिंसा की अवधारणा।

ख. तिलक की स्वराज की अवधारणा ''जन्म–अधिकार'' के रूप में

ग. नेहरू की लोकतांत्रिक समाजवाद, धर्मनिरपेक्षता, राष्ट्रवाद और अंतर्राष्ट्रीयतावाद, गुटनिरपेक्षता की अवधारणाएँ।

घ. इंदिरा गांधी का 'गरीबी हटाओ' (गरीबी उन्मूलन) और 'समाज के कमजोर वर्गों की सुरक्षा' की अवधारणा।

ङ. लाल बहादुर शास्त्री जी का नारा 'जय जवान, जय किसान'।

च. राजीव गांधी का मेरा भारत महान 'कंप्यूटर का उदय और आई.टी. युग।

छ. वी.पी. सिंह की मंडलीकरण या 'आरक्षण नीति' की अवधारणा।

3. भक्ति, राष्ट्र सेवा और बलिदान की भावना रखने वाली सेना भी आधुनिकीकरण के एजेंट के रूप में कार्य करती है।

4. स्पष्ट उद्देश्यों, दक्षता और सार्वभौमिकता वाली तटस्थ नौकरशाही आधुनिकीकरण के रूप में कार्य करती है। समाज सुधारक अपने आधुनिक दृष्टिकोण से विभिन्न सामाजिक–धार्मिक सुधारों के माध्यम से आधुनिकीकरण की प्रक्रिया में तेजी लाते हैं। बाल विवाह प्रथा का उन्मूलन, विधवा–विवाह की शुरुआत, सती प्रथा का उन्मूलन ऐसे कुछ उदाहरण हैं। राजा राममोहन राय, ईश्वर चंद्र विद्यासागर, स्वामी विवेकानंद, स्वामी दयानंद सरस्वती जैसे प्रख्यात सामाजिक–धार्मिक सुधारकों ने रूढ़िवादी और सामाजिक–धार्मिक अंधविश्वासों को दूर करने और आधुनिकता में बदलाव के लिए आधारभूत आधार बनाने के लिए संघर्ष किया है।

कानून निर्माता

कानून बनाने वाले जो विधायिका में कानून बनाने की प्रक्रिया में सक्रिय रूप से भाग लेते हैं, उन्हें आधुनिकीकरणकर्ता के रूप में रचनात्मक भूमिका निभानी होती है। वे लोगों के समग्र सामाजिक–आर्थिक विकास के लिए नए विचारों पर विचार–विमर्श और योगदान करते हैं।

मतदाता

पिछली आधी सदी के दौरान भारत प्रगतिशील लोकतंत्रीकरण का प्रदर्शन करता आया है। 18 वर्ष या अधिक की आयु के सभी वयस्क नागरिकों को समय–समय पर चुनावों

टिप्पणी

के माध्यम से अपने प्रतिनिधियों का चुनाव करने का अधिकार दिया गया है। ये मतदाता जिनके पास वोट देने का यह पवित्र कर्तव्य और दायित्व है, उन्हें लोकतंत्रीकरण प्रक्रिया को आगे बढ़ाने और लोकतांत्रिक मूल्यों और मानदंडों का पालन करने के लिए बुद्धिमान, और सतर्क रहने की आवश्यकता है, जिससे राजनीतिक आधुनिकीकरण सफल हो सके।

आधुनिकीकरण में लोकतांत्रिक, सामाजिक–आर्थिक और वैज्ञानिक आदर्शों की प्रगति की दिशा में परिवर्तन शामिल है। परिवर्तन की प्रक्रिया के रूप में आधुनिकीकरण के लिए संरचनात्मक और कार्यात्मक दोनों परिवर्तनों की आवश्यकता होती है। आपसी सहिष्णुता, दूसरों के विचारों का सम्मान और सभी के बीच समानता आधुनिकता की अनिवार्य आवश्यकता है। आधुनिकीकरण का अर्थ सभी पारंपरिक और प्राचीन मूल्यों का उन्मूलन नहीं है। उन प्राचीन मूल्यों को प्रेरण के साथ संरक्षित और संरक्षित किया जाना है और समग्र प्रगति को समायोजित करने के लिए आधुनिकता को बुद्धिमानी से हल किया जाना है। संघर्ष और समस्याएं पैदा होना लाजमी है, लेकिन इन समस्याओं को समय पर हल करने के लिए एक प्रगतिशील और आधुनिक दृष्टिकोण के साथ एक गतिशील नेतृत्व की आवश्यकता है। अंततः, जागरूक मतदाताओं की एकमात्र जिम्मेदारी उचित नेतृत्व का चुनाव है।

भारत के पास विशाल सांस्कृतिक विरासत है और यह बड़े पैमाने पर भारत के लोगों और जनता की चुनी हुई सरकार की समग्र जिम्मेदारी है। अपनी सांस्कृतिक विरासत के संरक्षण और संरक्षण के बिना कोई भी राष्ट्र, यहाँ तक कि भारत का भी आधुनिकीकरण नहीं किया जा सकता है। कोई भी परंपराबद्ध समाज पिछड़ा समाज नहीं है क्योंकि कुछ पारंपरिक तत्वों की सार्वभौमिक प्रशंसा होती है। भारत की गुटनिरपेक्षता की नीति प्राचीन भारत की अहिंसा, शांति और बंधुत्व की परंपराओं पर आधारित है।

भारत में आधुनिकीकरण परंपरा से आधुनिकता में परिवर्तन की एक सतत प्रक्रिया है और इन्हें भारत में परंपरा और आधुनिकता का संश्लेषण होना चाहिए। सभी नहीं, लेकिन भारत में कुछ परंपराएं आधुनिकता के पक्ष में हैं और उन परंपराओं को संरक्षित किया जाना है।

इस प्रकार हम देख सकते हैं कि आधुनिकीकरण एक जटिल प्रक्रिया है जिसमें कई तत्व शामिल हैं और जो जीवन के सभी पहलुओं से संबंधित है, जैसे भौतिकवादी, आर्थिक, राजनीतिक, सामाजिक, सांस्कृतिक, धार्मिक और बौद्धिक। यह आधार हमें पारंपरिक समाजों में हो रहे परिवर्तनों को समझने में मदद करता है। इस दुनिया में आज हम कुछ स्थानों पर पारंपरिक समाज देख सकते हैं और कुछ अन्य स्थानों पर आधुनिक समाज देख सकते हैं। यह आधार उनकी तुलना करने और परिवर्तन की दिशा और प्रकृति को समझने में उपयोगी है।

2.3.4 धर्मनिरपेक्षीकरण

धर्मनिरपेक्षीकरण एक ऐसी प्रक्रिया है जिसके परिणामस्वरूप किसी भी समाज में धर्म पर आधारित सामाजिक व्यवहारों में अंतर समाप्त हो जाता है। धर्मनिरपेक्षता जो बौद्धिकता पर आधारित है आधुनिकीकरण के लिए आवश्यक है। चूँकि प्रत्येक समाज

अब आधुनिक होना चाहता है, इसलिए वह धर्मनिरपेक्षता को संरक्षण दे रहा है। भारत के उन राज्यों में भी अब धर्मनिरपेक्षता की चर्चा हो रही है, जो आजादी के ठीक बाद सेक्युलर नहीं थे।

टिप्पणी

धर्मनिरपेक्षता में धर्म, बुद्धिवाद और उदारवाद की समीक्षा के बीच सीधा संबंध है। डॉ. श्रीनिवास ने इस प्रक्रिया का व्यापक विश्लेषण किया है। धर्मनिरपेक्षता की प्रक्रिया प्रत्येक समाज की एक मूलभूत विशेषता बन गई है। वे कार्य जो धार्मिक और पवित्र माने जाते थे, भारत में कुछ सदियों पहले बेकार रूढ़िवादी और अतार्किक व्यवहार के रूप में देखा जा रहा है। किसी विशेष धर्म या जाति के विशेष प्रभाव की स्वीकृति जो प्रचलित थी, अब उसी अर्थ में प्रभावशाली नहीं है। कई विचारकों का विचार है कि भारत में धर्मनिरपेक्षता की प्रक्रिया का श्रेय ब्रिटिश शासन को दिया जाना चाहिए।

ब्रिटिश शासन अपने साथ भारतीय सामाजिक जीवन और संस्कृति के धर्मनिरपेक्षीकरण की प्रक्रिया भी लाया। संचार के साधनों के विकास और भौगोलिक गतिशीलता और शिक्षा के प्रसार के साथ यह प्रवृत्ति और बढ़ गई। विश्व युद्ध और महात्मा गाँधी के सविनय अवज्ञा आंदोलन दोनों ने आम जनता को राजनीतिक और सामाजिक दृष्टिकोण से लामबंद किया और धर्मनिरपेक्षता के विकास में भी योगदान दिया। धर्मनिरपेक्षता की प्राप्ति की दिशा में प्रयास 1947 के बाद वास्तव में ध्यान देने योग्य हैं। स्वतंत्र भारत के संविधान में लिखा है कि भारत एक धर्मनिरपेक्ष राज्य होगा। कानून की नजर में धर्म, जाति, लिंग आदि के आधार पर नागरिकों के बीच कोई अंतर नहीं होगा।

शाब्दिक अर्थ के लिए यह वह प्रक्रिया है जिसमें किसी व्यक्ति के अस्तित्व, महत्व या विकास के साथ धर्म को जोड़ने का कोई प्रयास नहीं किया जाता है। धर्मनिरपेक्षता का सीधा संबंध दार्शनिक दृष्टिकोण से है। इसके अंतर्गत संसार की व्याख्या शुद्ध प्रवचन के रूप में प्रस्तुत की जाती है। धर्मनिरपेक्षीकरण एक ऐसी प्रक्रिया है जिसके माध्यम से पारंपरिक मान्यताओं और परिक्षेत्रों के स्थान पर तार्किक ज्ञान का प्रसार होता है। प्रो. श्रीनिवास ने स्पष्ट रूप से उल्लेख किया है कि यह 'धर्मनिरपेक्षता' में निहित है कि जो कुछ भी पहले धार्मिक माना जाता था, उसे अब उतना ध्यान नहीं दिया जाता है। उन्होंने आगे लिखित रूप में स्पष्ट किया है कि विभेदीकरण की प्रक्रिया भी इसमें निहित है और परिणामस्वरूप समाज के विभिन्न आर्थिक, राजनीतिक, कानूनी और नैतिक पहलू एक दूसरे के प्रति अधिक सावधान हो जाते हैं। इस प्रकार श्रीनिवास ने केवल धर्मनिरपेक्षता के संदर्भ में धर्मनिरपेक्षता को नहीं समझा है। इसके अनुसार धर्मनिरपेक्षता की दो मुख्य विशेषताएं हैं :

1. सबसे पहले, यह प्रक्रिया उस भावना से संबंधित है कि जो कुछ भी पहले धार्मिक माना जाता था उसे अब धर्म की श्रेणी में नहीं रखा जाता है।
2. दूसरी विशेषता यह है कि इस प्रक्रिया के अंतर्गत हम तार्किक ज्ञान से हर तथ्य को देखने और समझने की कोशिश करते हैं। परंपरागत रूप से, हमारे सामाजिक जीवन में इन दोनों विशेषताओं का पूर्ण अभाव था। सामाजिक व्यवस्था की प्रासंगिकता के बारे में कोई भी बहस नहीं कर सकता था क्योंकि पूरी व्यवस्था धर्म से संबंधित थी।

टिप्पणी

कॉन्सिस ऑक्सफोर्ड डिक्शनरी में धर्मनिरपेक्षता की कई परिभाषाएँ हैं। ये परिभाषाएं धार्मिक शिक्षा के बारे में धार्मिक मान्यताओं और विरोधाभासों पर संदेह करने के बारे में बताती हैं।

तीसरा अंतर्राष्ट्रीय शब्दकोश धर्मनिरपेक्षता की निम्नलिखित परिभाषा देता है– ''(धर्मनिरपेक्षता) सामाजिक सम्मेलनों की एक प्रणाली है जो इस सिद्धांत पर आधारित है कि परंपरा और व्यवहार के मानदंड धर्म पर आधारित होने के बजाय आधुनिक जीवन और सामाजिक कल्याण पर आधारित होने चाहिए।''

वाटर हाउस ने परिभाषित किया है, ''धर्मनिरपेक्षता एक ऐसी विचारधारा है जो जीवन और परंपराओं और व्यवहार के सिद्धांत को प्रस्तुत करती है और जो धर्म द्वारा प्रचारित सिद्धांत के खिलाफ है। इसका सार भौतिकवादी है। मानव कल्याण की मान्यता राष्ट्रीय प्रयासों से ही प्राप्त की जा सकती है।''

लेकिन बेकर ने यह मानने से इनकार कर दिया कि धर्मनिरपेक्षता एक धर्म–विरोधी आधार है। उनका कहना है कि 'धर्मनिरपेक्ष' 'अशुद्ध' या ऐसे किसी शब्द का पर्याय नहीं है।

ब्लेकशील्ड बेकर के इस विचार का समर्थन करता है। उन्होंने कहा है, ''धर्मनिरपेक्षता धार्मिक संस्थाओं का विरोध नहीं करती है। न तो यह सिद्धांतों, राजनीति और शिक्षा से संबंधित प्रक्रियाओं में धार्मिक उत्प्रेरक का विरोध करता है। इसमें केवल मानसिकता के कार्यात्मक विभाजन, यानी विभिन्न सामाजिक कृत्यों में शक्तियों के सामाजिक विभाजन पर बल दिया जाता है।" ब्लेकशील्ड का कहना है कि धर्म, शिक्षा और सिद्धांत को एक दूसरे के अधिकार क्षेत्र में अतिक्रमण नहीं करना चाहिए और उन्हें अपने क्षेत्र की सीमाओं से बाहर नहीं जाना चाहिए। धर्म जिस सीमा तक अपनी सीमाओं के भीतर रहता है, धर्मनिरपेक्षता के आधार को धर्मनिरपेक्ष माना जा सकता है। यह न तो धर्म का समर्थन करता है और न ही इसका विरोध करता है। इस प्रकार धर्मनिरपेक्षता सामाजिक समस्याओं के संदर्भ में एक ऐसी स्थिति है जिसमें सिद्धांत और शिक्षा धार्मिक संस्थाओं और धार्मिक उत्प्रेरकों से स्वतंत्र हैं। धर्मनिरपेक्षता ऐतिहासिक विकास का एक चरण है जिसमें यह स्थापित होता है कि सिद्धांत और शिक्षा धर्म पर आधारित नहीं हैं।

इस प्रकार यदि धर्मनिरपेक्षता की विभिन्न परिभाषाओं पर विचार किया जाए तो हम कई विषयों की सूची के साथ आ सकते हैं जिन्हें इसके अंतर्गत लिया जा सकता है। उदाहरण के लिए– वैज्ञानिक मानवतावाद, प्रकृतिवाद और भौतिकवाद, बौद्धिकता, लोकतंत्र और समाजवाद, आशावाद और प्रगतिवाद, नैतिक सापेक्षवाद और शून्यवाद, आदि।

भारत में धर्मनिरपेक्षता की प्रक्रिया

स्वतंत्रता के बाद, भारत ने एक संविधान अपनाया जो धर्म की व्यक्तिगत और सामूहिक स्वतंत्रता की गारंटी देता है। यह भी उल्लेख किया गया है कि राज्य द्वारा किसी विशेष धर्म को कोई वरीयता नहीं दी जाती है। बल्कि प्रत्येक धर्म के साथ समान व्यवहार किया जाना चाहिए।

टिप्पणी

संविधान द्वारा राज्य को दो महत्वपूर्ण निर्देश दिए गए हैं :

1. राज्य को धार्मिक लक्ष्यों के प्रति तटस्थ रहना चाहिए।
2. इसे राज्य द्वारा वित्तपोषित शैक्षणिक संस्थानों में धार्मिक उद्देश्यों के लिए कर नहीं लगाना चाहिए या धार्मिक शिक्षाओं को प्रोत्साहित नहीं करना चाहिए।

इस प्रकार, भारत में धर्मनिरपेक्षता वैज्ञानिक दृष्टिकोण के विकास के पक्ष में धार्मिक प्रवृत्तियों को समाप्त करने की प्रक्रिया नहीं है, बल्कि भारत में धर्मनिरपेक्षता के पीछे का विचार पुराने धार्मिक आदर्शों से मिलता–जुलता है।

धर्मनिरपेक्षता के दो संवैधानिक सिद्धांत हैं :

1. किसी भी धार्मिक समुदाय के धार्मिक मामलों में अहस्तक्षेप का सिद्धांत।
2. सभी धर्मों को समान सुरक्षा प्रदान करने का सिद्धांत।

हालांकि, संविधान में धर्मनिरपेक्ष आदर्शों की स्थापना सार्वजनिक जीवन में इसके मानदंडों और प्रमुख भारतीय समुदायों के बीच संबंधों के लिए वास्तविक अनुरूपता नहीं दर्शाती है। भारत में धर्मनिरपेक्षता के विकास में कई विसंगतियाँ हैं।

कई राजनीतिक दलों का उदय हिंदू महासभा, मुस्लिम लीग या बजरंग दल आदि जैसी सांप्रदायिक भावना पर आधारित है। चूंकि धर्म लोगों की भावनाओं से, दृढ़ता से जुड़ा हुआ है, इसलिए धर्म को वोट पकड़ने वाले उपकरण के रूप में उपयोग किया जाता है। उन कठिनाइयों के बावजूद धर्मनिरपेक्षता को भारत की राष्ट्रीय नीति के रूप में व्यापक रूप से स्वीकार किया गया है। धर्मनिरपेक्षता के कारण कुछ परिवर्तन देखे गए हैं :

1. धार्मिक संस्कारों और कर्मकांडों के प्रति घटती मनोवृत्ति।
2. विभिन्न उप प्रणालियाँ जैसे कानूनी, राजनीतिक, आर्थिक आदि को एक दूसरे से अलग किया गया है।
3. तार्किकता की ओर रुझान बढ़ रहा है।
4. कानून, राजनीति, शिक्षा आदि जैसे महत्वपूर्ण एजेंट अपनी संरचना और कार्य में धीरे–धीरे धर्मनिरपेक्ष होते जा रहे हैं।

धर्मनिरपेक्षता के लक्षण

1. **बौद्धिकता का विकास** : धर्मनिरपेक्षता के कारण हर घटना के लिए धर्म पर निर्भर रहने की प्रवृत्ति कम हुई है। पुरातन काल में लोग हर सामाजिक घटना को अलौकिक शक्तियों का उपहार मानते थे। लेकिन बौद्धिकता के विकास के साथ, कारण–परिणाम संबंध की व्याख्या बढ़ी और वास्तविक कारणों के बारे में जागरूकता के कारण धर्म का महत्व कुछ हद तक कम हो गया। अब प्रत्येक व्यक्ति तार्किक व्यवहार को उचित मानता है।
2. **धार्मिकता में गिरावट** : धर्मनिरपेक्षता के कारण धार्मिक संस्थाओं का महत्व अब कम हो गया है। इसका कारण यह है कि अब धर्म के आधार पर ऊंच–नीच के पद निर्धारित नहीं होते हैं। इससे पहले, ऐसे व्यक्ति को अधिक प्रतिष्ठा दी जाती थी जो उसके द्वारा किए गए धार्मिक संस्कारों के अनुरूप

टिप्पणी

थी। लेकिन अब ऐसा व्यक्ति जो धर्म में अपने कर्मों की सफलता की खोज करता है, उसे पिछड़ा माना जाता है। तो, यह स्पष्ट है कि धर्मनिरपेक्षता की प्रक्रिया की प्रगति से धर्म का महत्व कम हो जाता है और इस प्रकार धार्मिकता में गिरावट आती है।

3. **विभेदीकरण में वृद्धि** : पहले, हर घटना के पीछे धर्म को प्रभावी कारण माना जाता था, चाहे वह अपराध हो या बीमारी, मृत्यु या प्राकृतिक आपदा और हर घटना को धर्म के आधार पर समझाया गया। लेकिन अब प्रत्येक घटना के अलग–अलग और वास्तविक कारणों का पता लगाया जाता है जिसमें सामाजिक या आध्यात्मिक शक्ति के प्रभाव को सामान्य रूप से कम स्वीकार किया जाता है। इस स्थिति ने भेदभाव को जन्म दिया है। विशेष कार्यों को करने के लिए अलग–अलग लोग होते हैं और इसलिए उनमें अंतर होना स्वाभाविक है।

4. **आधुनिकीकरण की प्राप्ति में सहायक** : आधुनिकीकरण की लहर इस समय हर प्रकार से प्रबल है। प्रत्येक समाज आधुनिक कहलाना चाहता है। इसके लिए पारंपरिक व्यवहार में बदलाव जरूरी हो जाता है। धर्मनिरपेक्षता पारंपरिक व्यवहार को भी बदल देती है। उदाहरण के लिए, स्वतंत्रता–पूर्व भारत में विभिन्न धर्मों और धार्मिकता की भावना फैल रही थी, लेकिन स्वतंत्रता आंदोलन से शुरू हुई धर्मनिरपेक्षता की लहर ने इस तरह के प्रयासों को कम कर दिया था। जिस क्षण भारत ने खुद को एक धर्मनिरपेक्ष राज्य के रूप में घोषित किया, स्वतंत्रता के बाद पारंपरिक व्यवहार मानकों में मूलभूत परिवर्तन हुए हैं। वर्तमान समय में देश में अनेक परिवर्तन हो रहे हैं, जो सामाजिक विकास और आधुनिकीकरण के लिए आवश्यक हैं। अतः यह कहा जा सकता है कि धर्मनिरपेक्षता आधुनिकीकरण में सहायक है।

5. **समानता का विकासक्रम** : प्राचीन काल में भारत में अनेक सामाजिक भेद थे। धर्म, जाति, लिंग आदि के आधार पर व्यापक मतभेद थे। विभिन्न धर्मों में एक ही अपराध के लिए अलग–अलग दंड के प्रावधान थे। लेकिन धर्मनिरपेक्षता के कारण ऐसे मतभेद स्वतः समाप्त हो जाते हैं और सभी को समान अवसर मिलता है।

6. **एक वैज्ञानिक आधार** : धर्मनिरपेक्षता एक वैज्ञानिक आधार है। धर्म के आधार पर कार्य–कारण संबंध दिखाना उचित नहीं है। इसके कारण लोग अतार्किक हो जाते हैं। धर्मनिरपेक्षता तर्क पर बहुत जोर देती है और केवल उन्हीं चीजों को सही माना जाता है जो कारण–प्रभाव संबंध दिखाते हैं।

7. **मानवीय और निष्पक्ष आधार** : धर्मनिरपेक्षता एक ऐसा आधार है जिसमें मनुष्य को मानव मानकर व्यवहार कहा गया है। यह जाति जैसी काल्पनिक सोच के आधार पर मानव के साथ अमानवीय व्यवहार की बात नहीं करता है। यह प्रक्रिया मानवीय व्यवहार को प्रोत्साहित करती है। इसके अतिरिक्त, यह एक निष्पक्ष आधार है जिसमें धर्म के आधार पर कोई अंतर नहीं किया जाता है और किसी भी धर्म का पालन करने की पूर्ण स्वतंत्रता है।

टिप्पणी

धर्मनिरपेक्षता के आवश्यक तत्व

1. **तार्किक दृष्टिकोण** : तार्किकता एवं धर्मनिरपेक्षता तार्किक दृष्टिकोण से संबंधित हैं। इसके अंतर्गत एक घटना को शुद्धतम रूप में समझाया गया है। वे सभी व्यवहार जो समाज में अतार्किक हैं, इस प्रक्रिया द्वारा खारिज कर दिए जाते हैं। इस कारण यह प्रक्रिया रूढ़िवादी, अतार्किक, पारंपरिक मान्यताओं और परिक्षेत्रों के स्थान पर तार्किक ज्ञान का प्रचार करती है। इसमें विभेदीकरण की एक प्रक्रिया भी अंतर्निहित है जिसके कारण समाज के विभिन्न अंग जैसे आर्थिक, राजनीतिक, नैतिक और सामाजिक आदि एक दूसरे से अधिक स्वतंत्र हो जाते हैं।

2. **कारण–प्रभाव संबंध** : कारण–प्रभाव संबंध की अभिव्यक्ति धर्मनिरपेक्षता का एक अनिवार्य तत्व है जिसे बौद्धिकता द्वारा भी संबोधित किया जाता है। प्रो श्रीनिवास के अनुसार इसके अंतर्गत आपसी विश्वासों और परिक्षेत्रों के स्थान पर आधुनिक ज्ञान की स्थापना निहित है। धर्मनिरपेक्षीकरण की एक विशेषता यह है कि यह आपसी विश्वासों और अतार्किक आधारों को नष्ट करने के लिए हर संभव प्रयास करता है। वे विचार जो परस्पर हैं और जो कारण प्रभाव संबंध की जाँच में खड़े नहीं होते हैं, वे स्वयं इस प्रक्रिया से नष्ट हो जाते हैं। यदि उनका अस्तित्व किसी तरह बना रहता है, तो उन्हें उचित जन समर्थन नहीं मिलता है।

3. **पवित्रता और अपवित्रता का आधार** : हिंदू धर्म में पवित्रता और अपवित्रता का आधार धार्मिक सिद्धांतों में प्रमुख रहा है। इसी आधार पर विभिन्न जातियों के बीच का फासला तय किया जाता है। यह विभिन्न जातियों के बीच शारीरिक स्पर्श, विवाह और भोजन पर पूर्ण प्रतिबंध का आधार था। पवित्रता और अपवित्रता का परिक्षेत्र प्रत्येक हिंदू के सामान्य जीवन में कर्मों पर आधारित है। उदाहरण के लिए किसी ब्राह्मण के लिए हजामत बनाना शोभा नहीं देता था। ये विश्वास हाल के वर्षों में कम हो गए हैं और स्वास्थ्य और स्वच्छता के नियमों ने पवित्रता के नियमों को अपने ऊपर ले लिया है। शिक्षित ब्राह्मणों और कट्टरपंथियों ने धीरे–धीरे रूढ़िवादी नियमों के स्थान पर तार्किक व्याख्याओं को महत्व दिया है और पवित्रता की अवधारणा को स्वास्थ्य और स्वच्छता के नियमों का दूसरा रूप कहा है। श्रीनिवास ने मैसूर की ब्राह्मण महिलाओं का उदाहरण दिया है और कहा है कि शिक्षित महिलाएं अशुद्धता के बारे में ज्यादा चिंतित नहीं हैं बल्कि स्वास्थ्य और स्वच्छता को महत्व दे रही हैं। संयुक्त परिवारों से अलग होने के बाद वे रूढ़िवादी रीति–रिवाजों को छोड़ देते हैं।

धर्मनिरपेक्षता की प्रक्रिया ने कई संस्कारों को त्याग दिया है। कई अनुष्ठान जैसे नामकरण या विधवा–मुंडन (विधवा के सिर का मुंडन), अब लोकप्रिय नहीं हैं। संस्कारों और कर्मकांडों को त्यागने या छोटा करने के अलावा कई रस्मों को भी मिलाया जा रहा है ताकि व्यस्त जीवन में समय की कमी को पूरा किया जा सके। उदाहरण के लिए उपनयन संस्कार अब शादी से ठीक दो दिन पहले होता है। विवाह संबंधी संस्कार भी

टिप्पणी

संक्षिप्त हो गए हैं। एक ब्राह्मण विवाह, जिसमें सभी संस्कार और अनुष्ठान शामिल होते थे, जिसमें 5 से 7 दिन लगते थे, अब कुछ घंटों या अधिक से अधिक एक दिन में संपन्न हो रहे हैं।

धर्मनिरपेक्षता के उद्देश्य

धर्मनिरपेक्षता की उपलब्धि धर्मनिरपेक्षता का लक्ष्य है। धर्मनिरपेक्षता का अर्थ है एक निश्चित प्रकार का व्यवहार जबकि धर्मनिरपेक्षता एक ऐसी प्रक्रिया है जो उस व्यवहार के मानदंड स्थापित करने में मदद करती है। व्यवहार की वह स्थिति जिसमें धर्म का राज्य, नैतिकता और शिक्षा आदि पर कोई अनुचित प्रभाव न हो, धर्मनिरपेक्षता कहलाती है। अमेरिका में धर्मनिरपेक्षता का अर्थ समाज में राज्य और चर्च का एक दूसरे को प्रभावित किए बिना सह–अस्तित्व है। यही कारण है कि चर्च द्वारा चलाए जा रहे शिक्षण संस्थानों को सरकार अनुदान नहीं देती है। भारत में धर्मनिरपेक्षता का अर्थ पश्चिम में इसके अर्थ से कुछ अलग है। यहाँ धर्मनिरपेक्षता का अर्थ यह है कि सरकार किसी धर्म को वरीयता नहीं देगी।

धर्मनिरपेक्षता का दूसरा लक्ष्य एक धर्मनिरपेक्ष राज्य की प्राप्ति है। धर्मनिरपेक्ष राज्य एक ऐसा राज्य है जिसमें नागरिकों को समानता के आधार पर समान अवसर मिलते हैं और जहाँ समाज धर्म के आधार पर नागरिकों की गतिविधियों में हस्तक्षेप नहीं करता है। डीई स्मिथ ने धर्मनिरपेक्ष राज्य की व्याख्या करते हुए लिखा है कि जो राज्य अपने लोगों को धर्म की स्वतंत्रता की गारंटी देता है, हर धर्म के लोगों को नागरिक का दर्जा देता है, संवैधानिक रूप से किसी विशेष धर्म से संबंधित नहीं होना चाहिए और न ही किसी भी धर्म के विघटन या प्रगति से संबंधित होना चाहिए। धर्मनिरपेक्ष राज्य का शाब्दिक अर्थ वह राज्य है जो किसी धर्म विशेष में आस्था नहीं रखता है। इस प्रकार, धर्मनिरपेक्ष राज्य एक व्यक्ति को एक विशेष धार्मिक समूह के सदस्य के बजाय एक नागरिक के रूप में देखता है। एक धर्मनिरपेक्ष राज्य में धर्म के आधार पर लोगों के अधिकारों और कर्तव्यों की व्याख्या नहीं की जाती है। यह संविधान में अनुच्छेद 15, अधिनियम 1 में घोषित किया गया है, कि राज्य धर्म, जाति, उपजाति, लिंग या जन्म स्थान के आधार पर लोगों के बीच अंतर नहीं करेगा। इस प्रकार हम देख सकते हैं कि धर्मनिरपेक्षता के कारण, भारत एक प्रकार के धर्मनिरपेक्ष राज्य में विकसित हुआ है जहाँ धार्मिक मतभेद हैं लेकिन धर्म की वह स्थिति अब नहीं है जो लगभग पाँच शताब्दी पहले थी।

अपनी प्रगति जांचिए

3. भारतीय समाजशास्त्र में संस्कृतीकरण शब्द की शुरुआत किसने की?

(क) मार्क्स ने (ख) एम.एन. श्रीनिवास ने

(ग) पंडितों ने (घ) अंग्रेजों ने

4. किसने आधुनिकीकरण को औद्योगिक विकास के रूप में परिभाषित किया है?

(क) योगेंद्र सिंह ने (ख) डेनियल लर्नर ने

(ग) श्रीनिवास ने (घ) मैरियन जे. लेवी ने

2.4 विकास की बदलती अवधारणाएं

टिप्पणी

अपने आर्थिक विश्लेषण में रॉबर्ट माल्थस ने उत्पादन की मात्रा और मुद्रा में वृद्धि की व्याख्या प्रस्तुत की है। कार्ल मार्क्स ने आर्थिक विकास की प्रक्रिया का भी विश्लेषण किया है। पिछले कुछ दशकों के दौरान आर्थिक विकास की अवधारणा को स्पष्ट करने में क्रांतिकारी बदलाव आया है और आर्थिक विकास पर बहुत कुछ कहा और लिखा गया है।

विकास की बदलती अवधारणा में पश्चिमी अर्थशास्त्रियों की रुचि का मुख्य कारण पूँजीवादी और समाजवादी देशों के बीच आर्थिक विकास के क्षेत्र में लगातार बढ़ती प्रतिस्पर्धा है। इसके अलावा, द्वितीय विश्व युद्ध के बाद, कई अफ्रीकी और एशियाई देशों ने स्वतंत्रता प्राप्त की और उनमें त्वरित आर्थिक विकास की तीव्र इच्छा पैदा हुई।

2.4.1 आर्थिक विकास

सरल शब्दों में, "आर्थिक विकास को किसी भी स्रोत से प्रति व्यक्ति वास्तविक आय में वृद्धि के रूप में देखा जा सकता है" (रॉबर्ट फारिस, 1964:889)।

बाख (1960–67) ने इसे इस प्रकार समझाया है, ''यह अर्थव्यवस्था में वस्तुओं और सेवाओं के कुल उत्पादन में वृद्धि है जो आर्थिक विकास है।''

डेविड नोवाक (1964: 151) ने एक पुरानी परिभाषा के संदर्भ में आर्थिक विकास की व्याख्या की है, ''यह वस्तुओं और सेवाओं की प्रति व्यक्ति खपत में ठोस वृद्धि के बारे में है।'' ठोस खपत तभी संभव है जब आर्थिक चीजों का ठोस उत्पादन हो और आज ठोस उत्पादन तकनीक के अधिक उपयोग पर निर्भर करता है।

संकीर्ण अर्थ में यह कहा जा सकता है कि आर्थिक विकास का अर्थ है, ''आर्थिक चीजों के उत्पादन और वितरण में निर्जीव शक्ति और अन्य तकनीकों का व्यापक उपयोग।'' (रॉबर्ट फारिस, 1964: 889)।

इस सन्दर्भ में यह कहना सही नहीं होगा कि आर्थिक विकास का अर्थ केवल औद्योगीकरण है क्योंकि शक्ति और अन्य प्रौद्योगिकियों के उपयोग के अलावा श्रम गतिशीलता, व्यापक शैक्षिक प्रणाली आदि भी उत्पादन में शामिल हैं।

जाफ और स्टीवर्ट जिन्होंने आर्थिक उत्पादन को युक्तिकरण के रूप में समझाया है, ने विकसित और अत्यंत अल्प विकसित देशों के बीच एक द्विभाजन किया है, जिसका आधार प्रति व्यक्ति आय और कुछ अन्य कारक हैं, जैसे उच्च स्तर की शिक्षा, उच्च जीवन प्रत्याशा, निम्न प्रजनन क्षमता, कृषि में लगे श्रम का अनुपात और प्रति व्यक्ति बिजली उत्पादन आदि। इसके अलावा, हम इस वर्गीकरण में एक तीसरी श्रेणी जोड़ सकते हैं, वे देश जो विकसित और सबसे कम विकसित देशों के बीच हैं, यानी विकासशील राष्ट्र। अमेरिका, कनाडा, ऑस्ट्रेलिया और पश्चिमी यूरोप के देशों (इटली, फ्रांस, जर्मनी, इंग्लैंड) को प्रति व्यक्ति आय की दृष्टि से विकसित राष्ट्र माना जाता है।

टिप्पणी

आर्थिक जीवन में परिवर्तन

वैज्ञानिक आविष्कारों, प्रौद्योगिकी, औद्योगीकरण और शहरीकरण ने भारतीय समाज के आर्थिक जीवन में क्रांतिकारी परिवर्तनों को प्रभावित किया है। परिवर्तनों को इस प्रकार समझाया जा सकता है–

1. **पूँजीवाद का विकास** : पहले इस देश में कृषि प्रधान अर्थव्यवस्था थी लेकिन अब, विभिन्न प्रकार के तकनीकी परिवर्तनों के कारण देश में पूँजीवाद का विकास हुआ है। अब आर्थिक उत्पादन न केवल घरेलू उद्योगों में होता है बल्कि मशीनों की सहायता से बड़े कारखानों में बड़े पैमाने पर होता है। इसके लिए बड़ी रकम की जरूरत है। इसलिए जिनके पास बड़ी पूँजी है उन्हें आर्थिक उत्पादन के साधनों पर अधिकार मिला है। इसका मतलब है कि पूँजीपतियों ने उत्पादन के सभी साधनों पर अधिकार हासिल कर लिया है और अन्य सभी पूँजी की कमी वाले लोगों के लिए आजीविका का एक ही तरीका है और वह तरीका है अपने श्रम को बेचकर अपनी भूख मिटाना। इस पूँजीवाद के विकास के परिणामस्वरूप भारतीय समाज में दो आर्थिक वर्गों का विकास हुआ है, पूँजीवादी वर्ग और श्रमिक वर्ग।

   लुकास चांसल द्वारा लिखित और अर्थशास्त्री थॉमस पिकेटी द्वारा समन्वित विश्व असमानता रिपोर्ट के अनुसार 2021 में शीर्ष 10 प्रतिशत आबादी के पास राष्ट्रों की राष्ट्रीय आय का 57 प्रतिशत हिस्सा था।

2. **ग्रामीण उद्योगों में गिरावट** : भारत में, औद्योगीकरण के परिणामस्वरूप ग्रामीण उद्योगों में गंभीर गिरावट आई है, क्योंकि गाँवों के छोटे पैमाने के उद्योगों और शहरों में बड़े पैमाने के उद्योगों के बीच न तो कोई समन्वय है और न ही किसी प्रकार का श्रम विभाजन है। नतीजतन, ग्रामीण उद्योगों में उत्पादित वस्तुओं के लिए मशीनों द्वारा बड़े पैमाने पर उत्पादित होने वाले सस्ते माल के साथ प्रतिस्पर्धा करना मुश्किल हो जाता है। इसके परिणामस्वरूप ग्रामीण उद्योगों में निरंतर गिरावट आ रही है, हालांकि सरकार का प्रयास आमतौर पर ग्रामीण उद्योगों को प्रोत्साहित करने की दिशा में होता है।

3. **जीवन स्तर में परिवर्तन** : भारतीय समाज के आर्थिक जीवन में महत्वपूर्ण परिवर्तनों में से एक जीवन स्तर से संबंधित है। आज शायद बहुत कम भारतीय होंगे जो इस बदलाव से अछूते होंगे।

   आजकल गाँवों में कार, मोटरसाइकिल, रेडियो, पक्के घर, फ्रिज, टीवी आदि आम हो गए हैं जो पहले बड़े शहरों में देखे जा सकते थे। ड्रेस सेंस और खान–पान को लेकर भी कई बदलाव आ रहे हैं। आज गाँव के लोग भी पतलून और शर्ट या सूट पहनते हैं और कुर्सी और मेज पर खाना पसंद करते हैं। दरअसल, ये सभी उच्च जीवन स्तर के संकेतक हैं। प्रत्येक व्यक्ति प्रतिस्पर्धा की इस प्रवृत्ति का हिस्सा बनना चाहता है ताकि वह सभी सुख–सुविधाओं का आनंद उठा सके।

टिप्पणी

NSSO के आंकड़ों के अनुसार 1993–94 से 2011–12 की समयावधि में ग्रामीण स्तर पर खाद्य पदार्थों पर प्रति व्यक्ति प्रति माह कुल व्यय 63.18% से घट कर 48.63% रह गया जबकि गैर खाद्य पदार्थों पर व्यय 36.82% से बढ़कर 51.37% हो गया। गैर खाद्य पदार्थों पर अधिक व्यय होना ही ग्रामीण जीवन स्तर में परिवर्तन का द्योतक है।

4. **आय में वृद्धि** : अर्थव्यवस्था में एक महत्वपूर्ण परिवर्तन भारतीयों की आय में अधिक वृद्धि है। प्रति व्यक्ति आय पहले से कहीं अधिक बढ़ी है। वर्तमान कीमतों के अनुसार, 1960–61 में प्रति व्यक्ति आय 305 थी जो 1997–98 में बढ़कर लगभग 13,112 हो गई। यदि हम भारतीय किसान की आय को ही लें तो हम देख सकते हैं कि उसकी आय में भी उल्लेखनीय वृद्धि हुई है। इसका मुख्य कारण विज्ञान को माना जा सकता है। खेती के वैज्ञानिक तरीकों ने उनके कृषि उत्पादन में वृद्धि की है। जिस तरह से देश कृषि, उद्योग, व्यापार और वाणिज्य के क्षेत्र में आगे बढ़ रहा है, लोगों की आय भी बढ़ रही है।

   CEIC के आंकड़ों से देखा जाय तो भारत में प्रति व्यक्ति आय मार्च 1958 में 70.396 यू एस डालर (USD) से बढ़कर मार्च 2020 में 2,140.369 यू एस डालर (USD) हो गयी है।

5. **औद्योगीकरण** : औद्योगीकरण भारतीय सामाजिक संरचना के आर्थिक पहलू का एक महत्वपूर्ण घटक है। इस औद्योगीकरण ने भारतीय समाज की महत्वपूर्ण नींव और संस्थानों को भी बदल दिया है। औद्योगीकरण के परिणामस्वरूप यदि उत्पादन बढ़ा है और बड़े पैमाने पर शुरू हुआ है तथा एक ओर देश की आय में वृद्धि हुई है तो वहीं दूसरी ओर कई समस्याएं भी खड़ी हो गई हैं। आज केवल इस वजह से आवास की कमी है और मलिन बस्तियों का प्रसार हुआ है। औद्योगीकरण से उद्योगों का विकास होता है और इसके कारण जिस दर से शहरी जनसंख्या बढ़ रही है शहरों में जनसंख्या वृद्धि की दर के अनुपात में मकान नहीं बन रहे हैं। इसका परिणाम यह होता है कि शहरों में घरों की भारी कमी हो जाती है और इस कमी को पूरा करने के लिए मलिन बस्तियों का विकास होता है। लोगों के लिए इन मलिन बस्तियों में रहने से न केवल उनके स्वास्थ्य में गिरावट होती है बल्कि नैतिक गिरावट भी होती है और साथ ही अन्य आपराधिक आदतें भी उनमें जड़ें जमा लेती हैं। उदारीकरण की नई औद्योगिक नीतियाँ विदेशी निवेश में सफल हुई हैं। लेकिन इस संबंध में एक संशय है कि क्या उत्पादन में वृद्धि के परिणामस्वरूप अधिक रोजगार सृजन हुआ है। इसके अलावा, विदेशी पूँजी को बहुत अधिक स्वतंत्रता प्रदान करने से हमारी आर्थिक संप्रभुता को खतरा हो सकता है।

   यूनिडो (UNIDO- United Nations Industrial Development Organisation) 2011 की रिपोर्ट के अनुसार भारत विश्व के अग्रणी 10 औद्योगिक देशों में से एक है।

टिप्पणी

6. **बढ़ती महंगाई और बेरोजगारी** : भारतीय आर्थिक जीवन में गरीबी और बेरोजगारी बढ़ती जा रही है। यह सच है कि औसत प्रति व्यक्ति आय में वृद्धि हुई है, लेकिन यह भी सच है कि महंगाई में अप्रत्याशित वृद्धि ने आम आदमी की कमर तोड़ दी है। 1949 की तुलना में, अधिकांश आवश्यक वस्तुओं की कीमत अब लगभग 20 गुना अधिक है। इसके अतिरिक्त, बेरोजगारी ने एक बदसूरत रूप धारण कर लिया है। आज शिक्षितों में बेरोजगारी में अत्यधिक वृद्धि हो रही है। सेंटर फॉर साइंटिफिक एंड इंडस्ट्रियल रिसर्च (सीएसआईआर) द्वारा तैयार किए गए आंकड़ों के मुताबिक, 1971 से 1991 के बीच शिक्षित बेरोजगारों की संख्या 23 लाख से बढ़कर 224 लाख हो गई है। अभी 10. 6 करोड़ लोग बेरोजगार हैं।

   सी.एम.आइ.ई. (CMIE-Centre for Monitoring Indian Economy) के अनुसार दिसम्बर 2021 में भारत में करीब 35 मिलियन लोग बेरोजगार हैं और इसमें एक बड़ा प्रतिशत महिलाओं का है।

7. **कृषि उत्पादन में विकास** : भारत में कृषि में पर्याप्त प्रगति हुई है। इसका मुख्य कारण सिंथेटिक उर्वरकों, मशीनों और खेती के आधुनिक तरीकों का प्रयोग है। आज हमारी सरकार वैज्ञानिक खेती पर जोर दे रही है। आधुनिक कृषि विधियों के प्रयोग से न केवल उत्पादन में वृद्धि होगी बल्कि समय की भी बचत होगी। बचा हुआ समय किसी अन्य उत्पादक कार्य में उपयोग किया जा सकता है। आज सहकारी खेती भी महत्वपूर्ण परिणाम दे रही है। कृषि उत्पादन में कई गुना वृद्धि हुई है। खाद्यान्न के मामले में भारत आत्मनिर्भर है

2.4.2 मानव विकास

मानव विकास की अवधारणा की उत्पत्ति प्रारंभिक अर्थशास्त्रियों जैसे एडम स्मिथ, डेविड रिकार्डो, रॉबर्ट माल्थस, जॉन स्टुअर्ट मिल आदि के लेखन में हुई है, लेकिन कालांतर में, आय वृद्धि के साथ अत्यधिक व्यस्तता ने विकास के इस उद्देश्य को अस्पष्ट कर दिया। यह संयुक्त राष्ट्र विकास कार्यक्रम (यूएनडीपी) है, जिसने 1990 की अपनी मानव विकास रिपोर्ट (एचडीआर) (यूएनडीपी, 1990) में इस अवधारणा को पुनर्जीवित किया।

यह केवल इस तथ्य को महसूस करके ही किया जा सकता है कि आर्थिक विकास को यथार्थवादी और वास्तविक विकास नहीं कहा जा सकता है क्योंकि धन की वृद्धि यह सुनिश्चित नहीं करेगी कि कोई भी वास्तव में भूखा नहीं रहेगा। मानव विकास मोटे तौर पर समग्र मानव कल्याण में सुधार को संदर्भित करता है।

यह विकास के मानवीय चेहरे पर केंद्रित है और यह परिप्रेक्ष्य यह महसूस करने पर उभर सकता है कि जीएनपी की वृद्धि और जीवन की गुणवत्ता में सुधार के बीच कोई स्वचालित संबंध नहीं है। उदाहरण के लिए, श्रीलंका, चिली, जमैका, थाईलैंड और तंजानिया ने अपनी आय रैंकिंग की तुलना में अपनी मानव विकास रैंकिंग में कहीं बेहतर प्रदर्शन किया है, जबकि ओमान, सऊदी अरब, अल्जीरिया और सेनेगल में उनकी मानव विकास रैंकिंग की तुलना में बहुत अधिक आय रैंकिंग है (यूएनडीपी,

टिप्पणी

1990: 14–16)। चीन, भारत और पाकिस्तान का प्रति व्यक्ति जीएनपी स्तर लगभग समान है लेकिन चीन का मानव विकास प्रदर्शन अन्य दो देशों की तुलना में काफी बेहतर है।

इस संदर्भ में जीवन की गुणवत्ता के स्तर और लोगों के सापेक्ष अभाव को मापना आसान नहीं है। हालाँकि, UNDP (1990) ने मानव विकास सूचकांक (HDI) पेश किया है, जिसका उपयोग सापेक्ष मानव विकास स्थिति को मापने के लिए किया जा सकता है।

मानव विकास के स्तर को मापने के लिए जिन संकेतकों की पहचान की गई है उनमें शामिल हैं–

(अ) जीवन प्रत्याशा,

(ब) साक्षरता दर,

(स) जन्म दर,

(द) मृत्यु दर, और

(य) शिशु मृत्यु दर।

दुनिया के 177 देशों में 126वें स्थान पर होने के कारण भारत की स्थिति बहुत ही दुखद है। UNDP 2020 के अनुसार 189 देशों में भारत 131 वें स्थान पर आता है।

भारत में, मृत्यु दर 1971 में 14.9 से घटकर 1997 में 8.9 हो गई, शिशु मृत्यु दर 1971 में 129 से 1991 में 80 और 1997 में 71 हो गई। जन्म दर भी 1971 में 36.9 प्रति हजार से घटकर 1991 में 29.5 हो गई। और 1997 में 27.2 तक। हालाँकि, यदि हम अंतर–राज्यीय भिन्नताओं को देखें, तो हम पाते हैं कि व्यापक भिन्नताएँ हैं।

उदाहरण के लिए, केरल में जीवन प्रत्याशा 74 वर्ष है, जो बिहार, मध्य प्रदेश, उड़ीसा, राजस्थान और उत्तर प्रदेश की तुलना में बहुत अधिक है। केरल का प्रदर्शन अन्य एशियाई देशों जैसे चीन, मलेशिया, इंडोनेशिया, थाईलैंड और श्रीलंका के साथ तुलनीय है, जिन्होंने पिछले कुछ वर्षों में मानव विकास में महत्वपूर्ण प्रगति की है।

भारत में मृत्यु दर, जन्म दर और शिशु मृत्यु दर में कमी स्पष्ट रूप से महत्वपूर्ण है, हालांकि विकसित देशों और कुछ विकासशील देशों की तुलना में इतनी उत्साहजनक नहीं है। भारत में स्वास्थ्य देखभाल और परिवार कल्याण सेवाओं में वृद्धि ने मानव विकास क्षेत्र में इसके प्रदर्शन में महत्वपूर्ण योगदान दिया है।

हालांकि, मानव विकास प्रदर्शन स्तरों में व्यापक अंतर–राज्य भिन्नताएं हैं। उदाहरण के लिए, केरल जीवन प्रत्याशा 74.2 वर्ष और साक्षरता 96% के साथ बिहार, मध्य प्रदेश, उड़ीसा, राजस्थान और उत्तर प्रदेश जैसे राज्यों से बहुत आगे है, जहाँ लोगों के जीवन की गुणवत्ता बहुत खराब है।

लॉसेट (Lancet) पत्रिका (Joundal) की एक स्टडी के अनुसार भारत में जीवन प्रत्याशा 1990 में 59.6 वर्षों से बढ़ कर 2019 में 70.8 वर्ष हो गयी है। हालांकि जीवन प्रत्याशा का स्तर अलग–अलग प्रदेशों में काफी भिन्न है जैसे केरल में 74.2 वर्ष है जबकि उत्तर प्रदेश में 62.7 वर्ष है।

टिप्पणी

(SRS) सैंपल रजिस्ट्रेशन सिस्टम बुलेटिन 2016 के अनुसार भारत में मातृमृत्यु दर (MMR) में 2013–16 के बीच 26.9 प्रतिशत गिरावट आई है। मातृ मृत्यु दर 2011–13 में 167 से घटकर 2015–17 में 122 तथा 2016–18 में 113 रह गयी है।

एशियाई, अफ्रीकी और लैटिन अमेरिकी देशों की समस्याओं पर ध्यान केंद्रित करने वाले अर्थशास्त्रियों ने महसूस किया कि विकास की राह पर आगे बढ़ने के लिए इन देशों की मौजूदा सामाजिक, सांस्कृतिक और आर्थिक स्थितियों में आमूल–चूल परिवर्तन की आवश्यकता है।

इस प्रकार, विकास केवल भौतिक स्थितियों और समाज के लोगों के जीवन स्तर में सुधार नहीं है, इसमें जीवन प्रत्याशा, शिशु मृत्यु दर, वयस्क साक्षरता और लोगों की सामाजिक स्थितियों के संदर्भ में मानव सूचकांक में सुधार भी शामिल है।

मानवीय संबंध

उद्योग में मानव संबंध एक तकनीकी अवधारणा है। यह अवधारणा अमेरिका से विकसित हुई है। द्वितीय विश्व युद्ध से पहले यह अवधारणा अमेरिकी उद्योग में कुछ व्यवहारिक प्रयोगों का परिणाम थी। यह कांसेप्ट अमेरिका से ब्रिटेन आया था और ब्रिटिश उद्योगों में भी इसे आजमाया गया था। इन देशों में आम तौर पर मानव संबंधों का उपयोग मानव संसाधन के रूप में किया जाता है। यूरोप और अमेरिका में मानव संबंध उद्योग के क्षेत्र में एक महत्वपूर्ण स्कूल के रूप में माना जाता है। हमारे देश में श्रमिक संघों ने इस दिशा में महत्वपूर्ण योगदान नहीं दिया है। जब हम ट्रेड रिपोर्ट्स को देखते हैं, तो यह बिल्कुल स्पष्ट हो जाता है कि यहां मानवीय संबंधों की अवधारणा अभी विकसित नहीं हुई है। प्रबंधन को आमतौर पर इस क्षेत्र में पहल करनी चाहिए लेकिन ऐसा कुछ नहीं हुआ है।

मानवीय संबंधों के बारे में विदेशों में पर्याप्त सामग्री है। इन सामग्रियों को दो भागों में विभाजित किया जा सकता है। पहले भाग में अकादमिक साहित्य है। औद्योगिक समाजशास्त्रियों और मनोवैज्ञानिकों ने इस साहित्य का निर्माण किया है। यह उन सभी प्रयोगों की जाँच है जो यूरोप और अमेरिका में उद्योगों में उत्पादन बढ़ाने और श्रम प्रेरणा और प्रतिबद्धता बढ़ाने के लिए हुए हैं। मानवीय संबंधों में साहित्य की दूसरी श्रेणी प्रबंधन लोगों के लिए है।

मानवीय संबंध क्या हैं?

अमेरिका में मानवीय संबंधों की अवधारणा का इतिहास नागफनी अध्ययन (The Cactus Analogy) से संबंधित है। तथ्य यह है कि 1920 के मध्य में शिकागो में हॉथ्रोन कंपनी में वेस्टर्न इलेक्ट्रिक कंपनी और हार्वर्ड बिजनेस स्कूल के सहयोग से कुछ प्रयोग किए गए थे। इस अध्ययन में दो नए तथ्य सामने आए। पहला, उन्होंने यह पता लगाया कि श्रमिकों में असंतोष के क्या कारण थे और दूसरा, उस असंतोष के लिए क्या उपाय थे। नागफनी (Cactus Analogy) के प्रयोग लंबे समय तक चलते रहे। इसके परिणाम औद्योगिक जगत के लिए चौंकाने वाले थे। अध्ययनों के परिणामस्वरूप, औद्योगिक

टिप्पणी

समाजशास्त्रियों ने कहा कि श्रमिक आर्थिक समस्याओं के बारे में चिंता नहीं करते हैं। प्रबंधन को आर्थिक उत्प्रेरक देने की कोई आवश्यकता नहीं है। उनकी सबसे बड़ी समस्या मानसिक तनाव की थी। अध्ययन में पाया गया कि श्रमिकों की समस्याओं के प्रति सहानुभूति रखने की आवश्यकता थी। यदि कर्मचारी मानसिक तनाव से मुक्त है, तो इससे कारखानों में उत्पादकता स्वतः ही बढ़ जाएगी। उस अध्ययन से पहले, उद्योगों में प्रचलित दृष्टिकोण यह था कि श्रमिकों को आर्थिक प्रोत्साहन देने से उत्पादन में वृद्धि हो सकती है। नागफनी के अध्ययन (The Cactus Analogy) ने उस अवधारणा का खंडन किया।

एल्टन मेयो हॉथ्रोन प्रयोग के प्रभारी थे। उन्होंने विल्फ्रेडो परेटो और दुर्खीम के निष्कर्षों को रद्द कर दिया और कहा कि यह दृढ़ता से कहा जा सकता है कि श्रमिकों को तनाव मुक्त रखने से कारखाने में उत्पादकता बढ़ती है। यह समझना भूल होगी कि श्रमिकों पर कड़ी नजर रखने से उत्पादन बढ़ाया जा सकता है। मुख्य बात तनाव से संबंधित है। नागफनी अध्ययन के निष्कर्षों पर लिखते समयय एल्टन मेयो ने निवेदन किया कि कर्मचारियों को विश्वास में लेकर काम किया जाए। एल्टन मेयो के निष्कर्षों के आधार पर एक मनमौजी किताब 1949 में प्रकाशित हुई थी। इस किताब का नाम था 'वर्कर' और इसके लेखक जे. रोथ्लिस बर्गर और डब्ल्यू.जे. डिकॉन थे। आज भी औद्योगिक समाजशास्त्री कारखानों में प्रबंधन पर लिख रहे हैं।

एन. आर. शेठ और प्रवीण पटेल ने भारत में रुझान रिपोर्ट में औद्योगिक समाजशास्त्र की स्थिति का विवरण दिया है। वे उद्योग के विभिन्न आयामों पर चर्चा करते हैं। वे इस चर्चा में बताते हैं, भारतीय समाज में औद्योगीकरण की स्थिति क्या है? वे प्रायोगिक अध्ययन के संदर्भ में औद्योगिक संगठन, श्रम संगठन और औद्योगिक संबंधों पर भी चर्चा करते हैं। उन्होंने कहीं भी औपचारिक रूप से मानवीय संबंध या मानव संसाधन का उल्लेख नहीं किया है जो औद्योगिक क्षेत्र के सामान्य अध्ययन में उपलब्ध है। यद्यपि इस चर्चा में पाया जा सकता है कि श्रमिकों की संतुष्टि और उत्पादकता में वृद्धि के लिए श्रमिकों को कुछ प्रेरणा दी जानी चाहिए। इस प्रेरणा के रूप में कुछ प्रबंधनों ने श्रमिकों की कॉलोनियों को बसाया है, बच्चों के स्कूलों के लिए प्रावधान किए हैं, छूट पर कैंटीन का आयोजन किया है और बस सेवा की व्यवस्था की है। ऐसी प्रेरणाओं से यह आशा की जाती है कि वे कारखानों में उत्पादकता बढ़ाने में मदद करेंगे। हमारे संदर्भ में इन्हें श्रम कल्याण प्रणाली का एक हिस्सा माना जाता है। मानवीय संबंधों के क्षेत्र में श्रमिकों को तनावमुक्त रखने के लिए कोई ठोस कार्यक्रम सामने नहीं आया है लेकिन फैक्ट्री प्रबंधन ने कुछ संकेत दिए हैं। देश में कुछ ऐसे प्रबंधक हैं जो वास्तव में श्रमिकों और प्रबंधन के बीच की खाई को कम करने की कोशिश कर रहे हैं। मानवीय संबंधों के क्षेत्र में यह निश्चित रूप से कहा जा सकता है कि यदि श्रमिकों को अच्छे हालात (हास्य) में रखा जाए तो उत्पादन में वृद्धि हो सकती है। अब, यह स्थापित किया जाना चाहिए कि उत्पादन बढ़ाने के लिए आर्थिक प्रेरणा अधिक प्रासंगिक नहीं है।

टिप्पणी

2.4.3 सामाजिक विकास

सामाजिक विकास आमतौर पर व्यक्तिगत कल्याण और समाज के समग्र कल्याण दोनों में सुधार को संदर्भित करता है जो सामाजिक पूँजी में वृद्धि के परिणामस्वरूप होता है – आम तौर पर, मानव अस्तित्व के अंतर्गत सामाजिक बातचीत की मात्रा और गुणवत्ता के रूप में। संस्थागत पूँजी मुख्य रूप से औपचारिक कानूनों के साथ–साथ पारंपरिक या अनौपचारिक समझ को संदर्भित करती है जो व्यवहार को नियंत्रित करती है। संगठनात्मक पूँजी उन संस्थाओं (व्यक्तियों और सामाजिक समूहों दोनों) में सन्निहित है जो इन संस्थागत व्यवस्थाओं के भीतर काम करती हैं। आपसी विश्वास का स्तर और साझा सामाजिक मानदंडों की सीमा सामाजिक पूँजी के स्टॉक को निर्धारित करने में मदद करती है। समानता और गरीबी उन्मूलन भी एक महत्वपूर्ण तत्व है हालांकि, मौद्रिक आय/खपत के साथ कल्याण के समीकरण को चुनौती दी गई है। उदाहरण के लिए, बौद्ध दर्शन (2500 वर्ष से अधिक पुराना) अभी भी इस बात पर जोर देता है कि मानसिक संतोष जरूरी नहीं कि भौतिक उपभोग का पर्याय हो। हाल ही में, मास्लो (1970) और अन्य ने जरूरतों के पदानुक्रम की पहचान की है जो केवल वस्तुओं और सेवाओं से परे मानसिक संतुष्टि प्रदान करते हैं। इस प्रकार, विकास के सामाजिक आयाम में सुरक्षा रणनीतियाँ शामिल हैं जो भेद्यता को कम करती हैं, समानता में सुधार करती हैं और यह सुनिश्चित करती हैं कि बुनियादी जरूरतें पूरी हों। इसका तात्पर्य यह है कि सामाजिक–राजनीतिक संस्थान आधुनिकीकरण की चुनौतियों का सामना करने के लिए अनुकूल होंगे, जो अक्सर पारंपरिक प्रतिस्पर्धात्मक तंत्र को नष्ट कर देते हैं जो अतीत में विकसित हुए हैं (विशेषकर वंचित समूहों की रक्षा के लिए)।

बाजार अर्थव्यवस्था और इसके सामाजिक परिणाम

आम तौर पर, बाजार एक ऐसा स्थान होता है जहाँ खरीदार और विक्रेता मिलते हैं। लेकिन बाजार का यह मतलब आम आदमी के लिए है। इसका तकनीकी अर्थ अर्थशास्त्र में लिया जाता है। आज जब हमारे देश में वैश्वीकरण एक प्रभावी प्रक्रिया की तरह काम कर रहा है, विनिमय के क्षेत्र में बाजार की स्थिति महत्वपूर्ण हो गई है। बाजार वह स्थान है जहाँ वस्तुओं की कीमतें निश्चित होती हैं। किसी भी चीज का निर्यात–आयात माल के बाजार मूल्य पर निर्भर करता है और यह कीमत बाजार द्वारा तय की जाती है। "बाजार का अस्तित्व एक से अधिक विक्रेताओं के अस्तित्व पर निर्भर करता है। पूँजीवादी औद्योगिक व्यवस्था में बाजार प्रणाली मुक्त बाजार और खुली प्रतिस्पर्धा पर आधारित है। खरीदारों और विक्रेताओं के बीच आपसी प्रतिस्पर्धा के कारण और सौदेबाजी के कारण कीमत, उत्पाद की गुणवत्ता और अनुबंध के बीच संतुलन बना रहता है।

आधुनिक अर्थव्यवस्था में हमने बाजार की जो भूमिका देखी है, उसकी शुरुआत बहुत पुरानी नहीं है। पूरी दुनिया में इस प्रणाली का संबंध उत्पादन की प्रक्रिया से है। शुरू में बाजार जैसी कोई व्यवस्था नहीं थी। लोग वस्तु विनिमय करते थे, समुदाय वस्तु विनिमय आधारित संबंधों पर आधारित थे। कुछ समय पहले तक, वस्तु विनिमय प्रणाली हमारे गांवों और जनजातियों के बीच लोकप्रिय थी। यह अर्थव्यवस्था उस प्रकार की

टिप्पणी

थी जिसे आजीविका अर्थव्यवस्था कहा जाता है। लोग खेतों में जो कुछ भी पैदा करते थे, उसी से प्रबंधन करते थे। वे अपनी उपज दूसरों को वस्तु विनिमय में देते थे, जब जरूरत होती थी और इस प्रकार समुदाय पीढ़ियों तक चलता रहा। कुछ समुदायों के जीवन में एक ऐसी स्थिति भी आई जब आवश्यकता से अधिक वस्तुओं का उत्पादन होने लगा। उस अतिरिक्त उपज को बेचने के लिए बाजार की आवश्यकता महसूस की गई और इस प्रकार बाजार ने समुदाय आधारित या व्यक्तिगत आधारित वस्तु विनिमय की जगह ले ली। इस संदर्भ में, बाजार अर्थव्यवस्था एक ऐसी प्रणाली है जिसमें उत्पादन जो आजीविका के लिए आवश्यक से अधिक है, बेचा जा सकता था और उपभोग के लिए अन्य सभी सामान बेचा जा सकता था। इस आर्थिक व्यवस्था ने पूरी उत्पादन प्रक्रिया को ही बदल कर रख दिया। हालात ऐसे हो गए हैं कि किसान जो कुछ भी पैदा करता है उसे बाजार के लिए करता है। वह बाजार से अपने उपभोग के लिए चीजें खरीदता है। एक किसान केवल उन्हीं खाद्यान्नों का उत्पादन करता है जिनकी बाजार में अधिक कीमत होती है। इस प्रकार, बाजार आज पूरी उत्पादन प्रक्रिया को बदल देता है। बाजार का यह क्षेत्र स्थानीय, राष्ट्रीय और अंतर्राष्ट्रीय स्तर से परे है। आज इलेक्ट्रॉनिक्स और युद्ध के हथियारों के लिए भी एक अंतरराष्ट्रीय बाजार है।

2.4.4 सतत विकास

सतत विकास, सामाजिक–सांस्कृतिक स्थिरता और एकाधिक स्थिरता का प्रश्न आदि समानार्थी शब्दों का परिचय इस प्रकार है– शब्द 'सस्टेनेबिलिटी' लैटिन सस्टिनेयर (टेनेर, टू होल्ड, सब, अंडर) से लिया गया है। सस्टेनेबिलिटि का अर्थ है– 'बनाए रखने के लिए'– इस शब्द के लिए शब्दकोश दस से अधिक अर्थ प्रदान करते हैं, जिनमें से मुख्य हैं– ''बनाए रखना'', ''समर्थन'', या ''सहना''। दुनिया वर्तमान में सतत विकास या ''विकास जो कायम रह सकता है'' की अवधारणा की खोज कर रहा है – एक दृष्टिकोण जो (अन्य बातों के साथ) संसाधनों के उपयोग की कम तीव्रता पर जीवन की वर्तमान गुणवत्ता में निरंतर सुधार की अनुमति देगा, तथा भविष्य की पीढ़ियों के लिए संसाधनों की उपलब्धता को सुनिश्चित करने का प्रयास करेगा। संपत्ति के स्टॉक (यानी, निर्मित, प्राकृतिक और सामाजिक पूँजी) जो उनके जीवन की गुणवत्ता में सुधार के लिए कम अवसर प्रदान करेंगे। हालांकि अभी तक सतत विकास की कोई सार्वभौमिक रूप से स्वीकार्य व्यावहारिक परिभाषा मौजूद नहीं है, सतत विकास की अवधारणा के वर्तमान दृष्टिकोण कई दशकों के विकासात्मक प्रयासों के अनुभव पर आधारित हैं।

ऐतिहासिक रूप से, औद्योगिक दुनिया का विकास भौतिक उत्पादन पर केंद्रित था। आश्चर्य नहीं कि बीसवीं शताब्दी के दौरान अधिकांश औद्योगिक और विकासशील देशों ने उत्पादन और विकास बढ़ाने के आर्थिक लक्ष्य का पीछा किया है। 1960 के दशक तक, विकासशील दुनिया में गरीबों की बड़ी और बढ़ती संख्या, और उनके लिए ''ट्रिकल–डाउन'' लाभों की कमी के परिणामस्वरूप आय वितरण में सीधे सुधार करने के अधिक प्रयास हुए। विकास प्रतिमान समान विकास की ओर स्थानांतरित हो गया, जहाँ सामाजिक उद्देश्यों, विशेष रूप से गरीबी उन्मूलन को आर्थिक दक्षता से अलग और महत्वपूर्ण माना गया। पर्यावरण की सुरक्षा अब विकास का तीसरा प्रमुख उद्देश्य बन गया है। 1970 के दशक के दौरान, साक्ष्यों का एक बड़ा समूह जमा हुआ कि

टिप्पणी

पर्यावरणीय गिरावट विकास के लिए एक प्रमुख बाधा थी, और नए सक्रिय सुरक्षा उपायों को धीरे–धीरे प्रस्तुत किया गया था।

स्थिरता मूल रूप से ग्रह पर रहने की एक नई नैतिकता को अपनाने और दुनिया में सामाजिक वस्तुओं और संसाधनों के उचित वितरण के माध्यम से एक अधिक न्यायसंगत और न्यायपूर्ण समाज बनाने के बारे में है। ब्रूटलैंड की रिपोर्ट कहती है, ''सतत विकास एक ऐसा विकास है जो भविष्य की पीढ़ियों की अपनी जरूरतों को पूरा करने की क्षमता से समझौता किए बिना वर्तमान की जरूरतों को पूरा करता है''।

सतत विकास : सहायक पारिस्थितिक तंत्र की वहन क्षमता के भीतर रहते हुए जीवन की गुणवत्ता में सुधार करना है। –विश्व संरक्षण संघ एट अल। (1991) ... भविष्य की पीढ़ियों की अपनी जरूरतों को पूरा करने की क्षमता से समझौता किए बिना वर्तमान की जरूरतों को पूरा करता है। –विश्व पर्यावरण और विकास आयोग (1987) लेकिन इसे 21वीं सदी के चश्मे से पढ़ने पर इसका मतलब है कि पिछले दो दशकों के दौरान हमने जो सीखा है, उसे नीति नियोजन में अनुवाद करना। हमें अपनी चुनौतियों का साहस के साथ सामना करने की जरूरत है। इस प्रकार, हमें संस्कृति को स्थिरता के एक प्रमुख आयाम के रूप में अपनाना होगा।

हम कहाँ हैं : स्थिरता के लिए मुख्यधारा की नीतियाँ तीन स्तंभों या आयामों पर बनी हैं। आर्थिक स्तंभ का उद्देश्य आय बनाना है और इसकी कल्पना 18वीं शताब्दी में की गई थी, सामाजिक स्तंभ आय का पुनर्वितरण करता है और इसका उद्देश्य समाज के सभी सदस्यों के लिए समानता से संबंधित विचारों को प्रस्तुत करना है जैसा कि हमने 19वीं शताब्दी के अंत में शुरू किया था, तीसरा स्तंभ पर्यावरण की जिम्मेदारी को देखता है और इसकी कल्पना 20वीं शताब्दी के उत्तरार्ध के दौरान की गई थी। जितना अधिक हम सीखते हैं, उतना ही बेहतर हम दुनिया को समझते हैं। ये तीन स्तंभ सतत विकास के प्रतिमान को आकार देते हैं, एक ''पुण्य त्रिकोण'' जिसे सरकार के सभी स्तरों पर लागू किया जाता है, चाहे वह स्थानीय, राष्ट्रीय, महाद्वीपीय या वैश्विक हो। 1992 में रियो डी जनेरियो के पृथ्वी शिखर सम्मेलन में ब्रूटलैंड रिपोर्ट (1987) के बाद प्रतिमान को सफलतापूर्वक समेकित किया गया था। ब्रूटलैंड रिपोर्ट से प्राप्त स्थिरता पर आधारित चार व्यापक सिद्धांतों को वैश्विक स्थिरता के लिए आवश्यक दृष्टिकोण के रूप में देखा जाता है :

1. गरीबी का उन्मूलन – गरीबी, विशेष रूप से तीसरी दुनिया में, केवल मानवीय आधार पर ही नहीं बल्कि एक पर्यावरणीय मुद्दे के रूप में आवश्यक है।
2. प्रथम विश्व (विकसित राष्ट्रों) को संसाधनों की खपत और कचरे के उत्पादन को कम करना चाहिए।
3. पर्यावरणीय मुद्दों पर वैश्विक सहयोग अब एक आसान विकल्प नहीं है।
4. स्थिरता की ओर परिवर्तन केवल समुदाय–आधारित दृष्टिकोणों से हो सकता है जो स्थानीय संस्कृतियों को गंभीरता से लेते हैं।

(न्यूमैन एंड केनवर्थी, 1999, पीपी 2–3 से अनुकूलित, जोर जोड़ा गया)

टिप्पणी

संयुक्त राष्ट्र सदस्य राज्यों द्वारा 2015 में 'वर्ष 2030 में सतत विकास का एजेन्डा' अपनाया गया जो कि मानव समाज तथा पृथ्वी ग्रह के वर्तमान और भविष्य में शांति और समृद्धि के लिये एक साझा खाका प्रदान करता है। इसके केन्द्र में 17 सतत् विकास लक्ष्य (Sustainable Development Goals) हैं। जिनमें गरीबी उन्मूलन तथा अन्य अभावों की समाप्ति, स्वास्थ्य व शिक्षा में सुधार, असमानता को कम करना, आर्थिक विकास में सुधार, जलवायु परिवर्तन पर चिंतन एवं कार्य पर चिंतन एवं कार्य तथा महासागरों और जगलों का संरक्षण शामिल है।

2.4.5 सामाजिक–सांस्कृतिक स्थिरता के प्रश्न

सत्त विकास उपभोग–आधारित जीवन शैली और निर्णय लेने की प्रक्रियाओं पर सवाल उठाता है जो पूरी तरह से आर्थिक दक्षता पर आधारित होते हैं, लेकिन इसके नैतिक आधार पर्यावरण और अर्थव्यवस्था के दायित्व से परे होते हैं– यह एक समग्र और रचनात्मक प्रक्रिया है जिसे हमें लगातार प्रयास करना चाहिए।

स्थिरता के पर्यावरणीय, सामाजिक और आर्थिक मॉडल संस्कृति को एक महत्वपूर्ण आयाम के रूप में देखते हैं, फिर भी यह समझने की सामान्य कमी है कि संस्कृति किससे संबंधित है और क्या तथा कैसे योगदान करती है। स्थिरता के सौंदर्यशास्त्र में, हिल्डेगार्ड कर्ट ने सतत विकास के क्षेत्र में (यानी, 1992 के रियो घोषणा और एजेंडा 21 दस्तावेजों में) ''स्थिरता प्रवचन में सांस्कृतिक विचारों की कमी'' को नोट किया और देखा कि ''स्थिरता के सांस्कृतिक और सौंदर्य आयामों के बारे में प्रश्न'' 1980 के दशक के मध्य में प्राकृतिक और सामाजिक विज्ञान में उत्पन्न होने वाले विषय पर बहस से पिछड़ गए हैं'' (2004, पृष्ठ 6)।

आज तक, संस्कृति को पारंपरिक रूप से स्थिरता के सामाजिक आयामों के एक घटक के रूप में या सामाजिक पूँजी पर चर्चा के हिस्से के रूप में देखा गया है, और बड़े पैमाने पर इसकी जाँच नहीं की गई है। कुछ हद तक, मुद्दा सांस्कृतिक विचारों की मान्यता की कमी है। उदाहरण के लिए, सांस्कृतिक और सामाजिक स्थिरता के विचारों की परस्पर उत्पत्ति को सामाजिक स्थिरता शब्द के उपयोग से अच्छी तरह से चित्रित किया गया है, ''पहचानने योग्य जातीय–सांस्कृतिक समूहों के अस्तित्व के लिए आवश्यक स्थितियों का वर्णन करने के लिए, अर्थात, आवश्यक इष्टतम जनसंख्या, के साथ संयुक्त उस जनसंख्या का घनत्व और सांस्कृतिक प्रजनन की प्रक्रियाएँ''

स्थिरता की चर्चा, जैसा कि डबलडे, मैकेंजी, और दल (2004) ने देखा है, अब ''संस्कृति की गतिशील समझ और उस स्थान की मान्यता दोनों को शामिल करते हैं क्योंकि अभ्यास को बनाए रखने की आवश्यकता होती है, साथ ही साथ जो खतरे पैदा करते हैं, होते हैं। विशेष रूप से समुदायों में और विशिष्ट भौगोलिक संदर्भों में''। वे ध्यान देते हैं कि स्थिरता की गंभीर चर्चा के लिए ''लोगों या उनके पारिस्थितिक संदर्भों की धारणाओं के बजाय विशेष स्थानों में जटिल सांस्कृतिक व्यवस्था की गतिशीलता पर विचार'' की आवश्यकता होती है और सांस्कृतिक रूप से गठित स्थानों में स्थिरता पर मौलिक बहस को ''जीवन जीने की सक्रिय प्रथाओं के साथ पर्यावरण और सांस्कृतिक संरक्षण'' के विपरीत होना चाहिए।''

टिप्पणी

बहु–संधारणीयता

किसी विशेष संसाधन के संरक्षण के उद्देश्य से कार्यक्रमों, पहलों और कार्यों को इंगित करने के लिए स्थिरता शब्द का व्यापक रूप से उपयोग किया जाता है। बहु संधारणीयता के क्षेत्र हैं : मानव, सामाजिक, आर्थिक और पर्यावरण– इन्हें स्थिरता के चार स्तंभों के रूप में भी जाना जाता है।

मानव स्थिरता

मानव स्थिरता का उद्देश्य समाज में मानव पूंजी को बनाए रखना और सुधारना है। स्वास्थ्य और शिक्षा प्रणालियों में निवेश, सेवाओं तक पहुंच, पोषण, ज्ञान और कौशल सभी कार्यक्रम मानव स्थिरता की छत्रछाया में आते हैं। मानव स्थिरता उत्पादों के निर्माण, या सेवाओं के प्रावधान या व्यापक हितधारकों (संगठन की मानव पूंजी) (बेन एट अल।, 2014) में प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से शामिल किसी के महत्व पर केंद्रित है। दुनिया भर के समुदाय व्यावसायिक गतिविधियों से सकारात्मक या नकारात्मक रूप से प्रभावित हो सकते हैं, या कच्चे माल के स्रोत के तरीकों के माध्यम से प्रभावित हो सकते हैं। मानव स्थिरता में संगठन के कार्यों और स्थिरता का समर्थन करने और समुदायों और समाज की भलाई को बढ़ावा देने के लिए कौशल और मानव क्षमता का विकास शामिल है।

सामाजिक स्थिरता

सामाजिक स्थिरता का उद्देश्य हमारे समाज के ढांचे का निर्माण करने वाली सेवाओं का निवेश और निर्माण करके सामाजिक पूंजी को संरक्षित करना है। अवधारणा समुदायों, संस्कृतियों और वैश्वीकरण के संबंध में दुनिया के एक बड़े दृष्टिकोण को समायोजित करती है। इसका अर्थ है भावी पीढ़ियों को संरक्षित करना और यह स्वीकार करना कि हम जो करते हैं उसका दूसरों पर और दुनिया पर प्रभाव पड़ सकता है। सामाजिक स्थिरता सामंजस्य, पारस्परिकता, ईमानदारी और लोगों के बीच संबंधों के महत्व जैसी अवधारणाओं के साथ सामाजिक गुणवत्ता को बनाए रखने और सुधारने पर केंद्रित है।

आर्थिक स्थिरता

आर्थिक स्थिरता का उद्देश्य पूंजी को बरकरार रखना है। यदि सामाजिक स्थिरता सामाजिक समानता में सुधार पर ध्यान केंद्रित करती है, तो आर्थिक स्थिरता का उद्देश्य जीवन स्तर में सुधार करना है।

पर्यावरणीय स्थिरता

पर्यावरणीय स्थिरता का उद्देश्य प्राकृतिक पूंजी (जैसे भूमि, वायु, जल, खनिज आदि) के संरक्षण के माध्यम से मानव कल्याण में सुधार करना है। पहल और कार्यक्रमों को पर्यावरणीय रूप से टिकाऊ तब परिभाषित किया जाता है जब वे यह सुनिश्चित करते हैं कि भविष्य की पीढ़ियों की जरूरतों से समझौता किए बिना आबादी की जरूरतों को पूरा किया जाए। डनफी, बेनवेनिस्ट, ग्रिफिथ्स और सटन (2000) द्वारा वर्णित पर्यावरणीय स्थिरता, इस बात पर जोर देती है कि व्यवसाय पर्यावरण को कम या लंबी अवधि में कोई नुकसान किए बिना सकारात्मक आर्थिक परिणाम कैसे प्राप्त कर सकता है।

टिप्पणी

बहु स्थिरता के चार स्तंभों के सिद्धांत में कहा गया है कि पूर्ण स्थिरता के लिए स्थिरता के सभी चार स्तंभों के आलोक में समस्याओं को हल किया जाना चाहिए और फिर बनाए रखा जाना चाहिए।

विकास आर्थिक विकास के साथ दृढ़ता से जुड़ा हुआ है, लेकिन इसके महत्वपूर्ण सामाजिक आयाम हैं क्योंकि आर्थिक प्रगति का मूल्यांकन अक्सर कल्याण (या उपयोगिता) के संदर्भ में किया जाता है – जिसे उपभोग की गई वस्तुओं और सेवाओं के भुगतान की इच्छा के रूप में मापा जाता है। कई आर्थिक नीतियाँ आम तौर पर आय, और कुशल उत्पादन और वस्तुओं और सेवाओं की खपत को बढ़ाने की कोशिश करती हैं। कीमतों और रोजगार की स्थिरता अन्य महत्वपूर्ण उद्देश्यों में से हैं। आर्थिक दक्षता की डिग्री को परेटो इष्टतमता के विचार के संबंध में मापा जाता है जो उन कार्यों को प्रोत्साहित करता है जो किसी और की स्थिति को खराब किए बिना कम से कम एक व्यक्ति के कल्याण में सुधार करेंगे। आदर्शीकृत, पूरी तरह से प्रतिस्पर्धी अर्थव्यवस्था एक महत्वपूर्ण (पेरेटो इष्टतम) बेंचमार्क है, जहाँ कुशल कीमतें उत्पादन को अधिकतम करने के लिए उत्पादक संसाधनों को आवंटित करने और उपभोक्ता उपयोगिता को अधिकतम करने वाले इष्टतम खपत विकल्पों को सुनिश्चित करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाती हैं। प्रसिद्ध लागत–लाभ मानदंड जो उन सभी परियोजनाओं को स्वीकार करता है जिनके शुद्ध लाभ सकारात्मक हैं, कमजोर ''अर्ध'' परेटो स्थिति पर आधारित है – जो मानता है कि ऐसे शुद्ध लाभों को संभावित लाभार्थियों से हारने वालों को पुनर्वितरित किया जा सकता है, ताकि पहले से बुरा कोई नहीं है। अधिक आम तौर पर, (मुद्रीकृत) कल्याण की पारस्परिक तुलना कठिनाई से भरी होती है (दोनों देशों के भीतर और समय के साथ) – उदाहरण के लिए, मानव जीवन का मूल्य।

पर्यावरण विकास

पर्यावरणीय अर्थों में विकास एक हालिया चिंता है जो दुर्लभ प्राकृतिक संसाधनों को विवेकपूर्ण तरीके से प्रबंधित करने की आवश्यकता से संबंधित है – क्योंकि मानव कल्याण अंततः पारिस्थितिक सेवाओं पर निर्भर करता है। सुरक्षित पारिस्थितिक सीमाओं की अनदेखी करने से आर्थिक विकास और उपभोग के लिए दीर्घकालिक संभावनाओं को कम करने का जोखिम बढ़ जाएगा। दासगुप्ता और मालेर (1997) बताते हैं कि 1990 के दशक तक, मुख्यधारा के विकास साहित्य में शायद ही पर्यावरण के विषय का उल्लेख किया गया था (उदाहरण के लिए, स्टर्न 1989य चेनेरी और श्रीनिवासन 1988 और 1989य और ड्रेज और सेन 1990)।

विकास का आधुनिक दृष्टिकोण

अमर्त्य सेन, अर्जुन अप्पादुरई या एडगर मोरिन ने 1992 के बाद विकास के अर्थ में अपना मुख्य योगदान लिखा है। ''विकास'' की अवधारणा पिछले दो दशकों के दौरान विकसित हुई है। आज विकास का मतलब है आजादी और पृथ्वी पर रहने वाले प्रत्येक व्यक्ति के लिए विकल्पों का विस्तार करना। वैज्ञानिक बहुत स्पष्ट रूप से मानव–बच्चों, पुरुषों और महिलाओं को भविष्य के केंद्र में, स्थिरता के केंद्र में रखने की आवश्यकता पर प्रकाश डालते हैं। मनुष्य के रूप में हम जिन चुनौतियों का सामना कर रहे हैं, उन पर कोई भी महत्वपूर्ण विश्लेषण कहता है कि हमारे पास क्षमताएं हैं लेकिन हमारे पास

टिप्पणी

(अक्सर) दुनिया को समझने और इसे बदलने के लिए कुछ क्षमताएं (उपकरण, कौशल) नहीं हैं ताकि यह वास्तव में टिकाऊ हो जाए . ये क्षमताएं हैं साक्षरता, रचनात्मकता, महत्वपूर्ण ज्ञान, स्थान की भावना, सहानुभूति, विश्वास, जोखिम, सम्मान, मान्यता... ये क्षमताएं विकास के मौजूदा तीन स्तंभों में से किसी में भी शामिल नहीं हैं। इन क्षमताओं को स्थिरता के सांस्कृतिक घटक के रूप में समझा जा सकता है।

2019 में जैवविविधता तथा इकोसिस्टम के नीति निर्माताओं द्वारा सबसे बड़े और सबसे व्यापक अध्ययन का सारांश प्रकाशित किया गया। इसमें सिफारिश की गयी कि मानव सभ्यता को एक ऐसे परिवर्तन की आवश्यकता होगी जिसमें कृषि, खपत और अपशिष्ट (Waste) में कमी, मछली पकड़ने का कोटा और सहयोगी जल प्रबंधन शामिल हैं।

हम कहाँ हैं : आइए साहसी बनें और कहें कि स्थिरता का वर्तमान प्रतिमान अप्रचलित है, आइ ए सुझाव दें कि प्रतिमान को चौथे स्तंभ–संस्कृति की आवश्यकता है, और आइए इस मजबूत कथन को ऐसे साक्ष्यों के साथ प्रस्तुत करें जो मानव से ग्रह (पृथ्वी) तक जाते हैं, कदम दर कदम आगे बढ़ते हैं कदम।

सांस्कृतिक स्थिरता

संस्कृति को मोटे तौर पर ''विशिष्ट आध्यात्मिक, भौतिक, बौद्धिक और भावनात्मक विशेषताओं के पूरे परिसर के रूप में परिभाषित किया गया है जो एक समाज या सामाजिक समूह की विशेषता है। इसमें न केवल कला बल्कि जीवन के तरीके, मनुष्य के मौलिक अधिकार, मूल्य प्रणाली, परंपराएं और विश्वास भी शामिल हैं'' (यूनेस्को, 1995, पृष्ठ 22)।

विश्व व्यापार में सांस्कृतिक वस्तुओं, सेवाओं और बौद्धिक संपदा के बढ़ते हिस्से के साथ–साथ सांस्कृतिक खतरों के कारण वैश्विक विकास के मुद्दों में संस्कृति का क्षेत्र प्रमुखता से बढ़ा है।

समकालीन वैश्वीकरण से जुड़ी विविधताएं और पहचान साथ ही इस बात की जागरूकता भी बढ़ रही है कि सांस्कृतिक विविधता का संरक्षण और संवर्धन सार्वभौमिक मानव अधिकारों, मौलिक स्वतंत्रता के साथ–साथ पारिस्थितिक और आनुवंशिक विविधता हासिल करने के लिए महत्वपूर्ण है। यह दृष्टिकोण इस विचार पर आधारित है कि सतत विकास तभी प्राप्त किया जा सकता है जब सांस्कृतिक विविधता और सामाजिक समानता, पर्यावरणीय जिम्मेदारी और आर्थिक व्यवहार्यता के उद्देश्यों के बीच सामंजस्य और संरेखण हो।

इसलिए स्थिरता पर विचार करते हुए संस्कृति के आंतरिक मूल्यों को पहचानना महत्वपूर्ण है क्योंकि यह विकास का एक साधन है, लेकिन एक महत्वपूर्ण संसाधन के रूप में भी है। संस्कृति धीरे–धीरे सामाजिक स्थिरता के दायरे से बाहर निकल रही है और सतत विकास में एक अलग, विशिष्ट और अभिन्न भूमिका के रूप में पहचानी जा रही है। इस प्रकार, सांस्कृतिक स्थिरता हो सकती है।

''सांस्कृतिक पहचान को बनाए रखने की क्षमता और लोगों के सांस्कृतिक मूल्यों के अनुरूप परिवर्तन को निर्देशित करने की अनुमति देने की क्षमता'' के रूप में परिभाषित किया गया है।

टिप्पणी

अपनी प्रगति जांचिए

5. "आर्थिक विकास को किसी भी स्रोत से प्रति व्यक्ति वास्तविक आय में वृद्धि के रूप में देखा जा सकता है।" – यह किसका मत है–

   (क) रॉबर्ट फारिस का (ख) बाख का

   (ग) नोवाक का (घ) स्टीवर्ट का

6. किसकी अवधारणा के वर्तमान दृष्टिकोण कई दशकों के विकासात्मक प्रयासों के अनुभव पर आधारित हैं?

   (क) स्थिरता की (ख) संस्कृति की

   (ग) पर्यावरण की (घ) सतत विकास की

2.5 अपनी प्रगति जांचिए प्रश्नों के उत्तर

1. (ग)
2. (क)
3. (ख)
4. (घ)
5. (क)
6. (घ)

2.6 सारांश

हम भारत में सामाजिक परिवर्तन की प्रक्रिया को दो भागों में विभाजित करके विश्लेषण कर सकते हैं, अर्थात् औपनिवेशिक शासन के दौरान और स्वतंत्रता के बाद।

प्रत्येक बीतते दिन के साथ, ग्रामीण आबादी शहर की ओर पलायन कर रही है और गति पहले से कहीं अधिक तेज होती जा रही है। यहाँ तक कि कई गाँव कस्बों और शहरों में बदल रहे हैं। ग्रामीण लोग गैर–कृषि व्यवसाय अपना रहे हैं और खेती से संबंधित व्यवसाय छोड़ रहे हैं। परिवहन और संचार के साधनों में विकास के कारण रेलवे, सड़क परिवहन, टेलीविजन, रेडियो आदि जैसे ग्रामीण और शहरी आबादी के बीच संपर्क उल्लेखनीय रूप से बढ़ा है। इसके परिणामस्वरूप ग्रामीण क्षेत्रों में शहरी विशेषताओं का प्रसार हुआ है। ग्रामीण और शहरी क्षेत्रों के बीच अंतर मौलिक सामाजिक और सांस्कृतिक लक्षणों के संदर्भ में तेजी से कम हुआ है। ग्रामीण क्षेत्रों में खेती अब आधुनिक उपकरणों और तकनीकों का उपयोग करके की जाती है, जैसे इलेक्ट्रिक मोटर, ट्रैक्टर, उच्च उपज किस्म के बीज, उर्वरक आदिय पारंपरिक तरीकों से किए जाने के बजाय।

भारत में महत्वपूर्ण सामाजिक परिवर्तन लाने वाले धर्म– परिवर्तन की प्रक्रिया प्राचीन काल से ही देखी जाती रही है। विभिन्न धर्मों के अनुयायियों की अपनी जीवन शैली, विश्वास, वेशभूषा और व्यवहार पैटर्न होते हैं। उनमें धर्म परिवर्तन और अंतर्जातीय

टिप्पणी

विवाह के माध्यम से सामाजिक परिवर्तन होते हैं। जैन धर्म और बौद्ध धर्म ने हिंदू समाज में कई बदलाव लाए हैं। बहुत लंबे समय से जैनियों और हिंदुओं में विवाह की परंपरा रही है। अंतर–धार्मिक विवाह हिंदुओं और सिखों में काफी आम थे; किन्तु बहुत पहले नहीं। सांप्रदायिकता और क्षेत्रवाद की वृद्धि के कारण अंतर–धार्मिक विवाह कम हो गए हैं। सिख या हिंदू लड़कियों की शादी मुसलमानों से होती है। ईसाई मिशनरियों के प्रचार के परिणामस्वरूप अनुसूचित जाति और जनजाति के कई लोग ईसाई धर्म में परिवर्तित हो गए हैं। आजादी के बाद, हजारों हरिजनों ने हिंदू धर्म छोड़ दिया और बौद्ध धर्म में परिवर्तित हो गए; अम्बेडकर से प्रभावित होने के बाद पिछले कई वर्षों में लाखों हिंदुओं को मुसलमान बनाया गया। मेव समाज ऐसे ही धर्म परिवर्तन का परिणाम है। धर्म परिवर्तन से समाज और लोगों की संस्कृति में परिवर्तन होता है। भारत में सामाजिक परिवर्तन लाने में धर्म परिवर्तन की प्रक्रिया महत्वपूर्ण रही है।

भारत पूरी दुनिया में सबसे पुरानी, निरंतर और अबाधित जीवित सभ्यताओं में से एक है जिसे हिंदू धर्म के रूप में जाना जाता है। भारतीय सभ्यता की प्रमुख विशेषताओं में से एक इसकी 'जाति–व्यवस्था' है। जाति व्यवस्था समाज को स्तरीकृत करने का एक अनूठा तरीका है। इसकी अवधारणा, उत्पत्ति और अभ्यास विशेष रूप से भारत में किया गया है। इसने भारतीय समाज को एक विशिष्ट पहचान दी है। जाति–व्यवस्था भारत के संपूर्ण सामाजिक ताने–बाने में चलने वाली प्रमुख विशेषताओं में से एक है। जातियों की अपनी जातीय जड़ें हैं, जैसा कि ''जाति'' द्वारा दर्शाया गया है, और इसके वर्ण पहलू में एक कर्मकांड और प्रतीकात्मक महत्व है। इसने पूरे भारत की संस्कृति को बहुत प्रभावित किया है। जाति व्यवस्था ने बिना किसी रुकावट के अपनी निरंतरता बनाए रखी है। यह समय के उतार–चढ़ाव से बच गया है, केवल अनुकूलन क्षमता के कारण भीतर से क्षरण और बाहर से हमले से खुद को बचाया है। इसकी शोषक प्रकृति ने विदेशी प्रभावों को आंतरिक कर दिया है। बदलते समय और स्थान के साथ इसने अलग–अलग रंग और अर्थ लिए हैं। सिंधु घाटी सभ्यता के दौरान इसका चरित्र आज के अस्तित्व से बिल्कुल अलग था। यह अभी क्षणिक अवस्था में है। इसकी छाया गाँव, मोहल्ले, क्षेत्र या धर्म के सन्दर्भ में भिन्न है। एक बार बदल जाने के बाद, सिस्टम अपने मूल स्वरूप में कभी नहीं लौटा। इसकी शोषक प्रकृति ने विदेशी प्रभावों को आंतरिक कर दिया है। हालांकि भारतीय समाज जो कि जाति व्यवस्था पर आधारित है, को अक्सर ''बंद समाज'' के रूप में माना जाता है, यह पूरी तरह से परिवर्तनहीन नहीं है। जाति के ढाँचे के भीतर ही किसी प्रकार की गतिशीलता देखी जाती है। भारत में जो सामाजिक–सांस्कृतिक परिवर्तन हुए हैं, उन्हें मुख्य रूप से इन प्रक्रियाओं में वर्गीकृत किया जा सकता है, अर्थात संस्कृतीकरण, पश्चिमीकरण और आधुनिकीकरण। ये तीन प्रक्रियाएं भारतीय जनता की ओर से जाति व्यवस्था के ढाँचे के भीतर और बाहर कुछ मात्रा में गतिशीलता हासिल करने के प्रयास को दर्शाती हैं।

अपने आर्थिक विश्लेषण में रॉबर्ट माल्थस ने उत्पादन की मात्रा और मुद्रा में वृद्धि की व्याख्या प्रस्तुत की है। कार्ल मार्क्स ने आर्थिक विकास की प्रक्रिया का भी विश्लेषण किया है। पिछले कुछ दशकों के दौरान आर्थिक विकास की अवधारणा को स्पष्ट करने में क्रांतिकारी बदलाव आया है और आर्थिक विकास पर बहुत कुछ कहा और लिखा गया है।

टिप्पणी

विकास की बदलती अवधारणा में पश्चिमी अर्थशास्त्रियों की रुचि का मुख्य कारण पूँजीवादी और समाजवादी देशों के बीच आर्थिक विकास के क्षेत्र में लगातार बढ़ती प्रतिस्पर्धा है। इसके अलावा, द्वितीय विश्व युद्ध के बाद, कई अफ्रीकी और एशियाई देशों ने स्वतंत्रता प्राप्त की और उनमें त्वरित आर्थिक विकास की तीव्र इच्छा पैदा हुई।

बड़े शब्दों में, "आर्थिक विकास को किसी भी स्रोत से प्रति व्यक्ति वास्तविक आय में वृद्धि के रूप में देखा जा सकता है" (रॉबर्ट फारिस, 1964:889)। बाख (1960–67) ने इसे इस प्रकार समझाया है, ''यह अर्थव्यवस्था में वस्तुओं और सेवाओं के कुल उत्पादन में वृद्धि है जो आर्थिक विकास है।'' डेविड नोवाक (1964: 151) ने एक पुरानी परिभाषा के संदर्भ में आर्थिक विकास की व्याख्या की है, ''यह वस्तुओं और सेवाओं की प्रति व्यक्ति खपत में ठोस वृद्धि के बारे में है।'' ठोस खपत तभी संभव है जब आर्थिक चीजों का ठोस उत्पादन हो और आज ठोस उत्पादन तकनीक के अधिक उपयोग पर निर्भर करता है। संकीर्ण अर्थ में यह कहा जा सकता है कि आर्थिक विकास का अर्थ है, ''आर्थिक चीजों के उत्पादन और वितरण में निर्जीव शक्ति और अन्य तकनीकों का व्यापक उपयोग।'' (रॉबर्ट फारिस, 1964: 889)। इस सन्दर्भ में यह कहना सही नहीं होगा कि आर्थिक विकास का अर्थ केवल औद्योगीकरण है क्योंकि शक्ति और अन्य प्रौद्योगिकियों के उपयोग के अलावाय श्रम गतिशीलता, व्यापक शैक्षिक प्रणाली आदि भी उत्पादन में शामिल हैं।

2.7 मुख्य शब्दावली

- **आबादी** : जनसंख्या।
- **प्रतिष्ठा** : सम्मान।
- **अबाधित** : व्यवधान रहित।
- **खिलाफ** : विरुद्ध।
- **प्रतिबंध** : रोक।

2.8 स्व–मूल्यांकन प्रश्न एवं अभ्यास

लघु–उत्तरीय प्रश्न

1. सामाजिक परिवर्तन की प्रमुख प्रक्रियाएं क्या हैं?
2. पश्चिमीकरण का क्या अर्थ है?
3. डॉ. एम. एन. श्रीनिवास ने आधुनिकीकरण के किन तीन मुख्य क्षेत्रों का उल्लेख किया है?
4. धर्म निरपेक्षीकरण से आप क्या समझते हैं?
5. सतत विकास के बारे में आप क्या जानते हैं?

टिप्पणी

दीर्घ–उत्तरीय प्रश्न

1. समकालीन भारत में होने वाले सामाजिक परिवर्तनों की विवेचना कीजिए।
2. संस्कृतीकरण की व्याख्या कीजिए।
3. ब्रिटिश शासन के दौरान भारतीय समाज और संस्कृति में आए मुख्य परिवर्तनों की समीक्षा कीजिए।
4. आधुनिकीकरण का विस्तारपूर्वक विश्लेषण कीजिए।
5. आर्थिक विकास की मुख्य बातों पर प्रकाश डालिए।

2.9 सहायक पाठ्य सामग्री

जे.पी. सिंह, *समाजशास्त्र : अवधारणाएं एवं सिद्धांत*, पीएचआई लर्निंग प्रा. लि., दिल्ली, 2013.

जे.पी. सिंह, *आधुनिक भारत में सामाजिक परिवर्तन*, पीएचआई लर्निंग प्रा. लि., दिल्ली, 2016.

श्यामाचरण दुबे, *विकास का समाजशास्त्र*, दिवि पब्लिशर्स, 1996.

डॉ. पूरन चंद्र जोशी, *परिवर्तन और विकास के सांस्कृतिक आयाम*, राजकमल प्रकाशन, 1999.

धीरूभाई शेठ, *सत्ता और समाज*, सं. : अभय कुमार दुबे, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, 2009.

सच्चिदानंद सिन्हा, *भूमंडलीकरण की चुनौतियां*, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली.

साक्षात्कार, अंक 385–390, मध्य प्रदेश शासन साहित्य परिषद, भोपाल, 2012.

इकाई 3 विकास पर महत्वपूर्ण परिप्रेक्ष्य : पारिस्थितिक और मार्क्सवादी

संरचना

3.0 परिचय
3.1 उद्देश्य
3.2 विकास पर महत्वपूर्ण परिप्रेक्ष्य
  3.2.1 मनुष्य और उसकी पारिस्थितिकी
  3.2.2 उदारवादी
  3.2.3 मार्क्सवादी
3.3 विकास और अविकसितता के सिद्धांत
  3.3.1 आधुनिकीकरण
  3.3.2 विकास के सिद्धांत पर निर्भर : केंद्र–परिधि, असमान विनिमय, विश्व–प्रणाली
3.4 अपनी प्रगति जांचिए प्रश्नों के उत्तर
3.5 सारांश
3.6 मुख्य शब्दावली
3.7 स्व–मूल्यांकन प्रश्न एवं अभ्यास
3.8 सहायक पाठ्य सामग्री

3.0 परिचय

''सामाजिक पारिस्थितिकी स्थानीय पारिस्थितिकी तंत्र के संदर्भ में मानव के सामाजिक और सांस्कृतिक जीवन का वैज्ञानिक अध्ययन करती है।''

मनुष्य पारिस्थितिकी से प्रभावित होता है और पारिस्थितिकी को भी प्रभावित करता है। इस प्रकार मनुष्य और पारिस्थितिकी एक–दूसरे से प्रभावित होकर निकट से संबंद्ध हो जाते हैं। मानव जीवन और सामाजिक पारिस्थितिकी तंत्र के इस पारस्परिक प्रभाव के अध्ययन को सामाजिक पारिस्थितिकी कहा जाता है।

प्रस्तुत इकाई में पारिस्थितिकी के मनुष्य पर पड़ने वाले प्रभावों का विवेचन किया गया है तथा कार्ल मार्क्स के साथ ही अन्य विचारों एवं सिद्धांतों का अध्ययन किया गया है और विकसित तथा अविकसित देशों के मध्य आदान–प्रदान के अंतर को स्पष्ट किया गया है।

3.1 उद्देश्य

इस इकाई को पढ़ने के बाद आप–

- पारिस्थितिकी मानव को कैसे प्रभावित करती है इसके बारे में जान पाएंगे;
- पारिस्थितिकी और मनुष्य एक–दूसरे को कैसे प्रभावित करते हैं इसका विश्लेषण कर पाएंगे;
- सामाजिक परिवर्तन पर कार्ल मार्क्स के विचार जान पाएंगे;

टिप्पणी

- विश्व–प्रणाली सिद्धांत का ज्ञान, विकास और अविकसितता के सिद्धांत के अंतर्गत प्राप्त कर पाएंगे।
- विकसित और अविकसित देशों के बीच असमान आदान–प्रदान में अंतर कर पाएंगे।

3.2 विकास पर महत्वपूर्ण परिप्रेक्ष्य

पारिस्थितिक परिप्रेक्ष्य के अध्ययन से पूर्व सामाजिक पारिस्थितिकी की परिभाषा जानना आवश्यक है–

ऑगबर्न और निमकॉफ : ''यह मानव पारिस्थितिकी की एक शाखा है, लेकिन जैसा कि इसके नाम से पता चलता है, इसका अर्थ मानव तत्व और उसके पर्यावरण के बीच पाए जाने वाले संबंध के बारे में है। इसका क्षेत्र बहुत विस्तृत है लेकिन मानव पारिस्थितिकी विशेष रूप से स्थानीय प्रणालियों और मनुष्यों की समस्याओं और सामाजिक जीवन पर उनके प्रभावों से संबंधित है। सामाजिक पारिस्थितिकी मनुष्य के सामाजिक–सांस्कृतिक जीवन या स्थानीय पारिस्थितिकी तंत्र के संदर्भ में वैज्ञानिक अध्ययन करती है।"

जे.एफ. क्यूबर : ''पारिस्थितिकी प्रतीकात्मक संबंधों और समुदाय में मानव और मानव संस्थानों के परिणामी स्थानिक पैटर्न का अध्ययन है।''

उपरोक्त परिभाषाओं से स्पष्ट है कि सामाजिक पारिस्थितिकी में मानव अंतर्संबंधों का अध्ययन कुछ निश्चित स्थान–संबंधित पारिस्थितिकी तंत्र के संदर्भ में किया जाता है। इस प्रकार, यह कहना उचित होगा कि सामाजिक पारिस्थितिकी स्थानिक पारिस्थितिकी तंत्र के संदर्भ में मानव के सामाजिक–सांस्कृतिक जीवन का वैज्ञानिक अध्ययन करती है।

3.2.1 मनुष्य और उसकी पारिस्थितिकी

मनुष्यों को प्रभावित करने वाली पारिस्थितिकी आंतरिक और बाहरी दोनों हो सकती है। जनसंख्या, भौगोलिक परिस्थितियाँ, क्षेत्रीय परिस्थितियाँ आदि को बाह्य पारिस्थितिकी में शामिल किया जा सकता है और विचारों, भावनाओं, मूल्यों, परंपराओं, संस्कारों आदि को आंतरिक पारिस्थितिकी में शामिल किया जा सकता है। लेकिन इस संदर्भ में यह ध्यान देने योग्य है कि मनुष्य और पारिस्थितिकी के बीच का संबंध एकतरफा संबंध नहीं है। सच्चाई यह है कि कभी मानव अपनी पारिस्थितिकी से प्रभावित होता है और कभी वह स्वयं उन पारिस्थितिकी को प्रभावित और परिवर्तित करता है। पूर्ण पारिस्थितिकी के अंतर्गत भौगोलिक पारिस्थितिकी, आनुवंशिकता और सामाजिक विरासत पर जोर दिया जाता है।

मानव जीवन पर पारिस्थितिकी का बड़ा प्रभाव पड़ता है। स्टेनर ने पारिस्थितिकी के महत्व को स्पष्ट करते हुए लिखा है, ''समुदायों के उत्थान और विकास में पारिस्थितिकी का महत्व स्पष्ट है। किसी भी स्थान की भू–आकृतियाँ, परिवहन और संचार के साधन, उद्योगों के प्रकार और संपूर्ण आर्थिक सांस्कृतिक व्यवस्था मनुष्य के

सामाजिक जीवन को प्रभावित करती है और उसके भविष्य के विकास की सीमाएँ तय करती है। विभिन्न विचारकों द्वारा व्यक्त विचारों के आधार पर पारिस्थितिकी के प्रभावों का स्पष्ट रूप से उल्लेख किया जा सकता है–

1. भूआकृतियों के प्रभाव
2. जलवायु के प्रभाव
3. क्षेत्रीय या स्थान संबंधी प्रभाव
4. जनसंख्या संबंधी प्रभाव

वास्तव में, पहले तीन प्रभाव भौगोलिक परिस्थितियों के हिस्से हैं, जबकि अंतिम प्रभाव समुदाय की विशेषताओं से संबंधित हैं। इस प्रकार, यह कहना उचित होगा कि सामाजिक पारिस्थितिकी मानव और उसकी पारिस्थितिकी के बीच पाए जाने वाले संबंधों और प्रभावों का अध्ययन करती है।

शहरों के अध्ययन में मानव पारिस्थितिकी

सामाजिक पारिस्थितिकी के अनुसार, सामाजिक जीवन और पारिस्थितिकी के बीच पर्याप्त घनिष्ठ संबंध है। भूमि की बदलती ऊँचाई के साथ जानवरों और पौधों के विकास का तरीका बदलता है। इसी तरह, शहर का जीवन उतार–चढ़ाव और केंद्र से निकटता या दूरियों के साथ बदलता है। पार्क और बर्गेस कहते हैं कि यदि शहर के केंद्र को एक बिंदु मानकर पारिस्थितिकी की सीमाएँ खींची जाती हैं, तो शहर को निम्न प्रकार विभाजित किया जा सकता है–

(क) बाजार या व्यवसाय का स्थान शहर के केंद्र में होगा।

(ख) उसके चारों ओर बड़े और छोटे उद्योगों का क्षेत्र होगा।

(ग) इसके बाद निम्न और श्रमिक वर्ग के लोगों का निवास स्थान होगा।

(घ) इसके बाद मध्यम वर्ग के लोगों के आवास आएंगे।

(ङ) अंत में उच्च वर्ग के लोगों के आवास आएँगे।

पार्क और बर्गेस का यह विभाजन हर शहर पर लागू नहीं किया जा सकता है। यह सही है क्योंकि पारिस्थितिकी से जुड़े तत्व हर शहर में लोगों के जीवन को प्रभावित करने के लिए समान नहीं हैं। औद्योगिक शहर आमतौर पर घनी आबादी वाले होते हैं और इन शहरों में पब, बार, वेश्यालय, क्लब, थिएटर, होटल आदि बड़ी संख्या में देखे जा सकते हैं।

इसके विपरीत जिन जगहों पर छोटे उद्योग हैं वहाँ ये चीजें नहीं देखी जा सकती हैं क्योंकि आमतौर पर शाम के समय श्रमिक अपने घरों को आस–पास के गाँवों में चले जाते हैं। इन शहरों में सामाजिक संगठन मजबूत है, जनसंख्या कम है, हड़तालें कम हैं और अपराध दर भी कम है।

पारिस्थितिकी से संबंधित तत्व जो शहर के जीवन को प्रभावित करते हैं, संक्षेप में निम्नलिखित हो सकते हैं–

(1) भौगोलिक पारिस्थितिकी : भौगोलिक पारिस्थितिकी का किसी शहर की आबादी और व्यवसाय पर स्पष्ट प्रभाव पड़ता है। गाँवों की तुलना में शहरों का असर खान–पान पर कम पड़ता है। उदाहरण के लिए मुंबई और लंदन में हर तरह का खाना मिलता है। भौगोलिक पारिस्थितिकी का प्रभाव जीवन–शैली पर भी स्पष्ट रूप से देखा जा सकता है। उदाहरण के लिए जापानी शहरों में लकड़ी के घर देखे जा सकते हैं, जबकि राजस्थान के शहरों में पत्थर के घर देखे जा सकते हैं। इस प्रकार यह कहना सही होगा कि किसी भी शहर की भौगोलिक पारिस्थितिकी उसके लोगों की जीवन–शैली, खाने की आदत, आर्थिक, सामाजिक, सांस्कृतिक, राजनीतिक आदि जीवन को बहुत प्रभावित करती है।

(2) परिवहन के साधन : परिवहन के साधनों के अभाव में शहर की आबादी कम हो जाती है, व्यवसाय में कोई विकास नहीं होता है, लोगों की आर्थिक स्थिति अच्छी नहीं होती है और लोग सांस्कृतिक दृष्टिकोण से संकीर्ण सोच वाले हो जाते हैं। इसके विपरीत, परिवहन के साधन बढ़ जाते हैं तो एक शहर की आबादी, आर्थिक और सामाजिक गतिशीलता को बढ़ाती है और लोगों के बीच सांस्कृतिक उदारवादी दृष्टिकोण जड़ें जमा लेता है।

(3) उद्योग और वाणिज्य : उद्योग और वाणिज्य भी लोगों के जीवन को प्रभावित करते हैं। एक शहर में बड़े कारखानों और मिलों के परिणामस्वरूप जीवन एक अनूठा रूप लेता है। उन शहरों की जिंदगी अलग होती है जहाँ सिर्फ कमर्शियल मार्केट प्लेस मौजूद होते हैं।

(4) आर्थिक, सामाजिक और सांस्कृतिक संगठन : शहरों में पाए जाने वाले आर्थिक, सामाजिक और सांस्कृतिक संगठन भी विभिन्न पहलुओं को पर्याप्त रूप से प्रभावित करते हैं जैसे– लोगों की जीवनशैली, खान–पान और वेशभूषा आदि।

पारिस्थितिकी से संबंधित मुख्य तत्व जो गाँवों में जीवन को प्रभावित करते हैं, वे इस प्रकार हैं–

1. **वाणिज्य** : वाणिज्य का ग्रामीण जीवन पर भी बहुत प्रभाव पड़ता है। उदाहरण के लिए एक किसान के गाँव का सामाजिक और आर्थिक जीवन एक बुनकर के गाँव से बिलकुल अलग होता है।
2. **शहरों से दूरी** : शहरों से दूरी एक महत्वपूर्ण तत्व है जो गाँवों में जीवन को प्रभावित करता है।

   एक शहर के करीब के गाँवों में सामाजिक, आर्थिक और नैतिक जीवन उन गाँवो की तुलना में पूरी तरह से अलग होता है जो एक शहर से दूर हैं। एक शहर के पास एक गाँव में रहने वाले लोग आसानी से दूध, सब्जियाँ, फल, घी, खाद्यान्न आदि बेचते हैं और अच्छी कीमत और शहरी प्रभाव प्राप्त करते हैं।

   उनके व्यवहार में वातावरण का प्रभाव देखा जा सकता है और वे अधिक बुद्धिमान, चतुर, चालाक, बुरे व्यवहार वाले, अमीर और प्रगतिशील बन जाते हैं। इसके विपरीत, गाँव में रहने वाले लोगों का जीवन एक शहर से दूर सरल सुव्यवस्थित और नैतिकता पर आधारित होता है।

3. **सामाजिक संगठन** : गाँवों के लोगों में जो जातियों के आधार पर संगठित होते हैं वाणिज्य, सामाजिक स्थिति, आर्थिक स्थिति, रहन–सहन, खान–पान आदि का निर्धारण जातियों के आधार पर होता है। उदाहरण के लिए हमारे देश में अछूत वर्ग के लोग एक गाँव के बाहरी इलाके में रहते हैं और गाँव में उनके प्रवेश पर कई प्रतिबंध हैं। लेकिन यह स्थिति धीरे–धीरे बदल रही है।

4. **भौगोलिक पारिस्थितिकी** : भौगोलिक पारिस्थितिकी ग्रामीण जीवन के विभिन्न पहलुओं को प्रभावित करती है जैसे– सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक, धार्मिक आदि। मैदानी इलाकों के गाँव अधिक समृद्ध, व्यवस्थित और संगठित हैं, जबकि पहाड़ियों के गाँवों में जीवन पर्याप्त रूप से कठिन, गरीब और रूढ़िवादी है।

5. **जनसंख्या** : जनसंख्या में वृद्धि के बाद, गाँव कस्बों का रूप ले लेते हैं और कस्बे शहरों में बदल जाते हैं, क्योंकि जनसंख्या में वृद्धि के साथ–साथ ऐसे गाँवों में बाजार, स्कूल और कॉलेज, पुलिस स्टेशन, कार्यालय आदि खुलने लगते हैं। इतना ही नहीं, जनसंख्या के विभिन्न तत्वों के प्रभाव से ग्रामीण लोगों का जीवन भी प्रभावित होता है। भारत में, हिंदू और मुस्लिम गाँवों का सामाजिक जीवन पूरी तरह से अलग है। इसी तरह, एक आदिवासी गाँव में जीवन बिलकुल अलग होता है।

उपरोक्त चर्चाओं से स्पष्ट है कि सामाजिक पारिस्थितिकी मानव की उन पारिस्थितिकी का अध्ययन करती है जो मानव जीवन के बाहरी और आंतरिक संबंधों को प्रभावित करती है। मोटे तौर पर आधुनिक दुनिया में पारिस्थितिकी दो प्रकार की होती है। इन दो पारिस्थितिकी को क्रमशः शहरी पारिस्थितिकी और ग्रामीण पारिस्थितिकी के रूप में संबोधित किया जाता है। सच्चाई यह है कि ये दोनों पारिस्थितिकी एक–दूसरे की पूरक हैं और यही कारण है कि इन पारिस्थितिकी में मानव का सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक, सांस्कृतिक जीवन अलग है। यह वास्तव में सही है, क्योंकि पारिस्थितिकी से संबंधित तत्व हर शहर या हर गाँव में कभी भी समान नहीं होते हैं। इतना ही नहीं, हर गाँव या हर शहर में पारिस्थितिक कारक या तत्व समान नहीं होते हैं। इस प्रकार, हम केवल उपरोक्त वर्णित पारिस्थितिकी संबंधी तत्वों के आधार पर कुछ सामान्यीकृत निष्कर्ष निकाल सकते हैं जो गाँवों और शहरों के लोगों को प्रभावित करते हैं।

पर्यावरण और प्रदूषण

भारत में और कई अन्य तीसरी दुनिया के देशों में औद्योगिक और शहरी विकास के परिणामी उत्पादों ने स्वास्थ्य और मानव कल्याण और शांति के लिए प्रदूषण की भयानक समस्या पैदा कर दी है। प्रदूषण की समस्या अन्य समस्याओं से इतनी अलग है कि एक आम व्यक्ति मुश्किल से ही उसका सामना कर पाता है। इसकी विशालता का अनुमान इसी बात से लगा सकते हैं कि धीरे–धीरे सभी लोग इसके व्यापक प्रभावों के

टिप्पणी

शिकार हो जाते हैं। मॉर्ग्ड मीड का कहना है कि प्रदूषण एक गंभीर समस्या है आधुनिक औद्योगिक और शहरी समाज द्वारा उत्पन्न विभिन्न समस्याओं के बीच शहरीकरण के बढ़ते प्रवाह के साथ, निम्नलिखित कारणों से प्रदूषण की समस्या और भी भयानक हो गई है–

(क) नियमों और विनियमों के बावजूद औद्योगिक और रासायनिक केंद्रों में तेजी से वृद्धि हुई है।

(ख) पूर्व–औद्योगीकरण शहरों की वे संकरी गलियाँ और सड़कें जो समय बीतने के साथ परिवहन के लिए अनुपयुक्त हो गई हैं।

(ग) ऊँची इमारतें जो लंबवत विकास की प्रतीक हैं अंततः उच्च जनसंख्या घनत्व और प्रदूषण को जन्म देती हैं।

(घ) वाणिज्यिक सट्टेबाजी के कारण भूमि की तीव्र कमी और भूमि के प्रभावी और व्यवस्थित उपयोग के तरीकों की कमी।

परिवहन के साधनों की लगातार बढ़ती संख्या , शहरों की भीड़–भाड़ वाली सड़कों पर चलना प्रदूषण का सबसे बड़ा स्रोत है। भीड़–भाड़ वाली सड़कों पर चलने वाले वाहन धुआँ, कार्बन मोनो/डाइऑक्साइड, नाइट्रोजन ऑक्साइड, हाइड्रोकार्बन, एल्डिहाइड, लैड (Lead) और सल्फर ऑक्साइड आदि का उत्सर्जन करते हैं।

जनसंख्या और प्रदूषण के औद्योगिक स्रोतों के अलावा, हम पर्यावरण प्रदूषण के कारणों में मानवीय कारकों की अनदेखी नहीं कर सकते। पर्यावरण की सफाई के प्रति लोगों और उद्योगपतियों की लापरवाही, पर्यावरण सुरक्षा के मानक मानकों के लिए स्थानीय अधिकारियों की लापरवाही, नियंत्रण उपलब्ध भूमि पर स्वार्थी समूहों और जनसुविधाओं की लंगड़ी–बत्ती की स्थिति जैसे शौचालय, गटर, कूड़ेदान, नल, सार्वजनिक स्नानघर आदि शहरी वातावरण में इतना अधिक प्रदूषण करते हैं कि शहर के कई हिस्से गंदगी और कचरे के ढेर के जीवंत उदाहरण बन जाते हैं।

अक्सर देखा जाता है कि अस्पतालों और पार्कों में साफ–सफाई इस हद तक नीचे चली गई है कि वे स्वच्छता के मानकों से मीलों पीछे हैं। शहरीकरण की लगातार बढ़ती दर और उपलब्ध भूमि पर जनसंख्या के बढ़ते दबाव के कारण पर्यावरण प्रदूषण शहरी निवासियों के स्वास्थ्य, कल्याण और शांति के लिए एक चुनौती बन गया है। तेजी से बढ़ रही इस विकट स्थिति को ऐसे क्रमबद्ध कार्यक्रमों के माध्यम से ही दूर किया जा सकता है, जो पर्यावरण के संरक्षण के लिए उचित रूप से नियोजित और प्रभावी नीति दे सकें और शहरी लोगों में जागरूकता भी पैदा कर सकें।

मलिन बस्तियों में रहने वाली जनसंख्या, शहरी आबादी के उस हिस्से की सही संख्या जो मलिन बस्तियों में रहता है, उपलब्ध नहीं है। फिर भी, यह एक सार्वभौमिक सत्य है कि शहरी आबादी का लगभग पाँचवाँ हिस्सा मलिन बस्तियों में रहता है। सातवीं योजना के आंकड़ों के अनुसार भारतीय शहरों में रहने वाली आबादी में से काफी बड़ी संख्या में लोग (16 करोड़ में से 3 करोड़) मलिन बस्तियों में रहते हैं।

आवास और शहरी विकास समिति भारत सरकार के योजना आयोग के अनुसार भारत में लगभग 3 करोड़ 60 लाख से अधिक लोग मलिन बस्तियों में रहते हैं। हाउसिंग एंड अर्बन डेवलपमेंट 'टास्क फोर्स' ने कहा है कि उन शहरों में जहाँ आबादी 1 लाख से कम है, 17.5 प्रतिशत, 1 लाख से 10 लाख आबादी वाले शहरों में 21.5 प्रतिशत और उन शहरों में जहां आबादी 10 लाख से ज्यादा है, 35.5 प्रतिशत लोग झोपड़पट्टी में रहने वाले हैं। कोलकाता और मुंबई के लिए यह माना जाता है कि 1990 में झुग्गी बस्तियों में रहने वालों की आबादी क्रमशः 43.86 लाख और 4.26 लाख थी। कुल आबादी का एक बड़ा हिस्सा चार महानगरों कोलकाता, मुंबई, दिल्ली और चेन्नई में झुग्गी बस्तियों में रहता है।

मलिन बस्तियों की उत्पत्ति

नेशनल इंस्टीट्यूट ऑफ अर्बन अफेयर्स, नई दिल्ली के अनुसार मलिन बस्तियाँ मुख्यतः निम्नलिखित तीन कारणों से विकसित होती हैं–

(क) शहरों की जनसांख्यिकीय गतिशीलता, जिसमें रोजगार प्रदान करने की विशेष क्षमता हो ग्रामीण क्षेत्रों के लोगों को आकर्षित करती है।

(ख) आवास की बढ़ती माँग को पूरा करने में शहर की अक्षमता।

(ग) वर्तमान शहरी भूमि नीति जो भूमि बाजार में गरीबों की पहुँच को प्रतिबंधित करती है।

यह भी देखा गया है कि कोई विकल्प न होने की स्थिति में गरीब उपलब्ध भूमि पर अवैध आवास या आश्रय स्थल बनाते हैं। यह भी अक्सर पाया जाता है कि शहरों के पुराने क्षेत्रों में झुग्गियाँ एक अभिशाप का रूप ले लेती हैं। एक शहर की भौतिक सीमाओं में वृद्धि के साथ–साथ कभी–कभी, मलिन बस्तियाँ पुराने गाँव की विरासत के रूप में या किसी अनियमित रूप से विकसित कॉलोनी से आती हैं।

शहरी विकास की विभिन्न योजनाओं को लागू करने के उद्देश्य से भारत सरकार ने स्लम को इस प्रकार परिभाषित किया है, ''झुग्गी बस्ती का अर्थ ऐसे क्षेत्रों से है जहाँ ऐसे घर बहुलता में हैं जो जीर्ण–शीर्ण, भीड़भाड़ वाले, गलत प्रणाली और गलत नक्शे से बने हैं, और जहाँ गलियाँ संकरी और बुरी तरह अव्यवस्थित हैं, वहाँ हवा और वेंटिलेशन की कमी है, सीवेज का पानी बाहर निकलने के लिए नाली की कमी है, खुले स्थान और सामुदायिक सुविधाओं की अपर्याप्तता है, या इन सभी का मिश्रित रूप मौजूद है जो लोगों की सुरक्षा, स्वास्थ्य और नैतिकता के लिए हानिकारक हो सकता है। इन झुग्गियों को शापित इलाका, बुरा इलाका, खराब इलाका, गंदा इलाका, निम्न वर्ग पड़ोस, या निम्न आय वर्ग के पड़ोस आदि के रूप में भी जाना जाता है। इन इलाकों को भारत में 'चॉल', 'झोपड़पट्टी', 'बस्ती', 'अकाटा' और ' चेरी' आदि कहा जाता है। माइकल हैरी–गैटन के अनुसार तेज गति से औद्योगिक शहरी विकास का सामना करना पड़ रहा है। ऐसी झुग्गियाँ तकनीकी रूप से समृद्ध और पूँजीवादी देश में भी मौजूद हैं अमेरिका की तरह, जहाँ उन्हें आमतौर पर 'अन्य अमेरिका' के रूप में जाना जाता है।

टिप्पणी

अपर्याप्त आवास

शहरों में तेजी से बढ़ती आबादी ने कई समस्याओं को जन्म दिया है और इनमें आवास सबसे दर्दनाक समस्या है। हकीकत यह है कि शहरवासियों का एक बड़ा हिस्सा मलिन बस्तियों में भयानक घरों में रहता है। ऐसा अनुमान है कि बड़े शहरों में लगभग 70 प्रतिशत लोग निम्न गुणवत्ता वाले घरों में रहते हैं जिन्हें वे अपना 'घर' कहते हैं। यहाँ पुराने घरों का उल्लेख किया जा सकता है जो मरम्मत के अभाव, अधिक भीड़भाड़ और खराब स्थिति के कारण बदतर होते जा रहे हैं। आमतौर पर ऐसे पुराने घर ज्यादातर शहर के बीचों–बीच पाए जाते हैं। इसी तरह, सैकड़ों लोग ऐसे हैं जो बिना सिर पर छत के फुटपाथों पर रहते हैं।

नगरीय आवास की समस्याओं से निबटने के लिए नगरीय विकास के विभिन्न कार्यक्रमों के माध्यम से सुनियोजित प्रयास किये जा रहे हैं। इन प्रयासों के बीच आर्थिक रूप से पिछड़े लोगों को अपना घर बनाने और झुग्गी–झोपड़ियों को हटाने के लिए आर्थिक सहायता देने और उनके सुधार की योजनाओं का उल्लेख यहाँ किया जा सकता है। ये योजनाएँ काफी प्रासंगिक रही हैं और शहरों में रहने वाले गरीब लोगों के लाभ के लिए बनाई गई हैं।

अपर्याप्त और असुरक्षित जल आपूर्ति

घरेलू उपयोग के लिए पानी की उपलब्धता बुनियादी सार्वजनिक सुविधाओं में से एक है। दुर्भाग्य से, भारत सहित तीसरी दुनिया के देशों के शहरों में बहुत कम शहरी निवासी हैं, जिन्हें यह सुविधा नियमित रूप से और संतोषजनक ढंग से मिल रही है। भारत में लगभग 30 प्रतिशत शहरी निवासी स्वच्छ पेयजल की सुविधा से वंचित हैं। नगरों और कस्बों में पानी प्राप्त करने का मुख्य स्रोत नगरपालिका के नल और हैंडपंप हैं। लेकिन ज्यादातर शहरों में, खासकर तेजी से बढ़ते शहरों में, घरेलू उपयोग के लिए पानी मिलने में काफी दिक्कतों का सामना करना पड़ता है। कई व्यवस्थित अध्ययनों के माध्यम से इस संबंध में झुग्गी–झोपड़ियों में रहने वालों की स्थिति सामने आई है। सार्वजनिक नलों से पानी लेने के लिए कतार लगनी चाहिए। लोगों को घरेलू उपयोग के लिए पानी प्राप्त करने के लिए घंटों इंतजार करना पड़ता है। कई बार उन्हें मारपीट और झगड़ों में भी पड़ना पड़ता है। कुछ स्थानों पर यह भी पाया गया है कि सौ से अधिक परिवार एक नल पर निर्भर हैं। छोटे शहरों और कस्बों में भी जलापूर्ति की समस्या एक बड़ी समस्या का रूप लेती जा रही है।

अक्षम और अपर्याप्त परिवहन

कुशल परिवहन का अभाव एक ऐसी समस्या है जो लगभग सभी बड़े शहरों में स्थानीय प्रशासन के लिए सिरदर्द बन गई है। वास्तव में, एक कुशल और अच्छी तरह से तेल वाली परिवहन प्रणाली का नेटवर्क आवासीय क्षेत्रों और कार्य स्थानों और मुख्य वाणिज्यिक केंद्रों के बीच आवागमन को सुविधाजनक बनाता है। इस प्रकार की परिवहन व्यवस्था उन लोगों के लिए भी एक वरदान की तरह है जो अपनी रोजी–रोटी के लिए शहरों पर निर्भर हैं, लेकिन शहरों में स्थायी रूप से रहने के बजाय गाँवों से शहरों की ओर रोजाना आवागमन करते हैं। तंग और भीड़भाड़ वाली सड़कें और उनकी खराब स्थिति, परिवहन के विभिन्न साधनों के साथ जैसे सार्वजनिक बसें, रिक्शा,

दोपहिया, कार, बैलगाड़ी, ट्रक और साइकिल आदि से गुजरते हुए ट्रैफिक जाम का एक अजीब दृश्य पैदा करते हैं। इस तरह के दृश्य शहर के लगभग हर हिस्से में और विशेष रूप से व्यावसायिक गतिविधियों के क्षेत्रों में और अन्य महत्वपूर्ण क्षेत्रों में देखे जा सकते हैं। इस प्रकार, परिवहन की समस्या के लिए किया गया कोई भी प्रयास स्थायी समाधान करने में असमर्थ लगता है। भीड़भाड़ वाली सड़कों पर तथा पुराने समय में और पूर्व–औद्योगिक काल के दौरान विकसित भीड़भाड़ वाली गलियों में उचित परिवहन व्यवस्था की शायद कोई गुंजाइश नहीं है। इसके अलावा, शहरों में जो भी परिवहन नेटवर्क पाया जाता है, वह ट्रैफिक जाम और परिवहन के साधनों की खराब स्थिति के कारण पर्यावरण प्रदूषण का मुख्य स्रोत बनता जा रहा है।

भारत में विकास और रोजगार के कार्यक्रम

भारत सरकार ने रोजगार बढ़ाने के लिए कई योजनाएँ लागू की हैं। 2017 में रोजगार कार्यालय केंद्रों में लगभग 39.5 लाख पंजीकृत बेरोजगार थे।

अंतर्राष्ट्रीय श्रम संगठन द्वारा जारी विश्व रोजगार रिपोर्ट के अनुसार, भारत और पाकिस्तान में बेरोजगारी उन्मलू न के लिए शिक्षा पर पर्याप्त खर्च नहीं हुआ है, हालांकि इन देशों में पर्याप्त औद्योगीकरण हुआ है।

तालिका : रोजगार में दीर्घकालिक विकास दर (1983 से 2009–10) (% प्रति वर्ष)

श्रेणियां	सामान्य स्थिति (ps+ss)	साप्ताहिक स्थिति	दैनिक स्थिति
ग्रामीण पुरुष	1.58	1.71	1.68
ग्रामीण महिला	0.84	1.76	1.45
शहरी पुरुष	3.05	3.14	3.18
शहरी महिला	2.65	3.33	3.32
कुल	1.70	2.08	2.02

ps: *usual principal status*
ss: *subsidiary status*

स्रोतः जनगणना अनुमानों से प्राप्त जनसंख्या के आंकड़ों पर लागू प्रति हजार वितरण पर एनएसएस (NSS) के आधार पर।

शहरी समस्याओं पर राज्य की नीति

अब भारत में यह स्वीकार किया जा रहा है कि शहरीकरण आर्थिक विकास और सामाजिक परिवर्तन का नगण्य पहलू नहीं है। इसलिए अब इस बात पर जोर दिया जा रहा है कि औद्योगिक विकास, जनसंख्या वृद्धि और कृषि विकास पर राष्ट्रीय नीति के कई कारण हैं। लेकिन इनमें से सबसे महत्वपूर्ण मुद्दे जो ऐसी नीतियों की आवश्यकता को उजागर कर रहे हैं वे हैं– गाँव को आत्मनिर्भर बनाने की महत्वाकांक्षा और शहरीकरण को राज्य सूची में शामिल करना। हालाँकि, पंचवर्षीय योजनाएँ जो राष्ट्र के नियोजित विकास की दिशा में किए गए प्रयासों में से हैं उन नीतियों का प्रमाण हैं, जो शहरी समस्याओं की उन स्थितियों को नियंत्रित करने के लिए अपनाई जा रही हैं जो शहरीकरण में अभूतपूर्व वृद्धि के कारण भयानक रूप ले रही हैं। यहाँ यह बताना जरूरी

टिप्पणी

है कि ऐसे प्रयासों के अंतर्गत आमतौर पर गरीब और निम्न आय वर्ग के लोगों की स्थिति में सुधार पर जोर दिया जाता है।

आवास, जल निकासी और जलापूर्ति की समस्याओं और शहरी विकास की समस्याओं को हल करने के प्रयासों को संक्षेप में यहाँ बताया गया है।

शहरीकरण की सभी विशिष्ट समस्याओं में आवास की कमी एक बड़ी समस्या है। मेट्रो शहरों में यह समस्या अपनी सीमा तक पहुँच गई है। इन समस्याओं को दूर करने के लिए निम्नलिखित दो दिशाओं में नियोजित प्रयास किए जा रहे हैं–

(क) शहरों में भूमि और घर से संबंधित सामाजिक कानून।

(ख) मलिन बस्तियों को हटाने और नए घरों के निर्माण के लिए कार्यक्रम।

शहरों में आवास की समस्या को हल करने के लिए निम्नलिखित प्रयास किए गए हैं–

शहरों में जमीन और मकान से संबंधित सामाजिक कानून

संविधान अपने प्रत्येक नागरिक को स्वतंत्र रूप से एक स्थान से दूसरे स्थान पर जाने और अपनी पसंद के स्थान पर बसने की स्वतंत्रता देता है, लेकिन घर उपलब्ध कराने की जिम्मेदारी न तो शहरी लोगों की है और न ही ग्रामीण लोगों की है।

मलिन बस्तियों को हटाने और नए घरों के निर्माण के लिए कार्यक्रम

तेजी से हो रहे शहरीकरण के कारण शहरी आबादी का एक बड़ा हिस्सा स्लम में रहता है और आवास, पानी की आपूर्ति, जल निकासी और अन्य सार्वजनिक सुविधाओं की कमी से जूझ रहा है। इन नगरीय समस्याओं ने इतना विकराल रूप धारण कर लिया है कि इसके सामाजिक विधान तथा राष्ट्रीय नियोजन के अन्तर्गत विशेष ध्यान देने की आवश्यकता उत्पन्न हो गई है। इस तरह के प्रयासों के प्रवाह में सबसे महत्वपूर्ण कार्यक्रम शहरों के निम्न आय वर्ग के लोगों के लिए घरों का निर्माण है, मलिन बस्तियों को हटाकर। कम लागत वाले घर, उन गरीब लोगों को शौचालय, स्नानघर, पानी के नल, नाली और जल निकासी आदि की सुविधा उपलब्ध कराई जा रही है, जो अपनी कम मासिक आय के कारण मामूली राशि का भुगतान करने में सक्षम हैं। इसके अलावा स्लम हटाने के इस कार्यक्रम के अंतर्गत चयनित स्लम के सभी आर्थिक और सामाजिक रूप से कमजोर लोगों को आवश्यक सार्वजनिक सुविधाएं प्रदान की जाती हैं। झुग्गी–झोपड़ी हटाने के ऐसे कार्यक्रम को सरकार से अनुदान भी मिलता है। कई शहरों में राज्य सरकारों और स्थानीय संस्थानों से वित्तीय सहायता की मदद से नए घरों के निर्माण के लिए निम्नलिखित कार्यक्रम लागू किए गए–

(क) 1952 में औद्योगिक श्रमिकों के लिए घरों के निर्माण की योजना अस्तित्व में आई।

(ख) 1954 में निम्न आय वर्ग के लोगों के लिए घरों के निर्माण के लिए एक संयंत्र अस्तित्व में आया।

(ग) दूसरी पंचवर्षीय योजना (1956) के लागू होने के ठीक बाद, मलिन बस्तियों को हटाने और सुधार की योजना अस्तित्व में आई।

(घ) द्वितीय पंचवर्षीय योजना के बाद से, भारतीय जीवन बीमा निगम ने मध्यम आय वर्ग के लोगों को गृह ऋण देना शुरू किया।

(ङ) पाँचवी पंचवर्षीय योजना के बाद से उच्च वर्ग के लोगों के लिए आवास निर्माण किया गया था और इसके पीछे का उद्देश्य शहरों में गरीब और निम्न वर्ग के लोगों के लिए घर बनाने में ऐसे निर्माण से होने वाले लाभ का उपयोग करना था। आवास एवं शहरी विकास निगम को इस संबंध में विशेष दिशा–निर्देश दिए गए थे।

फिर भी, व्यवस्थित अध्ययनों से पता चलता है कि ऐसी योजनाओं का लाभ ज्यादातर मध्यम और उच्च वर्ग के लोगों द्वारा हड़प लिया गया है। शहरी गरीबों की दयनीय स्थिति जस की तस बनी हुई है। झुग्गी–झोपड़ी पुनर्वास कार्यक्रमों को कुशलतापूर्वक लागू करने में सबसे बड़ी बाधा पर्याप्त वित्त की कमी है। वित्तीय अपर्याप्तता के इस मुद्दे पर विशेष ध्यान दिया गया है। इसके परिणामस्वरूप, राष्ट्रीय आवास बैंक की स्थापना रुपये की वित्तीय सहायता से की गई थी। राष्ट्रीय आवास बैंक के निम्नलिखित उद्देश्य प्रस्तावित किए गए–

(क) एक राष्ट्रीय संगठन स्थापित करना जिनका कार्य केवल आवास निर्माण के लिए वित्तीय सहायता प्रदान करना होगा।

(ख) आवास निर्माण के लिए ऋण के स्रोत को बढ़ाना और ऐसे स्रोतों का पूर्ण उपयोग करना।

(ग) राज्य और स्थानीय स्तर पर गृह ऋण प्रदान करने के लिए वित्तीय संस्थानों की स्थापना करना।

(घ) गृह ऋण प्रदान करने वाली संस्थाओं और अन्य उद्देश्यों के लिए ऋण प्रदान करने वाली संस्थाओं के बीच सार्थक संबंध स्थापित करना। ये प्रयास इस उम्मीद में किए जाते हैं कि मलिन बस्तियों में रहने वाले शहरी गरीबों की स्थिति में आशावादी सुधार हो, ताकि वे भी पूरी तरह से शहरी जीवन शैली जी सकें जो सामाजिक अभिशापों से मुक्त हो जैसे, बीमारी और प्रदूषण।

3.2.2 उदारवादी

यूरोपीय ज्ञानोदय की जड़ों के साथ, 19वीं शताब्दी में पश्चिम, में उदारवाद का विकास हुआ। वर्तमान समय में, उदारवाद को व्यापक रूप से सबसे प्रभावशाली आधुनिक राजनीतिक विचारधाराओं में से एक माना जाती है। इस शब्द का प्रयोग सबसे पहले स्पेनिश, फ्रेंच और अंग्रेजी लेखकों ने नकारात्मक अर्थ के साथ किया था। कट्टरपंथी या प्रगतिशील राय वाले लोगों को संदर्शित करने के लिए इसका आक्रामक रूप से उपयोग' किया जाता था। इसने जल्द ही अपना नकारात्मक अर्थ खो 'दिया और एक 'सम्मानजनक राजनीतिक लेबल बन गया। ज्यादातर लोग अब' ''उदारवादी'' कहलाना पसंद करेंगे, जिसका अर्थ है, ''खुले दिमाग वाला'', ''उदार और सहिष्णु होना'', ''जनता की भलाई के लिए अपनों स्वार्थ का त्याग करने के लिए तैयार'', ''हर मुद्दे पर हर एक से संपर्क करने के लिए चिंतित'' निष्पक्ष और तर्कसंगत दृष्टिकोण'', और ''पूर्वाग्रह और अंधविश्वास से कम से कम प्रभावित नहीं''। ऐसे लोग सत्तावादी कानूनों और प्रथाओं

टिप्पणी

का विरोध करते हैं जो विशेष रूप से सामाजिक समूहों को नकसान की स्थिति में पाते हैं। उदार दृष्टिकोण वाले लोग अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता, धरना और विरोध के अधिकार, महिलाओं, समलैंगिकों, कैदियों, शरणार्थियों और सभी सीमांत समुदायों के अधिकारों का समर्थन करते हैं।

एक विचारधारा के रूप में उदारवाद

उदारवाद ने सामाजिक, आर्थिक और राजनीतिक विकास पर एक अनूठा इष्टिकोण प्रदान किया है। इसने एक विचारधारा की स्थापना की जिसने इतिहास को आकार दिया है, और हाल के दिनों में मानव विकास के भविष्य के पाठ्यक्रम को प्रभावित करने के लिए नव उदारवाद के रूप में वापसी की है। मानव इतिहास, पिछले दो सौ वर्षों में, एक अर्थ में, समर्थकों के बीच संघर्ष का रहा है

आर्थिक उदारवाद ('स्व–विनियमन बाजार' के सिद्धांत के प्रति प्रतिबद्ध) और 'समाज' के रक्षकों (जिन्होंने उस तरीके को विनियमित्र करने की मांगकी है जिसमें श्रम पँजी, प्रकति के शोषण और मुद्रा बाजार के साथ जुड़ा हुआ है)। संघर्ष राजनीतिक और वैचारिक क्षेत्रों में फैल गया है। दो परस्पर विरोधी दृष्टिकोणों में से प्रत्येक निश्चित रूप से सामने आया है।

समाज से संबंधित दृष्टिकोण को साकार करने के लिए अवधारणाओं, सिद्धांतों, विचारधाराओं और तकनीकों का प्रयोग किया जाता है। एक 'लचीले' श्रम बाजार के गुणों और आजीविका के लिए उनके द्वारा उत्पन्न खतरों के लिए संघर्ष जारी है। विकास पर प्रमुख दृष्टिकोण, अर्थात् मार्क्सवादी, उदारवादी, सामाजिक असमानता की व्याख्या और असमान आर्थिक, सामाजिक, राजनीतिक व्यवस्था के पीड़ितों के लिए न्याय सुरक्षित करने के तरीकों को लेकर भिन्न हैं।

बाजार की कीमतों के दायरे के मुद्दे पर तर्क बनाया गया है। यहाँ प्रासंगिकता का प्रश्न यह है कि क्या बाजार की शक्तियों को एक स्वतंत्र शासन की अनुमति दी जानी चाहिए या उन पर कोई नियमन होना चाहिए। अंतर यह है कि क्या विकास को उत्पादकता और प्रति व्यक्ति आय में वृद्धि के लिए कम किया जाना चाहिए या इसे आम लोगों को सशक्त बनाने और उनके लिए वितरणात्मक न्याय हासिल करने के संदर्भ में व्यापक परिप्रेक्ष्य में माना जाना चाहिए।

वैचारिक रूप से, उदारवाद पिछली दो शताब्दियों में 'समाजवादी आदर्शों के विरोध में खड़ा रहा है। यह हमें आर्थिक उद्यमिता के क्षेत्र में स्वतंत्रता और मुक्त प्रतिस्पर्धा के बारे में, और उत्पादन के नियंत्रण और मुक्त नागरिकता के प्रचार में राज्य की, भूमिका के बारें में समाज की एक विशिष्ट दृष्टि प्रदान करता है।

एक राजनीतिक विचारधारा के रूप में, उदारवाद राजनीतिक निरपेक्षता के किसी भी रूप का विरोध करता है, चाहे वह राजशाही, सामंतवाद, सैन्यवाद या 'साम्यवादी हो। यह एक सामाजिक और राजनीतिक माहौल के लिए खड़ा है जिसमें सत्तावादी मांगों का विरोध किया जाता है और व्यक्तियों और समूहों के मौलिक अधिकारों, जैसे कि निजी संपत्ति का अधिकार, धर्म का मुक्त अभ्यास, भाषण और ''संघ को बढ़ावा दिया जाता है।

उदारवादी दृष्टिकोण की आलोचना

सी बी मैकफर्सन, (1966) ने उदारवाद की इस आधार पर आलोचना की है कि यह ''अधिकारात्मक व्यक्तिवाद'' को बढ़ावा देता है, जिसका अर्थ है कि छोटे सामाजिक या सामूहिक सरोकार वाले व्यक्ति। उदारवादी दृष्टिकोण की समाजवादी आलोचना असमानता और सामाजिक न्याय की व्याख्या पर आधारित यह तर्क दिया गया है कि असमानता की विशेषता वाली आर्थिक व्यवस्था मुक्त बाजार प्रतिस्पर्धा के माहौल में और असमानता और सामाजिक अन्याय को बढ़ावा देगी। शास्त्रीय उदारवाद की आलोचना भी उदारवादी दायरे के भीतर से हुई; केनेन्स, ने उदाहरण के लिए, रिकार्डो, मिलन और बेंथम के शास्त्रीय उदारवाद की आलोचना की और मजदूर वर्ग के हितों की सुरक्षा के लिए राज्य–कल्याणवाद का प्रस्ताव रखा। समाजशास्त्रियों ने व्यक्तिगत स्वतंत्रता की पूर्व शर्त – व्यक्तिगत स्वायत्त, आत्म के विचार को बेतुका बताया है, उन्होंने तटस्थ शासन की संभावना को भी खारिज कर दिया है जो सभी के लिए समान अवसरों को बढ़ावा देने की गारंटी देगा। ऐतिहासिक रूप से, राज्य के नियंत्रण से पूरी तरह मुक्त, एक मुक्त बाजार अर्थव्यवस्था कभी नहीं रही है। अब भी जब 1980 और 1990 के दशक में नव–उदारवाद ने जोरदार वापसी की है, राज्य–कल्याणवाद के विचार को पीछे की सीट पर धकेल दिया है, नव–उदारवादियों द्वारा पीड़ितों के अधिकारों के संरक्षण पर नए सिरे से बातचीत हुई है।

उदारवादी दृष्टिकोण ने श्रम नियंत्रण की एक विस्तृत व्यवस्था तैयार की है सो ''दमन, आवास, सहकारिता और सहयोग के कुछ मिश्रण शामिल हैं, जिनमें से सभी को न केवल कार्यस्थल के भीतर बल्कि पूरे समाज में बड़े पैमाने पर संगठित "किया जाना है'' (हार्वे 4989 : 23), और प्रमुख 'विचारधाराओं के गठन द्वारा समर्थित है। बॉयर के अनुसार, ''संचय के शासन'' नियमितताओं के सेट को निर्दिष्ट करते हैं जो' पूँजी संचय की सामान्य और अपेक्षाकृत सुसंगत प्रगति सुनिश्चित करते हैं, जो कि उन विकृतियों और असमानताओं के समाधान, या स्थगन की अनुमति देता है जिनसे प्रक्रिया लगातार बढ़ती है "(बॉयर 4990: 35)। लिपिट्ज लिखते हैं, ''वेतन–अर्जकों के प्रजनन की दोनों स्थितियों की; स्थितियों के परिवर्तन के बीच शुद्ध उत्पाद के आवंटन की लंबी अवधि में स्थिरीकरण का वर्णन करता है। संचय का शासन इस प्रकार सभी प्रकार के सामाजिक एजेंटों की गतिविधियों के समन्वय का तात्पर्य है, या दूसरे शब्दों में संस्थागतकरण, 'मानदंडों, आदतों, कानूनों, विनियमन नेटवर्क आदि के रूप में प्रक्रिया की एकता सुनिश्चित करता है ... [और] ... आंतरिक नियमों और सामाजिक प्रक्रियाओं के इस निकाय को क्या कहा जाता है, विनियमन का तरीका कहा जाता है'' (लिपिट्ज, हार्वे 4989:422)। इस प्रकार उदार दृष्टिकोण के साथ अर्थव्यवस्था के वैधीकरण और पुनरुत्पादन के लिए एक विस्तृत व्यवस्था की गई है, जो एक कानूनी और सामाजिक व्यवस्था में अंतर्निहित है जो स्व–विनियमित के पुनरुत्पादन की सुविधा प्रदान करती है।

अर्थव्यवस्था या उदार अर्थव्यवस्था

मुक्त बाजार अर्थव्यवस्था की विजय राज्य को आकार में छोटा करके नहीं बल्कि राज्य के संरक्षण में एक विस्तृत सामाजिक, सांस्कृतिक और राजनीतिक व्यवस्था और श्रम

शक्ति के प्रबंधन की एक विस्तृत व्यवस्था के साथ संभव थी। हॉलिंग्सवर्थ और बॉयर (997: 2) ने इसका उपयुक्त रूप से उल्लेख किया है।

"उत्पादन की सामाजिक प्रणाली'' के रूप में तंत्र

एंटोनियो ग्राम्स्की के आधिपत्य के विचार और फौकॉल्ट के जैव–शक्ति के विचार का उपयोग उदारवाद की आलोचना के निर्माण के लिए किया जा सकता है।

पिछली दो शताब्दियों' में उदारवाद पश्चिमी पूँजीवाद की आधिपत्यवादी विचारधारा बन गया। कॉर्पोरेट हितों का त्याग किए बिना, पश्चिमी राज्यों ने अधिक से अधिक लोकतंत्रीकरण को दलितों और हाशिए के लोगों की राजनीतिक भागीदारी के लिए उन्हें पूंजीवादी सामाजिक व्यवस्था में एकीकृत करने के लिए प्रयुक्त किया है। ग्राम्स्की और अल्थुसर सुझाव देते हैं कि पश्चिमी राज्यवर्ग बलों के वैचारिक एकीकरण के लिए सामाजिक और सांस्कृतिक क्षेत्रों में काम किया।

आधुनिक उदारवादी राज्य के कामकाज की आलोचना में, मिशेत्र फॉकॉल्ट (डीन 2004 देखें) के तर्क करने का मतलब अब विभिन्न प्रक्रियाओं के माध्यम से खेती, सुविधा और काम करना होगा जो इस डोमेन में संस्थानों के बाहर पाए जाने वाले थे। एक प्रमुख डोमेन जिसमें इन प्रक्रियाओं का गठन किया जाता है, वह है ''जैव–राजनीति''। जैव–राजनीति जीवन के प्रशासन से संबंधित राजनीति को संदर्भित करती है, विशेष रूप से जब यह आबादी के स्तर पर दिखाई देती है। जैव–राजनीति को तब सामाजिक, सांस्कृतिक, पर्यावरण, आर्थिक और भौगोलिक, परिस्थितियाँ, जिसके अंतर्गत मनुष्य रहते हैं, पैदा होते हैं, बीमार हो जाते हैं, स्वास्थ्य बनाए रखते हैं या स्वस्थ हो जाते हैं और मर जाते हैं।

फौकॉल्ट के अनुसार, उदारवाद को सरकार की अत्यधिक आलोचना के रूप में समझा जा सकता है। हालांकि, इसे न केवल पुलिस और राज्य के कारण के रूप में सरकार के पहले के रूपों की आलोचना के संदर्भ में किया जाना चाहिए, बल्कि जैव–राजनीतिक सरकार के मौजूदा और संभावित रूपों पर भी विचार करना चाहिए। उदारवाद इस प्रकार अन्य संभावित रूपों की आलोचना करता है जिन्हें सरकार जीवन की प्रक्रियाओं के रूप में ले सकती है।

इस प्रकार उदारवाद "समाज के सामान्यीकरण" में भाग लेता है और उसे बढ़ावा देता है। इसके अलावा, उदारवाद का इतिहास दिखाता है कि कैसे उदारवादी तकनीकों की एक श्रृंखला उन व्यक्तियों और आबादी पर लागू की जा सकती है जिन्हें सुधार और स्वशासन प्राप्त करने में सक्षम समझा जाता है।

3.2.3 मार्क्सवादी

जर्मन समाजशास्त्री कार्ल मार्क्स ने सामाजिक परिवर्तन का आर्थिक सिद्धांत प्रस्तावित किया था। उनका कहना है कि सभी सामाजिक परिवर्तनों का मुख्य कारक और चालक आर्थिक कारण है और सभी परिवर्तन इसके परिणाम हैं। इसीलिए मार्क्स के इस सिद्धांत को आर्थिक नियतत्ववाद भी कहा जाता है। उन्होंने वर्ग संघर्ष के माध्यम से परिवर्तन की व्याख्या की और इसलिए उनके सामाजिक परिवर्तन के सिद्धांत को 'वर्ग–संघर्ष सिद्धांत' भी कहा जाता है।

टिप्पणी

मार्क्सवादी सिद्धांत

मार्क्सियन थ्योरी का सार– कार्ल मार्क्स के मूल विचारों को 'ए कंट्रीब्यूशन टू द क्रिटिक ऑफ पॉलिटिकल इकोनॉमी, 1859' और 'कम्युनिस्ट पार्टी के 1848 के घोषणापत्र' के कुछ हिस्सों में देखा जा सकता है जो उनके द्वारा लिखे गए थे। इन भागों के अध्ययन से मार्क्स के परिवर्तन के कारण, कारण–प्रभाव संबंध, चरण, प्रभाव और सामाजिक परिवर्तन के सिद्धांत स्पष्ट हो जाते हैं।

मार्क्स द्वारा अध्ययन की क्रमिक शृंखला के निरंतर आधार संक्षेप में इस प्रकार दिए गए हैं– मनुष्य सामाजिक उत्पादन में प्रवेश करता है, जो वह करता है, एक निश्चित प्रकार के संबंध के तहत, वे अपरिहार्य हैं और उसकी इच्छाओं से स्वतंत्र हैं, ये उत्पादन आधारित संबंध एक निश्चित उत्पादन माल की शक्ति के विकास की प्रणाली से संबंधित हैं। इन उत्पादन सम्बन्धों का योग समाज के आर्थिक ढांचे का निर्माण करता है और यही वास्तविक नींव है, जिस पर कानूनी और राजनीतिक ढाँचे का निर्माण होता है और इसके आधार पर सामाजिक चेतना विकसित होती है। भौतिकवादी जीवन में, उत्पादन के तरीके सामाजिक, राजनीतिक और आध्यात्मिक जीवन की प्रक्रियाओं का निर्माण करते हैं। यह मानव चेतना नहीं है जो उसके अस्तित्व को तय करती है, बल्कि इसके विपरीत सामाजिक अस्तित्व उनकी चेतना को तय करता है।

आर्थिक आधारों में बदलाव के साथ–साथ पूरी बड़ी तस्वीर तेजी से कम या ज्यादा हद तक बदल जाती है। इस अंतर को हमेशा ऐसे परिवर्तनों में रखा जाना चाहिए कि उत्पादन की आर्थिक स्थितियों के भौतिक परिवर्तन का निर्णय प्राकृतिक विज्ञान और कानूनी, राजनीतिक, धार्मिक, सौंदर्यशास्त्र या दार्शनिक की वास्तविकताओं द्वारा लिया जाता है, संक्षिप्त आदर्शवादी रूपों में जिसके कारण मनुष्य संघर्षों के प्रति सचेत हो जाता है और जिसके साथ वह लड़ता है। जिस तरह से किसी व्यक्ति के बारे में हमारी धारणा इस बात पर आधारित नहीं है कि वह अपने बारे में क्या सोचता है इसी प्रकार हम किसी काल के परिवर्तन के बारे में उसकी चेतना के आधार पर निर्णय नहीं कर सकते। इसके विपरीत, इस चेतना की व्याख्या भौतिकवादी जीवन में अंतर्विरोधों, उत्पादन की सामाजिक शक्तियों और उत्पादन के संबंधों के आधार पर की जानी चाहिए।

जब तक उत्पादन की सभी संभावित ताकतों का विकास नहीं हो जाता, तब तक किसी भी सामाजिक व्यवस्था का अस्तित्व समाप्त नहीं होता है। इसी तरह, नए और उच्च गुणवत्ता वाले उत्पाद के संबंध तब तक उत्पन्न नहीं होते जब तक कि उनके अस्तित्व के लिए भौतिक पारिस्थितिकी पुराने समाज के गर्भ में परिपक्व नहीं हो जाती। इसलिए मनुष्य हमेशा उन समस्याओं को उठाता है जिनका समाधान किया जा सकता है। यदि हम विषय को और करीब से देखें तो हम पाते हैं कि समस्याएँ तभी उत्पन्न होती हैं जब उनके समाधान के लिए भौतिक पारिस्थितिकी पहले से मौजूद हो या अस्तित्व में आने की प्रक्रिया में हो। हम इसे कई अवधियों के दौरान समाज के आर्थिक विकास के परिवर्तनों में पाते हैं जैसे एशियाई, प्राचीन सामंतवाद और आधुनिक बुर्जुआ व्यवस्था में मुख्य बिंदुओं के रूप में। बुर्जुआ उत्पादन संबंध सामाजिक प्रक्रिया के अंतिम

संघर्ष हैं– यह संघर्ष व्यक्तिवादी संघर्ष के संदर्भ में नहीं है, बल्कि उन स्थितियों से उत्पन्न होता है जो लोगों के जीवन को चारों ओर से घेर लेती हैं। साथ ही इस संघर्ष का समाधान उन ताकतों के माध्यम से होता है जो बुर्जुआ समाज की भौतिक पारिस्थितिकी के गर्भ में विकसित होती हैं। यह सामाजिक परिवर्तन सामाजिक परिवर्तन से पहले मानव समाज के ऐतिहासिक चरण के अंतिम अध्याय के बारे में बताता है।

मार्क्स द्वारा प्रस्तावित अवधारणाओं को विश्वासों में, नियतत्ववाद में और कुछ निश्चित दृष्टिकोणों में देखा जा सकता है जो इस प्रकार हैं–

1. **अस्तित्व चेतना को निर्धारित करता है** : मार्क्स का मानना है– ''अस्तित्व चेतना को निर्धारित करता है''। इससे उनका तात्पर्य है कि जीवन की भौतिक पारिस्थितिकी सामाजिक और मानसिक चेतना को नियंत्रित, निर्देशित, संचालित और परिवर्तित करती है। भौतिक पारिस्थितिकी सामाजिक आंतरिक विवेक को परिभाषित करती है और समाज में परिवर्तन लाती है।
2. **चेतना में बदलाव हेतु भौतिक कारक उत्तरदायी** : मार्क्स के सिद्धांत की दूसरी महत्वपूर्ण मान्यता है– ''चेतना में बदलाव हेतु भौतिक कारक उत्तरदायी होतो हैं''। सामग्री विचारों को निर्धारित करती है। सामाजिक परिवर्तन भौतिक परिवर्तनों से होता है। भौतिक कारक सामाजिक चेतना और आदर्शों में परिवर्तन के कारक हैं।
3. **समाज भौतिक परिस्थितियों में निहित है** : इस प्रकार मार्क्स ने आगे स्पष्ट किया है– ''समाज की जड़ भी भौतिक स्थितियाँ हैं।'' प्रयास, जिसे मनुष्य अपनी मूलभूत आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए करता है। एक आर्थिक उप–संरचना के विकास में यह आर्थिक उप–संरचना कानूनी और राजनीतिक परिणाम को तय करती है और समाज की उप–संरचनाओं को परिभाषित करती है। मार्क्स के अनुसार, समाज इस प्रकार विकास के संतुलन को प्रदर्शित करता है जिसमें उत्पादन के प्राथमिक तरीके (आर्थिक प्रणाली) सामाजिक चेतना और संबंधों को निर्धारित करते हैं। सामाजिक परिवर्तन के मार्क्सवादी सिद्धांत की यह तीसरी महत्वपूर्ण मान्यता है।
4. **द्वंद्वात्मक विकास** : मार्क्स की चौथी और अंतिम महत्वपूर्ण मान्यता है– आर्थिक उप–संरचना और पैरामीट्रिक अधिरचना के बीच एक द्वंद्वात्मक प्रतिक्रिया होती है, जिसके परिणामस्वरूप समाज विकास के विभिन्न चरणों से गुजरते हुए बदल जाता है। उनका मानना था कि जनसंख्या और जरूरतों में वृद्धि के कारण श्रम विभाजन और भूमिकाओं और जिम्मेदारियों में वृद्धि हुई है। इस विकास के कारण निजी संपत्ति बढ़ती है। औद्योगीकरण के फलस्वरूप पूँजीवादी व्यवस्था निजी सम्पत्ति से विकसित होती है। मार्क्स का यह भी मानना था कि आर्थिक प्रभाव और पूंजीवाद के कारण उत्पादन की प्रकृति और संसाधनों से मजदूर वर्ग का अलगाव होगा।

   पूंजीवादी वर्ग या शोषक वर्ग का उत्पादन के साधनों, उत्पादन के तरीकों और औद्योगिक संबंधों पर पूर्ण नियंत्रण होगा और मजदूर वर्ग का शोषण

होगा। श्रम विभाजन और समाज में निजी संपत्ति के अधिकारों में वृद्धि के कारण पूंजीवाद का विस्तार होता है। बाद में मार्क्स के अनुसार पूंजीवाद में संघर्ष होगा जो समाजवाद के लिए एक क्रांति के रूप में शुरू होगा, जिससे एक ऐसे समाज का निर्माण होगा जिसमें मानव फिर से प्रकृति और सामाजिक वातावरण से जुड़ जाएगा और एक 'प्राकृतिक मानव' का उदय होगा।

5. **अधिशेष मूल्य का सिद्धांत** : कार्ल मार्क्स द्वारा सामाजिक परिवर्तन, वर्ग–संघर्ष, शोषित और शोषक, द्वंद्वात्मक भौतिकवाद, इतिहास की भौतिकवादी व्याख्या, अलगाव आदि के लिए दिए गए स्पष्टीकरण मुख्य रूप से अधिशेष मूल्य पर आधारित हैं। यदि हम मार्क्स के विभिन्न सिद्धांतों को समझना चाहते हैं तो हमें उनके अधिशेष मूल्य के सिद्धांत को समझना होगा।

6. **वर्ग और वर्ग–संघर्ष की अवधारणा** : समाजशास्त्र में कार्ल मार्क्स के महत्वपूर्ण योगदानों में से एक वर्ग और वर्ग–संघर्ष का सिद्धांत देना है। मार्क्स का मानना है कि समाज में हमेशा दो वर्ग होते हैं इन वर्गों का आधार आर्थिक है। यह आर्थिक असमानता है जो समाज में दो वर्गों को जन्म देती है। ये दो वर्ग हैं शोषित वर्ग और शोषक वर्ग। मार्क्स कहते हैं कि व्यक्ति एक प्रकार का जीव है। मार्क्स के अनुसार शोषित और शोषक सभी युगों में जीते हैं।

   शोषक वर्ग वह वर्ग है जिसके पास उत्पादन के संसाधनों, उत्पादन की शक्तियों और उत्पादन के संबंधों का स्वामित्व होता है। मालिक, जमींदार, पूंजीपति आदि अलग–अलग कालों में शोषक के अलग–अलग रूप हैं। इसी प्रकार दास, गुलाम, किसान, श्रमिक, मजदूर आदि अलग–अलग कालों में शोषितों के अलग–अलग रूप हैं। 'कम्युनिस्ट पार्टी के घोषणापत्र' में कार्ल मार्क्स ने लिखा है, "आज तक जो भी समाज अस्तित्व में रहा है, उसका इतिहास वर्ग–संघर्ष का रहा है। स्वतंत्र आदमी और गुलाम, कुलीन और आम लोग, जमींदार और सीमांत किसान, इंजीनियर और कार्यकर्ता। दूसरे शब्दों में, शोषित और शोषक हमेशा एक–दूसरे के विरोधी रहे हैं।"

   मार्क्स ने आगे लिखा है कि ये दोनों शोषित और शोषक वर्ग अपनी समस्याओं, लाभों, लक्ष्यों, स्थितियों आदि के लिए एक–दूसरे के खिलाफ संघर्ष करते रहे हैं। मार्क्स का मानना है कि प्रागैतिहासिक युग, समाजवाद, बंधन और बंधन के युग के दौरान उनके बीच संघर्ष धीमा है। यह सामंतवाद और पूंजीवाद के युग में तेजी से होता है। मार्क्स ने भविष्यवाणी की थी कि वर्ग–संघर्ष के इतिहास में एक समय आयेगा जब मजदूर वर्ग पूंजीवादी वर्ग–व्यवस्था को समाप्त कर देगा। पूंजीवादी व्यवस्था के स्थान पर समाजवादी व्यवस्था की स्थापना की जाएगी, जिसमें शोषक वर्ग का अंत होगा। साथ ही समाज में व्याप्त असमानता भी समाप्त होगी। मार्क्स यह भी कहते हैं कि धीरे–धीरे एक काल्पनिक समाज की स्थापना होगी। वर्ग भेद नहीं होगा और मजदूरों को पूंजीवादी दुखों से मुक्ति मिलेगी।

मार्क्स ने निम्नलिखित नारा दिया है–

''इस दुनिया के सभी कार्यकर्ता एकजुट हैं, बेड़ियों के अलावा आपके पास खोने के लिए कुछ भी नहीं है और आपके पास हासिल करने के लिए पूरी दुनिया है।''

संघर्ष होते रहते हैं यह संघर्ष–विरोधाभास और समभाव की प्रक्रिया से गुजरता है। किसी विशेष वस्तु का एक पहलू हो सकता है और उस पहलू के विरोधी तत्व अंतर्विरोध कहलाते हैं। एक विशेष परिप्रेक्ष्य और उसके अंतर्विरोधों के बीच संघर्ष होता है, जो एक नए रूप के विकास की ओर ले जाता है। यह नया रूप समभाव दर्शाता है। कुछ समय बीतने के बाद, यह समभाव एक पूर्वाग्रह या एक निश्चित विश्वास का रूप ले लेता है। इस नए विश्वास के लिए एक अंतर्विरोध भी विकसित हो जाता है और इस तरह अंतर्विरोधों का एक नया चक्र शुरू हो जाता है।

मार्क्स का मानना है कि भौतिकवादी दुनिया में सामग्री के बीच निरंतर संघर्ष और मतभेद हैं और इसी तरह समाज का विकास होता है। मार्क्स ने भौतिकवादी द्वंद्ववाद के माध्यम से वर्ग–संघर्ष की व्याख्या की थी। हर उम्र में शोषक एक स्थापित विश्वास के रूप में होता है, जबकि शोषित एक अंतर्विरोध के रूप में होता है और उनके बीच संघर्ष होता है। परिणामस्वरूप एक नई समता विकसित होती है, जो समुच्चय का रूप धारण कर लेती है

कुछ समय बाद विश्वास, अंतर्विरोध और समभाव की यह प्रक्रिया तब तक चलती रहती है जब तक समाज समाजवाद के काल्पनिक चरण में नहीं पहुँच जाता। यह संक्षिप्त संस्करण में कार्ल मार्क्स का द्वंद्वात्मक भौतिकवाद है।

7. **द्वन्द्वात्मक भौतिकवाद** : कार्ल मार्क्स पर हीगल का प्रभाव पड़ा, जिसके परिणामस्वरूप उन्होंने हीगल के द्वंद्ववाद में संशोधन किया और इसका उपयोग समाज के अवलोकन, विश्लेषण और सिद्धांतों के निर्माण के लिए किया। ये इस प्रकार हैं– मार्क्स ने भौतिकवादी द्वंद्ववाद का प्रस्ताव रखा जो हीगल की आत्मा–द्वंद्ववाद से अलग है। मार्क्स का कहना है कि मानव समाज के इतिहास में वस्तुओं के बीच संघर्ष हमेशा से चला आ रहा है। उनके अनुसार, यह वह मामला है जो दुनिया की जड़ में है। मार्क्स का कहना है कि सबसे पहले दुनिया के मामलों (अर्थव्यवस्था) में परिवर्तन होता है और फिर सामाजिक, धार्मिक, आर्थिक, राजनीतिक, कला, साहित्य, विज्ञान आदि में परिवर्तन होता है।

8. **इतिहास की भौतिकवादी व्याख्या** : कार्ल मार्क्स ने भौतिकवाद या अर्थव्यवस्था को मानव इतिहास की व्याख्या का मूल कारण या आधार बताया है। उन्होंने अपने ऐतिहासिक 'भौतिकवादी नियतत्ववाद' का सार ''राजनीतिक अर्थव्यवस्था के आलोचक (1859)'' में दिया है। इसमें उन्होंने लिखा है कि समाज और संस्कृति में परिवर्तन उत्पादन के संसाधनों, उत्पादन प्रणाली और उत्पादन संबंधों के माध्यम से होते हैं।

आज उत्पादन प्रणाली को परिवर्तन का मूल कारण माना जाता है। आर्थिक कारण विभिन्न समाजों की सामाजिक संरचना, सभ्यता और संस्कृति को निर्धारित करते हैं। कार्ल मार्क्स आर्थिक कारण को सबसे महत्वपूर्ण पहला और अंतिम कारण मानते हैं जो सामाजिक घटनाओं को नियंत्रित, निर्देशित, परिवर्तित और निर्धारित करता है। आर्थिक प्रणाली और उत्पादन प्रणाली लगातार बदलती रहती है और उनके साथ–साथ उप–संरचनाएँ जैसे राजनीतिक और धार्मिक चलती रहती हैं। ये सभी सामाजिक अधिरचना को प्रभावित करते हैं और उन्हें बदलते हैं। मार्क्स के अनुसार, सबसे पहला परिवर्तन आर्थिक व्यवस्था में आता है। संसाधनों और उत्पादन की शक्तियों में परिवर्तन आते हैं। इन परिवर्तनों का प्रभाव सामाजिक परिवर्तन की प्रक्रिया में परिवर्तन लाता है। मार्क्स ने आर्थिक कारण को कारक और अन्य सभी कारणों के रूप में माना है परिणाम के रूप में सामाजिक परिवर्तन की तरह। आर्थिक कारण चालक है और सामाजिक परिवर्तन उससे गति प्राप्त करता है, क्योंकि कार्ल मार्क्स आर्थिक कारण को सामाजिक परिवर्तन का एकमात्र कारक मानते हैं और इसलिए, सामाजिक परिवर्तन के उनके सिद्धांत को आर्थिक नियतत्ववाद का सिद्धांत कहा जाता है। उन्होंने इतिहास को व्यापक आधार पर समझाया है, इसलिए उन्हें इतिहास की भौतिकवादी व्याख्या के कट्टर समर्थक के रूप में जाना जाता है।

सामाजिक परिवर्तन की टाइपोलॉजी

मार्क्स ने सामाजिक परिवर्तन और विकास के चरणों को टाइपोलॉजी के रूप में दिया है जो इस प्रकार हैं–

1. **जनजातीयवाद** : मार्क्स ने कहा है कि सामाजिक परिवर्तन के विकास के क्रम में पहला चरण जनजाति है। इस आदिवासी समाज में शिकार, मछली पालन और खेती प्रमुख हैं। समाज मुख्य रूप से पितृसत्तात्मक है। श्रम विभाजन एक विस्तृत परिवार प्रणाली के रूप में पाया जाता है।
2. **सामंतवाद** : जब कुछ जनजातियाँ आपस में मिल जाती हैं और उनका आकार बढ़ता है तो उसके साथ–साथ साम्प्रदायिकता भी विकसित होती है। गुलामी, निजी संपत्ति और श्रम का विभाजन इसी स्तर पर शुरू होता है। भूमि आधारित अर्थव्यवस्था विकसित होती है। नगरीकरण का विकास होता है। आवश्यकताएँ बढ़ती हैं, परिणामस्वरूप, उत्पादन अर्थव्यवस्था की आवश्यकता होती है जो दुनिया में पूँजीवाद को बढ़ावा देती है।
3. **पूँजीवाद** : उपरोक्त विकास के फलस्वरूप पूँजीवाद का विकास होता है जिसमें विभिन्न तत्व उत्पन्न होते हैं। मार्क्स का कहना है कि पूंजीवाद एक ऐसी व्यवस्था है जो स्रोतों पर एकाधिकार प्राप्त कर लेती है। यह एकाधिकार पूंजी के रूप में उत्पादन के संसाधनों पर स्वामित्व के कारण होता है। श्रमिक का श्रम एक महत्वपूर्ण वस्तु बन जाता है। अर्थात् समाज दो वर्गों में बँट जाता है– मालिक और श्रमिक। जिस तरह से आदिवासीवाद सामंतवाद में और सामंतवाद पूंजीवाद में बदल गया, उसी तरह पूंजीवाद की स्थिति भी स्थिर

नहीं रहती है। मार्क्स का मानना है कि अधिक उत्पादन और बढ़ी हुई अलगाव की समस्याओं के कारण पूंजीवाद में बदलाव आया है। बढ़ते अलगाव के कारण मजदूर वर्ग संगठित हो जाता है और पूंजीपतियों के खिलाफ क्रांति शुरू कर देता है।

4. **यूरोपियन समाजवाद** : पूंजीवाद अपने स्वयं के विघटन की प्रक्रिया शुरू करता है और अंततः समाज सामाजिक विकास के चरम स्तर पर पहुँच जाता है यही मार्क्स का विश्वास है। उनका कहना है कि यूरोपियन समाज के चरण में श्रमिक वर्ग की क्रांतिकारी निरंकुशता स्थापित होती है, जिससे निजी संपत्ति का अधिकार समाप्त हो जाता है। सामाजिक व्यवस्था के इस स्तर पर वर्ग समाप्त हो जाते हैं और व्यक्ति पूर्ण समाजवादी बन जाते हैं। समाज और प्रकृति एक बार फिर एक हो गए। इस प्रकार, एक तरह से समाजवाद समाज को आदिवासीवाद के प्रारंभिक चरण में वापस लाता है, जिसमें लोग अपने भौतिक और सामाजिक वातावरण से निकटता से जुड़ जाते हैं।

सामाजिक परिवर्तन के मार्क्स के सिद्धांत का आलोचनात्मक मूल्यांकन

मार्क्स के शब्द चयन की अस्पष्टता और कई अर्थों के कारण, मार्क्सवादियों और गैर–मार्क्सवादियों जैसे विभिन्न लेखकों ने उनके और एंजेल के सिद्धांतों के लिए अलग–अलग स्पष्टीकरण दिए हैं। अब, सामाजिक परिवर्तन पर मार्क्सवाद की विभिन्न व्याख्याओं से हम कुछ महत्वपूर्ण व्याख्याओं और समझौतों पर चर्चा करेंगे।

इसकी पहली कमी इसके द्वारा दिया गया कारण : मार्क्स का मानना है, ''सामाजिक, राजनीतिक और आध्यात्मिक जीवन की प्रक्रियाओं की सामान्य विशेषताएँ उत्पादन विधियों द्वारा निर्धारित की जाती हैं''। वह एकतरफा रूप से कारण–संबंध की अवधारणा की पूर्व–कल्पना करता है। इस विश्वास को बारीकी से देखने पर यह स्पष्ट हो जाता है कि मार्क्स के सिद्धांत का पहला विचार यह है कि आर्थिक कारण ही मुख्य या सबसे महत्वपूर्ण कारक है जो अन्य सभी को निर्धारित करता है। मुख्य कारक के दो अर्थ हो सकते हैं–

1. आर्थिक कारक कारण–संबंध की शृंखला में पहला कारक है जो अन्य सभी सामाजिक घटनाओं को निर्धारित करता है।
2. इस आर्थिक कारक की क्षमता बहुत अधिक है (मान लें कि इसका प्रभाव 90% है और अन्य सभी कारकों का प्रभाव 10% है)।

पहली व्याख्या : आर्थिक कारक पहला और मुख्य कारक है और अन्य सभी सामाजिक घटनाएँ इसके परिणाम हैं। यह एकतरफा, समझौता न करने वाली और अहस्तांतरणीय कारण–संबंध अवधारणा है। आर्थिक कारक सक्रिय है जो एकतरफा निर्धारक है, विभिन्न गतिविधियों, प्रस्तुतियों और परिणामों का। ऐसे सामाजिक क्षेत्र में विभिन्न घटनाओं पर इस प्रकार के नियम लागू नहीं किए जा सकते हैं, क्योंकि सामाजिक घटनाएँ एकतरफा होने के बजाय परस्पर अन्योन्याश्रित हैं।

मार्क्स, एन्जिल्स या उनके किसी अनुयायी ने कभी भी सामाजिक घटनाओं पर विभिन्न कारकों के तुलनात्मक प्रभावों को मापने के तरीकों को समझाने की कोशिश

नहीं की। इस सिद्धांत के शाब्दिक और तार्किक अर्थ के अनुसार आर्थिक कारक को प्रथम मान लेना उचित होगा, अर्थात आर्थिक कारक मुख्य है और सबसे प्रारंभिक महत्वपूर्ण कारक जो अन्य सभी सामाजिक घटनाओं की कारण श्रृखला को निर्धारित करता है, क्योंकि यह 'ड्राइवर' और अन्य सभी 'चालित' हैं। इस तरह के विश्वास को कई प्रमाणों के आधार पर स्वीकार नहीं किया जा सकता है। कई सावधानीपूर्वक किए गए अध्ययनों ने इस भ्रम को स्पष्ट किया है। हम यह दावा नहीं कर सकते कि मनुष्य केवल अर्थव्यवस्था का गुलाम है और हमेशा आर्थिक गतिविधियाँ करता है। अकादमिक अर्थशास्त्री का भी यही मानना था जो तथ्यों के आधार पर गलत है।

कई शोधकर्ताओं एस्पेनोस, दुर्खीम, पी. हुवेलिंग, थर्मवाल्ड, मालेइनोव्स्की, ह्यूबर्ट और गॉस ने स्पष्ट किया है कि जनजातीय स्तर तक उत्पादन पद्धति और पूर्ण आर्थिक जीवन समकालीन धर्म, जादू, विज्ञान और अन्य बौद्धिक घटनाओं से पूरी तरह अलग नहीं है। मैक्स वेबर ने साबित कर दिया है कि आर्थिक व्यवस्था धर्म, जादू, तर्क से निर्धारित होती है और पूंजीवाद की उत्पत्ति प्रोटेस्टेंट धर्म से हुई है।

इस प्रकार, यह निष्कर्ष निकाला जा सकता है कि आर्थिक कारक अन्य कारकों की तरह पुराना नहीं है। इसका अर्थ यह भी है कि सामाजिक घटनाएँ परस्पर अन्योन्याश्रित थीं और भविष्य में भी बनी रहेंगी। वे कभी एकतरफा नहीं थीं और कभी एकतरफा नहीं होंगी।

दूसरी व्याख्या : मार्क्सवादी एन्जिल्स, लैब्रियोला और प्लाचानो की तरह कहते हैं कि द्वितीयक कारक बदले में प्राथमिक कारक को प्रभावित कर सकते हैं। इस स्पष्टीकरण के अनुसार, अन्य कारक आर्थिक कारक को प्रभावित कर सकते हैं। इस मान्यता के अनुसार आर्थिक कारक की प्रधानता और नियति का सिद्धांत शून्य हो जाता है। आर्थिक कारक की प्रधानता की कमी के कारण सिद्धांत अपनी विशिष्टता खो देता है। मार्क्सवादी जो मानते हैं कि अन्य कारक भी आर्थिक कारक को प्रभावित करते हैं, टाइपोलॉजिकल पारस्परिक निर्भरता की अवधारणा को स्वीकार करते हैं और मार्क्स द्वारा आर्थिक निर्धारण के सिद्धांत को त्याग देते हैं।

सामाजिक घटना के लिए आर्थिक कारक सबसे महत्वपूर्ण और अंतिम कारक है। मार्क्स के इस कथन की व्याख्याएँ इस प्रकार हैं–

मार्क्सवादियों और गैर–मार्क्सवादियों (प्लेचनन और एलवुड) ने इस दावे की यह व्याख्या दी है कि आर्थिक कारक संपूर्ण ऐतिहासिक और सामाजिक प्रक्रियाओं की व्याख्या करने में सक्षम है। मार्क्स का भी यही विश्वास था। यह पहली व्याख्या है एक अर्थ में, एकतरफा अवधारणा, जिसमें आर्थिक कारक को संपूर्ण सामाजिक जीवन और संपूर्ण ऐतिहासिक प्रक्रिया और परिवर्तन के लिए एकमात्र कारक के रूप में समझने की कोशिश की गई है। यदि संपूर्ण सामाजिक जीवन, युद्ध और शांति, दरिद्रता और सुख, दासता और स्वतंत्रता, क्रांति और प्रतिक्रिया केवल एक ही कारक के परिणाम हैं तो इससे निम्नलिखित समीकरण प्राप्त किए जा सकते हैं–

ए और गैर – ए = (ई), यानी पूरी तरह से विरोधाभासी घटनाएँ केवल एक कारक का परिणाम हैं।

इस सूत्र में, ए शांति, खुशी, स्वतंत्रता आदि को दर्शाता है और गैर–ए युद्ध, दरिद्रता, गुलामी आदि को दर्शाता है तथा ई आर्थिक कारक को दर्शाता है। मार्क्सवादी सिद्धांत के अनुसार, ए और गैर–ए एक ही कारक 'आर्थिक' के परिणाम हैं। दूसरे शब्दों में, ऐसी एकपक्षीय अवधारणा से निम्नलिखित समीकरण बनाए जा सकते हैं–

	सहयोग और संघर्ष	इसका अर्थ है कि सभी प्रकार के व्यवहार,
	विकास और गिरावट	सामाजिक प्रक्रियाएं
	आजादी और गुलामी	सामाजिक प्रक्रियाएँ और ऐतिहासिक
ए (आर्थिक कारक)	शांति और युद्ध	घटनाएँ आर्थिक कारक के परिणाम हैं।
	दरिद्रता और खुशी	
	अर्थात सभी प्रकार के व्यवहार, सामाजिक प्रक्रियाएं और ऐतिहासिक घटनाएं आर्थिक कारक आदि के परिणाम हैं।	

कोई भी गणितज्ञ, दार्शनिक या वैज्ञानिक ऐसी नींव पर आधारित वैज्ञानिक कारण–संबंध नियम या सूत्र नहीं निकालेगा। यदि समीकरण में, 'ए' का अर्थ सभी व्यापक सार्वभौमिक अवधारणा है जो 'पूर्ण' या 'ईश्वर' या 'ब्रह्मांड' या 'पूर्ण सामाजिक जीवन' है तो समीकरण असाधारण हो जाता है और इस प्रकार 'पूर्ण' या 'ईश्वर' या कारण होता है 'पूर्ण' या 'भगवान'। ''संपूर्ण सामाजिक जीवन ही संपूर्ण सामाजिक जीवन का कारण है।''

उपरोक्त सामग्री आर्थिक भौतिकवाद के सिद्धांत की कमियों को स्पष्ट करने के लिए पर्याप्त है। शायद इसी कमी के कारण कार्ल मार्क्स और एन्जिल्स ने अपने बाद के निबंधों में अन्य व्याख्याओं को अपनाया है, जो इस प्रकार हैं–

कई लेखकों–सेलिगमेन, लाडिओला आदि और एन्जिल्स ने अपने बाद के लेखों में समझाया है कि आर्थिक कारक मुख्य कारक है और इसके साथ ही अन्य कम महत्वपूर्ण कारक हैं। अन्य कारकों को दिए गए महत्व के कारण, इस दूसरी व्याख्या में मार्क्सवादी सिद्धांत का महत्व समाप्त हो जाता है। तब यह बहुकारक सिद्धांत बन जाता है जिसमें आर्थिक कारक अन्य कारकों में से एक होता है। कई विचारकों ने अन्य कारकों के प्रभावों की व्याख्या की है, आर्थिक कारक के साथ, मार्क्स और एन्जिल्स से पहले और बाद में। इसलिए, मार्क्स का यह दावा कि आर्थिक नियतत्ववाद उनका मूल विचार है, निराधार है।

उनके सिद्धांतों की तीसरी कमी यह है कि 'आर्थिक कारक', 'उत्पादन के बल और संबंध' और 'आर्थिक आधार' की परिभाषाएँ आवश्यकता के अनुसार संतोषजनक रूप से अतुलनीय, निश्चित और विशिष्ट नहीं हैं।

हम इन दो अवधारणाओं के लिए दो अर्थ और स्पष्टीकरण भी पा सकते हैं। के. कौत्स्की, डब्ल्यू. सोम्बर्ट, ए हैनसेन और अन्य ने उन्हें तकनीक और अन्य विचारकों के रूपों के रूप में समझा है। एन्जिल्स, मसारिक, सेलिमेन आदि ने उन्हें उत्पादन की सामान्य स्थितियों के रूप में समझा है, जिसमें भौगोलिक वातावरण, प्राकृतिक स्रोत, परिवहन, वाणिज्य, वितरण प्रणाली आदि शामिल हैं।

यदि हम पहले स्पष्टीकरण को स्वीकार करते हैं तो उससे यह प्रस्तावना बनती है– ''प्रौद्योगिकी मुख्य कारक है और प्रौद्योगिकी द्वारा इतिहास के सभी अद्‌भुत कार्यों और चमत्कारों की व्याख्या करना संभव है''। लेकिन वास्तविकता यह है कि प्रौद्योगिकी सामाजिक वास्तविकता का एक हिस्सा मात्र है। इसलिए, उपरोक्त प्रस्तावना तार्किक की तरह मूर्खता, तर्कसंगतता–रहित प्रस्तावना है। दरअसल तकनीक के लिए समाज का ज्ञान और अनुभव जरूरी है।

यदि हम व्यापक दूसरी व्याख्या को स्वीकार करते हैं तो आर्थिक कारक की अवधारणा और सिद्धांत में और भी अधिक अनिश्चितता आती है। यह एक प्रकार का थैला बन जाता है जो भौगोलिक वातावरण, प्रौद्योगिकी, विज्ञान, संपूर्ण उद्योग, वाणिज्य और वितरण की एक जटिल और पूर्ण प्रणाली है और जिसमें कानूनी और राजनीतिक संस्थान उससे भी अधिक शामिल होते हैं। ऐसी स्थितियों में हम कोई स्पष्ट और निश्चित पारस्परिक संबंध स्थापित करने में असमर्थ होते हैं। मार्क्स की यह दूसरी व्याख्या भी भ्रमित करने वाली है।

उनके अनुक्रम का क्रम या निर्भरता भी मार्क्स और एंगल्स द्वारा व्यक्त कारकों के लिए अनिश्चित हो जाती है, क्योंकि यह अनिश्चित जानकारी है।

तकनीकी व्याख्या के अनुसार परिवर्तन का क्रम इस प्रकार है–

1. उत्पादन तकनीक में परिवर्तन सबसे पहले होता है। 2. समाज की आर्थिक संरचना में परिवर्तन लाता है जैसे 'उत्पादन संबंध' और 'संपत्ति संबंध'। 3. फिर यह समाज के राजनीतिक, सामाजिक और बौद्धिक जीवन को निर्धारित करता है। इसे निम्न चित्र द्वारा दर्शाया जा सकता है–

Society's political, social and intellectual life changes

↑

Economic structure of society
Changes in the relations of production and property relations

↑

Change in production technology
sequence of the change process as per technological explanation

आर्थिक कारक की एक और अलग और विस्तृत व्याख्या की गई है। इस स्पष्टीकरण के अनुसार, परिवर्तन का क्रम निम्नलिखित परिवर्तन लाता है– सबसे पहले, सामान्य पारिस्थितिकी और विनिमय में परिवर्तन होते हैं। यह परिवर्तन समाज की वर्ग–संरचना को बदल देता है इससे वर्ग–शत्रुता और वर्ग–विरोध में परिवर्तन होता है

टिप्पणी

और जिसके परिणामस्वरूप समाज की सामाजिक, राजनीतिक और बौद्धिक अधिरचनाओं का परिवर्तन होता है। इसे निम्न चित्र द्वारा दर्शाया जा सकता है–

Transformation of society in infrastructure

(Society's social, political and intellectual super&structure changes)

↑

Class conflict transformation

↑

Conversions in the class structure

↑

Changes take place in normal ecology and exchange

Economic factors defined the order of the change process

इन दोनों व्याख्याओं का आपेक्षिक महत्व है जिसमें आर्थिक कारक सक्रिय और सर्जक है। 'कार्य–कारण' और सामाजिक घटनाओं की पारस्परिकता की 'प्रामाणिक अवधारणा' के अनुसार हम किसी भी कारक को 'चर' के रूप में ले सकते हैं और किसी भी क्षेत्र में उनके 'कार्य' या प्रभावों का अध्ययन कर सकते हैं, प्रौद्योगिकी या आर्थिक घटनाओं की तरह। मार्क्स और एन्जिल्स का यह झूठा दावा स्वीकार नहीं किया जा सकता कि उनके द्वारा प्रस्तावित परिवर्तन ही एकमात्र संभव क्रम था इसलिए, अन्य विचारकों द्वारा सुझाए गए परिवर्तन का क्रम अर्थहीन नहीं है। विपरीत दावा जिसमें कानून, धर्म या 'बौद्धिक कारक' को प्रवर्तक के रूप में रखा गया है और आर्थिक कारक इसका काम है, ऐसे कारण–सम्बन्धों का विभिन्न अध्ययनों में अध्ययन किया गया है और उनके पक्ष–विपक्ष सिद्ध हुए हैं।

अपनी प्रगति जांचिए

1. विचारों, भावनाओं, मूल्यों, परंपराओं व संस्कारों आदि को कैसी पारिस्थितिकी में शामिल किया जा सकता है?

   (क) बाह्य (ख) आंतरिक

   (ग) भौगोलिक (घ) ऐतिहासिक

2. किसने सामाजिक परिवर्तन का आर्थिक सिद्धांत प्रस्ताविक किया था?

   (क) कार्ल मार्क्स ने (ख) ऑगबर्न ने

   (ग) निमकॉफ ने (घ) क्यूबर ने

3.3 विकास और अविकसितता के सिद्धांत

विचारकों ने पारंपरिक समाजों में बदलाव या पश्चिमी समाजों में आए बदलावों को समझने के लिए आधुनिकीकरण को जन्म दिया जो औद्योगीकरण के कारण आए और दोनों के बीच के अंतर को व्यक्त किया। जब पश्चिमी विचारक उपनिवेशों और

विकासशील देशों में हो रहे परिवर्तनों पर चर्चा करते हैं, तो वे आधुनिकीकरण की अवधारणा का समर्थन लेते हैं।

टिप्पणी

3.3.1 आधुनिकीकरण

कुछ लोगों ने आधुनिकीकरण को 'प्रक्रिया' माना है, जबकि कुछ ने इसे 'उत्पाद' माना है। ईसेनस्टेड ने इसे एक प्रक्रिया के रूप में माना है और लिखा है, ''ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्य से, आधुनिकीकरण सामाजिक, आर्थिक और राजनीतिक व्यवस्था में परिवर्तन की दिशा में एक ऐसी प्रक्रिया है, जो सत्रहवीं और उन्नीसवीं सदियों के दौरान पश्चिमी यूरोप और उत्तरी अमेरिका में और दक्षिण अमेरिका, एशियाई और अफ्रीकी देशों में बीसवीं सदी के दौरान विकसित हुई।'' श्रीनिवास के अनुसार आधुनिकीकरण की प्रक्रिया किसी एक दिशा में परिवर्तन प्रदर्शित नहीं करती बल्कि यह एक बहुआयामी प्रक्रिया है। इसके अतिरिक्त, यह एक निश्चित प्रकार के मूल्यों के लिए बाध्य नहीं है। हालांकि यह मूल्य–मुक्त है, लेकिन कभी–कभी इसका अर्थ सामान्य अच्छे और वांछित परिवर्तनों के संदर्भ में लिया जाता है। उदाहरण के लिए जब कोई कहता है कि सामाजिक, आर्थिक और धार्मिक संस्थाओं का आधुनिकीकरण हो रहा है तो उसका उद्देश्य आलोचना करना नहीं बल्कि सकारात्मक बातें करना होता है।

आधुनिकीकरण : परिभाषा और अर्थ

अब तक विभिन्न विचारकों ने आधुनिकीकरण पर बहुत कुछ लिखा है और इसके कई रूपों को परिभाषित किया है। यहाँ, हम कुछ विचारकों द्वारा प्रस्तुत परिभाषाओं और विचारों का उल्लेख करेंगे–

मैरियन जे लेवी ने आधुनिकीकरण को औद्योगिक विकास के रूप में परिभाषित किया है, ''आधुनिकीकरण की मेरी परिभाषा ऊर्जा के निर्जीव स्रोतों और उन उपकरणों पर आधारित है जो प्रयास के प्रभाव को बढ़ाते हैं। मैं इन दोनों तत्वों में से प्रत्येक को सच्चा आधार मानता हूँ।'' उपरोक्त परिभाषा से स्पष्ट है कि लेवी मानता है कि ऊर्जा के निर्जीव स्रोत– जैसे पेट्रोल, डीजल, कोयला, जलविद्युत और परमाणु ऊर्जा और आधुनिकीकरण के आधार के रूप में मशीनों का उपयोग है। एक विशिष्ट समाज कितना आधुनिक है यह निर्जीव शक्ति और उपकरणों के उपयोग पर निर्भर करता है।

डॉ. योगेंद्र सिंह ने कहा है कि आमतौर पर 'फैशनेबल' को आधुनिकीकरण के अर्थ के रूप में लिया जाता है। वह आधुनिकीकरण को एक सांस्कृतिक प्रयास मानते हैं जिसमें तार्किक अभिव्यक्ति, सार्वभौमिक परिप्रेक्ष्य, सहानुभूति, वैज्ञानिक विश्वदृष्टि, मानवता, औद्योगिक विकास आदि शामिल हैं। डॉ. सिंह मानते हैं आधुनिकीकरण का स्वामित्व किसी एक जाति समूह या सांस्कृतिक समूह पर नहीं बल्कि संपूर्ण मानव समाज पर है।

डेनियल लर्नर ने अपनी पुस्तक 'द पासिंग ऑफ ट्रेडिशनल सोसाइटी : मॉडर्नाइजिंग द मिडिल ईस्ट' में आधुनिकीकरण के पश्चिमी मॉडल को स्वीकार किया है। उन्होंने आधुनिकीकरण में निहित निम्नलिखित विशेषताओं का उल्लेख किया है–

टिप्पणी

1. बढ़ता शहरीकरण
2. साक्षरता बढ़ाना
3. साक्षरता बढ़ने से विचारों के सार्थक आदान–प्रदान में समाचार–पत्रों, पुस्तकों, रेडियो आदि के माध्यम से शिक्षित लोगों का योगदान बढ़ता है।
4. ये सभी मानव क्षमता को बढ़ाते हैं, एक राष्ट्र को आर्थिक लाभ की सुविधा प्रदान करते हैं जो प्रति व्यक्ति आय बढ़ाने में मदद करता है।
5. यह राजनीतिक जीवन की विशेषताओं को बढ़ाने में मदद करता है।

शिक्षार्थी उपर्युक्त विशेषताओं को शक्ति, किशोरावस्था और तर्क के रूप में व्यक्त करता है। वह आधुनिकीकरण को मुख्य रूप से एक मानसिक स्थिति के रूप में स्वीकार करता है। वह आधुनिकीकरण को प्रगति के बावजूद विकास की ओर झुकाव और परिवर्तन के अनुसार स्वयं को अनुकूलित करने की बेचौनी के रूप में मानता है।

सहानुभूति भी आधुनिकीकरण का एक प्रमुख तत्व है जिसमें लोगों में सुख–दुख बाँटने और कठिन समय में एक–दूसरे की मदद करने की प्रवृत्ति में वृद्धि होती है।

1. अर्थशास्त्र के क्षेत्र में : उच्च स्तर की प्रौद्योगिकी।
2. राजनीतिक क्षेत्र में : समूह में शक्ति का प्रसार और सभी वयस्कों को शक्ति देना (मतदान के अधिकार के माध्यम से) और संचार के माध्यम से लोकतंत्र में भाग लेना।
3. सांस्कृतिक क्षेत्र में : विभिन्न समाजों के साथ रहने की क्षमता में वृद्धि और दूसरों की स्थिति के लिए सहानुभूति में वृद्धि।
4. संरचनात्मक क्षेत्र में : प्रत्येक संगठन के आकार में वृद्धि, उनमें जटिलता और भिन्नता के दृष्टिकोण से वृद्धि।
5. पारिस्थितिक क्षेत्र में : शहरीकरण में वृद्धि।

डॉ एम. एन. श्रीनिवास ने 'सोशल चेंज इन मॉडर्न इंडिया (1966)' और 'मॉडर्नाइजेशन : ए फ्यू क्वेरीज (1969)' में अपने विचार व्यक्त किए हैं। उनके अनुसार आधुनिकीकरण का अर्थ आमतौर पर सकारात्मकता से लिया जाता है। आधुनिकीकरण किसी भी पश्चिमी राष्ट्र के साथ प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष संपर्क के कारण किसी भी गैर–पश्चिमी देशों में परिवर्तन के लिए लोकप्रिय शब्द है। उन्होंने निम्नलिखित को शामिल किया है, आधुनिकीकरण–शहरीकरण में वृद्धि, साक्षरता का प्रसार, प्रति व्यक्ति आय में वृद्धि, वयस्क मताधिकार और तर्क का विकास।

डॉ. श्रीनिवास ने आधुनिकीकरण के तीन मुख्य क्षेत्रों का उल्लेख किया है–

1. भौतिकवादी संस्कृति
2. सामाजिक संगठन
3. ज्ञान, मूल्य और मानसिकता

ये तीन क्षेत्र सतही तौर पर अलग–अलग प्रतीत होते हैं लेकिन वे परस्पर जुड़े हुए हैं। एक क्षेत्र में परिवर्तन दूसरे क्षेत्रों को प्रभावित करते हैं।

ए. आर. देसाई आधुनिकीकरण के उपयोग को केवल सामाजिक क्षेत्रों तक ही सीमित नहीं मानते बल्कि जीवन के सभी पहलुओं तक फैला हुआ मानते हैं।

बुद्धि के क्षेत्र में आधुनिकीकरण का अर्थ तार्किक शक्ति का विकास है। भौतिक और सामाजिक घटनाओं के लिए तार्किक स्पष्टीकरण दिए गए हैं। ईश्वर को आधार बनाकर किसी भी घटना को स्वीकार नहीं किया जाता है।

समाजशास्त्र के क्षेत्र में–

(क) सामाजिक गतिशीलता बढ़ती है। एक व्यक्ति पुरानी सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक और मनोवैज्ञानिक परिकल्पनाओं को तोड़कर एक नए प्रकार को आत्मसात करने के लिए खुद को प्रस्तुत करता है।

(ख) सामाजिक संरचना में परिवर्तन– परिवर्तन व्यक्ति के व्यावसायिक और राजनीतिक कार्यों में आता है। अर्जित पद का महत्व बढ़ जाता है, विरासत में मिली स्थिति के महत्व के बजाय।

राजनीति के क्षेत्र में–

(क) सार्वभौमिक शक्ति की वैधता अलौकिक शक्तियों से प्राप्त नहीं होती है बल्कि नागरिकों के माध्यम से प्राप्त होती है।

(ख) सार्वभौमिक वयस्क मताधिकार के माध्यम से लोगों को राजनीतिक शक्ति का हस्तांतरण।

(ग) समाज के केंद्रीय कानूनी, प्रशासनिक और राजनीतिक संस्थानों का विस्तार और प्रसार।

(घ) प्रशासकों द्वारा लोक कल्याण की नीति का पालन किया जाता है।

अर्थशास्त्र के क्षेत्र में–

(क) पशु या मानव शक्ति के स्थान पर उत्पादन, वितरण, परिवहन और संचार में निर्जीव शक्ति का उपयोग।

(ख) पारंपरिक रूप से आर्थिक गतिविधियों का अंतर।

(ग) मशीन, प्रौद्योगिकी और उपकरणों का उपयोग।

(घ) उच्च प्रौद्योगिकी के परिणामस्वरूप उद्योग, व्यापार, वाणिज्य आदि में वृद्धि।

(ङ) आर्थिक कार्यों में विशेषज्ञता में वृद्धि, उत्पादन, खपत और बाजार में भी वृद्धि।

(च) अर्थव्यवस्था में उत्पादन और खपत में वृद्धि।

(छ) बढ़ता हुआ औद्योगीकरण जिसे आधुनिकीकरण की मुख्य विशेषता कहा जा सकता है। पारिस्थितिकी के क्षेत्र में शहरीकरण में वृद्धि हो रही है।

संस्कृति के क्षेत्र में–

(क) विशेष प्रकार की शिक्षा देने वाले शैक्षणिक संस्थानों में शिक्षा और विकास का प्रसार।

(ख) नए सांस्कृतिक परिप्रेक्ष्य का विकास जो प्रगति और सुधारों, खुशी, अनुभव और क्षमता पर जोर देता है।

(ग) प्रत्येक प्रकार के समाजों के साथ समन्वय के आधार का विकास, रुचि की वृद्धि, दूसरों के लिए सहानुभूति में वृद्धि, दूसरों के प्रति सम्मान, ज्ञान और प्रौद्योगिकी में विश्वास की शुरुआत, एक व्यक्ति को अपने कार्यों का परिणाम प्राप्त करना और मानवतावाद में विश्वास।

(घ) समाज द्वारा ऐसी संस्थाओं एवं योग्यताओं का विकास जिससे परिवर्तित माँगों एवं समस्याओं के साथ समन्वय स्थापित किया जा सके।

इस प्रकार देसाई ने आधुनिकीकरण को एक व्यापक क्षेत्र के संदर्भ में देखा है जिसमें समाज और संस्कृति के सभी पहलू आते हैं।

विकास या निम्न विकास के सिद्धांतों में से आधुनिकीकरण का सिद्धांत पारंपरिक और अविकसित समाजों से आधुनिक समाजों में परिवर्तन की प्रक्रियाओं का वर्णन है। आधुनिकीकरण एक सामाजिक, आर्थिक और राजनीतिक व्यवस्था है जो 17वीं शताब्दी में उत्तरी अमेरिका और पश्चिमी यूरोप से विकसित हुई और दक्षिण अमेरिका और अन्य यूरोपीय देशों, एशियाई और अफ्रीकी महाद्वीपों में फैल गई।

समाजशास्त्र में आधुनिकीकरण का सिद्धांत विकास से संबंधित परिप्रेक्ष्य के संदर्भ में उल्लेखनीय है।

आम तौर पर समाज में आर्थिक विकास को अच्छे राष्ट्रीय उत्पाद की तरह आधुनिकीकरण के सिद्धांत के अंतर्गत दिखाया गया है। मशीनीकरण या आर्थिक विकास की प्रक्रिया में आधुनिकीकरण मुख्य कारक है। आर्थिक विकास के लिए औद्योगीकरण जरूरी है।

आधुनिकीकरण की समाजशास्त्रीय अवधारणा न केवल वर्तमान को प्रासंगिक बनाती है बल्कि राष्ट्रीय विकास के पाठ्यक्रम में सामाजिक परिवर्तन से संबंधित सामग्री और प्रक्रियाओं की ओर भी निर्देशित करती है। इसमें वर्णनात्मक और व्याख्यात्मक मॉडल का उपयोग किया जाता है जो वास्तविक दुनिया को दर्शाता है।

आधुनिकीकरण का सिद्धांत लोकतांत्रिक और पूंजीवादी आधुनिक समाजों में धर्मनिरपेक्षता की प्रणालियों के विकास के रूप में आता है। आधुनिकीकरण के सिद्धांत के कई संस्करण हैं अन्तर्निहित बिंदु जो इस प्रकार हैं–

1. विकासात्मक कदमों की एक श्रृंखला के माध्यम से समाज का विकास।
2. ये कदम सामाजिक अंतर और संरचनात्मक और सांस्कृतिक घटकों पर आधारित हैं।
3. समकालीन समाज अंततः आर्थिक विकास प्राप्त करता है और पश्चिमी यूरोपीय और उत्तरी अमेरिकी समाजों की तर्ज पर सामाजिक, राजनीतिक और आर्थिक सुविधाएँ उपलब्ध कराई जाती हैं।
4. आधुनिकीकरण को पश्चिमी तकनीक के रूप में आयात किया गया है और यह पारंपरिक संरचनाओं और संस्कृतियों की कमियों को दूर करने का परिणाम है।

आधुनिकीकरण के सिद्धांत के अंतर्गत विकसित होने वाली तकनीक ही नहीं बल्कि संरचनात्मक और सांस्कृतिक परिवर्तन भी स्पष्ट रूप से प्रकट होते हैं।

आधुनिक समाज शहरीकरण, साक्षरता, अनुसंधान, चिकित्सा देखभाल, धर्मनिरपेक्षता, नौकरशाही, जनसंचार माध्यम और परिवहन सुविधाओं के उच्च स्तर को दर्शाता है। इसके अंतर्गत रिश्ते कमजोर होते हैं और एकल परिवार व्यवस्था मजबूत होती है। मृत्यु और जन्म दर कम हो जाती है और जीवन प्रत्याशा अपेक्षाकृत बढ़ जाती है।

भूमिका संबंध और व्यक्तित्व में परिवर्तन होता है। यह संरचनात्मक परिवर्तन से संबंधित है। सामाजिक गतिशीलता बढ़ती है और अर्जित पदों का महत्व बढ़ता है।

आधुनिकीकरण एक नव विकास सिद्धांत है। सामाजिक परिवर्तन की मुख्य प्रक्रियाओं में संरचनाओं और टाइपोलॉजी का उपयोग किया जाता है।

प्रसिद्ध समाजशास्त्री पार्सन्स ने स्पष्ट किया है कि आधुनिकीकरण का कोई भी सिद्धांत विभिन्न सिद्धांतों और दृष्टिकोणों का एक वर्गीकरण है।

विकास का आधुनिक सिद्धांत इसे स्पष्ट करता है कि विकास की कई प्रक्रियाओं के माध्यम से विकास प्राप्त किया जा सकता है जिसका उपयोग कई देशों द्वारा किया गया था जो वर्तमान समय के दौरान विकसित हुए थे। इन सिद्धांतों से संबंधित विचारकों में रोस्तोव ऑर्गेन्स्की, सैमुअल हंटिंगटन आदि उल्लेखनीय हैं।

सैमुअल हंटिंगटन ने विकास को एक रैखिक प्रक्रिया के रूप में देखा है जिससे हर देश को गुजरना होगा। शास्त्रीय उदारवाद में, विपरीत आधुनिकीकरण का सिद्धांत निम्न विकसित या पिछड़े समाजों में आधुनिकीकरण की प्रक्रिया को केंद्र में रखता है।

कार्रवाई का पार्सन्स सिद्धांत आधुनिक और पारंपरिक समाजों के बीच विशेषताओं के अंतर को दर्शाता है। शिक्षा को आधुनिकीकरण के सिद्धांतों की कुंजी के रूप में देखा गया था और इसमें प्रौद्योगिकी की भी महत्वपूर्ण भूमिका थी क्योंकि यह माना जाता था कि प्रौद्योगिकी अविकसित समाजों में आर्थिक विकास को और समृद्ध करेगी।

3.3.2 विकास के सिद्धांत पर निर्भर : केंद्र–परिधि, असमान विनिमय, विश्व–प्रणाली

विकास के आश्रित सिद्धांत को 1960 के अंतिम वर्षों और 1970 के दशक के प्रारंभिक वर्षों के दौरान लैटिन अमेरिकी देशों के संदर्भ में प्रस्तावित किया गया था। इस सिद्धांत का विकास संरचनावादी, मार्क्सवादी, नियोमार्क्सवादी संरचना के अंतर्गत हुआ। इस सिद्धांत के अनुसार अविकसित देशों के पिछड़ेपन के लिए पश्चिमी पूंजीवादी देश जिम्मेदार हैं और उनमें से ज्यादातर 19वीं और 20वीं सदी के दौरान शक्तिशाली साम्राज्यवादी देश थे। इस सिद्धांत के विश्लेषक द्वारा दिया गया तर्क उनके अपर्याप्त विकास या कमियों का मुख्य कारण है।

अविकसित देशों का विकास इन साम्राज्यवादी देशों की उपनिवेशवादी नीति है। इसके अलावा इन विचारकों ने उन ऐतिहासिक, सामाजिक और सांस्कृतिक कारकों का भी उल्लेख किया है जो इन देशों की आर्थिक प्रगति में बाधक रहे हैं। उनका तर्क है कि इन कारकों ने यूरोप और उत्तरी अमेरिका के आर्थिक विकास में सक्रिय भूमिका

टिप्पणी

निभाई, जबकि उन्होंने अफ्रीका, एशिया और लैटिन अमेरिका के विकास को पीछे धकेल दिया। पहले, ये अविकसित राष्ट्र इन विकसित साम्राज्यवादी देशों के उपनिवेश थे और उनके शोषण के अधीन थे। अविकसित देशों की सावधानीपूर्वक सोची–समझी शोषणकारी नीतियों के परिणामस्वरूप ये देश अविकसित और पिछड़े रहे। इन देशों की अर्थव्यवस्था साम्राज्यवादी देशों की औपनिवेशिक अर्थव्यवस्था की शोषक नीतियाँ थीं। वर्तमान में भी अविकसित देश तैयार उत्पादों, मध्यस्थ उत्पादों, मशीनरी और प्रौद्योगिकियों के लिए पश्चिमी देशों पर निर्भर हैं। इस प्रकार, इन अविकसित राष्ट्रों का विकास अभी भी विकसित राष्ट्रों पर निर्भर करता है। दूसरे शब्दों में, पुराना शोषण एक नए रूप में मौजूद है।

विकास के सिद्धांत को लैटिन अमेरिकी अर्थशास्त्री राउल प्रीबिश ने 1950 के दशक में विकसित किया था। प्रीबिश और उनके सहयोगियों ने सुझाव दिया कि अमीर देशों की आर्थिक गतिविधियां आमतौर पर गरीब देशों में गंभीर आर्थिक समस्याओं का नेतृत्व करती हैं। प्रीबिश द्वारा प्रारंभिक विवरण बहुत ही सरल था उनका मानना था कि गरीब देशों को आयात प्रतिस्थापन के कार्यक्रम शुरू करने चाहिए ताकि उन्हें अमीर देशों में उत्पादित उत्पादों को खरीदने की आवश्यकता न हो। अमीर देश अपनी प्रमुख उपज गरीब देशों को बेचना चाहते हैं ताकि उनका विदेशी मुद्रा भंडार हमेशा समृद्ध रहे।

कई आधुनिक अर्थशास्त्रीय जैसे राउल प्रीबिश, सिंगर मिर्डल, मिरेट आदि ने अंतर्राष्ट्रीय व्यापार को अविकसित देशों के आर्थिक विकास में बाधा माना है।

1. आयात के अलावा अन्य अर्थव्यवस्था की उपेक्षा : इस बात से इनकार नहीं किया जा सकता है कि अंतर्राष्ट्रीय व्यापार के परिणामस्वरूप अविकसित देशों में आयात में वृद्धि हुई है लेकिन इसके परिणामस्वरूप केवल आयात क्षेत्र का विकास हुआ है। इसने शेष अर्थव्यवस्था के विकास में योगदान नहीं दिया है और इसके परिणामस्वरूप आज भी अविकसित देश असंतुलित विकास के प्रत्यक्ष उदाहरण हैं।

मिर्डले कहते हैं, ''पिछड़े देशों में विदेशी व्यापार का उच्च अनुपात इस बात का प्रमाण नहीं है कि उन्हें अंतर्राष्ट्रीय श्रम विभाजन से लाभ हुआ है, बल्कि यह इस बात का प्रमाण है कि वे अविकसित और गरीब हैं।'' आयात क्षेत्र में उपयोग की जाने वाली उत्पादन तकनीक ने शेष अर्थव्यवस्था को प्रभावित नहीं किया है।

2. कीमतों में समानता का अभाव : अंतर्राष्ट्रीय व्यापार ने कीमतों में समानता स्थापित नहीं की है, लेकिन इसने जमाखोरी संस्कृति को जन्म दिया है जिसमें संतुलन बिंदु संसाधनों के अनुपात में समानता और कीमतों में समानता से बहुत दूर चला गया है। अंतरराष्ट्रीय समानता तो दूर की बात है, इसने देश के विभिन्न क्षेत्रों में संसाधनों और उनकी कीमतों में समानता भी स्थापित नहीं की है। वास्तविकता यह है कि अंतर्राष्ट्रीय व्यापार ने आय के अंतर्राष्ट्रीय वितरण में असमानता ला दी है।

3. दोहरी अर्थव्यवस्थाओं का निर्माण : अंतर्राष्ट्रीय व्यापार में लिप्त होने के बाद, कई पिछड़े देशों में दोहरी अर्थव्यवस्थाओं का निर्माण हुआ है। जबकि आयात क्षेत्र 'विकास का द्वीप' बन गया है, बाकी अर्थव्यवस्था पिछड़ी रह गई है, आयात क्षेत्र के

आसपास निर्वाह अर्थव्यवस्था का गठन किया गया है। उत्पादन के तरीके पूंजी गहन हैं और विकसित आयात क्षेत्रों में उत्पादन कारक निश्चित है, जबकि पिछड़े क्षेत्रों में उत्पादन श्रम प्रधान है और उत्पादन के साधनों का उसी अनुपात में उपयोग नहीं किया जाता है। विदेशी पूंजी का उपयोग देश के प्राकृतिक संसाधनों के दोहन के लिए किया जाता है, केवल आयात के लिए जिसमें देश के लोगों को पर्याप्त रोजगार नहीं मिलता है और लोगों को पिछड़े क्षेत्रों में ही रोजगार की तलाश करनी पड़ती है।

4. लंबे समय में व्यापार की शर्तों की प्रतिकूल प्रकृति : अक्सर यह कहा जाता है कि अंतर्राष्ट्रीय शक्तियों ने ऐसी असंतुलित स्थिति पैदा की है जिसके परिणामस्वरूप गरीब देशों में लंबी अवधि के लिए व्यापार की प्रतिकूल शर्तें हैं और उनकी आय अमीर देशों में जाती है। यदि औद्योगीकृत देश और अविकसित देश का उत्पादन करने वाले प्राथमिक उत्पाद के बीच निरंतर व्यापार होता है, तो माल व्यापार की शर्तें हमेशा औद्योगिक देशों के पक्ष में होती हैं। जहाँ तक चक्रीय गति के संदर्भ में व्यापार का संबंध है, उनका प्रभाव अर्ध–सममितीय अवरोध विकासशील देशों के प्रतिकूल है।

5. बनावटी प्रदर्शन का प्रभाव : अंतर्राष्ट्रीय प्रदर्शन प्रभाव के कारण भी, गरीब देशों के विकास में बाधाएँ आती हैं। अंतर्राष्ट्रीय प्रदर्शन प्रभाव का अर्थ है कि अविकसित देश विकसित देशों की उपभोक्तावादी संस्कृति का पालन करते हैं जिसके परिणामस्वरूप विदेशी आयात में वृद्धि होती है। आयात, यानी पूंजी का पलायन होता है और गरीब देशों में पूंजी का संचय कम हो जाता है। इसका कारण यह है कि प्रदर्शन प्रभाव के कारण अविकसित देशों के लोगों में विदेशी वस्तुओं और विलासिता के उत्पादों की लालसा जागृत होती है और इसलिए विदेशी वस्तुओं के आयात में वृद्धि होती है और विदेशी प्रतिबद्धताओं में वृद्धि होती है जिसका आर्थिक विकास पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ता है।

6. विकसित देशों में बढ़ती प्रतिस्पर्धा का विकास पर प्रतिकूल प्रभाव : जब अल्पविकसित देश अंतर्राष्ट्रीय व्यापार में प्रवेश करते हैं तो उन्हें कई समस्याओं का सामना करना पड़ता है जिनमें विदेशी प्रतिस्पर्धा महत्वपूर्ण होती है। यदि ये देश अपना निर्यात बढ़ाना चाहते हैं तो उन्हें विदेशी वस्तुओं से प्रतिस्पर्धा करनी होगी, क्योंकि विदेशी वस्तुएँ उच्च गुणवत्ता की होती हैं, उच्च तकनीक के कारण और उनकी कीमतें भी कम हैं। इसलिए, अविकसित देश उनके खिलाफ खड़े होने में असमर्थ हैं और इस प्रकार अंतरराष्ट्रीय बाजार पर अपना दावा करने में असमर्थ हैं। यह समस्या आज और विकट हो गई है क्योंकि आजकल विकसित देशों ने भी प्राथमिक वस्तुओं का निर्माण शुरू कर दिया है और यदि ये गरीब देश प्रतिस्पर्धा करने में सक्षम हैं तो उन्हें आवश्यक उपकरणों और मशीनों का निर्यात बंद कर दिया जाता है। उदाहरण के लिए कुछ समय पहले अमेरिका ने भारत को यूरेनियम का निर्यात बंद करने की धमकी दी थी।

निर्भर सिद्धांत को गरीब देशों में गरीबी को समझने की एक विधि के रूप में देखा गया। पारंपरिक नव–शैक्षणिक दृष्टिकोण हमेशा इस बात पर जोर देता है कि गरीब देशों में मजबूत आर्थिक उपायों के महत्व को समझने में देरी होती है और इसलिए वे आधुनिक अर्थशास्त्र की तकनीकों को अपनाने में जल्दी नहीं होते हैं।

टिप्पणी

निर्भर सिद्धांत को एक अंतरराष्ट्रीय प्रणाली के रूप में समझाया गया है। उन्नत औद्योगीकृत राष्ट्र आर्थिक सहयोग और विकास के मामले में बहुत आगे हैं। काफी हद तक एक अवधारणा है कि आर्थिक और राजनीतिक शक्ति ज्यादातर औद्योगिक केंद्रों में केंद्रीकृत है। यदि यह अवधारणा मान्य है तो आर्थिक और राजनीतिक शक्ति के बीच का अंतर वास्तविक नहीं है। सभी आश्रित सिद्धांतवादी इस तथ्य को स्वीकार करते हैं कि निर्भरता और साम्राज्यवाद के बीच अंतर होना चाहिए। साम्राज्यवाद के अंतर्गत क्षेत्रीय विस्तार पर जोर दिया जाता है, जबकि आश्रित सिद्धांत अविकसितता के सिद्धांत को सामने लाता है।

केंद्र परिधि

आश्रित सिद्धांतकारों का मानना है कि यह सिद्धांत संप्रभु देशों में कई आर्थिक गतिविधियों की संभावना बनाता है। आश्रित सिद्धांत की निम्नलिखित केंद्र परिधि उल्लेखनीय हैं–

1. अविकसितता मूल गैर–विकास से भिन्न है। गैर–विकास के अंतर्गत संसाधनों के गैर–उपयोग का संदर्भ उल्लेखनीय है। उदाहरण के लिए, उत्तरी अमेरिकी महाद्वीप में यूरोपीय उपनिवेशों में अविकसित क्षेत्रों पर कोई ध्यान नहीं दिया गया। अल्पविकास एक ऐसी स्थिति है जिसमें संसाधनों का सक्रिय उपयोग होता है लेकिन इसके पर्याप्त परिणाम सामने नहीं आते हैं।
2. अविकसित और गैर–विकास के बीच अंतर के लिए एक ऐतिहासिक संदर्भ है। वे गरीब हैं क्योंकि वे कच्चे माल और श्रम के रूप में यूरोपीय देशों में उत्पादन के लिए अपनी सेवाएँ प्रदान करते हैं।
3. आश्रित सिद्धांत कहता है कि संसाधनों का वैकल्पिक उपयोग होना चाहिए।
4. आश्रित सिद्धांत की अवधारणा यह है कि केवल एक समाज में गरीबों की जरूरतों को पूरा करने के बजाय कंपनी या सरकार की जरूरतों को पूरा करके राष्ट्रीय हित को पूरा किया जा सकता है।

असमान विनिमय

असमान विनिमय का सिद्धांत तुलनात्मक लाभ के भोले सिद्धांत की प्रतिक्रिया है। यह तुलनात्मक लाभ सिद्धांत में अंतर्निहित शोषण की एक मार्क्सवादी धारणा प्रदान करता है।

असमान विनिमय के सिद्धांत के विकास ने कई दिशाओं का अनुसरण किया है। सबसे पहले, लैटिन अमेरिका में पूंजीवाद और अविकसितता (1967) में आंद्रे गुंडर फ्रैंक सहित कुछ लेखकों ने तर्क दिया कि तुलनात्मक लाभ एक प्राकृतिक बंदोबस्ती नहीं है बल्कि, यह राष्ट्रों के शोषण के माध्यम से ऐतिहासिक शक्ति संबंधों द्वारा बनाया गया है।

दूसरा, कुछ शोधकर्ताओं ने व्यापार की वितरण संबंधी असमानताओं की जाँच की। इस प्रकार, प्रीबिश–सिंगर थीसिस से पता चलता है कि विकासशील देशों के खिलाफ व्यापार की शर्तें काम करती हैं। निर्भरता सिद्धांत के इस सुप्रसिद्ध मुद्दे को 1950 के दशक (घोष 2001) में व्यवस्थित रूप से विकसित किया गया था।

तीसरा, श्रम की प्रतिबंधित गतिशीलता और पूंजी की पूर्ण गतिशीलता की मान्यताओं के आधार पर, अर्घिरी इमैनुएल (1969) ने औपचारिक रूप से असमान विनिमय के सिद्धांत को विकसित किया। उन्होंने तर्क दिया कि पूर्ण प्रतिस्पर्धा की स्थिति में, विकसित और विकासशील देशों के बीच व्यापार में बाद के देशों से अधिशेष का हस्तांतरण शामिल होता है। विकसित देशों (डीसी) और कम विकसित देशों (एलडीसी) में समान उत्पादकता की स्थिति में, लेकिन एलडीसी में कम मजदूरी, एलडीसी के कम कीमत वाले उत्पादों के लिए डीसी के उच्च कीमत वाले उत्पादों का आदान–प्रदान किया जाता है। इसलिए, विनिमय असमान है। इमैनुएल ने नोट किया कि चूंकि मजदूरी संस्थागत रूप से निर्धारित होती है, इसलिए वे मॉडल के लिए बहिर्जात हैं। हालांकि, डीसी में, मजदूरी बढ़ाने में ट्रेड यूनियनों की महत्वपूर्ण भूमिका होती है। लेकिन एलडीसी में ऐसा नहीं है। असमान विनिमय की प्रक्रिया में, कम पूंजी तीव्रता वाले देश (अक्सर एक विकासशील देश) से उत्पादन में उच्च पूंजी तीव्रता वाले देश में मूल्य का हस्तांतरण होता है (जैसा कि एक विशिष्ट विकसित देश में)।

इमैनुएल, एक इतालवी मार्क्सवादी, ने मूल्य में परिवर्तन के मार्क्सवादी सिद्धांत का उपयोग यह दिखाने के लिए किया है कि एलडीसी अपने माल को अपने मूल्य से कम कीमतों पर बेचने और डीसी से अपने मूल्य से अधिक कीमतों पर सामान खरीदने के लिए मजबूर हैं। इस प्रक्रिया में, उन्नत देश उत्पादन में उत्पन्न होने वाले श्रम समय से अधिक उपयुक्त होते हैं। दूसरे शब्दों में, डीसी एलडीसी से कम कीमतों पर वस्तुएँ प्राप्त कर सकते हैं, जो उनके अपने देशों में उपलब्ध होती। विनिमय की इस प्रक्रिया में, एलडीसी हारे हुए के रूप में और डीसी लाभार्थी के रूप में खड़े होते हैं।

इमैनुएल के विश्लेषण की पॉल सैमुएलसन सहित कई विद्वानों ने कड़ी आलोचना की है, जिन्होंने यह प्रदर्शित करने की कोशिश की कि इमैनुएल द्वारा विकसित तर्क बेमानी है। सैमुएलसन के अनुसार, इमैनुएल ने केवल परिसंचरण क्षेत्र पर ध्यान केंद्रित किया और कोर और परिधीय देशों के बीच उत्पादकता अंतर को पहचानने में विफल रहे। इमैनुएल की इस आधार पर भी आलोचना की जाती है कि उन्होंने मजदूरी को एक बहिर्जात चर के रूप में माना।

समीर अमीन (1970) ने मजदूरी को अंतर्जात चर के रूप में मानते हुए असमान विनिमय का एक नया संस्करण प्रस्तुत किया, और उन्होंने दिखाया कि असमान विनिमय ने पूंजीवादी देशों को मुनाफे की रक्षा करने की अनुमति दी। उनके लिए, एलडीसी में विदेशी पूंजी के प्रभुत्व का अर्थ विकृत निर्यात गतिविधि और तृतीयक क्षेत्र की अतिवृद्धि है। इस प्रकार परिधीय देश मुख्य देशों से भारी कर्ज लेते हैं, अनिवार्य रूप से उन पर निर्भर हो जाते हैं, और विश्व पूंजीवादी व्यवस्था से जुड़ जाते हैं।

नई विश्व व्यवस्था में, बड़े पैमाने पर शक्तिशाली बहुराष्ट्रीय कंपनियों द्वारा छोटे किसानों और गरीब श्रमिकों की परवाह किए बिना व्यापार का आयोजन किया जाता है। एलडीसी में पर्यावरण और मानवाधिकारों को नुकसान के मामले में व्यापार की सामाजिक लागत बहुत अधिक है। तुलनात्मक लाभ के आधार पर व्यापार की स्थिति में भी, व्यापार से लाभ समान रूप से वितरित नहीं किया जाता है। एलडीसी और डीसी

टिप्पणी

के बीच कई संरचनात्मक अंतरों के कारण, कारक मूल्य समानता संभव नहीं है। नीचे की ओर दौड़ और श्रम बाजारों के अनौपचारिकीकरण (घोष और गुवेन 2006) के कारण एलडीसी में घरेलू मजदूरी गिर रही है। उच्च मजदूरी के माध्यम से उत्पादकता लाभ का लाभ व्यापार के माध्यम से एलडीसी को कभी नहीं मिला है। देशों के इन दो समूहों के बीच असमान प्रतिस्पर्धा और असमान सौदेबाजी की शक्तियाँ असमान विनिमय के सिद्धांत को अभी भी प्रासंगिक बनाती हैं।

पूंजीवाद के एक आवश्यक पहलू के रूप में, असमान विकास की प्रक्रिया के अंतर्गत पूंजीवाद के मुख्य अंतर्विरोधों की व्याख्या है– जैसे पूंजी का संकेंद्रण, गरीबी और पीड़ा के साथ। असमान विकास वर्गों के संदर्भ में क्षेत्रों, भौगोलिक प्रक्रियाओं और वैश्विक, क्षेत्रीय, राष्ट्रीय, उप–राष्ट्रीय और स्थानीय स्तर और विकास के स्तर से संबंधित है। श्रम विभाजन के सार्वभौम उदय में, असमान विकास की भौतिक गतियाँ तुल्यकारक और पूँजी के बीच के अंतर में निहित हैं।

1970 के दशक के दौरान, असमान और संयुक्त विकास की घटना को उत्पादन विधियों की सटीकता की प्रक्रिया के रूप में समझा गया था। उत्पादन की पूंजीवादी व्यवस्था अधिशेष श्रम पर आधारित है। असमान विकास विभिन्न क्षेत्रों में राजनीति और संस्कृति के माध्यम से राजनीतिक अर्थव्यवस्था को प्रभावित करता है।

विश्व–प्रणाली

विश्व–प्रणाली सिद्धांत एक मैक्रोसामाजिक परिप्रेक्ष्य है जो ''पूंजीवादी विश्व अर्थव्यवस्था'' की गतिशीलता को ''कुल सामाजिक व्यवस्था'' के रूप में समझाने का प्रयास करता है। इसकी पहली प्रमुख अभिव्यक्ति, और इस दृष्टिकोण का उत्कृष्ट उदाहरण, इमैनुएल वालरस्टीन से जुड़ा है, जिन्होंने 1974 में प्रकाशित किया था, जिसे एक मौलिक पत्र माना जाता है, द राइज एंड फ्यूचर डेमिस ऑफ द वर्ल्ड कैपिटलिस्ट सिस्टम : कॉन्सेप्ट्स फॉर कम्पेरेटिव एनालिसिस 1976 में वालरस्टीन ने द मॉडर्न वर्ल्ड सिस्टम : कैपिटलिस्ट एग्रीकल्चर एंड द ओरिजिन्स ऑफ द यूरोपियन वर्ल्ड–इकोनॉमी इन द सिक्सटीन्थ सेंचुरी प्रकाशित किया। यह सामाजिक और ऐतिहासिक विचारों में वालरस्टीन का ऐतिहासिक योगदान है और इसने कई प्रतिक्रियाओं को जन्म दिया, और कई अन्य लोगों को अपने विचारों पर निर्माण करने के लिए प्रेरित किया।

विश्व–प्रणाली सिद्धांत के तीन प्रमुख बौद्धिक निर्माण खंड हैं, जैसा कि वालरस्टीन द्वारा परिकल्पित किया गया है– एनल्स स्कूल, मार्क्स और निर्भरता सिद्धांत। ये बिल्डिंग ब्लॉक वालरस्टीन के जीवन के अनुभव और विभिन्न मुद्दों, सिद्धांतों और स्थितियों के संपर्क से जुड़े हैं।

विश्व–व्यवस्था सिद्धांत का श्रेय एनाल्स स्कूल को जाता है, जिसका प्रमुख प्रतिनिधि फर्नांड ब्रूडेल है, इसका ऐतिहासिक दृष्टिकोण वालरस्टीन को ब्रूडेल के दीर्घावधि (ला लॉन्ग्यू ड्यूरे) पर उनके आग्रह से मिला। उन्होंने विश्लेषण की इकाइयों के रूप में भू–पारिस्थितिक क्षेत्रों पर ध्यान केंद्रित करना सीखा (ब्रूडेल के भूमध्यसागरीय

के बारे में सोचें), ग्रामीण इतिहास पर ध्यान दें, और ब्रूडेल से अनुभवजन्य सामग्रियों पर निर्भरता। एनाल्स का प्रभाव सामान्य कार्यप्रणाली स्तर पर है।

मार्क्स से, वालरस्टीन ने सीखा कि (1) भौतिक रूप से आधारित मानव समूहों के बीच सामाजिक संघर्ष की मौलिक वास्तविकता, (2) एक प्रासंगिक समग्रता के साथ चिंता, (3) सामाजिक रूपों की अस्थायी प्रकृति और उनके बारे में सिद्धांत, (4) केंद्रीयता संचय प्रक्रिया और इसके परिणामस्वरूप होने वाले प्रतिस्पर्धी वर्ग संघर्षों, (5) संघर्ष और अंतर्विरोध के माध्यम से गति की एक द्वंद्वात्मक भावना। वालरस्टीन की महत्वाकांक्षा मार्क्सवाद को ही संशोधित करने की रही है।

विश्व–व्यवस्था सिद्धांत कई मायनों में निर्भरता सिद्धांत का अनुकूलन है (चिरोट और हॉल, 1982)। वालरस्टीन निर्भरता सिद्धांत, विकास प्रक्रियाओं की एक नव–मार्क्सवादी व्याख्या, विकासशील दुनिया में लोकप्रिय, और जिनके आंकड़ों में फर्नांडो हेनरिक कार्डोसो, एक ब्राजीलियन हैं, से बहुत अधिक आकर्षित हैं। निर्भरता सिद्धांत कोर–परिधि संबंधों को देखकर ''परिधि'' को समझने पर केंद्रित है, और यह लैटिन अमेरिका जैसे परिधीय क्षेत्रों में फला–फूला है। यह निर्भरता सिद्धांत के नजरिए से है कि वैश्विक पूंजीवाद के लिए कई समकालीन आलोचनाएँ आती हैं।

वालरस्टीन कार्ल पोलानी और जोसेफ शुम्पीटर के काम में अन्य महत्वपूर्ण प्रभाव है जो अभी भी समकालीन विश्व प्रणाली अनुसंधान में मौजूद है,। उत्तरार्द्ध से व्यापार चक्रों में विश्व व्यवस्था की रुचि आती है, और पूर्व से, आर्थिक संगठन के तीन बुनियादी तरीकों की धारणा– पारस्परिक, पुनर्वितरण और बाजार मोड। ये वालरस्टीन का मिनी–सिस्टम, विश्व–साम्राज्य और विश्व–अर्थव्यवस्था की अवधारणाओं के अनुरूप है।

विश्व–व्यवस्था क्या है?

वालरस्टीन के अनुसार, ''एक विश्व–व्यवस्था एक सामाजिक व्यवस्था है, जिसकी सीमाएँ, संरचनाएँ, सदस्य समूह, वैधता के नियम और सुसंगतता है। इसका जीवन परस्पर विरोधी ताकतों से बना है जो इसे तनाव के साथ रखती हैं और इसे अलग करती हैं। प्रत्येक समूह अपने लाभ के लिए इसे हमेशा के लिए बदलना चाहता है। इसमें एक जीव की विशेषताएँ हैं, इसमें एक जीवन काल है जिस पर इसकी विशेषताएँ कुछ मामलों में बदलती हैं और दूसरों में स्थिर रहती हैं ... इसके भीतर जीवन काफी हद तक आत्मनिर्भर है, और इसके विकास की गतिशीलता काफी हद तक आंतरिक है'' (वालरस्टीन, पृष्ठ 347)। एक विश्व–व्यवस्था वह है जिसे वॉलरस्टीन एक ''विश्व अर्थव्यवस्था'' कहते हैं, जो एक राजनीतिक केंद्र के बजाय बाजार के माध्यम से एकीकृत होती है, जिसमें दो या दो से अधिक क्षेत्र भोजन, ईंधन और सुरक्षा जैसी आवश्यकताओं के संबंध में अन्योन्याश्रित होते हैं, और दो या दो से अधिक राजनीति के लिए प्रतिस्पर्धा करते हैं। एक एकल केंद्र के उद्‌भव के बिना वर्चस्व हमेशा के लिए (गोल्डफ्रैंक, 2000)।

अपनी पहली परिभाषा में, वालरस्टीन (1974) ने कहा, "एक विश्व–व्यवस्था श्रम का एक बहुसांस्कृतिक क्षेत्रीय विभाजन है जिसमें उत्पादन और विनिमय और बुनियादी

टिप्पणी

सामान और कच्चे माल अपने निवासियों के रोजमर्रा के जीवन के लिए आवश्यक है।'' श्रम का यह विभाजन समग्र रूप से विश्व अर्थव्यवस्था के उत्पादन की शक्तियों और संबंधों को संदर्भित करता है और दो अन्योन्याश्रित क्षेत्रों के अस्तित्व की ओर ले जाता है– कोर और परिधि। ये भौगोलिक और सांस्कृतिक रूप से भिन्न हैं, एक श्रम–गहन पर केंद्रित है, और दूसरा पूंजी–गहन उत्पादन पर है। (गोल्डफ्रैंक, 2000)। कोर–परिधि संबंध संरचनात्मक है। अर्ध–परिधीय राज्य कोर और परिधि के बीच एक बफर जोन के रूप में कार्य करते हैं, और उन पर मौजूद गतिविधियों और संस्थानों के प्रकार का मिश्रण होता है (स्कोकपोल, 1977)।

वर्तमान विश्व–व्यवस्था की सबसे महत्वपूर्ण संरचनाओं में कोर और परिधि के बीच एक शक्ति पदानुक्रम है, जिसमें शक्तिशाली और धनी ''कोर'' समाज कमजोर और गरीब परिधीय समाजों पर हावी होते हैं और उनका शोषण करते हैं। कोर या परिधि में किसी क्षेत्र की स्थिति में प्रौद्योगिकी एक केंद्रीय कारक है। उन्नत या विकसित देश कोर हैं, और कम विकसित देश परिधि में हैं। परिधीय देश एक प्रकार के विकास का अनुभव करने के लिए संरचनात्मक रूप से विवश हैं जो उनकी अधीनस्थ स्थिति (चेस–डन एंड ग्रिम्स, 1995) को पुनः पेश करता है। सिस्टम के भीतर कई राज्यों की अंतर शक्ति प्रणाली को समग्र रूप से बनाए रखना महत्वपूर्ण है, क्योंकि मजबूत राज्य कोर जोन (स्कोकपोल, 1977) में अधिशेष के अंतर प्रवाह को सुदृढ़ और बढ़ाना है। इसे वॉलरस्टीन ने असमान विनिमय कहा, परिधि में अर्ध–सर्वहारा क्षेत्रों से उच्च–प्रौद्योगिकी, औद्योगिक कोर (गोल्डफ्रैंक, 2000) में अधिशेष का व्यवस्थित हस्तांतरण है। यह वैश्विक स्तर पर पूंजी संचय की प्रक्रिया की ओर ले जाता है, और इसमें आवश्यक रूप से परिधीय अधिशेष का विनियोग और परिवर्तन शामिल है।

विश्व–व्यवस्था के राजनीतिक पक्ष पर कुछ अवधारणाएँ प्रकाश डालती हैं। वालरस्टीन के लिए, राष्ट्र–राज्य चर हैं, प्रणाली के भीतर तत्व हैं। कोर देशों के मामले में राज्यों का इस्तेमाल वर्गीय ताकतों द्वारा अपने हितों को आगे बढ़ाने के लिए किया जाता है। साम्राज्यवाद का तात्पर्य मजबूत कोर राज्यों द्वारा कमजोर परिधीय क्षेत्रों के वर्चस्व से है। आधिपत्य का तात्पर्य एक प्रमुख राज्य के अस्तित्व से है जो अस्थायी रूप से बाकी को पछाड़ देता है। आधिपत्य शक्तियाँ शक्ति का एक स्थिर संतुलन बनाए रखती हैं और जब तक यह उनके लाभ के लिए है, मुक्त व्यापार को लागू करती हैं। हालाँकि, वर्ग संघर्ष और तकनीकी लाभों के प्रसार के कारण आधिपत्य अस्थायी है। अंत में, एक वैश्विक वर्ग संघर्ष है।

वर्तमान विश्व–अर्थव्यवस्था नियमित चक्रीय लय की विशेषता है, जो वालरस्टीन की आधुनिक इतिहास की अवधि (गोल्डफ्रैंक, 2000) का आधार प्रदान करती है। हमारे वर्तमान चरण के बाद, वालरस्टीन एक समाजवादी विश्व–सरकार के उद्भव की कल्पना करता है, जो एकमात्र वैकल्पिक विश्व–प्रणाली है जो उच्च स्तर की उत्पादकता बनाए रख सकती है और राजनीतिक और आर्थिक निर्णय लेने के स्तरों को एकीकृत करके वितरण को बदल सकती है।

अपनी प्रगति जांचिए

3. यह किसका कथन है कि आमतौर पर 'फैशनेबल' को आधुनिकीकरण के अर्थ के रूप में लिया जाता है?

   (क) लेवी का (ख) लर्नर का

   (ग) डॉ. योगेंद्र सिंह का (घ) श्री निवास का

4. विकास के सिद्धांत को लैटिन अमेरिकी अर्थशास्त्री राउल प्रीबिश ने किस दशक में विकसित किया था?

   (क) 1910 के दशक में (ख) 1820 के दशक में

   (ग) 1930 के दशक में (घ) 1950 के दशक में

3.4 अपनी प्रगति जांचिए प्रश्नों के उत्तर

1. (ख)
2. (क)
3. (ग)
4. (घ)

3.5 सारांश

सामाजिक पारिस्थितिकी के अनुसार, सामाजिक जीवन और पारिस्थितिकी के बीच पर्याप्त घनिष्ठ संबंध है। भूमि की बदलती ऊँचाई के साथ जानवरों और पौधों के विकास का तरीका बदलता है। इसी तरह, शहर का जीवन उतार–चढ़ाव और केंद्र से निकटता या दूरियों के साथ बदलता है।

मनुष्यों को प्रभावित करने वाली पारिस्थितिकी आंतरिक और बाहरी दोनों हो सकती है। जनसंख्या, भौगोलिक परिस्थितियाँ, क्षेत्रीय परिस्थितियाँ आदि को बाह्य पारिस्थितिकी में शामिल किया जा सकता है और विचारों, भावनाओं, मूल्यों, परंपराओं, संस्कारों आदि को आंतरिक पारिस्थितिकी में शामिल किया जा सकता है। लेकिन इस संदर्भ में यह ध्यान देने योग्य है कि मनुष्य और पारिस्थितिकी के बीच का संबंध एकतरफा संबंध नहीं है। सच्चाई यह है कि कभी मानव अपनी पारिस्थितिकी से प्रभावित होता है और कभी वह स्वयं उन पारिस्थितिकी को प्रभावित और परिवर्तित करता है। पूर्ण पारिस्थितिकी के अंतर्गत भौगोलिक पारिस्थितिकी, आनुवंशिकता और सामाजिक विरासत पर जोर दिया जाता है।

यूरोपीय ज्ञानोदय की जड़ों के साथ, 19वीं शताब्दी में पश्चिम, में उदारवाद का विकास हुआ। वर्तमान समय में, उदारवाद को व्यापक रूप से सबसे प्रभावशाली आधुनिक राजनीतिक विचारधाराओं में से एक माना जाती है। इस शब्द का प्रयोग सबसे पहले स्पेनिश, फ्रेंच और अंग्रेजी लेखकों ने नकारात्मक अर्थ के साथ किया था।

कट्टरपंथी या प्रगतिशील राय वाले लोगों को संदर्शित करने के लिए इसका आक्रामक रूप से उपयोग' किया जाता था। इसने जल्द ही अपना नकारात्मक अर्थ खो 'दिया और एक 'सम्मानजनक राजनीतिक लेबल बन गया। ज्यादातर लोग अब' ''उदारवादी'' कहलाना पसंद करेंगे, जिसका अर्थ है, ''खुले दिमाग वाला'', ''उदार और सहिष्णु होना'', ''जनता की भलाई के लिए अपनों स्वार्थ का त्याग करने के लिए तैयार'', ''हर मुद्दे पर हर एक से संपर्क करने के लिए चिंतित'' निष्पक्ष और तर्कसंगत दृष्टिकोण'', और ''पूर्वाग्रह और अंधविश्वास से कम से कम प्रभावित नहीं''। ऐसे लोग सत्तावादी कानूनों और प्रथाओं का विरोध करते हैं जो विशेष रूप से सामाजिक समूहों को नकसान की स्थिति में पाते हैं। उदार दृष्टिकोण वाले लोग अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता, ध ारना और विरोध के अधिकार, महिलाओं, समलैंगिकों, कैदियों, शरणार्थियों और सभी सीमांत समुदायों के अधिकारों का समर्थन करते हैं।

जर्मन समाजशास्त्री कार्ल मार्क्स ने सामाजिक परिवर्तन का आर्थिक सिद्धांत प्रस्तावित किया था। उनका कहना है कि सभी सामाजिक परिवर्तनों का मुख्य कारक और चालक आर्थिक कारण है और सभी परिवर्तन इसके परिणाम हैं। इसीलिए मार्क्स के इस सिद्धांत को आर्थिक नियतत्ववाद भी कहा जाता है। उन्होंने वर्ग संघर्ष के माध्यम से परिवर्तन की व्याख्या की और इसलिए उनके सामाजिक परिवर्तन के सिद्धांत को 'वर्ग–संघर्ष सिद्धांत' भी कहा जाता है।

मार्क्स द्वारा अध्ययन की क्रमिक शृंखला के निरंतर आधार संक्षेप में इस प्रकार दिए गए हैं– मनुष्य सामाजिक उत्पादन में प्रवेश करता है, जो वह करता है, एक निश्चित प्रकार के संबंध के तहत, वे अपरिहार्य हैं और उसकी इच्छाओं से स्वतंत्र हैं, ये उत्पादन आधारित संबंध एक निश्चित उत्पादन माल की शक्ति के विकास की प्रणाली से संबंधित हैं। इन उत्पादन सम्बन्धों का योग समाज के आर्थिक ढांचे का निर्माण करता है और यही वास्तविक नींव है, जिस पर कानूनी और राजनीतिक ढाँचे का निर्माण होता है और इसके आधार पर सामाजिक चेतना विकसित होती है। भौतिकवादी जीवन में, उत्पादन के तरीके सामाजिक, राजनीतिक और आध्यात्मिक जीवन की प्रक्रियाओं का निर्माण करते हैं। यह मानव चेतना नहीं है जो उसके अस्तित्व को तय करती है, बल्कि इसके विपरीत सामाजिक अस्तित्व उनकी चेतना को तय करता है।

विचारकों ने पारंपरिक समाजों में बदलाव या पश्चिमी समाजों में आए बदलावों को समझने के लिए आधुनिकीकरण को जन्म दिया जो औद्योगीकरण के कारण आए और दोनों के बीच के अंतर को व्यक्त किया। जब पश्चिमी विचारक उपनिवेशों और विकासशील देशों में हो रहे परिवर्तनों पर चर्चा करते हैं, तो वे आधुनिकीकरण की अवधारणा का समर्थन लेते हैं।

कुछ लोगों ने आधुनिकीकरण को 'प्रक्रिया' माना है, जबकि कुछ ने इसे 'उत्पाद' माना है। ईसेनस्टेड ने इसे एक प्रक्रिया के रूप में माना है और लिखा है, ''ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्य से, आधुनिकीकरण सामाजिक, आर्थिक और राजनीतिक व्यवस्था में परिवर्तन की दिशा में एक ऐसी प्रक्रिया है, जो सत्रहवीं और उन्नीसवीं सदियों के दौरान पश्चिमी यूरोप और उत्तरी अमेरिका में और दक्षिण अमेरिका, एशियाई और अफ्रीकी देशों में बीसवीं सदी के दौरान विकसित हुई।'' श्रीनिवास के अनुसार आधुनिकीकरण की

प्रक्रिया किसी एक दिशा में परिवर्तन प्रदर्शित नहीं करती बल्कि यह एक बहुआयामी प्रक्रिया है। इसके अतिरिक्त, यह एक निश्चित प्रकार के मूल्यों के लिए बाध्य नहीं है। हालांकि यह मूल्य–मुक्त है, लेकिन कभी–कभी इसका अर्थ सामान्य अच्छे और वांछित परिवर्तनों के संदर्भ में लिया जाता है। उदाहरण के लिए जब कोई कहता है कि सामाजिक, आर्थिक और धार्मिक संस्थाओं का आधुनिकीकरण हो रहा है तो उसका उद्देश्य आलोचना करना नहीं बल्कि सकारात्मक बातें करना होता है।

3.6 मुख्य शब्दावली

- **मानव** : मनुष्य, इनसान।
- **घनिष्ठ** : गहरा, पक्का।
- **अनुमान** : अंदाजा, आकलन।
- **मलिन** : मैला, धूमिल।
- **आवागमन** : आना–जाना।
- **प्रयास** : कोशिश, प्रयत्न
- **नीति** : योजना।
- **व्याप्त** : फैली/फैला।

3.7 स्व–मूल्यांकन प्रश्न एवं अभ्यास

लघु–उत्तरीय प्रश्न

1. जे.एफ. क्यूबर ने पारिस्थितिकी की क्या परिभाषा दी है?
2. यदि शहर के केंद्र को एक बिंदु मानकर पारिस्थितिकी की सीमाएं खींची जाएं तो शहर को किस प्रकार विभाजित किया जा सकता है?
3. डॉ. श्रीनिवास ने आधुनिकीकरण के किन तीन मुख्य क्षेत्रों का उल्लेख किया है?
4. आश्रित सिद्धांत की उल्लेखनीय केंद्र परिधि क्या हैं?
5. असमान विनिमय से आप क्या समझते हैं?

दीर्घ–उत्तरीय प्रश्न

1. शहर के जीवन को प्रभावित करने वाले पारिस्थितिकी से संबंधित तत्वों की विवेचना कीजिए।
2. विकास के परिप्रेक्ष्य में मार्क्सवादी सिद्धांत की व्याख्या कीजिए।
3. कार्ल मार्क्स के सामाजिक परिवर्तन के सिद्धांत का आलोचनात्मक मूल्यांकन कीजिए।
4. परिभाषा और अर्थ बताते हुए आधुनिकीकरण का विश्लेषण कीजिए।
5. विश्व–प्रणाली सिद्धांत की समीक्षा कीजिए।

3.8 सहायक पाठ्य सामग्री

जे.पी. सिंह, *समाजशास्त्र : अवधारणाएं एवं सिद्धांत*, पीएचआई लर्निंग प्रा. लि., दिल्ली, 2013.

जे.पी. सिंह, *आधुनिक भारत में सामाजिक परिवर्तन*, पीएचआई लर्निंग प्रा. लि., दिल्ली, 2016.

श्यामाचरण दुबे, *विकास का समाजशास्त्र*, दिवि पब्लिशर्स, 1996.

डॉ. पूरन चंद्र जोशी, *परिवर्तन और विकास के सांस्कृतिक आयाम*, राजकमल प्रकाशन, 1999.

धीरूभाई शेठ, *सत्ता और समाज*, सं. : अभय कुमार दुबे, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, 2009.

सच्चिदानंद सिन्हा, *भूमंडलीकरण की चुनौतियां*, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली.

साक्षात्कार, अंक 385–390, मध्य प्रदेश शासन साहित्य परिषद, भोपाल, 2012.

इकाई 4 विकास के मार्ग एवं साधन

टिप्पणी

संरचना

4.0 परिचय
4.1 उद्देश्य
4.2 विकास के विभिन्न आयाम
- 4.2.1 पूंजीवादी
- 4.2.2 समाजवादी
- 4.2.3 मिश्रित अर्थव्यवस्था
- 4.2.4 गाँधीवादी
- 4.2.5 राज्य
- 4.2.6 बाजार
- 4.2.7 गैर सरकारी संगठन (एनजीओ)

4.3 सामाजिक संरचना और विकास
- 4.3.1 एक सहायक/अवरोधक के रूप में संरचना
- 4.3.2 विकास और सामाजिक–आर्थिक विषमताएं
- 4.3.3 लिंग और विकास
- 4.3.4 संस्कृति और विकास
- 4.3.5 परंपरा का विकास और विस्थापन
- 4.3.6 जातीयता का विकास और उत्थान

4.4 अपनी प्रगति जांचिए प्रश्नों के उत्तर
4.5 सारांश
4.6 मुख्य शब्दावली
4.7 स्व–मूल्यांकन प्रश्न एवं अभ्यास
4.8 सहायक पाठ्य सामग्री

4.0 परिचय

भारत की द्वितीय पंचवर्षीय योजना में नियोजित विकास का उद्देश्य, समाजवादी समाज की स्थापना बताया गया था। इसका मतलब था कि उत्पादन और विकास के रूप को निर्धारित करने के लिए, निजी लाभ के बजाय सामाजिक लाभ को आधार बनाया जाएगा। लेकिन इन सबके बावजूद, भारत में आर्थिक नियोजन ने अर्थव्यवस्था के एक ऐसे रूप का विकास किया है जो किसी भी दृष्टि से समाजवादी नहीं है। बैंकों का राष्ट्रीयकरण, सार्वजनिक क्षेत्र में कई उद्योगों की स्थापना और ऐसे कई कदम यह भ्रम दे सकते हैं कि अर्थव्यवस्था समाजवाद की ओर बढ़ रही है। लेकिन सामाजिक–आर्थिक संबंधों में ऐसा कुछ भी नहीं हुआ था जिससे यह निष्कर्ष निकाला जा सके कि भारतीय अर्थव्यवस्था का पूँजीवादी रूप समाजवादी रूप की ओर बदल रहा है। इसमें कोई संदेह नहीं है कि भारतीय अर्थव्यवस्था का आकार अठारहवीं सदी के यूरोप की पूँजीवादी अर्थव्यवस्थाओं से बिल्कुल अलग है।

प्रस्तुत इकाई में विकास से संबंधित विभिन्न मार्गों तथा विकास के विभिन्न साधनों का विस्तारपूर्वक अध्ययन किया गया है।

टिप्पणी

4.1 उद्देश्य

इस इकाई को पढ़ने के बाद आप–

- विकास के मार्गों का विवेचन कर पाएंगे;
- विकास के विभिन्न साधनों का विश्लेषण कर पाएंगे;
- पूंजीवाद एवं समाजवाद की व्याख्या कर पाएंगे;
- मिश्रित अर्थव्यवस्था का ज्ञान अर्जित कर पाएंगे;
- गांधीवादी विचारधारा के अंतर्गत विकास की दिशा के बारे में ज्ञान प्राप्त कर पाएंगे।

4.2 विकास के विभिन्न आयाम

जिस क्षण समाज ने औद्योगीकरण के युग में प्रवेश किया, आर्थिक संस्थाओं और आर्थिक संरचना के रूपों में परिवर्तन आ गया था। औद्योगीकरण के परिणामस्वरूप बड़े पैमाने पर काम होने लगा, श्रम विभाजन और विशेषज्ञता सबसे आगे आई। मिलों, कारखानों आदि की स्थापना के लिए पूँजी की आवश्यकता उत्पन्न होने लगी और जिनके पास पूँजी थी वे उत्पादन के विकसित साधनों जैसे मिलें, कारखाने आदि के मालिक बन गए। इन लोगों को पूँजीवादी के रूप में जाना जाने लगा और परिणामस्वरूप, पूँजीवाद ने जन्म लिया।

4.2.1 पूंजीवादी

पूँजीवाद एक अर्थव्यवस्था है। औद्योगिक युग द्वारा उत्पादित समाज दो स्पष्ट वर्गों में विभाजित है, अर्थात पूँजीपति वर्ग और मजदूर वर्ग। पूँजीपति वर्ग संसाधन संपन्न है और मजदूर वर्ग में संसाधनों की कमी है। श्रमिक अपना श्रम बेचकर अपनी आजीविका कमाते हैं।

आर्थिक संस्थान और पूँजीवाद की आर्थिक संरचना

कई आर्थिक संस्थान हैं जो पूँजीवादी अर्थव्यवस्था को स्पष्ट करते हैं–

(1) **निजी संपत्ति** : निजी संपत्ति की संस्था पूँजीवाद का एक महत्वपूर्ण प्राथमिक आधार है। पूँजीवाद में, निजी संपत्ति को राज्य द्वारा मान्यता दी जाती है और संपत्ति और पूँजी सामाजिक स्थिति, प्रतिष्ठा आदि के एकमात्र मानदंड हैं।

(2) **बड़े पैमाने पर उत्पादन** : मिलों और कारखानों में बड़ी मशीनों द्वारा उत्पादन तेज गति से होता है; मजदूर अलग–अलग पारियों में दिन–रात काम करते हैं। इतने बड़े पैमाने पर उत्पादन से न केवल स्थानीय आवश्यकताओं की पूर्ति होती है बल्कि अन्य देशों की आवश्यकताओं के लिए भी वस्तुओं का उत्पादन किया जाता है।

(3) **संगठित वाणिज्यिक संगठन** : बड़े पैमाने पर उत्पादन के माध्यम से, बड़े वाणिज्यिक संगठन भी बनते हैं और वे देश और विदेश में निर्मित वस्तुओं का

व्यापार करते हैं। इस प्रकार, ये वाणिज्यिक संगठन एक शहर से राज्य, राज्य से देश और देश से पूरी दुनिया में वाणिज्यिक संबंधों को प्रभावित और नियमित करते हैं।

टिप्पणी

(4) **श्रम और विशेषज्ञता का विभाजन** : श्रम विभाजन और विशेषज्ञता की संस्थाएँ पूँजीवाद में अंतर्निहित हैं और उनका विशेष रूप स्पष्ट हो जाता है। अधिक उत्पादन से अधिकतम लाभ केवल श्रम विभाजन और विशेषज्ञता के विकसित रूप से ही अर्जित किया जा सकता है।

(5) **प्रतिस्पर्धा** : प्रतिस्पर्धा पूँजीवाद की कम महत्वपूर्ण संस्था नहीं है। वाणिज्य के संगठित चरण के कारण, विभिन्न वाणिज्यिक क्षेत्रों के बीच प्रतिस्पर्धा एक सामान्य बात है। इस प्रतियोगिता का श्रमिकों पर कभी–कभी बुरा प्रभाव पड़ता है मंदी के दौरान उन्हें बेरोजगार रहना पड़ता है।

(6) **बैंकिंग संस्थान** : बैंकिंग संस्थान पूँजीवाद की मुख्य जड़ें हैं। वाणिज्य के सभी कार्य बैंकों के माध्यम से होते हैं। इस प्रकार, वाणिज्य के क्षेत्र में राहत और सेवाओं की भावना प्रदान की जाती है। बैंक साख के आधार पर भी वाणिज्य की निरंतरता बनाए रखते हैं।

(7) **बड़ा निगम** : पूँजीवादी अर्थव्यवस्था में बड़े निगम बनते हैं जिनमें कई पूँजीपति अपनी क्षमता के अनुसार पूँजी लगाते हैं और व्यापार के क्षेत्र में एकाधिकार या अधिकतम सफलता प्राप्त करते हैं। इस प्रकार, बड़े निगम विभिन्न देशों में फैले हुए हैं।

(8) **नकद मजदूरी प्रणाली** : नकद मजदूरी प्रणाली पूँजीवाद का एक उपहार है जिसके माध्यम से श्रमिकों को नकद के रूप में श्रम की कीमत का भुगतान किया जाता है। पूँजीपति इस नकद मजदूरी प्रणाली का लाभ उठाते हैं और श्रमिकों को न्यूनतम संभव धन का भुगतान करते हैं और उनसे अधिकतम काम लेते हैं। यह श्रमिकों के शोषण की प्रणाली है।

(9) **वर्ग संघर्ष** : मार्क्स ने वर्ग–संघर्ष को पूँजीवाद की मुख्य संस्था के रूप में माना है। उनके अनुसार पूँजीवाद में वर्ग–संघर्ष का नकारात्मक रूप देखा जा सकता है जिसमें मजदूरों का शोषण देखा जाता है और उनकी हालत काफी खराब हो जाती है।

(10) **श्रम और नियोक्ता संघ** : पूँजीवादी अर्थव्यवस्था में, श्रम और नियोक्ताओं के संगठित संघ बनते हैं। वे इन यूनियनों के माध्यम से अपने हितों की सुरक्षा की व्यवस्था करते हैं। भारतीय समाज में भी ऐसे कई संगठन और संघ हैं।

(11) **अनुबंध प्रणाली** : अनुबंध प्रणाली के अंतर्गत, कई आर्थिक गतिविधियों को कम समय में और कम पैसे में प्रबंधित किया जा सकता है। इसके माध्यम से अधिक मुनाफा कमाया जा सकता है।

(12) **बिचौलियों की संस्था** : बिचौलियों की संस्था के माध्यम से, खरीदारों और विक्रेताओं के बीच एक व्यवस्थित तालमेल स्थापित किया जा सकता है, क्योंकि व्यापार में नियमितीकरण उनके बिना नहीं लाया जा सकता है।

टिप्पणी

इस प्रकार स्पष्ट है कि आधुनिक समय में आर्थिक संरचना का स्वरूप पूँजीवादी अर्थव्यवस्था द्वारा निर्मित व्यवस्था पर निर्भर करता है। ये विभिन्न संस्थाएं अपने टाइपोलॉजिकल संबंधों के आधार पर अपनी आर्थिक संरचना बनाती हैं। इस प्रकार आर्थिक संरचना का मुख्य रूप वर्ग–संघर्ष, प्रतिस्पर्धा आदि के रूप में देखा जाता है।

पूँजीवाद के सामाजिक परिणाम

भारतीय समाज में पूँजीवाद के मुख्य परिणाम निम्नलिखित हैं–

(1) वर्ग संघर्ष का अंतिम रूप : मजदूर का श्रम पूँजीवाद में खरीदा जाता है और मजबूरी में मजदूर अपना श्रम पूँजीपतियों को बेचते हैं और पूँजीपति उस मजबूरी का अधिकतम लाभ उठाते हैं। इस प्रकार दोनों वर्गों में परस्पर संघर्ष की स्थिति बनी रहती है; जो स्वस्थ सामाजिक व्यवस्था के लिए अनुकूल नहीं है।

(2) श्रमिक की स्थिति बद से बदतर : श्रमिक की स्थिति बद से बदतर हो जाती है क्योंकि उसकी शारीरिक जरूरतें पूरी नहीं होती हैं।

(3) जीवन स्तर में वृद्धि : धन कमाने के अधिक अवसरों की उपलब्धता के कारण लोगों की आर्थिक व्यवस्था बदल जाती है और परिणामस्वरूप, जीवन स्तर में वृद्धि होती है।

(4) महिलाओं की आर्थिक स्वतंत्रता : पूँजीवादी व्यवस्था में; आर्थिक क्षेत्र में पुरुषों की तरह महिलाएं भी एक साथ काम करती हैं। परिणामस्वरूप, वे आर्थिक जीवन में आत्म–निर्भरता और स्वतंत्रता प्राप्त करती हैं।

(5) कुटीर उद्योगों का पतन : पूँजीवादी अर्थव्यवस्था में मशीनों द्वारा बड़े पैमाने पर उत्पादन के खिलाफ, कुटीर उद्योगों के लिए मजबूती से खड़ा रहना संभव नहीं है। भारत में भी छोटे उद्यम नष्ट हो रहे हैं।

(6) आर्थिक संकट : बड़े पैमाने पर उत्पादन के कारण व्यापार में आर्थिक मंदी और उतार–चढ़ाव की लहरें आती हैं। आर्थिक मंदी के दौरान श्रमिक बेरोजगार हो जाते हैं और परिणामस्वरूप आर्थिक संकट जैसी स्थिति पैदा हो जाती है।

(7) हड़ताल और तालाबंदी : पूँजीवाद में कई समस्याएं पैदा होती हैं और परिणामस्वरूप हड़ताल और तालाबंदी आम हो जाती है।

(8) बेरोजगारी : पूँजीवाद एक तरफ अमीर बनने के कई अवसर प्रदान करता है; लेकिन यह उन्नत मशीनों के आगमन के कारण बेरोजगारी भी बढ़ाता है। इस प्रकार, यह एक स्वस्थ सामाजिक जीवन के लिए एक गैर–प्रवाहकीय स्थिति है।

(9) मलिन बस्तियों का विकास : पूँजीवाद के कारण औद्योगिक शहरों में जनसंख्या में तेजी से वृद्धि हो रही है। श्रमिकों के लिए आवास की भारी कमी है। मुंबई की चॉल, कोलकाता की बस्ती और चेन्नई की चेरी, ऐसे क्षेत्र हैं जहाँ श्रमिक रहते हैं; ये मानव समाज के जीवित नर्क हैं।

(10) सामाजिक संरचना में परिवर्तन : पूँजीवाद का अंतिम और मुख्य परिणाम सामाजिक संरचना में परिवर्तन है। पूँजीवाद द्वारा उत्पादित सामाजिक संरचना पर नई स्थितियों का प्रभाव स्वाभाविक है।

टिप्पणी

4.2.2 समाजवादी

आधुनिक अर्थव्यवस्था का एक अन्य मुख्य प्रकार समाजवाद है। समाजवाद का जन्म पूँजीवाद और निजी संपत्ति की बुराइयों के विरोध के रूप में हुआ था। समाजवाद के तत्व प्राचीन और मध्य युग के विचारकों के लेखन में भी पाए जाते हैं जैसे प्लेटो, सेंट साइमन, थॉमस मूर आदि लेकिन वर्तमान समय में समाजवाद पर वैज्ञानिक विचार व्यक्त करने वाले प्रमुख हैं कार्ल मार्क्स। विभिन्न विचारकों ने समाजवाद को परिभाषित किया है।

ब्रैडली के अनुसार, समाजवाद निजी संपत्ति को खारिज करता है और मानता है कि राष्ट्र के रूप में संगठित समाज को सभी संपत्तियों का मालिक होना चाहिए और इसे सभी के श्रम से संचालित करना चाहिए और पूरे उत्पादन के समान वितरण को लागू करना चाहिए।

सेलर्स के अनुसार, समाजवाद एक लोकतांत्रिक अवधारणा है जिसका उद्देश्य समाज में एक ऐसी आर्थिक व्यवस्था लाना है जो हर समय व्यक्तियों को अधिकतम संभव न्याय और स्वतंत्रता प्रदान कर सके।

उपरोक्त परिभाषाओं से हमें समाजवाद के उन मूलभूत तत्वों के बारे में पता चलता है जिन पर सभी समाजवादी सहमत हैं। ये तत्व हैं– (i) निजी संपत्ति का अंत, (ii) उत्पादन और वितरण के साधनों पर समाज का नियंत्रण, (iii) शोषण का अंत और (iv) वर्ग अंतर का अंत।

समाजवाद के लक्षण

(1) समाजवाद में, व्यक्ति और व्यक्ति के हितों की तुलना में समाज और सामुदायिक हित को अधिक महत्व दिया जाता है।

(2) समाजवादी चाहते हैं कि उत्पादन और संचार के साधनों पर समाज या राष्ट्र का नियंत्रण हो।

(3) समाजवाद प्रतिस्पर्धा और संघर्ष के बजाय सहयोग पर अधिक जोर देता है।

(4) समाजवाद में शोषण के अंत पर जोर दिया जाता है;

(5) समाजवाद व्यक्तिगत लाभ के बजाय समुदाय के लाभ पर अधिक जोर देता है।

(6) समाजवाद अमीर और गरीब के बीच की खाई को भरकर आर्थिक समानता लाना और असमानता को समाप्त करना चाहता है।

(7) समाजवाद देश में धन का न्यायोचित वितरण चाहता है।

समाजवाद के प्रकार

आज समाजवाद के अनेक रूप देखे जा सकते हैं। हर देश ने अपनी सुविधा के अनुसार इसमें बदलाव किए हैं; और समाजवाद की अपनी व्याख्या दी है। उनमें से कुछ की यहाँ संक्षेप में चर्चा की जा रही है।

टिप्पणी

(1) सहकारी समाजवाद : इस प्रकार के समाजवाद में श्रमिक अपनी सहकारी समितियाँ बनाकर उद्योगों का संचालन करते हैं। वे खुद मालिक और मजदूर हैं। इस प्रकार का समाजवाद स्कैंडिनेविया में पाया जाता है।

(2) राज्य समाजवाद : इसमें राज्य को बुरा नहीं माना जाता है बल्कि वितरण की सर्वोत्तम व्यवस्था करने वाली संस्था के रूप में माना जाता है। इसमें उत्पादन के साधनों का राष्ट्रीयकरण किया जाता है उन्हें एक कल्याणकारी संस्था के रूप में माना जाता है, और व्यक्ति को राज्य के एक हिस्से के रूप में स्वीकार किया जाता है।

(3) फैबियनवाद : फैबियनवाद में समाजवाद को लोकतांत्रिक माध्यमों से धीमी गति से लाने में विश्वास करते हैं। वे क्रांति और रक्तपात में विश्वास नहीं करते। फैबियनवाद का लक्ष्य पूरे समाज को उद्योग और भूमि से लाभ प्रदान करना है।

(4) लोकतांत्रिक समाजवाद : इसे विकासात्मक समाजवाद के रूप में भी जाना जाता है। यह प्रणाली भारत में अपनाई गई है। यह पूँजीवाद के स्थान पर समाजवाद की स्थापना के लिए बल प्रयोग और हिंसा को अन्यायपूर्ण मानता है।

(5) सिंडिकलवाद : सिंडिकलवाद को परिभाषित करते हुए, ह्यूवर लिखते हैं। सिंडिकलवाद का अर्थ वर्तमान युग में उन क्रांतिकारी सिद्धांतों और कार्यक्रमों से है जो पूँजीवाद को समाप्त करने और समाजवादी समाज की स्थापना के लिए औद्योगिक संघ की आर्थिक शक्तियों का उपयोग करना चाहते हैं।"

(6) गिल्ड समाजवाद : गिल्ड समाजवाद पूँजीपतियों के खिलाफ है। वे समुदाय और व्यक्ति की स्वतंत्रता पर जोर देते हैं और उद्योगों में स्वायत्तता चाहते हैं। वे उत्पादन प्रबंधन पर राज्य का नियंत्रण नहीं चाहते हैं।

4.2.3 मिश्रित अर्थव्यवस्था

भारतीय अर्थव्यवस्था मिश्रित अर्थव्यवस्था है। भारतीय अर्थव्यवस्था में दो तथ्य अर्थात सार्वजनिक क्षेत्र का विस्तार और आर्थिक नियोजन इस प्रकार है कि यह अर्थव्यवस्था उस पूँजीवादी अर्थव्यवस्था से भिन्न हो जाती है जिसे पश्चिमी अर्थव्यवस्थाओं के विकास के प्रारंभिक चरणों के दौरान देखा गया था। भारतीय अर्थव्यवस्था में सार्वजनिक क्षेत्र और आर्थिक नियोजन की, वास्तव में उपस्थिति के कारण इस अर्थव्यवस्था को मिश्रित अर्थव्यवस्था कहा जाता है। अब हम अर्थव्यवस्था की उन सभी विशेषताओं की चर्चा करेंगे जिनके कारण इसे मिश्रित अर्थव्यवस्था कहा जाता है।

(1) लाभ प्रेरित वस्तु उत्पादन : भारत में उत्पादन मुख्य रूप से बिक्री के लिए किया जाता है। उत्पादन के मोटे तौर पर दो क्षेत्र हैं। पहला क्षेत्र औद्योगिक क्षेत्र है और दूसरा कृषि क्षेत्र है। औद्योगिक क्षेत्र में सभी कारखाने जो बड़े पैमाने पर उत्पादन कर रहे हैं, बिक्री के उद्देश्य से ऐसा कर रहे हैं। छोटी–छोटी फैक्ट्रियों में भी बिजली से चलने वाली मशीनों की मदद से बिक्री के उद्देश्य से उत्पादन किया जाता है। कृषि क्षेत्र में, खाद्यान्न उत्पादन का एक बड़ा हिस्सा निश्चित रूप से बिक्री के उद्देश्य से नहीं है। अधिकांश किसान जिनके पास जमीन के छोटे टुकड़े हैं, वे बिक्री के लिए कृषि उत्पादों

टिप्पणी

का उत्पादन नहीं करते हैं। हालांकि, बड़े किसान अपनी उपज का एक बड़ा हिस्सा बाजार में बेचते हैं। संक्षेप में, भारत में न केवल औद्योगिक क्षेत्र में बल्कि कृषि क्षेत्र में भी वस्तु का उत्पादन बड़े पैमाने पर होता है।

(2) **उत्पादन के साधनों का निजी स्वामित्व** : कुछ बुनियादी उद्योगों को छोड़कर, सभी उद्योग भारत में निजी क्षेत्र में हैं। आवश्यक वस्तुओं का उत्पादन करने वाले कारखाने जैसे सूती वस्त्र, जूट, कागज, सीमेंट, चीनी, वनस्पति तेल, चमड़ा, साबुन, माचिस आदि निजी क्षेत्र में हैं। खेती के लिए इस्तेमाल की जाने वाली जमीन भी निजी स्वामित्व में है। उत्पादन के साधनों पर निजी स्वामित्व और व्यक्तिगत लाभ के लिए उनके उपयोग की स्वतंत्रता इस बात का प्रमाण है कि उत्पादन संबंध मौलिक रूप से पूँजीवादी हैं। लेकिन जमींदारी उन्मूलन कानून के लागू होने के बावजूद कई क्षेत्रों में जमींदारों की अच्छी खासी संख्या है। कई जमींदार और बड़े किसान खेत मजदूरों की मदद से खेती करते हैं। असल में औद्योगिक क्षेत्र के विपरीत, कृषि क्षेत्र में पूर्ण पूँजीवाद नहीं है।

(3) **जनशक्ति का एक वस्तु में परिवर्तन** : भारत में उद्योगों का बड़े पैमाने पर विकास पिछले 125 वर्षों के दौरान हुआ है। इससे पहले, शहरी और ग्रामीण कारीगर छोटे पैमाने पर विभिन्न वस्तुओं का उत्पादन करते थे। आमतौर पर कारीगरों के पास अपने उपकरण होते थे। वे कच्चा माल खरीदते थे, या शहरों के व्यापारियों से उधार पर लेते थे। इस प्रकार, वे जो कुछ भी करते थे अपने श्रम से उत्पादन करते थे, उनका उन पर कोई स्वामित्व नहीं था। उन दिनों, जनशक्ति को वस्तु के रूप में खरीदा या बेचा नहीं जा रहा था।

(4) **सार्वजनिक क्षेत्र** : भारतीय अर्थव्यवस्था में सार्वजनिक क्षेत्र का महत्वपूर्ण स्थान है। 1951 में जब भारत में आर्थिक नियोजन शुरू हुआ, तब औद्योगिक क्षेत्र में सिर्फ 5 इकाइयाँ थीं और उनमें नियोजित कुल पूँजी सिर्फ 29 करोड़ थी। उसकी तुलना में, 1988 में सार्वजनिक क्षेत्र में 221 औद्योगिक इकाइयाँ थीं जिसमें कुल 58,125 करोड़ की पूँजी लगी हुई थी। इसके अलावा, सरकार में विभिन्न विभागीय उपक्रमों में भी पूँजी लगाई जाती थी। राज्य सरकारों के उद्योगों में भी काफी पूँजी निवेश की जाती है। बैंकों और अन्य वित्तीय संगठनों में भी भारी निवेश है। संक्षेप में, भारत के आज के आर्थिक ढांचे में सार्वजनिक क्षेत्र का महत्वपूर्ण स्थान है।

(5) **आर्थिक नियोजन** : आर्थिक नियोजन भारतीय अर्थव्यवस्था की एक महत्वपूर्ण विशेषता है। चूंकि आर्थिक नियोजन को सबसे पहले रूस में अपनाया गया था जो एक समाजवादी देश था और सभी समाजवादी देशों में उसके बाद निश्चित योजनाओं के अनुसार अर्थव्यवस्था को संचालित किया गया है, इसलिए बहुत से लोग आर्थिक नियोजन और समाजवाद को एक ही बात मानने की गलती करते हैं। इसमें कोई संदेह नहीं है कि समाजवादी अर्थव्यवस्था में आर्थिक नियोजन की उपस्थिति आवश्यक है, लेकिन चूंकि

टिप्पणी

किसी देश ने आर्थिक नियोजन को अपनाया है, इसलिए यह आवश्यक नहीं है कि उसकी अर्थव्यवस्था समाजवादी अर्थव्यवस्था हो। कोई भी देश मूल रूप से पूँजीवादी अर्थव्यवस्था में आर्थिक नियोजन को अपना सकता है। इस संदर्भ में यह ध्यान देने योग्य है कि पूँजीवादी और समाजवादी देशों में नियोजन प्रणाली और योजनाओं में बड़ा अंतर है। भारत के कुछ बड़े उद्योगपतियों ने 1944 में आर्थिक विकास के लिए कागज पर योजना तैयार की थी। इसे बॉम्बे प्लान के नाम से जाना जाता है। हालांकि, बॉम्बे योजना लागू नहीं की गई थी लेकिन इसने स्वतंत्रता के बाद की आर्थिक योजना को निश्चित रूप से प्रभावित किया था।

(6) बाजार तंत्र द्वारा आर्थिक गतिविधियों की दिशा : भारतीय अर्थव्यवस्था में बाजार तंत्र काफी प्रभावशाली है। इस देश में, उत्पादन तकनीक आम तौर पर बाजार में उत्पादन के साधनों की कीमतों से निर्धारित होती है। भारत में मुद्रा बाजार में विभिन्न प्रकार के वित्तीय संस्थान हैं। यद्यपि देश के सभी बड़े बैंकों का राष्ट्रीयकरण कर दिया गया था, लेकिन उनके काम करने के तरीके निजी क्षेत्र में उत्पादकों के साथ उनके व्यापारिक संबंधों और बाजार तंत्र के नियमों से निर्धारित होते हैं।

आइए इन सभी विशेषताओं को लेकर भारतीय अर्थव्यवस्था के स्वरूप का निर्धारण करें। इस देश में, अधिकांश उत्पादनों ने वस्तु उत्पादन (बाजार में बिक्री के उद्देश्य से उत्पादन) का रूप ले लिया है। उत्पादन के साधनों पर आमतौर पर पूँजीपतियों का स्वामित्व होता है जो अपने निजी फायदे के लिए इनका इस्तेमाल करते हैं। इस देश में अन्य वस्तुओं की तरह जनशक्ति को खरीदा और बेचा जा रहा है। पूँजीपति वर्ग नए उद्योग स्थापित करने और पुरानी औद्योगिक इकाइयों के विस्तार में लगा हुआ है, शायद उस पूंजी का निवेश करके जो मजदूर वर्ग का शोषण करके जमा की गयी हो। भारत में आर्थिक नियोजन का स्वरूप समाजवादी कतई नहीं है। इस देश में आर्थिक नियोजन को पूँजीवादी ढाँचे में ही अपनाया गया है। बैटलहेम और कई अन्य अर्थशास्त्रियों ने भारत में आर्थिक नियोजन और सरकारी नियंत्रण के महत्व से सहमति व्यक्त की है और इसकी अर्थव्यवस्था को राज्य की अर्थव्यवस्था कहा है। लेकिन भारत सरकार और कई भारतीय और पश्चिमी अर्थशास्त्री इसे मिश्रित अर्थव्यवस्था कहना पसंद करते हैं।

भारत में मिश्रित अर्थव्यवस्था को निम्नलिखित कारणों से समर्थन मिला–

1. भारत का पूँजीपति वर्ग विदेशी पूँजी पर विभिन्न आयात प्रतिबंधों की मांग करता रहता है ताकि वह विदेशी पूँजी की प्रतिस्पर्धा से बच सके।
2. स्वतंत्रता के समय बचत दर राष्ट्रीय आय का 5% थी। पूँजी निर्माण की यह दर प्रति व्यक्ति आय को बनाए रखने के लिए पर्याप्त नहीं थी। यदि राष्ट्रीय आय में 5% और प्रति व्यक्ति आय में लगभग 3% की वृद्धि का लक्ष्य होना है तो बचत और निवेश की दर राष्ट्रीय आय की लगभग 20% होनी चाहिए। पूँजी के ऐसे स्तरों का उद्देश्य सरकार के प्रयासों के कारण भारत में गठन संभव नहीं हो पाता।

टिप्पणी

3. देश में विकास कार्यों के साधन सीमित मात्रा में हैं। उनका विवेकपूर्ण उपयोग किया जाना चाहिए। मुक्त उद्यम अर्थव्यवस्था में साधनों का उचित विवेकपूर्ण उपयोग नहीं होता है। इसलिए सरकार ने उद्योगों की स्थापना और विकास को लाइसेंस प्रणाली और अन्य नियंत्रणों के माध्यम से नियमित किया है।
4. आर्थिक विकास की गति को अधिकतम रखा जा सकता है, इसके लिए मूल्य नियंत्रण, मजदूरी नियंत्रण, विदेश व्यापार नियमन, विदेशी व्यापार विनिमय नियमन, राशन द्वारा आवश्यक वस्तुओं का समान वितरण करना आवश्यक हो जाता है।

उपरोक्त सभी कारणों ने देश में मिश्रित अर्थव्यवस्था के विकास को भारी समर्थन दिया।

4.2.4 गाँधीवादी

गाँधी जी ने सत्य और अहिंसा के सिद्धांतों के आधार पर मानवता को समाज के पुनर्निर्माण का एक नया मार्ग दिखाया था। वास्तव में, गाँधी जी एक शुद्ध राजनीतिक विचारक नहीं थे, बल्कि एक सच्चे कर्मयोगी थे। वह आधुनिक भारत के निर्माता थे और भारतीय उन्हें राष्ट्रपिता या बापू के रूप में याद करते हैं। उन्होंने महान आध्यात्मिक और नैतिक उद्देश्य को प्राप्त करने के लिए राजनीति को अपनाया। उन्होंने अपनी आत्मकथा 'माई एक्सपेरिमेंट्स विद ट्रुथ, 1929' में अपने जीवन के अनुभवों को पूरी सच्चाई के साथ व्यक्त किया है। उनके विचार कई पुस्तकों, लेखों, भाषणों आदि के रूप में चारों ओर फैले हुए हैं। उन्होंने स्वयं कोई वाद नहीं दिया था, और स्वयं स्वीकार किया था कि गाँधीवाद के नाम से किसी भी अवधारणा का कोई अस्तित्व नहीं है। बहरहाल, राजनीतिक चिंतन के क्षेत्र में गाँधी जी के प्रमुख सिद्धांतों के समूह को गाँधीवाद के रूप में मान्यता प्राप्त है।

विकास की दिशा

गाँधी जी ऐसी किसी भी अवधारणा के खिलाफ थे जिसका उद्देश्य भौतिकवादी इच्छाओं को बढ़ाना और उन इच्छाओं को पूरा करने के साधनों की खोज करना था। वे मानव चरित्र को इतने उच्च स्तर तक विकसित करना चाहते थे कि वह सभी भौतिकवादी इच्छाओं को मार सके और अपनी अंतरात्मा को नियंत्रित कर सके।

मनुष्य का लक्ष्य अपनी भौतिकवादी जीवन शैली में सुधार करना है, लेकिन मनुष्य की वास्तविक जीवन शैली उसकी आत्मा से निर्धारित होती है बाहरी परिस्थितियों में कोई बदलाव लाकर इसमें सुधार नहीं किया जा सकता है। इसके लिए लोगों को अपने कर्तव्य का ज्ञान देने और उन कर्तव्यों का पालन करने के लिए प्रेरित करने की आवश्यकता है ताकि वे ईश्वर के करीब आ सकें। गाँधी जी ने यह शिक्षा दी थी कि मनुष्य को भौतिक वस्तुओं का उस हद तक उपयोग करना चाहिए जो उसके शरीर को स्वस्थ रखने के लिए आवश्यक हो। इससे अधिक की इच्छा मनुष्य को सांसारिक इच्छाओं और भ्रमों के जाल में फँसाती है। भौतिक इच्छाओं को कभी नहीं बुझाया जा

टिप्पणी

सकता। उन्हें बुझाने का प्रयास उन्हें और उत्तेजित करता है। विभिन्न प्रलोभनों के पीछे भागने से मनुष्य की इच्छा शक्ति नष्ट हो जाती है।

इच्छा को नियंत्रित करके दो उद्देश्य पूरे होते हैं–

1. यह सामाजिक न्याय को मजबूत करता है। इस धरती पर पर्याप्त संसाधन हैं, जो सभी की जरूरतों को पूरा कर सकते हैं, लेकिन किसी की वासना को पूरा करने के लिए पर्याप्त नहीं हैं। जो व्यक्ति संपत्ति और धन का लालची होता है, वह दूसरे के श्रम का फल हड़प लेता है और इस प्रकार प्रकृति और समाज दोनों को नुकसान पहुँचाता है। इसके विपरीत जो व्यक्ति अपनी इच्छाओं पर नियंत्रण रखता है दूसरों को उनकी जरूरतों को पूरा करने में मदद करता है वह इस प्रकार सामाजिक न्याय प्राप्त करने में योगदान देता है। गाँधी जी ने कहा था कि मनुष्य को ऐसी वस्तु का उपयोग नहीं करना चाहिए जो समाज में लाखों लोगों के लिए आसानी से उपलब्ध न हो।
2. इससे स्वयं के नैतिक चरित्र में सुधार होता है। जब कोई व्यक्ति अपनी इच्छाओं को नियंत्रित करता है तो उसकी आत्मा पवित्र हो जाती है। उसकी नजर में मेरा और तुम्हारा का फर्क खत्म हो जाता है। वह अपने प्रति तथा अपने समाज के प्रति उत्तरदायित्वों का ज्ञान प्राप्त करता है। संक्षेप में, गाँधी जी द्वारा दिखाया गया मार्ग मानव स्वभाव और चरित्र को एक नए सांचे में ढालने पर जोर देता है।

वर्गविहीन और राज्यविहीन समाज की अवधारणा

गाँधी जी मूल रूप से एक नैतिक दार्शनिक थे। उन्होंने आधुनिक राज्य की विशेषताओं के बारे में कोई व्यापक विश्लेषण नहीं किया। भारतीयों को सत्य और अहिंसा की शिक्षा देकर उन्होंने यह विचार रखा कि अहिंसक समाज में राज्य के लिए कोई स्थान नहीं होना चाहिए क्योंकि राज्य की शक्ति कानून द्वारा हिंसा और जबरदस्ती पर आधारित है। राज्य व्यक्ति के व्यक्तित्व का दमन करता है और प्रत्येक व्यक्ति को उसी सांचे में ढालने के लिए बाध्य करता है। इसलिए, राज्य की संस्था की कोई आवश्यकता नहीं होगी। दूसरे शब्दों में, गाँधी जी के आदर्श समाज में राजनीतिक सत्ता की कोई आवश्यकता नहीं होगी। इस प्रकार, गाँधी जी एक दार्शनिक अराजकतावादी या शांतिवादी अराजकतावादी हैं जैसे काउंट लियो टॉल्स्टॉय (1828 – 1910)।

अहिंसा के सिद्धांत में यह निहित है कि एक व्यक्ति अपने साथी मनुष्यों को कोई नुकसान नहीं पहुँचाएगा। इसलिए, जब प्रत्येक व्यक्ति का व्यवहार अहिंसा से प्रेरित होगा, तो किसी भी एजेंसी द्वारा बाहरी नियंत्रण की कोई आवश्यकता नहीं होगी। प्रत्येक व्यक्ति उसका अपना शासक होगा (अर्थात् आत्मसंयम से परिपूर्ण) तथा सामाजिक जीवन स्वतः ही इस प्रकार चलेगा कि प्रत्येक व्यक्ति की गतिविधियाँ सामाजिक कल्याण की दिशा में आगे बढ़ेंगी। इस प्रकार, गाँधी जी नैतिक व्यक्तिवाद के समर्थक साबित होते हैं।

टिप्पणी

गाँधी जी के आदर्श समाज में व्यक्ति का धर्म या सामाजिक दायित्व सेवा का रूप धारण कर लेता था। इस प्रकार सभी प्रकार की सेवाओं या श्रम को समान सम्मान की दृष्टि से देखा जाएगा, इसलिए श्रम की गरिमा स्थापित होगी। इस संदर्भ में यह एक वर्गविहीन समाज होगा।

भविष्य के समाज का खाका

रोटी श्रम के सिद्धांत के अंतर्गत, गाँधी जी ने यह सबक दिया है कि प्रत्येक व्यक्ति को पर्याप्त शारीरिक श्रम करके अपने उपयोग की वस्तु के उत्पादन में योगदान देना चाहिए। इससे न केवल लाखों लोगों की जरूरतों को पूरा करने में मदद मिलेगी बल्कि समाज में श्रम की गरिमा को बढ़ाने में भी मदद मिलेगी। उन्होंने सभी प्रकार के कार्यों को समान महत्व दिया और जाति–व्यवस्था पर आधारित ऊँच–नीच के भेदों को दूर करने का प्रयास किया। गाँधी जी ने काम को सभी सामाजिक कार्यक्रमों की कुंजी माना और एक ऐसी अर्थव्यवस्था का समर्थन किया जिसमें भारत की विशाल आबादी को उचित कार्यों में लगाया जा सके। प्रत्येक को अपने श्रम का पर्याप्त फल मिलना चाहिए ताकि वह एक सादा जीवन व्यतीत कर सके और अपने नैतिक जीवन में सुधार कर सके। इसलिए, गांधी जी ने प्रौद्योगिकी गहन उद्योगों की बजाय श्रम प्रधान उद्योगों को प्राथमिकता दी। उन्होंने जनता द्वारा उत्पादन की प्रणाली को बड़े पैमाने पर उत्पादन की प्रणाली से बेहतर होने का दावा किया। उन्होंने कुटीर उद्योगों के विस्तार का विशेष समर्थन किया।

गाँधी जी का दृढ़ विश्वास था कि ग्राम समुदाय धीरे–धीरे लोगों के बीच सौहार्दपूर्ण संबंध स्थापित करेगा; उनमें सामाजिक जिम्मेदारी की भावना को प्रोत्साहित करेगा और नागरिक गुणों को सिखाने के लिए स्कूल की भूमिका निभाएगा। गाँधी जी के अनुसार, प्रशासन का यह प्रारूप कोई पिरामिडनुमा संरचना नहीं होगी जिसमें विभिन्न भागों को उच्च और निम्न श्रेणियों में विभाजित किया जाता है। यह कई गाँवों का एक महासागरीय वृत्त होगा जिसमें सभी भाग एक ही तल पर एक–दूसरे से जुड़े होंगे। व्यक्ति इस महासागरीय चक्र का केंद्र बना रहेगा। वह अत्यंत सज्जन और उदार होगा।

इसमें कोई संदेह नहीं है कि गाँधी जी ने विकास का जो मार्ग दिखाया था, वह भारत की संस्कृति और मूल्य–व्यवस्था के अनुरूप था। लेकिन इस देश को प्रौद्योगिकी–उन्मुख और तनावपूर्ण दुनिया में अपनी सही जगह का दावा करने के लिए एक अलग रास्ता चुनना पड़ा। जो भी हो, उपभोग को नियमित करने और इच्छाओं पर नियंत्रण का संदेश जो गाँधी जी ने दिया था, वह आधुनिक दुनिया में मानवता के भविष्य की रक्षा के लिए पर्यावरणवाद का एक महत्वपूर्ण सिद्धांत बन गया है।

4.2.5 राज्य

एक राजनीतिक समिति के रूप में, राज्य समुदाय की शांति, संगठन और सुरक्षा के लिए जिम्मेदार है। इसके द्वारा किए जा रहे सार्वभौमिक कार्यों के आधार पर कुछ विचारकों ने राज्य को एक संस्था के रूप में माना है। जो भी हो, राज्य राजनीतिक संगठन की एक महत्वपूर्ण और मौलिक संस्था है।

टिप्पणी

राज्य की परिभाषा और अर्थ

गिलिन और गिलिन ने राज्य को परिभाषित करते हुए लिखा है, "राज्य लोगों का एक शक्तिशाली राजनीतिक संगठन है जो एक निश्चित क्षेत्र तक सीमित है।" इस परिभाषा में, राज्य को एक निश्चित भौगोलिक क्षेत्र में सबसे शक्तिशाली संगठन माना गया है।

मॉडर्न स्टेट पुस्तक में मैकाइवर ने आगे स्पष्ट किया है, "राज्य एक प्रकार की समिति है जो कानून और प्रशासन के माध्यम से कार्य करती है और इसके पास एक निश्चित क्षेत्र में सामाजिक व्यवस्था को बनाए रखने की सर्वोच्च शक्तियाँ हैं। एक निश्चित भौतिक क्षेत्र में अन्य सभी संस्थानों पर सर्वोच्च शक्ति का दावा करता है।"

प्रो. लास्की के अनुसार, "राज्य एक क्षेत्रीय समाज है जो सरकार और विषयों में विभाजित है।" राजनीति विज्ञान के प्रसिद्ध विचारक गार्नर ने राज्य को परिभाषित करते हुए लिखा है, "राजनीति विज्ञान और सार्वजनिक कानून की अवधारणा के रूप में, राज्य कई लोगों का एक समुदाय है जो आमतौर पर एक निश्चित क्षेत्र में बसा हुआ है, स्वतंत्र है या लगभग स्वतंत्र, जिसकी अपनी संगठित सरकार है और इस सरकार के लिए निवासियों में स्वतः ही इसके आदेश का पालन करने की भावना है।"

इस प्रकार, गार्नर राज्य को एक ऐसे समुदाय के रूप में मानते हैं जो बाहरी नियंत्रण से मुक्त है और जो सरकार द्वारा संचालित और नियंत्रित है। उपरोक्त परिभाषाओं से स्पष्ट है कि राज्य एक क्षेत्रीय समुदाय है जिसे शक्तिशाली सरकार द्वारा नियमित किया जाता है और बाहरी नियंत्रण से मुक्त होता है।

राज्य के लक्षण या मूल तत्व

उपरोक्त विवरण के संदर्भ में राज्य के मूल तत्वों की निम्नलिखित विशेषताओं की चर्चा की जा सकती है–

(1) **जनसंख्या** : जनसंख्या राज्य का पहला और मुख्य आधार है। जनसंख्या सभी राज्यों में रहती है और जनसंख्या के बिना एक राज्य की कल्पना नहीं की जा सकती है। किसी राज्य की जनसंख्या कितनी होनी चाहिए? इस मुद्दे पर विचारकों में एकमत नहीं है। अरस्तू का कहना है कि कुशल प्रशासन के लिए,जनसंख्या कम हो लेकिन इतनी कम न हो कि आत्मनिर्भर न बन सकें। आज की दुनिया में भूटान जैसे कम आबादी वाले देश सबसे अधिक आबादी वाले देश चीन के साथ सह–अस्तित्व में हैं। वास्तविकता यह है कि किसी भी राज्य की जनसंख्या प्राकृतिक, सामाजिक, आर्थिक आदि स्थितियों पर निर्भर करती है

(2) **निश्चित क्षेत्र** : एक राज्य का एक निश्चित भौतिक क्षेत्र होता है जिस पर राज्य का अधिकार होता है।

(3) **सरकार** : सरकार राज्य के ड्राइविंग और नियमन के लिए है। सरकार के अभाव में राज्य की शक्ति को व्यावहारिक रूप नहीं दिया जा सकता और जनता पर नियंत्रण नहीं रखा जा सकता। हर राज्य में सरकार का स्वरूप एक जैसा नहीं होता। इस प्रकार, किसी भी जटिलता में लिप्त हुए बिना, यह कहा जा सकता है कि राज्य के लिए सरकार की उपस्थिति आवश्यक है।

टिप्पणी

(4) संप्रभुता : संप्रभुता राज्य की एक महत्वपूर्ण विशेषता या तत्व है। गिलिन और गिलिन और प्रो.लास्की ने शायद इसी कारण से राज्य की संप्रभुता को अपनी परिभाषाओं में शामिल किया है। वास्तव में, राज्य अपने नागरिकों को बिना किसी संप्रभुता के नियमों का पालन करने के लिए बाध्य नहीं कर सकता।

(5) स्थायी अस्तित्व : राज्य का एक निश्चित सीमा तक स्थायी अस्तित्व होता है, हालाँकि सरकार बदल सकती है। किसी राज्य के क्षेत्र या जनसंख्या में वृद्धि या कमी के मामले में राज्य के अस्तित्व में कोई बाधा नहीं है।

राज्य के कार्य और शक्तियाँ

इस ब्रह्मांड के निर्माण की शुरुआत में राज्य नामित कोई संगठन नहीं था। जिस व्यक्ति के पास समूहों में अधिक शक्तियाँ और संपत्ति होती थी उसे विशेष दर्जा प्राप्त होता था और वह व्यक्ति मुखिया बनकर समूह के अन्य सदस्यों पर नियंत्रण और नियमन रखता था। धीरे–धीरे ये प्रमुख राजा बन गए और परिणामस्वरूप, एक राजा की संप्रभुता एक निश्चित क्षेत्र से जुड़ी हुई थी और इस तरह राज्य की व्यवस्था शुरू हुई। राजाओं के युग में, राज्य के कर्तव्य सीमित थे और राजा के पास असीमित या ईश्वरीय अधिकार और शक्तियाँ थीं। स्थिति धीरे–धीरे बदल गई, राज्यों का स्वरूप बदल गया, राज्य की अवधारणा बदल गई और परिणामस्वरूप राज्य के कर्तव्य और अधिकार भी बदल गए। आधुनिक युग में राज्य के कर्तव्यों का दायरा अधिक विस्तृत होता जा रहा है। राज्य को अब अपने नागरिकों के पालने से कब्र तक की सुरक्षा के लिए जिम्मेदार माना जाता है। आज, राज्य को अपनी इच्छा से अपने अधिकारों का उपयोग करने की अनुमति नहीं दी जा सकती है; बल्कि उससे अपने नागरिकों के लिए विभिन्न कार्य करने की अपेक्षा की जाती है। वास्तव में हमारे सामने मूल प्रश्न यह है कि समाजशास्त्रीय दृष्टिकोण से राज्य के कार्य क्या होने चाहिए? और राज्य की सापेक्ष सीमाएँ क्या हैं?

राज्य के कार्य

मैकाइवर और पेज ने राज्य के कार्यों को चार भागों में बाँटा है। विभाजन इस प्रकार है–

(1) राज्य के लिए विशिष्ट कार्य।

(2) वे कार्य जिनके लिए राज्य अच्छी तरह से अनुकूलित है।

(3) ऐसे कार्य जिनके लिए राज्य खराब रूप से अनुकूलित है।

(4) ऐसे कार्य जो राज्य करने में असमर्थ है।

आधुनिक राज्य के कार्य

कुछ अन्य विचारकों ने राज्य के कार्यों को दो वर्गों में विभाजित किया है–

(क) राज्य के अनिवार्य कार्य

(1) देश को बाहरी हमलों से बचाना।

टिप्पणी

(2) आंतरिक शांति, सुरक्षा और व्यवस्था बनाए रखना।

(3) नागरिकों के अधिकारों की रक्षा करना।

(4) नागरिकों के लिए मतभेदों के बिना न्याय सुनिश्चित करना।

(5) पारिवारिक अधिकारों और कर्तव्यों को वैध बनाना।

(ख) राज्य के स्वैच्छिक कार्य

(1) शिक्षा की व्यवस्था करना।

(2) स्वास्थ्य और उपचार की देखरेख करना।

(3) असहाय लोगों की रक्षा करना।

(4) संचार और परिवहन के साधनों की व्यवस्था करना।

(5) श्रमिकों को पर्याप्त सुरक्षा प्रदान करना।

(6) प्राकृतिक संसाधनों का उचित उपयोग।

(7) वाणिज्य और उद्योग की व्यवस्था करना।

(8) कृषि में सुधार करना।

(9) मुद्रा की व्यवस्था करना।

(10) पर्याप्त रोजगार की व्यवस्था करना।

(11) सामाजिक बुराइयों को दूर करने के लिए प्रयत्न करना।

(12) सामाजिक सुरक्षा की व्यवस्था करना।

(13) दुनिया के अन्य देशों के साथ राजनीतिक, आर्थिक और सांस्कृतिक संबंध बनाना।

(14) नागरिकों के मौलिक अधिकारों की रक्षा करना।

(15) सामान्य शिक्षा का प्रसार करना।

राज्य के कार्यों और शक्तियों के संबंध में सीमाएँ

समाजशास्त्रीय दृष्टिकोण से राज्य के कार्यों और शक्तियों से संबंधित कुछ सीमाएँ हैं– एक राज्य संगठित रह सकता है और इन सीमाओं का पालन करके व्यवस्था को बनाए रखा जा सकता है। ये सीमाएँ इस प्रकार हैं–

(1) कोई भी राज्य लोगों को मौलिक अधिकारों से वंचित करके या लोगों के मौलिक अधिकारों का अनादर करके संगठित नहीं रह सकता।

(2) राज्य लोगों के बाहरी व्यवहार को नियंत्रित कर सकता है, लेकिन आंतरिक या नैतिक व्यवहार को नियंत्रित नहीं कर सकता।

(3) राज्य सामाजिक परंपराओं और विश्वासों पर अपनी इच्छा से हस्तक्षेप नहीं कर सकता है। इसके लिए राज्य को जनमत का सम्मान करना चाहिए।

(4) एक राज्य दूसरे राज्यों के लोगों के जीवन में हस्तक्षेप नहीं कर सकता है।

टिप्पणी

(5) राज्य स्वैच्छिक संगठनों के कार्यों को ठीक से नहीं कर सकता है। राज्य को कभी भी इस तरह के छोटे और संकीर्ण दायरे पर कब्जा करने की कोशिश नहीं करनी चाहिए।

(6) राज्य अंतरराष्ट्रीय कानूनों की अवहेलना नहीं कर सकता, क्योंकि इससे युद्ध की संभावना पैदा हो सकती है।

उपरोक्त सीमाओं से यह स्पष्ट है कि राज्य सर्वशक्तिमान नहीं है, बल्कि वह राज्य में रहने वाले लोगों पर बाह्य नियंत्रण रखता है और परिणामस्वरूप ऐसी स्थिति में, राज्य व्यक्ति पर पूर्ण अधिकार का दावा नहीं कर सकता है।

विभिन्न सिद्धांतों के अनुसार राज्य के कार्य और शक्तियाँ

राज्य और राज्य नियंत्रण के कार्यों और शक्तियों के संबंध में विचारों की एकरूपता नहीं है। इस सन्दर्भ में विभिन्न विचारकों ने भिन्न–भिन्न प्रकार से अपने–अपने विचार रखे हैं। विभिन्न विचारकों के अलग–अलग विचारों के कारण कई वाद (ism) अस्तित्व में आए हैं। कुछ मुख्य सिद्धांत या वाद इस प्रकार हैं–

(1) व्यक्तिवाद : व्यक्तिवादी विचारक राज्य की तुलना में व्यक्ति को अधिक महत्व देते हैं। वे राज्य को हस्तक्षेप के न्यूनतम अधिकार देने में विश्वास करते हैं।

(2) उपयोगितावाद : इस वाद के अनुसार, राज्य के नियंत्रण का दायरा लाभ या हानि के आधार पर निर्धारित किया जाना चाहिए।

(3) अधिनायकवाद : अधिनायकवादी सिद्धांत राज्य को सामाजिक जीवन पर नियंत्रण का पूर्ण अधिकार देता है।

(4) आदर्शवाद : यह वाद राज्यवार लोगों के जीवन में नैतिक बाधाओं को दूर करने के समर्थन में है। राज्य समाज में सभी बाधाओं को दूर करने के पक्ष में है।

(5) साम्यवाद : साम्यवादी दर्शन राज्य को अधिक अधिकार देने से सहमत नहीं है।

(6) गाँधीवाद : गाँधीवाद राज्य की शक्तियों के अधिक से अधिक विकेंद्रीकरण द्वारा इसे लोगों हेतु सुविधाजनक बनाना चाहता है और पंचायती प्रणाली को विकसित करने के पक्ष में है ताकि गाँवों का सर्वांगीण विकास हो सके और लोगों को पंचायती राज्य या राम राज्य का आनंद प्राप्त हो।

उपरोक्त चर्चाओं से स्पष्ट है कि राज्य के अधिकारों, हस्तक्षेप और कार्यों के बारे में विभिन्न विचारकों में सहमति नहीं है। कुछ विचारक राज्य द्वारा अधिक नियंत्रण और हस्तक्षेप के पक्ष में हैं, जबकि कुछ अन्य राज्य द्वारा कम हस्तक्षेप और नियंत्रण के पक्ष में हैं। इस प्रकार, सामान्य भलाई के दृष्टिकोण से, राज्य लोगों का रक्षक है और लोगों की आकांक्षाओं द्वारा नियंत्रित और सीमित भी है।

4.2.6 बाजार

आधुनिक अर्थव्यवस्था में हमने बाजार की जो भूमिका देखी है, उसकी शुरुआत बहुत पुरानी नहीं है। पूरी दुनिया में इस प्रणाली का संबंध उत्पादन की प्रक्रिया से है। शुरू

टिप्पणी

में बाजार जैसी कोई व्यवस्था नहीं थी। लोग वस्तु विनिमय करते थे जो समुदाय आधारित संबंधों पर आधारित है। कुछ समुदायों के जीवन में एक ऐसी स्थिति भी आई जब आवश्यकता से अधिक वस्तुओं का उत्पादन होने लगा। उस अतिरिक्त उपज को बेचने के लिए बाजार की आवश्यकता महसूस की गई और इस प्रकार बाजार ने समुदाय आधारित या व्यक्तिगत आधारित वस्तु विनिमय की जगह ले ली। इस संदर्भ में, बाजार अर्थव्यवस्था एक ऐसी प्रणाली है जिसमें उत्पादन जो आजीविका के लिए आवश्यक है; बेचा जा सकता था और उपभोग के लिए अन्य सभी सामान बेचा जा सकता था।

बाजार प्रणाली

अर्थशास्त्री बाजार को विनिमय का माध्यम मानते हैं और समाजशास्त्री इसे सामाजिक व्यवस्था के रूप में देखते हैं। बाजार को व्यवस्था इसलिए कहते हैं क्योंकि इसमें क्रेता और विक्रेता दोनों मिलते हैं। इसलिए बाजार विक्रेताओं और खरीदारों के लिए गतिविधि का केंद्र है। वस्तु विनिमय प्रणाली समाप्त हो गई है, और मौद्रिक विनिमय दूरदराज के क्षेत्रों में भी लोकप्रिय हो गया है। वैश्वीकरण, उदारीकरण और विकास कार्यक्रमों के परिणामस्वरूप देश में बाजार का तेजी से विस्तार हुआ है। छोटे बाजार बड़े बाजारों के साथ सहअस्तित्व रखते हैं। बाजारों के भी अपने प्रकार हैं। कुछ बाजार कम आय वाले लोगों के लिए हैं। इन बाजारों में उन चीजों को बेचा और खरीदा जाता है जो निम्न आय वर्ग और निम्न जाति के लोगों से संबंधित हैं। इनसे अधिक विकसित बाजार हैं जहाँ उच्च वर्ग और जाति के लोग अपनी जरूरतों को पूरा करने के लिए आते हैं। दिल्ली का कनॉट सर्कस उच्च वर्ग के लोगों का बाजार है। वहीं चाँदनी चौक का बाजार निम्न वर्ग के लोगों के लिए है। गाँवों में बाजार का प्रकार अलग है। इन बाजारों में कोई विशेषज्ञता नहीं है। एक ही दुकान से खाद और चाय मिल सकती है। वैश्वीकरण ने हमारे देश में बहुराष्ट्रीय कंपनियों की स्थापना की है। इन व्यापारिक संगठनों ने उपभोक्तावाद को एक नई गति दी है। इन संगठनों के कारण ही विदेशी बाजारों का सामान आम लोगों तक पहुँचा है।

सामाजिक परिणाम

हमारे देश में बाजार का विकास कई कारकों से जुड़ा है। यह स्पष्ट है कि बाजार की अवधारणा का अर्थ अत्यंत आधुनिक है। बाजार दो स्थितियों में विकसित होता है। पहला यह कि कृषि उत्पाद परिवार के उपभोग की आवश्यकता से अधिक होना चाहिए और कारीगरों की स्थानीय जरूरतों को पूरा करने के बाद ही अपने माल का बिक्री हेतु उपयोग करना चाहिए। बाजार की दूसरी विशेषता विनिमय है। इस विनिमय के कारण सामान्य आर्थिक व्यवस्था वाले समाजों में भी बाजार का अस्तित्व होता है। वास्तव में आज का बाजार न केवल राष्ट्रीय बाजार है बल्कि अंतरराष्ट्रीय बाजार भी है। सदर बाजार या दिल्ली या मुंबई का बाजार अंतरराष्ट्रीय बाजार के उदाहरण हैं। हम इस तथ्य को दोहराना चाहेंगे कि बाजार न केवल विनिमय के स्थान हैं, बल्कि उनके माध्यम से सांस्कृतिक आदान–प्रदान भी होता है। यह देखा गया है कि बाजार का वर्ग व्यवस्था, धर्म, परिवार, जातीयता आदि से भी गहरा संबंध है।

टिप्पणी

4.2.7 गैर सरकारी संगठन (एनजीओ)

गैर सरकारी संगठन (एनजीओ) ऐसे निकाय हैं जो सरकारी नियंत्रण से मुक्त होकर कार्य करते हैं। इन्हें गैर–लाभकारी सरकारी निकाय कहा जाता है जो समाज के कल्याण के लिए काम करते हैं। वे समाज और सरकार के बीच मध्यस्थ के रूप में कार्य करते हैं। जब कुछ मुद्दे हल नहीं होते हैं या सरकारी गैर सरकारी संगठनों तक नहीं पहुँचते हैं तो इन मुद्दों के बारे में जागरुकता बढ़ाने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं और कुछ मुद्दे जिन्हें जानबूझकर सरकार द्वारा नहीं देखा जाता है तो ये एनजीओ उन मुद्दों के बारे में विचार–कार्य करते हैं। यहाँ वे पीड़ित लोग भाग लेते हैं जो हर व्यक्ति के लिए दुनिया को एक बेहतर जगह बनाना चाहते हैं।

आज के समय में, गैर सरकारी संगठन अत्यंत महत्वपूर्ण भूमिका निभा रहे हैं क्योंकि कई बार हम देखते हैं कि राज्य या सरकारी निकाय उचित रूप से कार्य करने में विफल होते हैं। गैर सरकारी संगठन यानी एनजीओ सरकार से कोई वित्तीय मदद नहीं लेते हैं, ये उन लोगों से वित्त लेते हैं जो समाज के लिए अच्छा करने के इच्छुक हैं। एनजीओ कुछ शर्तों और सिद्धांतों पर काम करते हैं।

इस संस्था में कोई भी व्यक्ति सदस्यता ले सकता है और उसका सदस्य बन सकता है। वे अपनी मर्जी से सदस्यता ले सकते हैं और जब चाहे छोड़ सकते हैं। लेकिन एडविन मासिही का कहना है कि यह हर किसी के लिए हमेशा मुफ्त नहीं होता है।

इन गैर सरकारी संगठनों ने सदस्य बनाने के लिए अपने स्वयं के नियम और पात्रता शर्तें निर्धारित की होती हैं। जो लोग इन बिंदुओं तक पहुँचते हैं, उन्हें सदस्यता मिलती है और पहले से मौजूद सदस्यों की स्वीकृति मिलती है। इसलिए उन्हें स्वैच्छिक कार्य करने वाला निकाय कहा जाता है।

कार्य

गैर सरकारी संगठन का कार्य मानवाधिकार, सामाजिक, पर्यावरण और वकालत से संबंधित सभी मुद्दों पर ध्यान केंद्रित करना है। वे व्यापक पैमाने पर समाज की सामाजिक और राजनीतिक स्थितियों को बढ़ावा देने और सुधारने के लिए काम करते हैं। NGO के कुछ कार्य इस प्रकार हैं–

- मानवाधिकार और बाल अधिकार।
- गरीबी उन्मूलन।
- सामाजिक अन्याय की रोकथाम।
- पर्यावरण का संरक्षण।
- वृद्धों की देखभाल।
- महिला सशक्तिकरण।
- रोग नियंत्रण।
- स्वास्थ्य और पोषण योजना।

टिप्पणी

- स्वच्छता और स्वच्छता की स्थिति।
- शिक्षा योजनाएं और साक्षरता।
- मानवीय आधार पर राहत।
- शरणार्थी संकट।
- वन्यजीवों का संरक्षण।
- पशु अधिकार।

गैर सरकारी संगठन की स्थापना का महत्व

गैर सरकारी संगठन हमारे देश की सामाजिक–आर्थिक स्थिति को विकसित करने तथा प्रगति करने में अपना बड़ा योगदान देते हैं। लेकिन अभी भी कई मुद्दे हैं और लाखों लोग हैं जिन्हें अभी भी अपने अधिकारों को पूरा करने के लिए पहुँच (सहयोग) की आवश्यकता है। गैर सरकारी संगठन के महत्वपूर्ण कार्यों ने नीचे दिए गए क्षेत्रों को सकारात्मक रूप से प्रभावित किया है–

1. सामाजिक न्याय।
2. सतत विकास।
3. गरीबी उन्मूलन।
4. बेहतर सामाजिक–आर्थिक स्थिति।
5. बेहतर साक्षरता दर।

लेकिन आज भी अनियंत्रित आर्थिक असमानता है और लोग अपने जीवन की मूलभूत आवश्यकताओं जैसे स्वास्थ्य, भोजन, कपड़े, घर और शिक्षा को प्राप्त करने के लिए संघर्ष कर रहे हैं। ऐसी स्थिति में एनजीओ मदद और सेवा के लिए सामने आता है। ऐसी परिस्थिति में वे सरकार द्वारा छोड़े गए अंतराल को भरने के लिए अपना काम करते हैं, और हाशिए के समुदायों के जीवन में सुधार के लिए काम करते हैं।

भारतीय संदर्भ में गैर सरकारी संगठन की भूमिका

गैर सरकारी संगठन के कार्य महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं। ये संगठन दुनिया के विभिन्न हिस्सों के लिए योगदान दे रहे हैं और मानवता और अन्य अच्छे कारणों की सेवा में अपना काम कर रहे हैं। यह महत्वपूर्ण है कि गैर सरकारी संगठन के सदस्य शिक्षित, प्रेरित, उत्साही हों और संगठन के कार्यों को ठीक से करते हों। संगठन की कुछ भूमिकाएँ नीचे दी गई हैं–

सामाजिक सुरक्षा–वाल्व भूमिका

गैर सरकारी संगठन जनता की असुविधा को व्यवस्थित करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है और सामाजिक समस्याओं और जरूरतों के लिए एक वकील बन जाता है। वे गरीबों और जरूरतमंदों को आवाज देने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं।

टिप्पणी

सरकार के प्रदर्शन में सुधार

यह सुनिश्चित करना गैर सरकारी संगठन के कार्यों में से एक है कि सरकार उत्तरदायी है और नागरिकों की समस्याओं को हल कर रही है जिससे सरकारें जवाबदेह हो जाती हैं। एनजीओ भी सुझाव देने और सरकार की नीति निर्माण में सुधार और लचीलेपन को प्रोत्साहित करने के लिए अपने स्वयं के अनुसंधान दल और विशेषज्ञता प्रदान करने के लिए अधिकृत हैं।

सेवा भूमिका

गैर–लाभकारी संगठन एक तंत्र के रूप में काम करता है जिसके माध्यम से लोग किसी भी सामाजिक या आर्थिक कठिनाई के बारे में चिंतित होते हैं जो प्रतिक्रिया दे सकते हैं और मदद के लिए हाथ बढ़ा सकते हैं। एनजीओ संघर्ष समाधान में मदद करता है और विश्वास का वातावरण बनाता है।

सामुदायिक भागीदारी का निर्माण

गैर–लाभकारी संगठन स्थानापन्न परिप्रेक्ष्य का प्रस्ताव करता है जिसमें वंचित समुदायों के साथ सार्थक बातचीत करने की क्षमता शामिल है। कई गैर सरकारी संगठन भारत की विविध संस्कृति के संरक्षण और प्रोत्साहन के लिए काम कर रहे हैं। उनके पास दुनिया भर में अलग–अलग समुदाय हैं जो गैर सरकारी संगठन के समान हितों की पूर्ति के लिए भाग ले रहे हैं।

महिला सशक्तिकरण

गैर सरकारी संगठन के प्रमुख कार्यों के प्रदर्शन ने महिला सशक्तिकरण के लिए काम करने में एक लंबा सफर तय किया है। कुछ उदाहरण जैसे सती, दहेज, क्रूरता, महिलाओं को शिक्षित करने के लिए अन्य सामाजिक खतरों, कन्या भ्रूण हत्या दर को कम करने, महिलाओं को रोजगार आदि।

ये अभी भी लैंगिक असमानता को दूर करने में अपना सर्वश्रेष्ठ दे रहे हैं। सेवा, अग्रणी फाउंडेशन, एकलव्य, और पर्यावरण कार्य समूह आदि जैसे कई फाउंडेशन उपर्युक्त कारणों के लिए काम कर रहे हैं।

सतत विकास

इस क्षेत्र पर सबसे अधिक ध्यान देने की आवश्यकता है क्योंकि कोई भी अपनी वर्तमान जरूरतों से समझौता नहीं कर रहा है और अपने स्वार्थी लक्ष्यों को प्राप्त करने के लिए प्राकृतिक संसाधनों को नष्ट कर रहा है।

इसलिए, गैर सरकारी संगठन इस सब पर नजर रख रहे हैं और प्राकृतिक संसाधनों के अत्यधिक उपयोग को रोकने के लिए नियंत्रण उपायों के साथ आ रहे हैं प्राकृतिक संसाधनों का अत्यधिक उपयोग पर्यावरणीय खतरों का कारण है जो बाद में स्वास्थ्य समस्याओं और प्राकृतिक आपदाओं का कारण बनता है।

गैर सरकारी संगठन द्वारा की जाने वाली गतिविधियाँ निम्नलिखित हैं–

टिप्पणी

जागरूकता बढ़ाना

गैर सरकारी संगठन असहाय लोगों की वकालत करते हैं और उन्हें जागरुक करते है। शोध, विश्लेषण एवं प्रचलित मुद्दों के बारे में जनता को सूचित करना, मीडिया अभियान और अन्य प्रकार की सक्रियता का संचालन करके नागरिक कार्रवाई को व्यवस्थित करना एनजीओ के प्रमुख कर्तव्य हैं।

मध्यस्थता

गैर सरकारी संगठन विभिन्न क्षेत्रों और समूहों के बीच एक एजेंट के रूप में कार्य करता है।

संघर्ष समाधान

गैर सरकारी संगठन समस्याओं को सुलझाने में मध्यस्थ और सूत्रधार के रूप में कार्य करता है।

जानकारी प्रदान करना

गैर सरकारी संगठन मुफ्त शिक्षा, प्रशिक्षण कार्यक्रम और अन्य जानकारी प्रदान करता है।

सेवा प्रदान करना

ये आवश्यक मानवीय और अन्य सामाजिक सेवाओं के वितरण का कार्य करते हैं।

निगरानी और जांच–परख

गैर सरकारी संगठन सरकार तथा कॉर्पोरेट प्रदर्शन और जवाबदेही के 'वॉचडॉग' या स्वतंत्र 'ऑडिटर' के रूप में कार्य करता है।

गैर सरकारी संगठन की समाज में एक प्रमुख भूमिका है। ये समाज में वंचित लोगों के विकास में अहम भूमिका निभाते हैं। एनजीओ ने गरीबी उन्मूलन जैसी विभिन्न परियोजनाएं शुरू की हैं और विभिन्न सामाजिक बुराइयों पर काम कर रही हैं। इन्होंने बांधों, रेलवे और सड़कों के निर्माण में योगदान दिया है और समाज के वंचितों, ग्रामीण क्षेत्रों और कमजोर वर्गों को सभी बुनियादी सुविधाएं उपलब्ध कराई हैं। एनजीओ के कार्य मानवता की सेवा के लिए एक मिसाल कायम कर रहे हैं। यह ''सर्वजन हिताय – सर्वजन सुखाय'' के मूल सिद्धांत का पालन करते हैं। इन्हें राष्ट्र निर्माण में एक लंबा रास्ता तय करना है।

अपनी प्रगति जांचिए

1. किसने वर्ग–संघर्ष को पूंजीवाद की मुख्य संस्था के रूप में माना है?
   (क) मार्क्स ने (ख) गाँधी ने
   (ग) अरुंधति रॉय ने (घ) मुंशी प्रेमचंद ने
2. एनजीओ किसके नियंत्रण से मुक्त होकर कार्य करते हैं?
   (क) विदेशी नियंत्रण (ख) धार्मिक नियंत्रण
   (ग) राजनीतिक नियंत्रण (घ) सरकारी नियंत्रण

4.3 सामाजिक संरचना और विकास

टिप्पणी

संरचना भागों के एक व्यवस्थित अनुक्रम को प्रदर्शित करती है और इसे अपरिवर्तनीय माना जाता है। यह अपेक्षाकृत स्थिर है, लेकिन इसके हिस्से गतिशील हैं। एक सामाजिक वैज्ञानिक मानव समाज की संरचना को उसके भागों के सापेक्ष संबंधों में, अर्थात् सामाजिक संस्थाओं में, समूहों और व्यक्तियों की सामाजिक गतिविधियों में, उनकी भूमिकाओं, स्थितियों और आदर्शवादी प्रणालियों में खोजता है। सामाजिक संरचना शब्द का प्रयोग विभिन्न समाजशास्त्रियों द्वारा किया गया है, स्पेंसर और दुर्खीम से लेकर आधुनिक समाजशास्त्रियों तक। यह शब्द आम तौर पर एक या एक से अधिक विशेषताओं के संदर्भ में प्रयोग किया जाता है जो समाज का निर्माण करते हैं।

4.3.1 एक सहायक/अवरोधक के रूप में संरचना

विकास की प्रक्रिया वर्तमान सामाजिक, राजनीतिक और सांस्कृतिक प्रतिमानों से स्वतंत्र नहीं है। सामाजिक संरचना विकास के क्षेत्र और प्रकार प्रसार में महत्वपूर्ण भूमिका निभाती है।

सामाजशास्त्र में सामाजिक संरचना शब्द का प्रयोग सामाजिक संबंधों, सामाजिक घटनाओं अथवा सामाजिक प्रक्रियाओं के निश्चित क्रम के लिये किया जाता है। हरबर्ट स्पेन्सर ने सबसे पहले इस अवधारणा का प्रयोग किया। दुर्खीम ने सामाजिक संरचना को समझने के लिये समग्र दृष्टिकोण का प्रयोग किया जिसमें व्यक्ति की भूमिका नगण्य थी।

कार्ल मार्क्स के लिए समाज का निर्माण "आधार और अधिरचना" के विचार पर आधारित थे। यह शब्द इस विचार को संदर्भित करता है कि एक समाज का आर्थिक चरित्र उसका आधार बनाता है जिस पर सांस्कृतिक और सामाजिक संरचनायें, अधिरचना टिकी होती हैं। मार्क्स के लिये यह आधार अर्थव्यवस्था है जो निर्धारित करती है कि समाज कैसा होगा। उन्होंने समाज को विभिन्न सामाजिक वर्गों के व्यक्तियों से बना हुआ देखा, जिन्हें भोजन और आवास, रोजगार, शिक्षा और अवकाश के समय जैसे सामाजिक, भौतिक और राजनीतिक संसाधनों के लिये प्रतिस्पर्धा करनी चाहिये। सरकार, शिक्षा और धर्म जैसी सामाजिक संस्थाएं अपनी अंतर्निहित असमानताओं में इस प्रतिस्पर्धा को दर्शाती हैं और असमान सामाजिक संरचना को बनाये रखने में मदद करती हैं। मार्क्स ने समाज में उत्पादन के साधनों के मालिक–बुर्जुआ वर्ग और सर्वहारा मजदूर वर्ग के बीच संघर्ष को परिवर्तन के प्राथमिक साधन के रूप में देखा। इसके विपरीत मैक्स वैबर के परिप्रेक्ष्य में संस्कृति का व्यक्ति तथा समूह के आर्थिक विकास में अत्यधिक महत्वपूर्ण योगदान माना गया। उनके अनुसार यूरोप में पूंजीवाद के विस्तार के पीछे प्रोटेस्टेन्ट धर्म का अनुयायीकरण था। किन्तु वैबर के इस दृष्टिकोण के विपरीत भारत मै जैन और वैश्य समूहों की उद्यमिता उनके धार्मिक व पारंपरिक होने के बावजूद एक अनूठा उदाहरण है।

भारत जैसे विकासशील देशों में श्रम की कम उत्पादकता पर चर्चा करते हुए सामाजिक वैज्ञानिकों का मत है कि इन समाजों में जाति, परिवार और धर्म जैसी

टिप्पणी

संस्थाओं से व्यक्ति के मूलभूत लगाव के कारण उद्यमिता के प्रति कम प्रतिबद्धता हैं आर्थिक विकास और सामाजिक व्यवस्था के बीच की कड़ी टालकट पार्सन्स के 'पैटर्न वैरियेबल' के माध्यम से ही संभव है। समाजशास्त्री नींव के रूप में ये 'वैरियेबल' किसी भी समाज की विकासशीलता और अविकसित स्वरूप को समझने में मदद कर सकते हैं।

बी.एफ. होसेलिट्ज ने विकास में सामाजिक व्यवस्था की भूमिका को समझाने के लिये पैटर्न वैरियेबल का उपयोग किया है।

पार्सन्स के सुप्रसिद्ध पैटर्न वैरियेबल का अनुसरण करते हुए यह माना जा सकता है कि आधुनिक समाज में प्रस्थिति का निर्धारण अर्जित प्रस्थिति के द्वारा होता है जहां व्यक्ति को विशिष्ट स्थान अपनी व्यक्तिगत योग्यता पर मिलता है उसके जन्म, जाति या लिंग के आधार पर नहीं। व्यक्ति के सामाजिक संबंध विशिष्ट मानदंडों के बजाय सार्वभौमिक नियमों से शासित होते हैं। भूमिका संबंधों की प्रणाली में दायित्व और अपेक्षायें अधिक विशिष्टता प्राप्त करते हैं न कि पारंपरिक संबंध। आइसेनस्टेड (1996) ने सुझाव दिया कि आधुनिक समान एक सहमत जन समाज के रूप में उभरता है और एक राष्ट्र–राज्य के रूप में जन्म लेता है। आधुनिक समाज संस्थागत संरचनाओं के माध्यम से संचालित होते हैं जो आधुनिकीकरण की प्रक्रिया में निहित परिवर्तनों को लगातार अवशोषित करने में समक्ष हैं। विविध संगठन जो कि जटिल और विभेदित हैं अपेक्षाकृत आत्मनिर्भर व कार्यात्मक रूप से विशिष्ट हैं अलग–अलग क्षेत्रों में कार्यों का निर्वहन करते हैं। परिवार व नातेदारी आधारित संगठनों की भूमिकायें अधिक संकीर्ण रूप से परिभाषित होती हैं। विशिष्ट कार्यात्मक क्षेत्रों में संलग्न संगठन जैसे सरकार, नौकरशाही, आर्थिक व वित्तीय संस्थान, सशस्त्र बल, शिक्षा, स्वास्थ्य सार्वजनिक परिवहन और मनोरंजन आधुनिकीकरण में महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं।

हाल के सामाजिक परिवर्तनों ने समकालीन सामाजिक दुनिया की प्रकृति पर बहस को जन्म दिया है। यह बहस आधुनिक और उत्तर आधुनिकतावादियों के बीच है जहां आधुनिकतावादी समकालीन समाज को आधुनिक रूप में देखना जारी रखते हैं परन्तु उत्तर आधुनिकतावादी एक नए उत्तर आधुनिक समाज के जन्म व विकास के पक्षधर हैं। नये सामाजिक आंदोलन, नये मूल्यों व पहचानों के विकास का मार्ग प्रदान करते हैं। देर से आधुनिकता से जुड़े नये सामाजिक आंदोलनों, जैसे नारीवाद और पर्यावरणवाद ने राजनीति की प्रकृति को मौलिक रूप से बदल दिया है। हैबरमास के अनुसार आधुनिकता तर्कसंगतता और स्वतंत्रता के बीच अविभाज्य संबंध स्थापित करती है जैसा कि महान आधुनिकतावादी उपलब्धियों जैसे कि लोकतंत्र और मानवाधिकारों में प्रतिदर्शित होता है। नए सामाजिक आंदोलन इन उपलब्धियों को नये तरीके से व्यक्त और लागू करने का प्रयास कर रहे हैं।

उत्तर आधुनिकतावाद सामाजिक और राजनीतिक जीवन में सभी सीमित धारणाओं की आलोचना करता है और सामाजिक जीवन और विकेन्द्रीकृत सामाजिक आंदोलनों के दृष्टिकोणों की विविधता का पक्षधर है।

प्रत्येक समाज की अपनी एक संरचना होती है जो उसकी विभिन्न परम्पराओं, समूहों व संस्कृति में निहित होती है। परम्पराएं विचार करने, अनुभूति करने व व्यवहार के वे प्रतिमान हैं जो एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी को हस्तान्तरित होते हुए समाज की विरासत को प्रकट करते हैं। किसी भी समाज का अध्ययन उसकी संरचनात्मक विशेषता व संस्कृति से जुड़ा होता हैं संस्कृति के माध्यम से हम उस समाज के जीवन की सामूहिक व सामाजिक क्रियाओं को जान पाते हैं और यही क्रियाएं सामाजिक जीवन की नींव बनती हैं जिनपर किसी समाज की संरचना निर्मित होती है।

भारतीय समाज का अध्ययन करने वाले विद्वानों ने इसकी प्रमुख संरचनात्मक विशेषतायें खोजने का प्रयास किया है। एम.एन. श्रीनिवास ने भारतीय सामाजिक संरचना की प्रमुख विशेषता इसकी सामाजिक–सांस्कृतिक विविधता को बताया है। ड्यूमो ने श्रेणीबद्धता (Hierarchy) को भारतीय समाज का प्रमुख लक्षण माना है। उनके अनुसार भारतीय समाज को वर्ण और ऊंची–नीची जाति के श्रेणीबद्ध सोपान के संदर्भ में ही समझा जा सकता है। योगेन्द्र सिंह ने भारतीय समाज के चार प्रमुख संरचनात्मक व परम्परागत लक्षण बताये है– श्रेणीबद्धता, समग्रवाद, निरन्तरता तथा लोकातीत्व (Transcendence)। मैण्डलबाम ने जाति और धर्म की दो अवधारणाओं को ही भारतीय समाज की कुंजी माना है।

संरचना के दृष्टिकोण से देखें तो पता चलता है कि विकास की प्रक्रिया सभी भारतीय समूहों व श्रेणियों के लिये समान नहीं है। अनेक सामाजिक समूह हैं जिनकी आर्थिक सामाजिक स्थिति पर्याप्त भिन्न है कुछ समूह सामाजिक दृष्टि से श्रेष्ठ स्वीकार किये जाते है और वे समाज में प्रतिष्ठा सम्पन्न हैं। इसी प्रकार कुछ आर्थिक दृष्टि से सम्पन्न हैं और अधिक साधन–सम्पन्न एवं समृद्ध हैं। इसके विपरीत भारतीय समाज में कुछ ऐसे समूह भी हैं जो या तो सामाजिक दृष्टि से निम्न हैं या आर्थिक दृष्टि से पर्याप्त पिछड़े हुए हैं। इन समूहों के व्यक्ति एवं परिवार न तो सामाजिक प्रतिष्ठा से सम्पन्न हैं न ही आर्थिक दृष्टि से। इनमें से बहुत से ऐसे हैं जो निर्धनता रेखा के नीचे अपना जीवन यापन कर रहे हैं। इन समूहों को समाज में दुर्बल या 'पिछड़ा वर्ग' कहा जाता है। सामाजिक दृष्टि से दुर्बल वर्गों को समाज में हीन दृष्टि से देखा जाता है और अन्य वर्ग उनसे उचित सामाजिक दूरी बनाये रखते हैं। इन दुर्बल वर्गों में अनुसूचित जाति (SC) अनुसूचित जनजाति (ST) तथा अन्य पिछड़ा वर्ग (OBC) आते हैं।

दुर्बल वर्गों में निम्न कोटि की श्रेणी में वह वर्ग आता है जो उत्पीड़न और अभाव का शिकार है। यह वर्ग 'दलित वर्ग' कहा जाता है। भारतीय परम्परागत हिन्दू समाज में दलितों की प्रस्थिति उन व्यवसायों से जुड़ी हुई थी जिन्हें आनुष्ठानिक दृष्टि से अपवित्र माना जाता था। इन व्यवसायों में लगे लोगों को प्रदूषित माना जाता था, और उनकी सामाजिक सहभागिता प्रतिबन्धित कर दी गयी। इन सभी सामाजिक व आर्थिक कारणों की वजह से दलित वर्ग आज भी सबसे पीछे खड़ा हैं। 2011 (census) सेन्सस के अनुसार करीब 73% दलित वर्ग भूमिहीन है। करीब 50% ST परिवारों की आय का स्रोत अनौपचारिक श्रम है। दलित वर्ग की स्त्रियों की स्थिति तो और भी बदतर है। वे सबसे अधिक शोषित, उत्पीड़ित, अशिक्षित व अन्धविश्वासी हैं।

टिप्पणी

अल्पसंख्यक तथा पिछड़े वर्ग की तरह ही स्त्रियों का भारतीय सामाजिक संरचना में महत्वपूर्ण स्थान है। विकास के अन्य आयामों की भांति ही पितृसत्तात्मक समाज में स्त्री की स्थिति काफी कमजोर व पिछड़ी रही है। एम.एन. श्रीनिवास के अनुसार भारतीय स्त्रियों की प्रस्थिति का सामान्यीकरण प्रायः असंभव है क्योंकि इसके अनेक स्वरूप हैं विभिन्न वर्गों, जातियों और समूहों में। सामाजिक प्रस्थिति और उससे जनित समस्याओं में भी बहुत भिन्नता है। स्त्री के प्रति आदर्श और व्यवहार का भी बहुत अन्तर हैं। किन्तु हर वर्ग, जाति व समूह में एक बहुत बड़ा वर्ग स्त्री का है जो कि शिक्षा, पोषण, समान बराबरी के व्यवहार व अवसर, अपेक्षाओं तथा मूल्यों में पीछे खड़ा है। पितृसत्तात्मक एवं पुरुष प्रधान समाज में जब तक संरचनात्मक परिवर्तन नहीं होंगे तब तक स्त्री अपने हक व मूलभूत अधिकारों से वंचित रहेगी।

4.3.2 विकास और सामाजिक–आर्थिक विषमताएं

हमें पता करने की जरूरत है भारत में सामाजिक–आर्थिक व्यवस्था में आर्थिक विकास के लाभों का वितरण कैसे हुआ है, राष्ट्रीय आय में वृद्धि से किन वर्गों को लाभ हुआ है, और क्या समय–समय पर आय और धन के वितरण में सुधार हुआ है या नहीं देश के औपनिवेशिक शोषण और कम से कम विकास के कारण यहां जो समस्याएँ पैदा हुईं इनमें बेरोजगारी और गरीबी सबसे महत्वपूर्ण हैं। आय वितरण में असमानता, कार्यस्थल पर असमानता आदि ने अमीर और गरीब के बीच तथा ग्रामीण और शहरी क्षेत्रों के बीच असमानताओं को बढ़ा दिया है। भारत में आय असमानताओं के दो मुख्य कारण हैंः (i) निजी संपत्ति पर आधारित प्रचलित आर्थिक व्यवस्था और (ii) विरासत के नियम।

संपत्ति का निजी स्वामित्व

भारत में मिश्रित पूंजीवादी अर्थव्यवस्था है। इस आर्थिक व्यवस्था में लोगों को निजी संपत्ति का अधिकार है इसलिए, लोगों का न केवल भूमि, घर, कारों आदि पर बल्कि उत्पादन के साधनों पर भी स्वामित्व है जैसे कारखाने, बसें, कृषि भूमि, खदानें आदि। हम इस देश को मोटे तौर पर दो वर्गों में विभाजित कर सकते हैं। प्रथम श्रेणी में वे लोग हैं जिनके पास उत्पादन और संपत्ति के साधन हैं। उनकी आय का मुख्य स्रोत उनकी संपत्ति है। अन्य सभी लोग द्वितीय श्रेणी के अंतर्गत आते हैं। इन लोगों के पास कोई संपत्ति नहीं है और इसलिए वे अपनी आजीविका के लिए जनशक्ति पर निर्भर हैं। उनमें से कुछ पेशेवरों को छोड़कर अन्य सभी गरीब हैं। अब हम इस तथ्य पर विचार करेंगे कि संपत्ति के निजी स्वामित्व से आय में असमानता कैसे उत्पन्न होती है–

1. **भूमि के स्वामित्व में असमानता और ग्रामीण क्षेत्र में मूर्त संपत्ति की सघनता** : ब्रिटिश शासन के दौरान जमींदारी व्यवस्था के कारण कुछ लोगों के पास ग्रामीण क्षेत्रों में भूमि का स्वामित्व था। आजादी के बाद जमींदारी प्रथा को समाप्त कर दिया गया लेकिन भूमि के केंद्रीकरण को रोका नहीं जा सका। राष्ट्रीय नमूना सर्वेक्षण (NSSO) के 26वें दौर के अनुसार, 1971–72

टिप्पणी

में बड़े किसानों (जो किसानों की कुल संख्या का सिर्फ 5.44% थे) के पास कुल कृषि भूमि का 39.43% हिस्सा था। इसके विपरीत, सीमांत किसान (जो कि कुल किसानों की संख्या का 43.99% थे) के पास कुल कृषि भूमि का सिर्फ 1.58% हिस्सा था। सभी विशेषज्ञ इस बात से सहमत हैं कि ग्रामीण क्षेत्रों में आय असमानताओं का मुख्य कारण भूमि और अन्य संपत्तियों का केंद्रीकरण है।

2. **उद्योगों, व्यापार और भवनों का निजी स्वामित्व** : देश में; बहुत कम लोगों के पास उद्योगों, व्यापार, इमारतों और अन्य संपत्तियों का स्वामित्व होता है। औद्योगिक क्षेत्र में आर्थिक शक्ति कुछ चुनिंदा घरानों में केंद्रित है। यह इस तथ्य से स्पष्ट है कि 1986–87 में शीर्ष 20 में कोई औद्योगिक घराना नहीं था जिनकी संपत्ति 450 करोड़ से कम थी। एनसीएईआर द्वारा 1987–88 में किए गए सर्वेक्षण से यह स्पष्ट होता है कि परिसंपत्तियों का वितरण शहरी क्षेत्रों में अत्यधिक केंद्रित था। उस वर्ष, सबसे संपन्न 10 परिवारों के पास कुल धन का 46.28% धन था, जबकि 60% परिवारों के पास केवल 11.67% संपत्ति थी। यह प्रवृत्ति 1981–82 में राष्ट्रीय नमूना सर्वेक्षण अध्ययनों में भी देखी गई है। शहरी आय के इस असमान वितरण के कारण उद्योगपतियों, व्यापारियों और अन्य धनी लोगों के हाथों में आर्थिक शक्ति का संकेंद्रण और भी बढ़ गया है।

3. **व्यावसायिक प्रशिक्षण में असमानताएँ** : पेशेवर संगठनों, डॉक्टरों, इंजीनियरों, अधिवक्ताओं आदि पेशेवर काम करने वाले उच्च अधिकारियों की आय आमतौर पर बहुत अधिक होती है और इससे लोगों में यह धारणा बनती है कि व्यावसायिक प्रशिक्षण में असमानताओं के कारण आय की असमानताएँ उत्पन्न होती हैं। लेकिन यहाँ इस बात पर जोर देना जरूरी है कि हमारे देश में पेशेवर प्रशिक्षण की सुविधाएँ सभी के लिए उपलब्ध नहीं हैं। केवल अमीर वर्ग के बच्चे ही उच्च शिक्षा और व्यावसायिक प्रशिक्षण प्राप्त करने में सक्षम होते हैं। कृषि श्रमिकों, औद्योगिक श्रमिकों, अनुसूचित जाति और अनुसूचित जनजाति के बच्चे इस प्रकार की शिक्षा की आशा नहीं कर सकते। आय और प्रशिक्षण में इस प्रकार के अंतर जो आय असमानताओं के अंतर को और बढ़ाते हैं, आय और वित्तीय शक्ति के असमान वितरण की संकेंद्रणता के कारण बढ़ते हैं।

उत्तराधिकार कानून

विरासत कानून आय असमानताओं के ढाँचे को बनाए रखने में भी उपयोगी हैं। उदाहरण के लिए पूँजीपति का बेटा पूँजीपति बन जाता है और खेत मजदूर का बेटा मजदूर हो जाता है (अधिक से अधिक औद्योगिक मजदूर)। उत्तराधिकार कानून ऐसा है कि बच्चे अपने पिता की संपत्ति के मालिक बन जाते हैं। तो, उद्योगपतियों, व्यापारियों, बड़े किसानों और अन्य अमीर लोगों के बच्चों को साधनों पर अधिकार स्वतः प्राप्त हो जाता है और इससे उन्हें आसानी से आय और संपत्ति अर्जित करने में मदद मिलती

टिप्पणी

है। इसके विपरीत, श्रमिकों के बच्चों को विरासत में कुछ भी नहीं मिलता है और इसलिए उनकी गरीबी पीढ़ियों से चली आ रही है।

अन्य कारण

उपर्युक्त दो मुख्य कारणों के अलावा, अन्य कारण भी हैं जो आय की असमानताओं को बनाए रखने में मदद करते हैं। उनमें से महत्वपूर्ण इस प्रकार हैं–

1. मुद्रास्फीति और मूल्य वृद्धि
2. बढ़ती बेरोजगारी
3. बैंकों और वित्तीय निगमों की क्रेडिट नीति और सरकार की लाइसेंसिंग नीति

4.3.3 लिंग और विकास

19वीं सदी के अंत और 20वीं सदी की शुरुआत में यूरोप में महिला उदारीकरण के लिए कई आंदोलन हुए। आज नारीवादी आंदोलन यूरोप में बड़े पैमाने पर है। हमारे देश में स्वतंत्रता संग्राम के दौरान यह आंदोलन बहुत ही सामान्य था। महिलाओं ने संघर्ष में योगदान दिया लेकिन केवल राष्ट्रीय नेताओं के नेतृत्व में। उच्च और मध्यम वर्गीय समाज की कुछ ही महिलाएं शिक्षित थीं। संविधान के लागू होने के बाद जब यह घोषित किया गया कि देश लिंग, जाति और धर्म के आधार पर लोगों के साथ भेदभाव नहीं करेगा, महिला उदारीकरण के आंदोलनों ने गति पकड़ी। भारतीय महिलाओं के लिए सबसे बड़ी समस्या यह है कि उनके साथ पुरुषों की तुलना में अधिक भेदभाव किया जाता है। यह भेदभाव समाज के हर क्षेत्र में देखा जा सकता है। हालाँकि यह लगातार कहा जाता है कि पुरुष और महिला समान हैं और उनके बीच कोई भेदभाव नहीं होना चाहिए।

जैविक रूप से यह स्पष्ट है कि पुरुष और महिला समान हैं लेकिन सवाल यह उठता है कि उनके साथ भेद भाव क्यों है? इसके पीछे कई कारक हैं। मैत्रेयी चौधरी का कहना है कि महिलाओं की दयनीय स्थिति के पीछे विचारधारा और हमारी सामाजिक संरचना सबसे बड़े कारक हैं। इस देश में महिलाओं के लिए हमारी एक निश्चित धारणा है और स्वतंत्रता हासिल करने के बाद भी इसमें कोई बदलाव नहीं आता है। यहाँ यह बिल्कुल स्पष्ट होना चाहिए कि भारतीय समाज में सभी महिलाएं समान नहीं हैं हालांकि वे एक ही लिंग की हैं, हर महिला दूसरे से अलग है। इस अंतर को सामाजिक विषमता कहा जाता है। उच्च वर्ग की महिलाएँ मध्यम वर्ग की महिलाओं से भिन्न होती हैं और दोनों वर्गों की महिलाएँ निम्न वर्ग से बहुत भिन्न होती हैं। यदि हम इसे जाति व्यवस्था की संरचना की दृष्टि से देखें तो महिलाओं में भी ऐसी व्यवस्था है। कुछ महिलाएं उच्च श्रेणी के परिवारों से हैं, वे फाइव–स्टार होटलों में जाती हैं और कार चलाती हैं, तो कुछ महिलाएं हैं जो कारखानों में काम करती हैं, सिलाई का काम करती हैं और अपना जीवन यापन करने के लिए सब्जियां बेचती हैं। भारतीय समाज में महिलाओं की एक अतुलनीय विविधता है और हम उन्हें एक ही पैमाने पर नहीं तौल सकते। हमारा तर्क है कि जब भी हम समाज में महिलाओं की स्थिति का मूल्यांकन

टिप्पणी

करें तो हमें इस विविधता को भी समझना चाहिए। निश्चित रूप से महानगरों में मध्यम वर्ग की महिलाओं की समस्याएं ग्रामीण महिलाओं की समस्याओं के समान नहीं हैं। खासी समुदाय की एक मातृवंशीय महिला की कठिनाइयां टोडा जनजाति के भ्रातृ बहुपति समाज से भिन्न होती हैं। समस्याएं अलग हैं चुनौतियाँ अलग हैं इसलिए विश्लेषण समान नहीं होना चाहिए।

महिलाओं की स्थिति की विविधता के बावजूद, महिलाओं के लिए हमारी एक निश्चित विचारधारा है। ऐसा माना जाता है कि भारतीय महिलाएं दिव्य और पवित्र हैं। लेकिन इसके ठीक विपरीत हमारी मान्यता है कि मासिक धर्म के कारण महिलाएं अपवित्र होती हैं। कुछ का मानना है कि उच्च जाति की महिलाएं गुणी पत्नियाँ और धार्मिक होती हैं, वे प्यार और स्नेह से भरी होती हैं। दूसरी ओर ऐसी मान्यता है कि निचली जातियों की महिलाएं चरित्रहीन होती हैं और उन पर भरोसा नहीं किया जा सकता। एक आम धारणा के अनुसार वासना के कारण महिलाएं खतरनाक हो सकती हैं और हम यह भी मानते हैं कि महिलाएं असहाय हैं और पुरुषों पर निर्भर हैं। महिलाओं के बारे में ये सभी मान्यताएं इतनी प्रबल हैं कि समाज के लगभग सभी क्षेत्रों में इनकी अभिव्यक्ति होती है।

लेकिन ये मान्यताएं परस्पर विरोधी हैं और इसके पीछे का कारण यह है कि महिलाएं भी इसका हिस्सा हैं। ऊँची जातियाँ निचली जाति की महिलाओं को चरित्रहीन मानती हैं निचली जातियों का उच्च जाति की महिलाओं के प्रति पक्षपातपूर्ण रवैया है। इसलिए जब हम महिलाओं की स्थिति का मूल्यांकन करते हैं, तो हमें इन मान्यताओं पर भी विचार करना चाहिए। समाज में भारतीय महिलाओं की दुर्दशा हमारे पुरुष प्रधान ढांचे के कारण है। एक पिता का मानना होता है कि बेटी किसी और की संपत्ति होती है और आखिरकार उसे अपने ससुराल जाना होता है। इस पुरुष प्रधान समाज में रहते हुए, वे मानते हैं कि उनके माता–पिता लड़कियों को बड़ा करते हैं, शादी के बाद वह अपने पति की आश्रित बन जाती है, वहीं उनका बेटा बुढ़ापे में उनकी देखभाल करता है। महिलाओं की स्थिति के पीछे पितृ वंश भी एक कारण है। हिंदुओं में वंश पैतृक वंश से संचालित होता है। पुत्र अपने माता–पिता का अंतिम संस्कार करता है, जो माता–पिता को मोक्ष की ओर ले जाता है। इस मुक्ति में नारी का कोई योगदान नहीं है। दहेज की उत्पत्ति भी पितृ वंश की जड़ों में निहित है। आदिवासी क्षेत्रों में जहां दहेज के बदले दुल्हन की कीमत चुकाई जाती है, वहां महिलाओं को उच्च दर्जा प्राप्त है। ये कुछ संरचनात्मक पहलू हैं जो समाज में महिला के स्थान को निर्धारित करते हैं।

महिलाओं की स्थिति : ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्य

भारत में महिलाओं की स्थिति हमेशा बहस का विषय रही है। एक ओर तो उनका महिमामंडन किया जाता है, लेकिन दूसरी ओर उन्हें ''ढोल, देहाती, अछूत और पशु'' के रूप में माना जाता है। जब महिलाएं दहेज के कारण रोती हैं या आत्महत्या करने की कोशिश करती हैं, तो उन्हें बड़े विशेषणों से शांत किया जाता है और कहा जाता

टिप्पणी

है कि भारतीय समाज में उनकी हमेशा एक भव्य स्थिति होती है। इसलिए समाज में महिलाओं की स्थिति को ऐतिहासिक दृष्टि से देखना जरूरी है। वैदिक काल में नारी की स्थिति इतनी दयनीय नहीं थी। देश ने उस समय की महान देवियों जैसे गार्गी, अपाला, ऐतराई, लोपामुद्रा आदि को देखा था। वैदिक संहिताओं के निर्माण में उनकी महान भूमिका थी। हालाँकि इस युग में पैतृक वंश का भी अभ्यास किया जाता था। वैदिक युग में कोई लिंग भेद नहीं था, कन्याओं के लिए भी पवित्र धागा समारोह किया जाता था। विधवा विवाह की भी अनुमति थी। महिलाएं वैदिक ज्ञान सहित उच्च शिक्षा प्राप्त कर सकती थीं। वैदिक भाषा में ''दम्पट्टी'' (युगल) का अर्थ है कि घर में या बाहर पुरुष और महिला का समान अधिकार।

बौद्ध धर्म के युग में महिलाओं की स्थिति बिगड़ने लगी। धार्मिक रूप से महिलाओं को समान अधिकार प्राप्त थे, वेश्याओं को भी बौद्ध धर्म अपनाने की अनुमति थी, लेकिन स्थिति धीरे–धीरे बिगड़ने लगी। उत्तर वैदिक युग में, उन्हें वफादार पत्नियां कहा जाता था किंतु उन्हें सार्वजनिक जीवन जीने की अनुमति नहीं थी। वे केवल धर्म के नाम पर उपवास कर सकते थे। मध्य युग में मुस्लिम आक्रमणकारियों के हमले के दौरान महिलाओं की स्थिति लगभग ध्वस्त हो गई। हालांकि सूफी संतों के आंदोलनों ने महिलाओं का समर्थन किया। मीराबाई, गंगूबाई और मुक्ताबाई भी भक्ति के क्षेत्र में आईं। मुस्लिम हमलों ने बाल विवाह शुरू कर दिया और हिंदू तथा मुस्लिम महिलाओं के लिए ''पर्दा'' (घूंघट) प्रणाली शुरू हो गई और उनकी शिक्षा बंद कर दी गई।

ब्रिटिश काल में महिलाओं की स्थिति में सुधार हुआ, राजा राम मोहन राय ने महिलाओं के अधिकारों के लिए लड़ाई लड़ी और ''सती'' प्रथा का विरोध किया। इस प्रथा को समाप्त करने के लिए एक कानून भी बनाया गया था। ईश्वरचंद्र विद्यासागर ने भी महिला शिक्षा के लिए कुछ सुधार आंदोलन शुरू किए।

महिलाओं की स्वतंत्रता और संवैधानिक अधिकारों ने एक नए युग की शुरुआत की। उनको सैद्धांतिक रूप से समान अधिकार और समान वेतन कानून का सहारा मिला मनुष्य के रूप में उनके साथ भेदभाव कम होने लगा। लेकिन यह एक बड़ा बदलाव नहीं था।

हमारे विश्वविद्यालयों में बड़ी संख्या में महिलाएं शिक्षा प्राप्त करती हैं, उनमें व्यावसायिक शिक्षा भी लोकप्रिय है लेकिन राजस्थान की भंवरी देवी जैसी कुछ महिलाएं हैं जिनका हर गांव में शोषण होता है। अतः यहाँ हम अनुरोध करते हैं कि जब भी महिलाओं की स्थिति का विश्लेषण किया जाए तो ग्रामीण महिलाओं को भी ध्यान में रखा जाना चाहिए।

महिलाएं और कार्य

एक क्षेत्र से दूसरे क्षेत्र में महिलाओं के काम, सीमा और क्षेत्र में बहुत अंतर है। ग्रामीण और शहरी क्षेत्रों में काम करने वाली महिलाओं के बीच एक बड़ा अंतर आसानी से पाया जा सकता है। घर में महिलाएं जो काम करती हैं, वह सभी को दिखाई नहीं देता।

टिप्पणी

लेकिन जब वे वेतन पर वही काम करते हैं, तो उसे याद किया जाता है और प्रलेखित किया जाता है। देश भर में काम करने वाली महिलाओं को दो प्रकारों में विभाजित किया जा सकता है–

(1) भुगतान किया हुआ काम और (2) अवैतनिक काम। इस प्रकार का वर्गीकरण हमें उन कार्यों को समझने में मदद करेगा जो महिलाएं परिवार और समाज में करती हैं। आम तौर पर अर्थशास्त्रियों द्वारा व्यवसायों का विश्लेषण किया जाता है और व्यवसाय क्षेत्रीय विविधता, आयु, जाति और धर्म से भी संबंधित होता है। इसलिए जब कोई समाजशास्त्री महिलाओं के व्यवसाय का विश्लेषण करता है तो उसका संदर्भ हमेशा सामाजिक संबंधों से होता है।

ग्रामीण क्षेत्रों में महिलाओं का कार्य

बीसवीं सदी के 70 के दशक तक घर में महिलाएं जो काम करती थीं, उसका कोई हिसाब नहीं था। बाद में इसे अर्थव्यवस्था में भी शामिल किया गया। ग्रामीण क्षेत्रों में महिलाएं खाना बनाना, परिवार के उपभोग के लिए खाद्य सामग्री की व्यवस्था करना, अनाज इकट्ठा करना, बच्चों की देखभाल करना, ईंधन के लिए लकड़ी की व्यवस्था करना, पीने के पानी और चारे की व्यवस्था करना, घर की मरम्मत आदि बहुत से काम करती हैं। तकनीकी दृष्टि से, यह काम उत्पादक नहीं है क्योंकि यह स्वयं उपभोग के लिए किया जाता है। यदि हम इसे क्षेत्रीय दृष्टिकोण से देखें तो महिलाओं का योगदान अलग हो जाता है। उदाहरण के लिए केरल और तमिलनाडु में महिलाएं चावल के खेतों में काम करती हैं जबकि पंजाब और हरियाणा की महिलाएं गेहूं की खेती में काम नहीं करती हैं।

असंगठित क्षेत्र में महिला कार्य

चाहे वे ग्रामीण क्षेत्र से हों या शहरी समाज से, महिलाएं असंगठित क्षेत्र में लगातार काम करती हैं। राष्ट्रीय स्वरोजगार महिला आयोग के अनुसार, 94% कामकाजी महिलाएं असंगठित क्षेत्र के लिए काम करती हैं। वे विभिन्न व्यवसायों जैसे पशुधन प्रजनन, दुग्ध डेयरी, वानिकी, मछली पालन और कई अन्य कुटीर उद्योगों में काम करती हैं। बहुत सी महिलाएं संगठित क्षेत्र में भी काम करती हैं।

मध्यम वर्ग की महिलाएं और काम

उच्च जातियों की मध्यम वर्ग की महिलाएं जो शिक्षित थीं और शहरी क्षेत्रों में रहती थीं, वे अपने घरों से बाहर काम नहीं करती थीं। घर से बाहर काम करने की प्रथा 1940 के बाद शुरू हुई। पहले यह माना जाता था कि एक महिला को अपने घर से बाहर काम नहीं करना चाहिए। इससे उनका मान–सम्मान कम होता है। केवल विधवाओं से काम करने की अपेक्षा की जाती थी। 70 के दशक के मध्य में महिलाओं ने विभिन्न सरकारी कार्यालयों और निजी कंपनियों में अकाउंटेंट, क्लर्क और टेलीफोन ऑपरेटर के रूप में काम करना शुरू कर दिया। ये सभी सफेदपोश नौकरियां थीं।

टिप्पणी

अब महिलाओं को अलग–अलग पेशों में काम करते देखा जा सकता है। वे सेना में हैं, हवाई जहाज उड़ाती हैं और उच्च श्रेणी की तकनीकी नौकरियों में काम करती हैं। ये महिलाएं अब दो गुना काम करती हैं। उन्हें ऑफिस के साथ–साथ घर पर भी काम करना पड़ता है। कामकाजी महिलाएं अपने बच्चों के सुनहरे भविष्य का सपना देखती हैं। बच्चों की जरूरतों को पूरा करने के लिए उन्हें पैसे की जरूरत होती है और यह उन्हें बाहर काम करने के लिए मजबूर करता है। लेकिन इसका मतलब यह नहीं होना चाहिए कि घरेलू मामलों में उनकी बड़ी भूमिका होती है। वित्तीय क्षेत्र में महिलाओं की जो भी स्थिति होती है, वह परिवार, वर्ग, जाति और समुदाय जैसे कुछ महत्वपूर्ण कारकों पर निर्भर करती है। इसके अलावा क्षेत्रीय अंतर, श्रम बाजार और पर्यावरण भी महत्वपूर्ण हैं। आजकल पर्यावरण से संबंधित हमारे अध्ययन से पता चलता है कि जिन क्षेत्रों में पानी और जंगलों की कमी है, वहां महिलाएं अपना अधिकांश समय लकड़ी, चारा और ईंधन इकट्ठा करने में बिताती हैं, वे अपने परिवारों के लिए पानी भी लाती हैं। उत्तर प्रदेश (उत्तराखंड) के पहाड़ी क्षेत्रों में, महिलाओं ने वन–कटान को रोकने के लिए ''चिपको आंदोलन'' में सक्रिय रूप से भाग लिया ताकि पानी, ईंधन और लकड़ी के लिए उनकी कठिनाइयों को कम किया जा सके। बाजार की सबसे बड़ी शक्ति श्रम है। यह श्रम बाजार महिलाओं के लिए अवसरों के क्षेत्र तय करता है। बिजली के सामान जैसे उद्योग महिलाओं को काम करने के अधिक अवसर देते हैं। नर्सिंग, टीचिंग और ऑफिस के कामों के लिए महिलाएं पसंदीदा कर्मचारी हैं।

महिलाओं की विशेष समस्याएं

यह माना जाता है कि महिलाओं की समस्याएं आम तौर पर सांस्कृतिक और सामाजिक होती हैं और इसके लिए सामाजिक संरचना जिम्मेदार है। यह समस्या भेदभाव की है। दुनिया भर में महिलाओं को कुछ समस्याओं का सामना करना पड़ता है लेकिन भारतीय महिलाओं की समस्याएं विशिष्ट हैं। भारतीय महिलाओं, उनके माता–पिता और रिश्तेदारों को दहेज के लिए सामाजिक अपमान और शोषण का सामना करना पड़ता है जो अन्य महिलाओं द्वारा अनुभव नहीं किया जाता है।

महिलाओं का यह शोषण और उत्पीड़न सिर्फ भारत में होता है। ऐसा लगता है कि उनकी सभी समस्याएं ऐतिहासिक हैं और हिंदू संस्कृति की प्रकृति के कारण हैं। हिंदू समाज अपनी संरचित व्यवस्था में महिलाओं को उच्च स्थान पर नहीं रखता है। यह सत्य है कि प्राचीन काल में स्त्री–पुरुष में कोई भेदभाव नहीं था और नारी शिक्षा प्राप्त करने के लिए स्वतंत्र थी। लेकिन यह भी सच है कि महिलाओं को घूंघट के पीछे लाया गया और वह समाज के सबसे निचले स्तर पर आ गई तथा उनके पति ने उस पर लगाम लगा दी। आज एक महिला जिस भी प्रस्थिति पर है वह अपने पिता, पति और पुत्र की वजह से है। उसकी अपनी कोई पहचान नहीं है। यहाँ हम महिलाओं की कुछ खास समस्याओं पर चर्चा करेंगे।

पितृसत्तात्मकता

भारतीय महिलाओं के लिए सबसे बड़ी समस्याओं में से एक पितृसत्तात्मकता है। शादी के बाद उसे अपने पति के घर पर रहना पड़ता है और वह अपने पिता का घर छोड़

टिप्पणी

देती है। एक कहावत भी है कि एक लड़की पालकी में ससुराल जाती है और वापस नहीं लौट सकती। वह अपने पति की मृत्यु के बाद ही घर छोड़ती है वह भी तब जब उसकी मृत्यु हो जाती है। स्थिति तब और भी खराब हो जाती है जब वह विधवा हो जाती है और अपने ससुराल में नहीं रह पाती है।

पितृवंशीय विरासत

पितृवंशीय वंशानुक्रम भी भारत के अधिकांश उत्तरी और दक्षिणी भागों की महिलाओं के लिए एक समस्या है। यह सच है कि भारतीय दंड संहिता (आईपीसी) ने उन्हें विरासत में माता–पिता की संपत्ति पाने का अधिकार दिया है लेकिन पारंपरिक कानूनों के कारण वह अभी भी इस अधिकार का पालन करने में सक्षम नहीं है। शहरी क्षेत्रों में रहने वाली मध्यम वर्ग की महिलाएं भी ऐसा नहीं कर पा रही हैं। पिता की संपत्ति में अपने हिस्से का दावा करने पर उन्हें हमेशा अपने भाई के साथ तनावपूर्ण संबंधों का डर रहता है। इन कारणों से महिलाओं के पास अपने नारीत्व के अलावा अपनी कोई व्यक्तिगत संपत्ति नहीं होती है।

दहेज

दहेज भी भारतीय महिलाओं की एक बड़ी समस्या है। कई नवविवाहित महिलाएं दहेज की इस समस्या का शिकार हो जाती हैं और अपनी जान गंवा देती हैं। दहेज के खिलाफ स्वयंसेवी संस्थाओं ने आवाज उठाई है। समाचार पत्रों में युवा विवाहित महिला की मौत या आत्महत्या के प्रयास की खबरें आम हैं। इस दबाव के कारण दहेज निषेध अधिनियम 1961 पेश किया गया और 1984 और 1986 में दो बार संशोधन किया गया। इसने अदालत को शक्ति दी है कि वह किसी मान्यता प्राप्त संगठन की शिकायत पर ऐसे लोगों के खिलाफ कार्रवाई शुरू कर सकता है। स्वतंत्र और निष्पक्ष जांच सुनिश्चित करने के लिए यह अपराध गैर जमानती अपराध है। IPC में एक लेख भी जोड़ा जाता है, जिसे दहेज हत्या कहा जाता है। गवाहों की व्यवस्था करने की समस्या को दूर करने के लिए इस समस्या के लिए भारतीय साक्ष्य अधिनियम में भी संशोधन किया गया है। यदि किसी महिला की रहस्यमय परिस्थितियों में शादी के सात साल के भीतर मृत्यु हो जाती है, तो उसके पति और ससुराल वालों को जिम्मेदार ठहराया जाता है। दहेज निषेध अधिकारी दहेज के मामलों की निगरानी के लिए एक समिति का गठन कर सकता है। दहेज के मामलों की प्रभावी जांच के लिए दहेज निषेध प्रकोष्ठ भी स्थापित किया गया है।

अत्याचार

भारतीय समाज में महिलाओं के साथ हमेशा मारपीट की जाती है और प्रताड़ित किया जाता रहा है। मुंशी प्रेमचंद का गोदान एक ग्रामीण उपन्यास है। इसका नायक होरी एक भारतीय किसान का प्रतिनिधि है – बेहद गरीब और अनपढ़ लेकिन जब भी ग्राम प्रधान से नाराज होता है, तो वह अपनी पत्नी को बेरहमी से पीटता है।

टिप्पणी

दक्षिण भारतीय महिलाओं की स्थिति को देखते हुए– बुकर पुरस्कार विजेता अरुंधति रॉय ने अपनी पुस्तक 'गॉड ऑफ स्मॉल थिंग्स' में उल्लेख किया है कि जब भी कोई भारतीय पुरुष घर आता है। नशे में आता है तो उनकी पहली प्रतिक्रिया आमतौर पर उनकी पत्नी और बच्चों को पीटते हुए देखी जाती है। यहां तक कि गुजराती और मराठी साहित्य भी पुरुषों द्वारा महिलाओं पर हमले का वर्णन करने वाले उदाहरणों से भरा पड़ा है। यहां एक दिलचस्प तथ्य का उल्लेख किया जाना चाहिए कि अच्छी तरह से शिक्षित संपन्न परिवारों की महिलाओं को भी अपने ससुराल में हिंसक व्यवहार से नहीं बख्शा जाता है। भारत की संसद महिलाओं के प्रति हिंसा के प्रति सतर्क है। इस दिशा में आगे बढ़ते हुए, और इस तरह के अत्याचारों पर रोक लगाने के लिए भारत की संसद में द क्रिमिनल लॉ एक्ट 1983 का प्रावधान है।

संशोधन के अनुसार, ''पति, उसके रिश्तेदारों की ओर से कोई भी क्रूरता एक दंडनीय अपराध है।''

भारतीय साक्ष्य अधिनियम में भी कुछ उपयोगी संशोधन देखे गए हैं। इसके अनुसार, अगर कोई विवाहित महिला अपनी शादी के सात साल के भीतर आत्महत्या कर लेती है, तो कानून मान सकता है कि उसे उसके पति, उसके रिश्तेदारों ने परेशान किया था। बलात्कार के मामलों से निपटने के लिए आपराधिक अधिनियम 1983 में भी संशोधन किया गया है। इसके अनुसार सुनवाई के दौरान पीड़िता की पहचान को गुप्त रखा जाएगा।

महिलाओं के साथ अभद्र व्यवहार

मीडिया आमतौर पर महिलाओं को अश्लील तरीके से प्रस्तुत करता है। यह भी एक तरह की क्रूरता है। इसे रोकने के लिए महिलाओं का अश्लील प्रतिनिधित्व (निषेध) अधिनियम 1986 बनाया गया है। यह अधिनियम किसी भी रूप में महिलाओं के अशोभनीय चित्रण को प्रतिबंधित करता है जिससे उनका अपमान होता है।

लिंग निर्धारण परीक्षण

गर्भ में बच्चे को मूल अन्याय सहना पड़ता है। लिंग निर्धारण परीक्षण के अनैतिक उपयोग द्वारा दुनिया में प्रवेश करने से पहले ही उसे मार दिया जाता है। मेडिकल टर्मिनेशन ऑफ प्रेग्नेंसी एक्ट 1971 के अनुसार भारत में गर्भपात को अब अवैध नहीं माना जाता है, हालांकि भारत के कुछ राज्य लिंग निर्धारण अभ्यास को पूरी तरह से प्रतिबंधित करने पर विचार कर रहे हैं।

महिला आंदोलन : नई चुनौतियाँ

आज नारी आंदोलन अपने चरम पर है। वैश्वीकरण और आधुनिकीकरण से भी इसमें तेजी आई है। इस आंदोलन के कई नाम हैं– नारीवाद, महिला मुक्ति आंदोलन आदि। इस आधुनिक आंदोलन से पहले, राजा राममोहन राय ने ब्रिटिश काल में इस आंदोलन की शुरुआत की थी। वह पहले भारतीय थे जिन्होंने रूढ़िवादी हिंदुओं के खिलाफ

टिप्पणी

आवाज उठाई और महिला सुधारों की वकालत की। राजा राममोहन राय वह व्यक्ति थे जो 1829 में ''सती'' परंपरा को समाप्त करने में सफल रहे। उनके बाद ईश्वर चंद्र विद्यासागर ने महिला शिक्षा का मुद्दा उठाया। स्वामी दयानंद सरस्वती ने वेदों के अधिकार को स्वीकार करते हुए हिंदू समाज में सुधारों के मुद्दे को आगे बढ़ाया। महात्मा गांधी उन नेताओं में से एक थे जिन्होंने महिला सुधारों की वकालत की। उन्होंने बाल विवाह का विरोध किया और कहा कि विवाह की न्यूनतम आयु 20 वर्ष होनी चाहिए। वह विधवा विवाह के भी समर्थक थे और उन्होंने ''देवदासी'' के नाम पर वेश्यावृत्ति का विरोध किया। उन्होंने 1921 में असहयोग आंदोलन में महिलाओं के योगदान को भी सुनिश्चित किया और स्वतंत्रता के बाद महिलाओं को संवैधानिक रूप से हर धारा में पुरुषों के बराबर किया गया। आधुनिक भारतीय नारी आंदोलन पश्चिमी आंदोलनों से अलग नहीं है। विदेशी आंदोलनों के कुछ ठोस कारण हैं। उनके पास प्रौद्योगिकी, आधुनिकीकरण, लोकतंत्र और औद्योगिक पूँजीवाद है और महिलाओं ने अपने अधिकारों की मांगों को आगे बढ़ाया है।

नारी आन्दोलन के सन्दर्भ में इतना ही कहा जा सकता है कि हमने सामाजिक विधान के लिए एक आधार बनाया। बाल विवाह को समाप्त करने के लिए 1929 में ''शारदा अधिनियम'' प्रस्तुत किया गया था। मुस्लिम महिलाओं के लिए, मुस्लिम विवाह अधिनियम, 1940 का प्रावधान है और 1955 में हिंदी विवाह अधिनियम पारित किया गया था। 1960 और 70 के दशक में महिला ने एक नया रूप धारण किया। सहेली, सहिवार, मानुषी, स्त्री शक्ति, नारी समता मंच आदि सहित कुछ नए संगठन सामने आए। कुछ लड़ाके महिलाओं के नेतृत्व में थे ये आंदोलन स्वास्थ्य संबंधी मुद्दों महिला अत्याचार, बलात्कार, शारीरिक उत्पीड़न, दहेज हत्या, कामकाजी महिला की समस्याओं, और वेश्यावृत्ति के खिलाफ हैं।

महिला एवं बाल विकास कार्यक्रम

केंद्र और राज्य सरकारों ने महिला कल्याण से संबंधित कुछ कार्यक्रम शुरू किए हैं। नीति निर्माताओं का यह भी मत है कि बाल विकास भी महिला कल्याण से जुड़ा है। ये कार्यक्रम केंद्रीय मानव संसाधन मंत्रालय द्वारा चलाए जा रहे हैं। महिला एवं बाल कल्याण विभाग का एक नया विभाग भी स्थापित किया गया था। महिलाओं की स्थिति में सुधार के लिए यह विभाग प्रयास करता है।

इस विभाग में चार ब्यूरो हैं– (1) पोषण एवं बाल विकास, (2) बाल कल्याण, (3) महिला विकास और (4) बालिका जागरूकता। तीन संगठन भी विभाग के दायरे में आते हैं– (1) राष्ट्रीय जन सहायता एवं बाल विकास संस्थान, (2) राष्ट्रीय महिला कोष और (3) केंद्रीय सामाजिक विकास बोर्ड। ये संस्थान भारत सरकार द्वारा चलाए जाते हैं और विभाग की जिम्मेदारियों के निष्पादन में मदद करते हैं। 1922 में महिलाओं के लिए देश की सर्वोच्च विधान परिषद के रूप में राष्ट्रीय महिला आयोग का गठन किया गया था। आयोग महिलाओं के अधिकारों का विश्लेषण और सुरक्षा सुनिश्चित करता है और इन अधिकारों के क्रियान्वयन पर भी नजर रखता है।

टिप्पणी

- संविधान लागू होने के बाद, यह घोषित किया गया कि इसमें जाति, लिंग और धर्म के आधार पर कोई भेदभाव नहीं होगा।
- वैदिक युग में आज की तरह महिलाओं की स्थिति इतनी खराब नहीं थी, आज नारी आंदोलन है अपनी पूरी गति से चल रहा है। आधुनिकीकरण और वैश्वीकरण ने भी इसकी गति तेज कर दी है।
- इस आंदोलन के कई नाम हैं– नारीवाद, महिला मुक्ति आंदोलन आदि।
- राजा राममोहन राय ने इस आधुनिक महिला आंदोलन की शुरुआत ब्रिटिश काल में की थी। वह ''सती'' परंपरा को समाप्त करने में सफल रहे।
- महात्मा गांधी महिला कल्याण में अग्रणी थे। उन्होंने बाल विवाह का विरोध किया।

4.3.4 संस्कृति और विकास

मानव जाति के सामाजिक चरित्र और व्यवहार की मानवीकरण प्रणाली का अस्तित्व सामाजिक अध्ययन के मूल तत्व हैं। सामाजिक वैज्ञानिकों ने मानवीय गतिविधियों, नियमितता और सामाजिक जीवन के तथ्यों तथा संस्कृति की व्याख्या करने और उसे समझने के विचार की खोज की है।

संस्कृति मनुष्य का एक महत्वपूर्ण तत्व है, जिसके बिना मानव जाति किसी भी तरह से अन्य जानवरों से श्रेष्ठ नहीं है।

विकास हेतु सहायक संस्कृति

सामाजिक परिवर्तन में सांस्कृतिक कारकों का असाधारण महत्व है। संस्कृति एक हद तक लोगों के विश्वास, मूल्यों, दृष्टिकोण, आदतों और व्यवहार को प्रभावित करती है। दूसरे शब्दों में संस्कृति समाजीकरण और व्यक्तित्व निर्माण में अत्यधिक योगदान देती है। संस्कृति और सांस्कृतिक कारकों में किसी भी परिवर्तन की प्रतिक्रिया में मनुष्य की आदतें और व्यवहार बदल जाते हैं। इस सुधार के परिणामस्वरूप सामाजिक संबंधों, व्यवहार, परिस्थितियों और संपूर्ण सामाजिक संरचना में परिवर्तन होता है। इस परिवर्तन को सामाजिक परिवर्तन कहते हैं। सामाजिक परिवर्तन के सांस्कृतिक कारकों पर विचार करने से पहले संस्कृति को संक्षेप में समझना बहुत जरूरी है।

शब्द 'संस्कृति' को विभिन्न अर्थों में लिया जाता है।

मजूमदार और मदान लोगों की जीवन शैली को उनकी संस्कृति मानते हैं।

टेलर के अनुसार, "संस्कृति ज्ञान, विश्वास, कला, व्यवहार, कानून, परंपरा और अन्य ऐसी प्रथाएं जो एक व्यक्ति समाज का सदस्य होने के नाते प्राप्त करता है।''

पैडिंगटन के अनुसार, ''संस्कृति संपूर्ण भौतिकवादी और बौद्धिक साधन है जिसका उपयोग पुरुषों द्वारा संतुष्टि के लिए किया जाता है।''

टिप्पणी

संस्कृति शब्द अनंत और जटिल है इसलिए इसकी परिभाषा तय करना बहुत मुश्किल है। फिर भी हम इसे संक्षेप में परिभाषित कर सकते हैं। अनिवार्य रूप से किसी विशेष समाज के व्यवहार और संपूर्ण जीवन शैली को संस्कृति कहा जाता है। सभी प्रकार के विचार और तौर–तरीके संस्कृति का हिस्सा हैं जो निहित नहीं हैं बल्कि समाज के साथ व्यवहार के माध्यम से मनुष्य द्वारा प्राप्त किए जाते हैं। मनुष्य द्वारा अपनी आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए विकसित सभी भौतिक और अभौतिक चीजें संस्कृति के घटक हैं।

सांस्कृतिक कारक और सामाजिक परिवर्तन

संस्कृति, सांस्कृतिक कारक और सामाजिक परिवर्तन परस्पर जुड़े हुए हैं। लोगों का आपसी व्यवहार और सामाजिक संबंध उस संस्कृति से प्रभावित होते हैं जिसमें धर्म, परंपरा, संगठन, रूढ़िवादी मूल्य, नैतिकता, विश्वास आदि कई तरह से शामिल हैं। अंतर्संबंध और व्यवहार संस्कृति पर आधारित होते हैं। एक परिवार में परिवार के सदस्यों और उनके व्यवहार के बीच अंतर्संबंध भी संस्कृति द्वारा स्थापित होते हैं। संस्कृति का धर्म सामाजिक परिवर्तन को निर्देशित करता है। संस्कृति का भौतिकवादी तत्व आदतों में परिवर्तन का योगदान देता है जबकि अभौतिकवादी तत्व व्यवहार में परिवर्तन को जोड़ता है। किसी भी समूह के लोगों की आदतों और व्यवहार में परिवर्तन से सामाजिक परिवर्तन होता है। संस्कृति आर्थिक, राजनीतिक, सामाजिक और तकनीकी सुधारों के माध्यम से सामाजिक परिवर्तन में मदद करती है।

वित्तीय जीवन में कई सुधारों के लिए संस्कृति जिम्मेदार है– भारतीय संस्कृति में आध्यात्मिकता को विशेष महत्व दिया गया है, जिसके कारण कई लोग आर्थिक सुधारों के प्रति उदासीन हो गए हैं।

किसी विशेष समाज और राजनीतिक संगठन पर सांस्कृतिक कारक अत्यधिक प्रभाव डालते हैं– किसी समाज की राजनीतिक संरचना उस विशेष समाज के सांस्कृतिक वातावरण पर भी निर्भर करती है।

लोकतंत्र, अभिजात वर्ग, समाजवाद या राजशाही उस समाज के सांस्कृतिक वातावरण का परिणाम होते हैं एक विशेष समाज के सांस्कृतिक वातावरण, सामाजिक संगठन और सामाजिक संरचना के बीच संबंध पाया जाता है– हिंदुओं, मुसलमानों और ईसाइयों की सामाजिक संरचनाओं में बहुत अंतर है। इस अंतर का मूल कारण उनका विशिष्ट सांस्कृतिक वातावरण है।

संस्कृति प्रौद्योगिकी के क्षेत्र में सुधारों को भी प्रभावित करती है। संस्कृति केवल यह तय करती है कि प्रौद्योगिकी का उपयोग कैसे किया जाएगा। कारखानों में केवल उन्हीं वस्तुओं का निर्माण होता है जिनका उपभोग लोग करते हैं और फिर उपभोग संस्कृति पर निर्भर करता है। प्रौद्योगिकी, मशीनों, उपकरणों, तकनीकी विशेषज्ञता संपूर्ण प्रौद्योगिकी सुधारों में कई आविष्कार मूल्यों, विश्वासों, नैतिकता या संस्कृति पर निर्भर करते हैं।

टिप्पणी

मानव जीवन पर संस्कृति का प्रभाव

1. संस्कृति मानवीय आवश्यकताओं की पूर्ति करती है– संस्कृति का सबसे महत्वपूर्ण हिस्सा यह है कि यह व्यक्तियों की शारीरिक, सामाजिक और मानसिक आवश्यकताओं को पूरा करती है।
2. संस्कृति व्यक्तित्व का आधार है– प्रत्येक व्यक्ति अपनी संस्कृति को प्राप्त करता है और अपने व्यक्तित्व में आत्मसात हो जाता है। इसलिए यह कहा जाता है कि व्यक्ति संस्कृति का एक व्यक्तिपरक पहलू है। व्यक्तियों में विविधता संस्कृति में विविधता के कारण होती है।
3. संस्कृति मनुष्य को मूल्य और नैतिकता प्रदान करती है– एक समाज में प्रत्येक व्यक्ति अपनी नैतिकता और मूल्यों के अनुसार व्यवहार करता है। इन मूल्यों और नैतिकता की अवहेलना व्यक्ति का समाज से तिरस्कार करती है।
4. संस्कृति व्यक्ति की आदतों को निर्धारित करती है– जैसे कि प्रत्येक व्यक्ति पूर्व प्रचलित संस्कृति में पैदा होता है इसलिए संस्कृति ही उसके भोजन और पोशाक की आदतों को निर्धारित करती है।
5. संस्कृति नैतिकता को निर्धारित करती है– एक समाज में सांस्कृतिक मापदंडों के माध्यम से प्रासंगिक और गैर प्रासंगिक बातों को निर्धारित किया जाता है। संस्कृति केवल व्यक्तियों में उचित और अनुचित या अच्छे और बुरे की भावना विकसित करती है।
6. संस्कृति व्यवहार में एकरूपता लाती है– एक विशेष संस्कृति के सभी व्यक्तियों के व्यवहार, रीति–रिवाजों, परंपराओं, मूल्यों, और नैतिकता में एकरूपता होती है और हर कोई समान रूप से इसका पालन करता है।

   इससे समाज में समानता और एकरूपता आती है।
7. संस्कृति अनुभव और दक्षता को बढ़ाती है– संस्कृति विरासत में मिलती है इसलिए नई पीढ़ी को अनुभव और प्रतिभा विरासत में मिलती है।
8. संस्कृति व्यक्ति को सुरक्षा प्रदान करती है– एक संस्कृति में मानव व्यवहार संबंधी पहलू पूर्व निर्धारित अनुभव के साथ पूर्व निर्धारित होते हैं। इसलिए व्यक्ति को अपने आचरण के बारे में निर्णय नहीं लेना होता है बल्कि धीरे–धीरे सामाजिक आचरण सीखता है और उसके अनुसार व्यवहार करता है। व्यक्ति मानसिक रूप से सतर्क और सामाजिक सुरक्षा महसूस कर सकता है।
9. संस्कृति मुद्दों का समाधान करती है – जब भी कोई व्यक्ति समस्या या संकट का सामना करता है, तो वह अपनी संस्कृति से प्राप्त अनुभवों, ज्ञान और नीतियों से उसका समाधान करता है।
10. संस्कृति मनुष्य को श्रेष्ठ बनाती है– मनुष्य जन्म से एक जैविक इकाई है। समाजीकरण के माध्यम से व्यक्ति अपनी संस्कृति को सीखता है। संस्कृति

टिप्पणी

का आत्मसात समाजीकरण है। इस प्रकार संस्कृति मनुष्य को अन्य प्राणियों से श्रेष्ठ बनाती है।

11. संस्कृति केवल पृष्ठभूमि और परिस्थितियों को निर्धारित करती है– समाज में व्यक्ति की स्थिति संस्कृति द्वारा तय की जाती है। व्यक्तियों की भूमिका, शक्ति, अधिकार और कर्तव्य भी संस्कृति द्वारा तय किए जाते हैं।

12. संस्कृति समाज को नियंत्रित करने में मदद करती है– प्रत्येक संस्कृति परंपराओं, रीति–रिवाजों, लोकाचार और प्रथाओं से बनी होती है। ये केवल आचरण और व्यवहार को तय करते हैं और एक व्यक्ति को नियंत्रित करते हैं। व्यक्तिगत नियंत्रण सामाजिक नियंत्रण की ओर ले जाता है।

विकास में बाधा

संस्कृति कई सांस्कृतिक कारकों, और मानदंडों से बनी होती है। केवल इन सभी को मिलाकर एक संस्कृति सुनिश्चित नहीं होती है, लेकिन एक संस्कृति को बनाने के लिए महत्वपूर्ण अंतरसंबंध बहुत महत्वपूर्ण है। इसे नियोजित किया जाना चाहिए। जिस तरह से साइकिल या घड़ी के सभी पुर्जों को रखने से साइकिल या घड़ी नहीं बनती है, बल्कि उन्हें आपस में जोड़ा जाना चाहिए और सामूहिक रूप से व्यवस्थित किया जाना चाहिए। संस्कृति के संदर्भ में भी यही सिद्धांत लागू होता है।

संस्कृति परिवर्तन

संस्कृति के दो पहलू हैं– भौतिक और अभौतिक। दोनों या इनमें से किसी एक में परिवर्तन को सांस्कृतिक परिवर्तन कहा जाता है। कलम, घर, कार, कपड़े, पंखे या किसी अन्य मानव निर्मित चीजों के डिजाइन में कोई भी परिवर्तन भौतिक संस्कृति में परिवर्तन कहलाता है। इसी प्रकार मानव निर्मित अभौतिक चीजों जैसे कला, साहित्य, ज्ञान, दर्शन, परंपरा, कानून, विज्ञान, फैशन में किसी भी परिवर्तन को अभौतिक संस्कृति में परिवर्तन कहा जाता है। प्रोफेसर डेविस सांस्कृतिक परिवर्तन को परिभाषित करते हुए कहते हैं, ''सांस्कृतिक परिवर्तन कला, साहित्य, ज्ञान, दर्शन, कानून, विज्ञान, फैशन या किसी भी संस्कृति के सामाजिक संगठनों के रूपों और नियमों जैसे किसी भी विभाजन में परिवर्तन का समावेश है।''

पार्सन्स सांस्कृतिक परिवर्तन को इस प्रकार परिभाषित करते हैं, ''सांस्कृतिक परिवर्तन मूल्यों, विचारों और प्रतीकात्मक अर्थपूर्ण व्यवस्था में किसी भी परिवर्तन से संबंधित है।'' यह स्पष्ट है कि संस्कृति के किसी भी पहलू में परिवर्तन को सांस्कृतिक परिवर्तन कहा जाता है।

विकास में बाधा के रूप में संस्कृति

अमेरिकी समाजवादी डब्ल्यू. एफ. ओगबर्न ने सांस्कृतिक अंतराल के विचार के माध्यम से सामाजिक परिवर्तन के कारक के रूप में सांस्कृतिक भूमिका का वर्णन किया है। अंग्रेजी शब्द ''लैग'' का अर्थ है गति, प्रगति या विकास में पिछड़ जाना दूसरे या दूसरों के साथ तालमेल न रख पाना। ओगबर्न ने सांस्कृतिक अंतराल की अवधारणा को प्रगति में पिछड़ने के रूप में चित्रित किया है। 1922 में, अपनी पुस्तक ''सामाजिक परिवर्तन''

टिप्पणी

में ओगबर्न ने सामाजिक परिवर्तन में ''सांस्कृतिक अंतराल'' के सिद्धांत का प्रतिपादन किया है। उन्होंने संस्कृति को भौतिक और अभौतिक में विभाजित किया। भौतिक संस्कृति में हजारों चीजें जैसे हवाई जहाज, ट्रेन, पंखा, बर्तन, फर्नीचर, घड़ी, कपड़े, किताबें आदि शामिल हैं जबकि कला, साहित्य, ज्ञान, दर्शन, परंपरा, कानून, विज्ञान, फैशन आदि से अभौतिक संस्कृति का निर्माण होता है। ओगबर्न ने माना कि पिछले कुछ वर्षों में दोनों संस्कृतियों का बड़ा विकास हुआ है। उनका कहना है कि भौतिक संस्कृति अभौतिक संस्कृति की तुलना में अधिक तेजी से बदलती है। सांस्कृतिक अंतराल के कारण इस संदर्भ में प्रश्न उठता है कि सांस्कृतिक अंतराल क्यों होता है। संस्कृति का भौतिक भाग तेजी से क्यों बदलता है और अभौतिक भाग उस गति से क्यों नहीं बदल सकता है। ऑगबर्न ने सांस्कृतिक अंतराल के लिए उत्तरदायी कुछ कारणों का उल्लेख किया है–

1. पारंपरिकता
2. नवीनता का डर
3. अतीत के प्रति निष्ठा
4. निहित स्वार्थ
5. नवीन विचारों की जांच में कठिनाई
6. बदलने के लिए विचारों का अंतर
7. संस्थाओं द्वारा परिवर्तन का विरोध

4.3.5 परंपरा का विकास और विस्थापन

भारतीय समाज सभ्यताओं की उपज है। यहां सिंधु घाटी सभ्यता हुई है। इस सभ्यता के अवशेष हड़प्पा और मोहनजो–दारो में पाए जाते हैं, जो अब पाकिस्तान में है। ये दो सभ्यताएं हैं एक दूसरे से अलग। इन सभ्यताओं के बारे में इतिहासकारों ने गहनता से काम किया है। ये अवशेष हिंदुओं की सामाजिक संरचना का वर्णन करते हैं। सर जॉन मार्शल लिखते हैं, "हड़प्पा और मोहनजो–दारो सभ्यता दोनों में यह स्पष्ट है कि ये प्रारंभिक सभ्यताएँ नहीं थीं, बल्कि भारतीय भूभाग में विकसित हुई थीं, जो सदियों से मानव के हजारों वर्षों के प्रयासों के परिणामस्वरूप हुई थीं। तो अब यह स्वीकार किया जाना चाहिए कि मिस्र, मेसोपोटामिया और ईरान की तरह भारत उन विशेष देशों में से एक है जहां सभ्यता का जन्म और विकास हुआ था। भारत के अन्य हिस्सों को छोड़कर पंजाब और सिंध में मिस्र और मेसोपोटामिया की तुलना में एक अनोखी और अधिक विकसित सभ्यता थी जो बहुत अलग थी।

भारतीय समाज की उत्पत्ति हड़प्पा और मोहनजोदड़ो से हुई है। सिंधु घाटी सभ्यता तत्कालीन मिस्र, मेसोपोटामिया और ईरान से आपसी वाणिज्य के माध्यम से जुड़ी हुई थी और इन सभ्यताओं की तुलना में कुछ संदर्भों में तुलनात्मक रूप से अधिक विकसित थी। यह अमीर और समृद्ध व्यापारियों के साथ एक शहरी सभ्यता थी। सड़कों और इमारतों में दुकानों की कतारें थीं, शायद दुकानें आज के भारतीय बाजार ढांचे की तरह थीं। इतिहासकार बाल का कथन उस समय की सामाजिक व्यवस्था का वर्णन करता है–

टिप्पणी

"यह स्पष्ट है कि सिंधु घाटी के कलाकार बिक्री के लिए सामान तैयार करते थे यह स्पष्ट नहीं है कि इन आपूर्तियों के आदान–प्रदान के लिए कोई तौल पैमाना या कोई मौद्रिक प्रणाली थी या नहीं। विशाल भवनों से जुड़े स्टोर रूम के बारे में कहा जाता है कि ये छोटे और बड़े व्यापारियों के थे। इन अवशेषों की संख्या और आकार से पता चलता है कि शक्तिशाली और समृद्ध व्यापारियों का एक बड़ा उपनिवेश था। आश्चर्यजनक रूप से अपार सोना, चांदी, कीमती पत्थर, बोन चाइना के आभूषण, तांबे के बर्तन, धातु के यंत्र और हथियार मिले हैं।

समान विज्ञानियों ने इनके सामाजिक अस्तित्व की रूपरेखा भी तैयार की है। वे कहते हैं– "व्यवस्थित और अनुरक्षित जल निकासी व्यवस्था इंगित करती है कि उनके पास व्यवस्थित नगरपालिका थी। व्यवस्था इतनी मजबूत थी कि बार–बार आने वाली बाढ़ इमारतों और सड़कों को नष्ट नहीं कर सकती थी।"

हिंदू धर्म पर बौद्ध धर्म का प्रभाव

हिंदू धर्म पर बौद्ध धर्म का प्रभाव इस प्रकार है–

1. हालांकि वर्ण व्यवस्था, हिंदू धर्म की मूलभूत व्यवस्था मौजूद थी, लेकिन बौद्ध धर्म द्वारा महत्व न मिलने से यह व्यवस्था कमजोर हुई।
2. वैदिक धर्म के अनुष्ठान उतने लोकप्रिय नहीं थे। बौद्ध धर्म के कारण अहिंसा के विचार में वृद्धि हुई और यह हिंदू समाज का केंद्रीय चरित्र बन गया। अब मानव और पशु बलि, पर रोक लगी क्योंकि वैदिक धर्म के नियम अब लचीले हो गए थे।
3. हिंदू सामाजिक संगठन, के पारलोकिक विचार की बजाय बौद्ध धर्म मोक्ष और दुनिया के बोझ से छुटकारा पाने पर जोर देता है।
4. हिंदू धर्म में, मांसाहारी भोजन का स्थान शाकाहारी भोजन ने ले लिया। ब्रह्मचर्य को प्रोत्साहन मिला। ये तत्व पहले से ही बौद्ध धर्म में थे लेकिन उन्हें उतना महत्व नहीं दिया गया।
5. बौद्ध धर्म के दौरान जातिवाद स्पष्ट था किंतु उसमें कट्टरता नहीं थी।

बौद्ध धर्म पर हिंदू धर्म का प्रभाव

हालाँकि आज बौद्ध धर्म भारत के अलावा अन्य देशों में अधिक लोकप्रिय है, लेकिन इसकी उत्पत्ति भारत में हुई थी। हिंदू धर्म होने के कारण यह इससे प्रभावित है। इसके प्रभाव को निम्न प्रकार से देखा जा सकता है–

1. बौद्ध धर्म वास्तव में एक सामाजिक और आध्यात्मिक उत्थान आंदोलन था।
2. बौद्ध धर्म के विस्तार को देखते हुए प्रतिस्पर्धा में हिंदू धर्म को गंभीरता से लिया गया। अब हिंदू धर्म का पुनर्जागरण शुरू हुआ। पुनर्जागरण कभी भी बौद्ध धर्म के खिलाफ नहीं था, लेकिन निश्चित रूप से ब्राह्मण धर्म में सुधार हुआ है और स्वर्ग के प्रति इच्छा के विरुद्ध एक क्रांतिकारी प्रतिक्रिया हुई।

3. हिंदू धर्म ने नई संस्था के माध्यम से बौद्ध धर्म का मुकाबला किया और महसूस किया कि बौद्ध धर्म के मनोबल की जाँच करना आवश्यक है।

टिप्पणी

प्राचीन भारत का विशाल इतिहास है जो गुप्त साम्राज्य की शुरुआत से छठी शताब्दी की शुरुआत तक फैला हुआ है। ऐतिहासिक कालक्रम के अनुसार 6 वीं से 18 वीं शताब्दी मध्यकालीन भारत का समय था। इस काल की प्रमुख घटनाएं बौद्ध और जैन धर्म हैं। इसने भारतीय समाज को कई तरह से प्रभावित किया।

छठी और सातवीं शताब्दी का हिंदू सांस्कृतिक विकास में विशेष महत्व है। इस काल में अनेक नई संस्कृतियों का विकास हुआ। इसी समय आंध्र, बंगाल, असम, गुजरात, कर्नाटक, महाराष्ट्र, उड़ीसा, राजस्थान, तमिलनाडु आदि की उत्पत्ति हुई। इस काल में संस्कृत भाषा का भी विकास हुआ। इस प्रकार छठी और सातवीं शताब्दी के दौरान, भारतीय सामाजिक संगठन पर दबाव पड़ा। हड़प्पा और मोहनजोदड़ो का समाज बदल गया। जैन धर्म और बौद्ध धर्म के कारण वैदिक कर्मकांडों में ढील आई। हिंदू वर्ण में एक नए सामाजिक परिवर्तन की शुरुआत हुई। यह परिवर्तन इस्लाम के आगमन के साथ शुरू हुआ और एक नई व्यवस्था शुरू हुई। पारंपरिक हिंदू सामाजिक व्यवस्था और इस्लामी व्यवस्था के बीच एक पारस्परिक प्रभाव था। इसे नीचे वर्णित किया गया है–

उत्तर–शास्त्रीय काल : हिंदू समाज पर इस्लाम का प्रभाव

इस्लाम के प्रभाव पर चर्चा करने से पहले हमें यह उल्लेख करना चाहिए कि इस्लाम अरब सभ्यता का एक हिस्सा है। 8वीं शताब्दी की शुरुआत में औपनिवेशिक सभ्यता अरब सभ्यता के दौरान विकसित हुई थी और यह भारतीय सभ्यता से भी प्रभावित थी। 712 ई. में अरब आक्रमणकारी सिंध पहुंचे और इस पर कब्जा कर लिया। बाद में महमूद ने पंजाब और सिंध को अपने राज्य में शामिल कर लिया। इस्लाम ने आक्रमणकारी के रूप में भारत में प्रवेश किया और उत्पीड़न शुरू किया। दिल्ली सुल्तान की उत्पत्ति तेरहवीं शताब्दी में हुई और उसके बाद सोलहवीं से अठारहवीं शताब्दी में मुगल साम्राज्य का उदय हुआ। इस अवधि के दौरान हिंदू और इस्लामी प्रणालियों ने एक दूसरे के साथ व्यवहार आरंभ किया।

हिंदू समाज पर इस्लाम का प्रभाव

हिंदू समाज पर इस्लाम के प्रभाव को कई स्तरों पर देखा जा सकता है। मुसलमानों के साथ भारत का पहला संपर्क दिल्ली सल्तनत के दौरान हुआ था। दूसरा संपर्क मुगल भारत के दौरान हुआ जब महमूद गजनी और गौरी जैसे अफगान आक्रमणकारियों ने हिंदू समाज के साथ समन्वय की भावना विकसित की। चाहे वह परिस्थितियों के कारण हो या अफगान शासकों की इच्छा के कारण, इसने अफगान शासकों और उनके साथ आए लोगों को भारत में रहने के लिए प्रेरित किया। उनके परिवार पूरी तरह से भारतीय हो गए और वे भारत के एक बड़े हिस्से में फैल गए। वे भारत को अपनी मातृभूमि और शेष विश्व को विदेशी भूमि मानते थे। राजनीतिक विवादों और युद्ध के बीच भारत के लोगों ने उन्हें अपने शासक के रूप में स्वीकार किया। प्रसिद्ध सुल्तान फिरोजशाह की

टिप्पणी

माँ एक हिंदू महिला थी और गयासुद्दीन तुगलक की माँ भी हिंदू थी। अफगान, तुर्क और हिंदू उमरावों के बीच विवाह आम नहीं थे यह सत्य है। दिल्ली सल्तनत पर अफगानों की जीत से भारत और हिंदू धर्म पर दो मुख्य प्रभाव पड़े।

पहला प्रभाव यह हुआ कि उत्तर भारत से बहुत से लोग दक्षिण भारत में चले गए और अफगान शासकों के शासन से दूरी विकसित कर ली। जो लोग वहाँ चले गए वे समाज में अकेले रह गए और चरमपंथी बन गए। उन्होंने अपनी जाति व्यवस्था को और अधिक मजबूत बनाया और विदेशी प्रभावों और प्रथाओं से खुद को अलग कर लिया।

दूसरा प्रभाव यह था कि लोग अफगान संस्कृति से प्रभावित थे। फारसी भाषा आधिकारिक भाषा बन गई और लोगों ने दिन–प्रतिदिन संचार में कई फारसी शब्दों का उपयोग करना शुरू कर दिया। अफगान और भारतीय लोगों के बीच परस्पर क्रिया से नई मिश्रित संस्कृति का जन्म हुआ। इस्लाम का मुख्य प्रभाव 16वीं से 18वीं शताब्दी के दौरान देखा गया। यह बाबर, अकबर, और उनके परवर्तियों का शासन था।

इस्लाम और हिंदू धर्म के पारस्परिक प्रभाव को दो स्तरों में वर्गीकृत किया जा सकता है। पहला हिंदू समाज पर इस्लाम का प्रभाव और दूसरा इस्लाम पर हिंदू समाज का प्रभाव। हो सकता है कि हम एक और स्तर का उल्लेख कर सकें। यह तीसरा स्तर इस्लाम और हिंदू समाज के बीच समन्वय है इस्लाम और हिंदू समाज के बीच सामाजिक और सांस्कृतिक आदान–प्रदान से नई मिश्रित संस्कृति का विकास हुआ है।

अब हम इस्लाम पर हिंदू समाज का प्रभाव देखेंगे। इसकी चर्चा हम निम्न बिन्दुओं में कर सकते हैं–

1. मदरसा का पतन– औरंगजेब इस्लाम का कट्टर समर्थक था। मुगल साम्राज्य के पतन के बाद इस्लाम का प्रभाव भी कम होने लगा। इस्लामिक अध्ययन जो मदरसा में आयोजित करते थे बाद में मदरसे पर रोक लगा दी गई।
2. सामाजिक–आर्थिक मतभेदों में वृद्धि– दिल्ली सल्तनत के समय तक अर्थात अफगान से मुगल तक, मुस्लिम शासक थे। इसके कारण एक आम मुसलमान भी समाज में उच्च स्थिति का आनंद ले रहा था। अब यह बात खत्म हो गई। मुगल साम्राज्य का पतन समाज में सभी को एक ही मंच पर ले आया। अब अंग्रेज आ गए थे। महान उपन्यासकार प्रेमचंद की कई कहानियों में उल्लेख है कि कई आम मुसलमान जो पहले मुगलों से संबंधित थे, अब अपनी गरीबी के कारण भाड़े पर घोड़े की गाड़ी चलाने को मजबूर थे।
3. मुगलों और राजपूतों के बीच सहयोग– मुस्लिम समाज राजपूतों के करीब आ गया। दोनों ने अंतर्विवाह को आसान बना दिया। कई मुगलों की शादी राजपूत महिलाओं से हुई थी। अकबर ने एक राजपूत शाही परिवार में राजकुमारी से विवाह किया था। कहा जाता है कि अकबर का पुत्र जहाँगीर आधा मुगल और आधा राजपूत था। इसी तरह जहाँगीर के पुत्र शाहजहाँ का

टिप्पणी

जन्म एक राजपूत माँ से हुआ था। यही कारण है कि तुर्क–मंगोल वंश तुर्क या मंगोल होने से कहीं अधिक हिंदू था।

4. मुसलमानों में जाति व्यवस्था– मूल रूप से इस्लाम समाज में समानता का पक्षधर है। लेकिन हिंदू धर्म के प्रभाव के कारण इसमें जन्म के आधार पर एक जाति व्यवस्था विकसित हुई। शेख और सैयद अंतर्विवाहों के लिए दो विकसित समूह थे। ये समूह निचली जाति के साथ विवाह संबंध नहीं रखते हैं जिन्होंने हिंदू धर्म बदल कर मुस्लिम धर्म अपना लिया था।
5. मूर्ति पूजा का नया पैटर्न– इस्लाम अत्यंत मूर्ति पूजा विरोधी है। वे मूर्ति की पूजा करने वाले को काफिर (इन्फीडेल) कहते हैं। लेकिन हिंदुओं के प्रभाव के कारण, गाँवों में कई मुसलमानों ने भी स्थानीय देवी–देवताओं की मूर्ति पूजा का अभ्यास करना शुरू कर दिया।

भारतीय समाज पर पश्चिम का प्रभाव : निरंतरता और परिवर्तन

16वीं शताब्दी के आसपास ईस्ट इंडिया कंपनी तैयार माल जैसे कपड़े आदि का व्यापार करने और पूर्व से यूरोप में मसालों का व्यापार करने के उद्देश्य से भारत पहुँची, जहाँ ये चीजें उच्च मांग में थीं। कालांतर में यह कंपनी भारत की शासक बनी। ये विदेशी समझते थे कि अगर वे यहां लंबे समय तक शासन करना चाहते हैं तो स्थानीय हिंदुओं के सामाजिक रीति–रिवाजों और धार्मिक मान्यताओं में हस्तक्षेप करना उनके लिए अच्छा नहीं है।

ब्रिटिश सरकार के विकास के साथ भारत में दो और महत्वपूर्ण परिवर्तन आए। एक ईसाई मिशनरी थे और दूसरा अंग्रेजी शिक्षा के माध्यम से अध्ययन और अध्यापन। अंग्रेजी मिशनरियों ने भारतीयों को ईसाई बनाने की कोशिश की। शिक्षा प्रणाली में अंग्रेजी में शिक्षण का विकल्प प्रदान किया गया। इसके परिणामस्वरूप संस्कृत विद्यालयों का पूर्ण परिवर्तन हुआ। मुसलमानों को फारसी का ज्ञान पहली बार अप्रासंगिक साबित हुआ। इतिहासकारों ने पश्चिम के इस प्रभाव का वर्णन इस प्रकार किया है–

1. अंग्रेजी शिक्षा की शुरुआत– ब्रिटिश शासन से पहले, सरकारी मामलों के लिए फारसी, संस्कृत, उर्दू और अन्य स्थानीय भाषाओं का उपयोग किया जाता था। 1835 में मेचले ने पहली बार अंग्रेजी भाषा को प्रोत्साहित करने के लिए शिक्षा नीति का निर्णय लिया। यह सुझाव दिया गया कि शिक्षा का माध्यम अंग्रेजी होना चाहिए और शिक्षा के प्रसार में ईसाई मिशनरी महत्वपूर्ण भूमिका निभाएंगे।
2. संचार नेटवर्क– सतीश सबरवाल के अनुसार, ब्रिटिश सरकार ने संचार के कई तरीके विकसित किए। विचारों और सूचनाओं को संप्रेषित करने के लिए प्रेस की स्थापना की गई थी। टेलीग्राम और टेलीफोन की व्यवस्था की गई थी। परिवहन के लिए ट्रेनें (रेलवे) शुरू की गईं।

टिप्पणी

3. विचारों में क्रांति– ब्रिटिश काल के प्रभाव का विश्लेषण करते हुए सतीश सबरवाल कहते हैं कि इस काल में विचारों में एक बड़ी गड़बड़ी थी। फ्रांसीसी क्रांति, समानता और भाईचारे के अध्ययन से अब लोगों को आजादी का अर्थ एवं महत्व समझ में आया।

4. नई दंड संहिता– ब्रिटिश द्वारा भारतीय पैनल कोड के माध्यम से एक और सुधार किया गया था। रुडोल्फ और रुडोल्फ का कहना है कि अंग्रेजों ने हिंदू और मुसलमानों की जाति और रीति–रिवाजों पर बहुत व्यवस्थित तरीके से भारतीय पैनल कोड बनाया। इसे ''ताजी रात ए हिंद'' के नाम से जाना जाता था। इस दंड संहिता का कानूनी पक्ष ब्रिटिश सरकार को परेशान करता था। पहली बार सभी लोग कानून के समक्ष समान थे। इस नीति के अंतर्गत अंग्रेजों ने अलग न्यायपालिका की स्थापना की और विवाह, तलाक, गोद लेने, परिवार, संपत्ति हस्तांतरण, अल्पसंख्यक, भूमि स्वामित्व, विनिमय, व्यापार, उद्योग और श्रम के लिए नए कानून पेश किए गए। यह कानून पूरे ब्रिटिश भारत में समान रूप से लागू किया गया था।

5. शहरीकरण और औद्योगीकरण– 18वीं शताब्दी में यूरोप में औद्योगिक क्रांति हुई। भारत में औद्योगिक क्रांति ब्रिटिश शासन के माध्यम से आई। औद्योगीकरण के बाद शहरीकरण हुआ। जाहिर है, ये दोनों प्रक्रियाएं एक–दूसरे की पूरक और पारस्परिक हैं।

6. राष्ट्रवाद में वृद्धि– ब्रिटिश शासन के दौरान राष्ट्रवाद की लहर थी। इसमें विभिन्न जातियों और विभिन्न सांस्कृतिक क्षेत्रों के लोगों ने भाग लिया। महात्मा गांधी ने ब्रिटिश परंपरा के कई मानवीय तत्वों, जिन्होंने राष्ट्रीय भावनाओं और चेतना को उजागर किया, को अपनाया और इसे लागू किया।

अतः ऐतिहासिक पृष्ठभूमि वाले आधुनिक भारतीय समाज को समझना जरूरी है। यह समाज लगभग 5000 वर्ष पुराना है। आर्य या धार्मिक समाज की जड़ों से शुरू होकर आज के सार्वभौमिक, लोकतांत्रिक, समाजवादी और धर्मनिरपेक्ष राष्ट्र तक फला–फूला समाज। हिंदू समाज का एक अन्य महत्वपूर्ण तत्व कर्म का सिद्धांत है। अधिकांश हिंदू और कुछ आदिवासी पुनर्जन्म में विश्वास करते हैं। जाति व्यवस्था लचीली होती है। यह एक बड़े तंबू की तरह है जिसमें सभी को शामिल किया गया है। देसाई कहते हैं कि राष्ट्र इसके लिए एक संयुक्त परिवार की तरह है। भारत आधुनिक समाज को प्राप्त करने के लिए लंबे इतिहास से गुजरा है। उसी संदर्भ में इसका वर्णन किया जाना चाहिए।

4.3.6 जातीयता का विकास और उत्थान

19वीं से 20वीं शताब्दी तक, इस विचार ने गति प्राप्त की कि ''राष्ट्र'' मनुष्य के सामाजिक जीवन की पूर्णता का प्रतीक है। तीन या चार दशक पहले संयुक्त राज्य अमेरिका और सोवियत संघ धुर विरोधी थे। कालांतर में इन दोनों में आरंभ हुआ

टिप्पणी

व्यवहार विभिन्न संस्कृतियों के संगम की तरह लग रहा था। भारत ने विभाजन से पहले और बाद में भी विविधता के बीच अखंडता प्रदर्शित की। यह माना जाता था कि बसने और आत्मसात करने के कारण पलायन करने वाले समूह आपस में मिल जाते हैं। पिछले कुछ दशकों में न केवल भारत में बल्कि पूरी दुनिया में सब कुछ पूरी तरह से बदल गया है। यह कहने में कोई अतिशयोक्ति नहीं होगी कि जातीयता बढ़ती समस्याओं में से एक है। हमें इन जातीय लहरों की वास्तविकता का सामना करना होगा। अब, एकीकरण की इस नई स्थिति से लड़ने के लिए कुछ नए तरीकों और साधनों को खोजना आवश्यक है। इस संदर्भ में हमें अपने विचारों में वीनर द्वारा सुझाए गए महत्वपूर्ण तथ्य को ध्यान में रखना चाहिए कि जातीय समूह में विभिन्न भौतिकवादी मतभेद जरूरी नहीं कि हमें लड़ाई या प्रोत्साहन की ओर ले जाएं। जब इस तरह के भौतिकवादी मतभेदों को कुछ व्यक्तिगत उद्देश्यों, जैसे कि आर्थिक, राजनीतिक और शैक्षिक मार्ग में बाधाओं के रूप में देखा जा रहा है, तो हम जातीय आंदोलनों में कट्टरपंथी चरित्र की शुरुआत देखते हैं। इसलिए, सीमाओं में जातीय लहर अपने संकल्प के बारे में एक विशेष समूह के लोगो को कैद करने का एक तरीका है कि वे जातीयता को संबोधित करते हैं।

जाति में परिवर्तन

योगेंद्र सिंह ने अपनी पुस्तक 'सोशल स्ट्रेटिफिकेशन एंड चेंज इन इंडिया, मनोहर, 1977' में जाति व्यवस्था में बदलाव की व्याख्या की है। उनके अनुसार भारत में स्तरीकरण की रचनात्मक इकाइयों में जाति एक बहुत ही महत्वपूर्ण इकाई है। योगेंद्र सिंह के अनुसार, जाति में दो तरह के बदलाव आ रहे हैं– संरचनात्मक और सांस्कृतिक।

(1) संरचनात्मक परिवर्तन : योगेंद्र सिंह के अनुसार, जब हम किसी जाति को संरचना के रूप में देखते हैं तो उसको लेकर हम उस व्यवहार को शामिल करते हैं जिसे कुछ प्रासंगिक महत्व मिला है। उदाहरण के लिए एक विशेष जाति के सदस्य का अपनी ही जाति में विवाह संबंध। इसका अर्थ है कि जाति में विवाह उस जाति का संरचनात्मक पहलू है। इसी तरह दूसरा पहलू वित्तीय है। श्रम विभाजन जाति का संरचनात्मक परिवर्तन है।

योगेंद्र सिंह का कहना है कि किसी भी जाति में ये संरचनात्मक पहलू पारंपरिक नहीं हैं, आज हम उसमें बदलाव देख रहे हैं। बहुत से लोग अपनी जाति से बाहर विवाह कर रहे हैं, वे वहां पारंपरिक आजीविका छोड़कर कुछ अन्य व्यवसायों को अपना रहे हैं। इसी सन्दर्भ में बोगले कहते हैं कि अब संरचनात्मक पहलुओं की दृष्टि से जातियाँ बहुत तेजी से बदल रही हैं। इन संरचनात्मक परिवर्तनों के कारण हम पूरी जाति की संरचना में अंतर पाते हैं। अब हम जाति और उप–जाति में अंतर कर रहे हैं।

जाति संरचना में जो परिवर्तन आ रहा है उसे दो स्तरों पर देखा जा सकता है। एक, जाति के बाहर के कारक जाति संरचना को प्रभावित कर रहे हैं और इसमें विकेंद्रीकरण, औद्योगीकरण, भूमि सुधार और अन्य सामाजिक कारक शामिल हैं। ये

टिप्पणी

सभी कारक जाति संरचना के बाहर से हैं और जाति संरचना को प्रभावित करते हैं। जाति में इन परिवर्तनों का दूसरा कारक आंतरिक गत्यात्मकता है। इसका मतलब यह हुआ कि जाति खुद इस तरह की व्यवस्था में अपनी स्थिति बदलना चाहती है। जाति संरचना में यह परिवर्तन कुछ आंतरिक कारकों के कारण ही हुआ है।

(2) सांस्कृतिक परिवर्तन : योगेन्द्र सिंह ने गतिशीलता के माध्यम से सांस्कृतिक परिवर्तन की व्याख्या की है। यह जाति संरचना से संबंधित है। जब किसी भी जाति का आधार पवित्र और अपवित्र पहलू होता है तो इस खंड की निचली जाति चाहती है कि इसे अपनाने से यह पवित्र और अपवित्र सोच भी सामने आए। जब धोबी शाकाहारी बन जाता है और ब्राह्मणों की तरह त्योहार मनाता है, वह सोचता है कि उसे व्यवस्था में उच्च स्थान दिया जाएगा। स्पष्ट रूप से यह एक प्रक्रिया संस्कृतिकरण है। पश्चिमीकरण उच्च जाति के लिए है। वे जाति व्यवस्था से बाहर आकर पश्चिमी देशों के आधुनिकीकरण को अपनाते हैं। इससे विभिन्न जातियों में सांस्कृतिक परिवर्तन और गतिशीलता भी आती है। इसको योगेंद्र सिंह जाति व्यवस्था का आधुनिकीकरण कहते हैं। इसका मतलब है कि पारंपरिक जाति बनी रहेगी लेकिन आधुनिक हो जाएगी। अब हम सांस्कृतिक परिवर्तनों में महान परंपरा और छोटी परंपरा, पश्चिमीकरण, संस्कृतिकरण की व्याख्या करते हैं तो ये सभी कारक जाति व्यवस्था के परिवर्तन और गतिशीलता को समझने में सहायक होते हैं।

संस्कृतीकरण

पहली बार एम.एन. श्रीनिवास द्वारा 'संस्कृतिकरण' शब्द का उपयोग किया गया था। उनके अनुसार, इस सिद्धांत के माध्यम से पारंपरिक सामाजिक संरचना में सांस्कृतिक गतिशीलता को समझा जा सकता है। उन्होंने मैसूर की कुर्ग जाति का अध्ययन किया। उन्होंने देखा कि इस व्यवस्था की निचली जाति ब्राह्मणों की परंपरा और रीति–रिवाजों को अपनाती है जैसे कि ऐसे करने में इन निचली जातियों ने कुछ अस्वस्थ परंपराओं को छोड़ दिया हो। अब उनके लिए मांसाहारी भोजन की अनुमति नहीं थी, उन्होंने शराब का सेवन छोड़ दिया है, अपने देवी–देवता की प्रसन्नता के लिए जानवरों को मारना बंद कर दिया है और ब्राह्मणों की जीवन शैली का पालन करना शुरू कर दिया है। यह कुर्ग जाति यह मान रही थी कि कुछ वर्षों में ऐसी जाति व्यवस्था में उनका स्थान बढ़ जाएगा। श्रीनिवास ने इस गतिशीलता को ब्राह्मणीकरण के माध्यम से प्रस्तुत किया है और बाद में उन्होंने इसके संस्कृतिकरण का सिद्धांत प्रस्तुत किया है। यदि हम देखते हैं कि संस्कृतिकरण की यह प्रक्रिया निम्न जाति में कई परिवर्तन लाती है और इसके कारण कर्मकांड, धार्मिक परंपरा, दर्शन और सोच सब कुछ बदल जाता है। नीची जातियाँ अपने को ऊँची जाति के बराबर समझने लगती हैं। श्रीविनास के इस सिद्धांत की कई लोगों ने आलोचना की है। इसके बावजूद कोई भी इसे शरीरिक अनुभव के स्तर पर देख सकता था कि निम्न जाति ने इस जाति व्यवस्था में पवित्र और अपवित्र के क्षेत्र में गतिशीलता लाने के प्रयास किए थे।

पश्चिमीकरण

संस्कृतिकरण की तुलना में पश्चिमीकरण की प्रक्रिया सरल और आसान है। श्रीनिवास ने इस प्रक्रिया को समझाया कि ब्रिटिश औपनिवेशिक शासन के 150 वर्षों में भारतीय समाज की विभिन्न जातियों और संस्कृति में आए परिवर्तनों को पश्चिमीकरण कहा जा सकता है। ब्रिटिश शासन के कारण तकनीक हमारे पास आई, लोकतंत्र बन गया और विभिन्न नए विचार और मूल्य हमारे सामने आए, यह सब पश्चिमीकरण है। व्यक्तिगत रूप से श्रीनिवास आधुनिकीकरण की तुलना में पश्चिमीकरण के सिद्धांत को अधिक पसंद करते हैं। आधुनिकीकरण में, तर्कसंगतता बहुत मूल्यवान है। उच्च जाति ने भले ही इस मूल्य को स्वीकार नहीं किया हो लेकिन निश्चित रूप से यह कहा जा सकता है कि जाति व्यवस्था में उच्च जाति पश्चिम के प्रभाव का सम्मान करती है। यदि हम देखें तो सांस्कृतिक परिवर्तन के विश्लेषण की दृष्टि से संस्कृतिकरण और पश्चिमीकरण महत्वपूर्ण सिद्धांत हैं। दोनों सिद्धांत जाति व्यवस्था से संबंधित हैं। जहाँ उच्च जाति के अनुसरण के कारण निम्न जाति में सांस्कृतिक परिवर्तन का उल्लेख है, वहीं पश्चिमीकरण में उच्च जातियों में विभिन्न पश्चिमी परंपराओं और अनुष्ठानों के अनुकूलन का उल्लेख है। ये दोनों प्रक्रियाएं विभिन्न जातियों की सांस्कृतिक परंपराओं को दर्शाती हैं।

महान परंपरा और छोटी परंपरा

जाति व्यवस्था में विभिन्न शक्तियों के परिवर्तन का एक और कारण योगेन्द्र सिंह की दृष्टि में महान परंपरा और छोटी परंपरा है। इन दोनों सिद्धांतों को रॉबर्ट रेडफी एल्ड ने मैक्सिको के गाँव में अपनी पढ़ाई के दौरान लागू किया था, रेडफी एल्ड, मिल्टन सिंगर और मेकिम मैरियट के इन सिद्धांतों ने ग्रामीण जीवन में सामाजिक परिवर्तनों का अध्ययन किया है। इन सिद्धांतों के पीछे मुख्य विचार परंपरा और विकासवाद का संगठन था। इसके अनुसार किसी भी समाज का विकास दो कारणों से होता है– एक समाज अपने आंतरिक कारणों से बदलता है और दूसरा, कई बाहरी कारणों से। सिंगर और मैरियट द्वारा गाँवों में विभिन्न जातियों में परिवर्तन पर समान सिद्धांतों को लागू किया गया था। वे इस निष्कर्ष पर पहुँचे कि जब भी कोई समाज बदलता है तो इन परिवर्तनों का कारण समाज में ही पाया जाता है और दूसरा कारण एक जाति का दूसरी जाति से संबंध है। वही सिद्धांत वे जाति व्यवस्था पर लागू करते हैं। वे कहते हैं कि भारतीय सभ्यता का विकास इन्हीं दो परंपराओं– महान परंपरा और छोटी परंपरा से हुआ है।

ये दोनों परंपराएं एक–दूसरे के संपर्क में आती हैं और परिणामस्वरूप सामाजिक परिवर्तन होता है। मेकिम मैरियट ने सभ्यता की इस परंपरा का अध्ययन ग्राम कृष्णा गाडी में किया है जो कि उत्तर प्रदेश के अलीगढ़ में स्थित है। इस गांव की अपनी छोटी परंपरा है, स्थानीय देवी–देवता गांव की विभिन्न परंपराएं और अनुष्ठान हैं। ये सभी तत्व गांव की सीमा से बाहर जाकर महान हिंदू ग्रंथों की परंपरा के साथ संबंध स्थापित करते हैं।

टिप्पणी

विभिन्न धार्मिक पुस्तकों में महान परंपराओं की व्याख्या की गई है और स्थानीय परंपराएं इन परंपराओं से अलग हैं लेकिन उन्हें महान परंपरा के लोग माना जाता है। जब स्थानीय लोगों द्वारा इन महान परंपराओं को अपनाया जाता है तो यह एक छोटी परंपरा बन जाती है। मैरियट ने इस प्रक्रिया को संकीर्णता के रूप में निर्धारित किया। जब इस संकीर्णता को महान परंपरा से जोड़ा जाता है तो इस प्रक्रिया को सार्वभौमीकरण कहा जाता है। इसलिए, सार्वभौमिकरण और संकीर्णतावाद, संस्कृतिकरण और पश्चिमीकरण जैसे सामाजिक परिवर्तनों को समझने में सहायक होते हैं। जब हम विभिन्न जातियों में संरचनात्मक और सांस्कृतिक परिवर्तन देखते हैं, तो हमें संस्कृतिकरण, पश्चिमीकरण, सार्वभौमिकरण और संकीर्णता की प्रक्रिया का विश्लेषण करना चाहिए।

(1) अनुसूचित जातियों की स्थिति में परिवर्तन : जब हम जाति व्यवस्था में परिवर्तन के बारे में चर्चा करते हैं तो हमें यह देखना चाहिए कि अनुसूचित जाति में क्या परिवर्तन हुए हैं। यदि हम विभिन्न धार्मिक पहलुओं की दृष्टि से देखें तो हम पाएंगे कि अनुसूचित जाति का प्रमुख हिस्सा अछूतों का है। हिंदू मान्यता के अनुसार इन जातियों के पेशे अपवित्र हैं और इस वजह से उन्हें हमारे समाज में नीचा स्थान मिला है। ऐसा नहीं है कि सभी निचली जातियां समान हैं। उनका भी अपना सिस्टम है। बुद्धिजीवियों ने इन अछूतों को उदास और बाहरी के रूप में विभाजित किया है। ऐसे में उन पर कई तरह के प्रतिबंध लगा दिए गए थे। 1931 के अर्थ में यह दुखद है कि कोई भी ब्राह्मण नाई, दर्जी आदि इस दलित जाति को कोई सेवा प्रदान नहीं करेगा और उन्हें मंदिरों में प्रवेश नहीं करने दिया जाएगा। आंद्रे बेताई (1969), एम.एन. श्रीनिवास (1969) बी.एस. कोहन (1959) और ओ.एम. लिंच (1968) ने स्थापित किया है कि अब ये निचली जातियाँ देश की मुख्य धारा में आ रही हैं। वे संस्कृतिकरण को अपना रहे हैं और वित्तीय स्तर पर विकास हो रहा है। अम्बेडकर ने इन जातियों को हिंदू धर्म छोड़कर बौद्ध धर्म अपनाने के लिए तैयार किया और कई अछूत इसके लिए तैयार हो गए। विभिन्न समाजशास्त्रियों द्वारा किए गए अध्ययनों से पता चलता है कि इन जातियों की व्यवस्था में कोई अंतर या परिवर्तन नहीं देखा गया है। वास्तव में पिछले दो–तीन दशकों में उनकी सामाजिक और आर्थिक स्थिति में सुधार देखा गया है। उनकी जीवनशैली में भी बदलाव देखा गया है। लेकिन कैथलीन गैफ (1970) के अनुसार, इन अछूतों के अन्य जातियों के साथ संबंधों के स्तर में कोई बड़ा अंतर नहीं देखा गया है। एम.एस.ए. राव ने भी कोई महत्वपूर्ण परिवर्तन नहीं देखा है। उसके अनुसार : आज भी, हरिजन शोषित समूह हैं। वे उस उत्पादन प्रणाली के भागीदार हैं जहाँ नियंत्रण उच्च जातियों और उच्च समाज के हाथों में है।

(2) जाति प्रतिबंध अब कमजोर हो गए हैं : जाति में हो रहे परिवर्तनों को केवल एक कारण से नहीं समझा जा सकता है। इसके लिए कई कारण हैं। अतीत में, जाति पर कई तरह के प्रतिबंध थे, जो अब काफी हद तक कमजोर हो गए हैं, गाँवों में महिलाओं की स्थिति अभी भी दयनीय है। शहरों और कस्बों में उन पर लगी रोक हटाई जा रही है। धर्मनिरपेक्ष और लोकतांत्रिक छवि ने भी इन प्रतिबंधों को हटाने में मदद की है।

टिप्पणी

(3) जाति अब व्यवसायों का निर्धारण नहीं करती है : अब अवसरों के आधार पर व्यवसायों का चयन किया जाता है। अब, उच्च जातियों ने विभिन्न गैर–परंपरागत व्यवसायों को अपना लिया है। अब पेशे जाति आधारित की तुलना में अधिक धर्मनिरपेक्ष हैं। प्रत्येक जाति वित्तीय लाभ और प्रतिष्ठा के लिए कोई भी पेशा अपनाने के लिए स्वतंत्र है।

पहले ग्रामीण अर्थव्यवस्था जजमानी परंपरा पर आधारित थी, लेकिन नकद भुगतान की गई परंपरा के कारण ये पारंपरिक सेवाएं अब काम नहीं कर रही हैं। कोई कमीन और जजमान परंपरा अब मौजूद नहीं है।

(4) जाति का नया अवतार : पिछले दो–तीन दशकों में जाति अपने नए अवतार में प्रकट हुई है। अब जातियाँ शिक्षा, खेल और राजनीति हर क्षेत्र में बराबर हिस्सा ले रही हैं।

अपनी प्रगति जांचिए

3. किसे विकसित, विकासशील और अविकसित श्रेणी में वर्गीकृत किया जा सकता है?

   (क) परंपरा को (ख) समाज को

   (ग) विधान को (घ) विधि को

4. "संस्कृति संपूर्ण भौतिकवादी और बौद्धिक साधन है, जिसका उपयोग पुरुषों द्वारा संतुष्टि के लिए किया जाता है।" –यह कथन किसका है?

   (क) टेलर का (ख) मदान का

   (ग) पैडिंगटन का (घ) मजूमदार का

4.4 अपनी प्रगति जांचिए प्रश्नों के उत्तर

1. (क)
2. (घ)
3. (ख)
4. (ग)

4.5 सारांश

जिस क्षण समाज ने औद्योगीकरण के युग में प्रवेश किया, आर्थिक संस्थाओं और आर्थिक संरचना के रूपों में परिवर्तन आ गया था। औद्योगीकरण के परिणामस्वरूप बड़े पैमाने पर काम होने लगा, श्रम विभाजन और विशेषज्ञता सबसे आगे आई। मिलों, कारखानों आदि की स्थापना के लिए पूँजी की आवश्यकता उत्पन्न होने लगी और जिनके पास पूँजी थी वे उत्पादन के विकसित साधनों के मालिक बन गए जैसे मिलें, कारखाने

टिप्पणी

आदि। इन लोगों को पूँजीवादी के रूप में जाना जाने लगा और परिणामस्वरूप, पूँजीवाद ने जन्म लिया।

पूँजीवाद औद्योगिक युग द्वारा उत्पादित एक अर्थव्यवस्था है जिसमें समाज दो स्पष्ट वर्गों में विभाजित है, अर्थात पूँजीपति वर्ग और मजदूर वर्ग। पूँजीपति वर्ग संसाधन संपन्न है और मजदूर वर्ग में संसाधनों की कमी है। श्रमिक अपना श्रम बेचकर अपनी आजीविका कमाते हैं।

आधुनिक अर्थव्यवस्था का एक अन्य मुख्य प्रकार समाजवाद है। समाजवाद का जन्म पूँजीवाद और निजी संपत्ति की बुराइयों के विरोध के रूप में हुआ था। समाजवाद के तत्व प्राचीन और मध्य युग के विचारकों के लेखन में भी पाए जाते हैं जैसे प्लेटो, सेंट साइमन, थॉमस मूर आदि लेकिन वर्तमान समय में समाजवाद पर वैज्ञानिक विचार व्यक्त करने वाले प्रमुख हैं कार्ल मार्क्स। विभिन्न विचारकों ने समाजवाद को परिभाषित किया है।

एक राजनीतिक समिति के रूप में, राज्य समुदाय की शांति, संगठन और सुरक्षा के लिए जिम्मेदार है। इसके द्वारा किए जा रहे सार्वभौमिक कार्यों के आधार पर कुछ विचारकों ने राज्य को एक संस्था के रूप में माना है। जो भी हो, राज्य राजनीतिक संगठन की एक महत्वपूर्ण और मौलिक संस्था है।

इस ब्रह्मांड के निर्माण की शुरुआत में राज्य नामित कोई संगठन नहीं था। जिस व्यक्ति के पास समूहों में अधिक शक्तियाँ और संपत्ति होती थी उसे विशेष दर्जा प्राप्त होता था और वह व्यक्ति मुखिया बनकर समूह के अन्य सदस्यों पर नियंत्रण और नियमन रखता था। धीरे–धीरे ये प्रमुख राजा बन गए और परिणामस्वरूप, एक राजा की संप्रभुता एक निश्चित क्षेत्र से जुड़ी हुई थी और इस तरह राज्य की व्यवस्था शुरू हुई। राजाओं के युग में, राज्य के कर्तव्य सीमित थे और राजा के पास असीमित या ईश्वरीय अधिकार और शक्तियाँ थीं। स्थिति धीरे–धीरे बदल गई, राज्यों का स्वरूप बदल गया, राज्य की अवधारणा बदल गई और परिणामस्वरूप राज्य के कर्तव्य और अधिकार भी बदल गए। आधुनिक युग में राज्य के कर्तव्यों का दायरा अधिक विस्तृत होता जा रहा है। राज्य को अब अपने नागरिकों के पालने से कब्र तक की सुरक्षा के लिए जिम्मेदार माना जाता है। आज, राज्य को अपनी इच्छा से अपने अधिकारों का उपयोग करने की अनुमति नहीं दी जा सकती है; बल्कि उससे अपने नागरिकों के लिए विभिन्न कार्य करने की अपेक्षा की जाती है। वास्तव में हमारे सामने मूल प्रश्न यह है कि समाजशास्त्रीय दृष्टिकोण से राज्य के कार्य क्या होने चाहिए? और राज्य की सापेक्ष सीमाएँ क्या हैं?

आधुनिक अर्थव्यवस्था में हमने बाजार की जो भूमिका देखी है, उसकी शुरुआत बहुत पुरानी नहीं है। पूरी दुनिया में इस प्रणाली का संबंध उत्पादन की प्रक्रिया से है। शुरू में बाजार जैसी कोई व्यवस्था नहीं थी। लोग वस्तु विनिमय करते थे जो समुदाय आधारित संबंधों पर आधारित है। कुछ समुदायों के जीवन में एक ऐसी स्थिति भी आई जब आवश्यकता से अधिक वस्तुओं का उत्पादन होने लगा। उस अतिरिक्त उपज को बेचने के लिए बाजार की आवश्यकता महसूस की गई और इस प्रकार बाजार ने

टिप्पणी

समुदाय आधारित या व्यक्तिगत आधारित वस्तु विनिमय की जगह ले ली। इस संदर्भ में, बाजार अर्थव्यवस्था एक ऐसी प्रणाली है जिसमें उत्पादन जो आजीविका के लिए आवश्यक है; बेचा जा सकता था और उपभोग के लिए अन्य सभी सामान बेचा जा सकता था।

हमें पता करने की जरूरत है कि भारत में सामाजिक–आर्थिक व्यवस्था में आर्थिक विकास के लाभों का वितरण कैसे हुआ है, राष्ट्रीय आय में वृद्धि से किन वर्गों को लाभ हुआ है, और क्या समय–समय पर आय और धन के वितरण में सुधार हुआ है या नहीं देश के औपनिवेशिक शोषण और कम से कम विकास के कारण यहां जो समस्याएँ पैदा हुईं इनमें बेरोजगारी और गरीबी सबसे महत्वपूर्ण हैं। आय वितरण में असमानता, कार्यस्थल पर असमानता आदि ने अमीर और गरीब के बीच तथा ग्रामीण और शहरी क्षेत्रों के बीच असमानताओं को बढ़ा दिया है। भारत में आय असमानताओं के दो मुख्य कारण हैं: (i) निजी संपत्ति पर आधारित प्रचलित आर्थिक व्यवस्था और (ii) विरासत के नियम।

4.6 मुख्य शब्दावली

- **निष्कर्ष** : नतीजा, परिणाम।
- **संरचना** : ढांचा।
- **निर्भर** : आश्रित।
- **अवसर** : मौका।
- **नुकसान** : हानि, घाटा।
- **दृढ़** : मजबूत, पक्का

4.7 स्व–मूल्यांकन प्रश्न एवं अभ्यास

लघु–उत्तरीय प्रश्न

1. पूंजीवाद क्या है?
2. सामाजवाद के क्या लक्षण हैं?
3. बाजार प्रणाली क्या है?
4. एनजीओ से आप क्या समझते हैं?
5. सामाजिक संरचना शब्द का प्रयोग किस संदर्भ में किया जाता है?

दीर्घ–उत्तरीय प्रश्न

1. मिश्रित अर्थव्यवस्था की विवेचना कीजिए।
2. राजनीतिक चिंतन के क्षेत्र में गांधी जी के प्रमुख सिद्धांतों के समूह यानी गांधीवाद की व्याख्या कीजिए।

3. राज्य की परिभाषा देते हुए उसके मूल तत्वों का विश्लेषण कीजिए।
4. भारत के संदर्भ में गैर सरकारी संगठन यानी एनजीओ की भूमिका की समीक्षा कीजिए।
5. परंपरा के विकास और विस्थापन पर प्रकाश डालिए।

4.8 सहायक पाठ्य सामग्री

जे.पी. सिंह, *समाजशास्त्र : अवधारणाएं एवं सिद्धांत*, पीएचआई लर्निंग प्रा. लि., दिल्ली, 2013.

जे.पी. सिंह, *आधुनिक भारत में सामाजिक परिवर्तन*, पीएचआई लर्निंग प्रा. लि., दिल्ली, 2016.

श्यामाचरण दुबे, *विकास का समाजशास्त्र*, दिवि पब्लिशर्स, 1996.

डॉ. पूरन चंद्र जोशी, *परिवर्तन और विकास के सांस्कृतिक आयाम*, राजकमल प्रकाशन, 1999.

धीरूभाई शेठ, *सत्ता और समाज*, सं. : अभय कुमार दुबे, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, 2009.

सच्चिदानंद सिन्हा, *भूमंडलीकरण की चुनौतियां*, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली.

साक्षात्कार, अंक 385–390, मध्य प्रदेश शासन साहित्य परिषद, भोपाल, 2012.

इकाई 5 विकास का भारतीय अवलोकन : पंचवर्षीय योजनाओं का समाजशास्त्रीय मूल्यांकन

संरचना

5.0 परिचय
5.1 उद्देश्य
5.2 विकास का भारतीय अवलोकन
  5.2.1 भारत में पंचवर्षीय योजना
  5.2.2 बारहवीं अंतिम पंचवर्षीय योजना एवं नीति आयोग
  5.2.3 गरीबी उन्मूलन कार्यक्रम और पंचवर्षीय योजनाएँ
  5.2.4 आर्थिक सुधारों के सामाजिक परिणाम
  5.2.5 वैश्वीकरण : सांस्कृतिक और सामाजिक पहलू
  5.2.6 सूचना–तकनीक क्रांति के सामाजिक प्रभाव
5.3 सामाजिक नीतियाँ और कार्यक्रम तैयार करना
  5.3.1 नीति और परियोजना कार्यान्वयन
  5.3.2 कार्यप्रणाली की निगरानी और मूल्यांकन
5.4 अपनी प्रगति जांचिए प्रश्नों के उत्तर
5.5 सारांश
5.6 मुख्य शब्दावली
5.7 स्व–मूल्यांकन प्रश्न एवं अभ्यास
5.8 सहायक पाठ्य सामग्री

5.0 परिचय

वर्तमान भारतीय समाज का निर्माण हमारे आदि मूल्यों, धर्म पर आधारित है दर्शन और नैतिक मूल्य भी इसी युग में ही प्रस्तुत किए गए थे। सामाजिक समस्याओं से पीड़ित होकर समाज में क्रांतिकारी परिवर्तन लाया जा सकता है। नियोजित परिवर्तन में सामाजिक–आर्थिक परिवर्तन को एक नए रूप में देखा जाता है। नियोजित परिवर्तनों के इस प्रयोग को समाजवादी और पूँजीवादी, विकसित, विकासशील और अविकसित देशों की विकास योजना में पर्याप्त स्थान मिला है नियोजित सामाजिक–आर्थिक परिवर्तनों के माध्यम से निर्धारित उद्देश्यों को प्राप्त करना ही नियोजित परिवर्तन है। आज के परिदृश्य में सामाजिक परिवर्तन लाने हेतु सामाजिक सुधार के महत्व पर भी विचार किया जा रहा है और इस बात पर जोर दिया जाता है कि कल्याणकारी समाज की स्थापना के साथ–साथ सामाजिक सुधार भी आवश्यक है।

प्रस्तुत इकाई में पंचवर्षीय योजनाओं का समाजशास्त्रीय मूल्यांकन किया गया है तथा विकास के विभिन्न पहलुओं का विस्तारपूर्वक अध्ययन किया गया है।

5.1 उद्देश्य

इस इकाई को पढ़ने के बाद आप–

- विकास का भारतीय अवलोकन कर पाएंगे;
- पंचवर्षीय योजनाओं का समाजशास्त्रीय मूल्यांकन कर पाएंगे;

- आर्थिक सुधारों के सामाजिक परिणामों को समझ पाएंगे;
- वैश्वीकरण के सांस्कृतिक एवं सामाजिक पहलुओं के बारे में जान पाएंगे;
- सूचना–तकनीक क्रांति के सामाजिक प्रभावों की समीक्षा कर पाएंगे;
- सामाजिक नीतियों और कार्यक्रमों का विश्लेषण कर पाएंगे।

5.2 विकास का भारतीय अवलोकन

आज हम भारतीय समाज को जिस दौर से देखते हैं, वह अतीत में सांस्कृतिक आदान–प्रदान और स्वतंत्रता के बाद राजनीतिक, सामाजिक, वित्तीय और धार्मिक जैसी नई स्थितियों के विकास के कारण बना है। इस प्रकार आज हम जिस समाज को देखते हैं उसे निम्नलिखित आधारों पर समझा जा सकता है–

1. **धर्मनिरपेक्षता**– आज के भारतीय समाज का विकास विभिन्न धार्मिक समूहों से हुआ है और हमारे समाज में सभी धार्मिक समूहों को बिना किसी असमानता के समान माना जाता है। इस तरह से धर्मनिरपेक्षता एक ऐसी स्थिति प्रस्तुत करती है जहाँ लोग अन्य धर्मों के अनुयायियों का सम्मान करते हैं और उनके साथ सामंजस्य रखते हैं और सभी को अपने धर्म का पालन करने की पूरी स्वतंत्रता है। इसका मतलब है धर्म के आधार पर कोई असमानता नहीं है।
2. **वर्गों का वितरण**– आज के भारतीय समाज में जाति व्यवस्थाओं में विभाजन की प्रक्रिया शुरू हो गई है और इस विभाजन का महत्व अधिक होता जा रहा है। केवल विभाजन के आधार पर लोगों की सामाजिक स्थिति बदल रही है। श्रमिक वर्ग, उद्यमी वर्ग, शिक्षक वर्ग, इंजीनियर वर्ग, व्यापारी वर्ग और कई अन्य वर्ग उनके संबंधित क्षेत्रों का आधार बनते जा रहे हैं। व्यापक शब्दों में, हमारी भारतीय जनता में दो वर्ग हैं। एक उच्च वर्ग दूसरा, निम्न वर्ग। पहले वर्ग के अंतर्गत आने वाली जनता सामाजिक, आर्थिक और राजनीतिक रूप से अच्छी तरह से संपन्न है।
3. **आधुनिकीकरण**– आज के भारतीय समाज में आधुनिकीकरण के विकास को सामाजिक परिवर्तन के नए मानक के रूप में लिया जा रहा है। इस मानक के अनुसार, भारतीय जनता का एक बड़ा वर्ग इन पुरानी सामाजिक परंपराओं के खिलाफ हो रहा है। भारतीय समाज नई विचारधाराओं का अनुसारण करके प्रगतिशीलता को दिखा रहा है।
4. **संस्कृतिकरण**– भारतीय समाज में आज संस्कृतिकरण के कारण जातियों का पुराना ढाँचा टूटने की कगार पर है। जिसके परिणामस्वरूप धीरे–धीरे सभी जातियाँ अपने पारंपरिक पेशों को छोड़कर नए व्यवसायों का चयन कर रही हैं। एम.एन. श्रीनिवास के अनुसार, ''संस्कृतिकरण वह प्रक्रिया है जिसके माध्यम से कोई भी निम्न जाति का हिंदू किसी भी उच्च जाति के हिंदू की परंपरा, रीति–रिवाजों, अवधारणाओं और जीवन शैली को अपनाता है और

इसके बाद इस जाति व्यवस्था में उच्च सामाजिक स्थिति का दावा करना शुरू कर देता है।'' इस संस्कृतिकरण के कारण विभिन्न जातियों के बीच सामाजिक दूरी कम हो रही है और यह कर्म और पुनर्जन्म जैसी अवधारणाओं के महत्व में कमी को प्रदर्शित करता है।

5. **लोकतंत्रीकरण**– परंपरागत रूप से भारतीय समाज जाति व्यवस्था पर आधारित था जिसके अंतर्गत, एक विशेष जाति में जन्म लेने पर उस जाति की प्रस्थिति, व्यवसाय, विशेषताएं, आदि उस व्यक्ति को स्वतः ही प्राप्त हो जाती थीं। लेकिन आज की समाजवादी व्यवस्था में जन्म, रंग, पंथ, जाति और धर्म के लिए कोई जगह नहीं है। भारतीय समाज में हर स्तर पर हम लोकतंत्रीकरण की प्रक्रिया देखते हैं। लोकतंत्रीकरण जीवन के हर क्षेत्र में लोकतांत्रिक मूल्यों को प्रसारित करने की प्रवृत्ति है। इसलिए लोकतंत्रीकरण की यह प्रवृत्ति लोगों की इच्छा और इस इच्छा से समाज के विकास पर जोर देती है और यह समानता, समाजवाद, आर्थिक न्याय और मानव कल्याण के दर्शन के साथ चलती है।

योजना का अर्थ

भारत में भी स्वतन्त्रता के पश्चात् समाज कल्याण एवं समाज के पुनर्निर्माण के उद्देश्य से पंचवर्षीय योजनाओं की कल्पना की गई। ब्रिटिश शासन के 150 वर्षों के दौरान देश की आर्थिक स्थिति खराब थी। कई सामाजिक और आर्थिक समस्याएँ थीं और उन पर काबू पाने के लिए नियोजित विकास ही एकमात्र उत्तर था। इस प्रकार 1951 से देश में पंचवर्षीय योजनाएँ शुरू की गईं। सामाजिक कल्याण के लिए विभिन्न पंचवर्षीय योजनाओं में किए गए प्रयासों का उल्लेख करने से पहले नियोजन के अर्थ और महत्व को जानना महत्वपूर्ण है।

प्रो. हैरिस के अनुसार, ''योजना मुख्य रूप से उपलब्ध संसाधनों का उपयोग करने, पूर्व–निर्धारित लक्ष्यों को प्राप्त करने और उनसे अधिकतम लाभ प्राप्त करने के लिए उपयोग करने की प्रणाली है''। भारत के योजना आयोग के अनुसार, नियोजन वास्तव में संसाधनों को व्यवस्थित करने और अधिकतम लाभों के साथ सामाजिक लक्ष्यों को प्राप्त करने की प्रक्रिया है।

दोनों परिभाषाओं में यह स्पष्ट है कि नियोजन में सबसे पहले हम अपना उद्देश्य और लक्ष्य निर्धारित करते हैं और इसे प्राप्त करने के लिए हमने उपलब्ध संसाधनों का सर्वोत्तम संभव तरीके से उपयोग किया जाता है। योजना ऐसी हो जिसमें सीमित संसाधनों का बुद्धिमानी से उपयोग किया जाय ताकि अधिकतम लाभ और पूर्व–निर्धारित लक्ष्यों को प्राप्त किया जा सके।

सामान्य तौर पर नियोजन दो प्रकार का होता है– पहला वित्तीय नियोजन और दूसरा सामाजिक नियोजन। वित्तीय नियोजन के तहत हम कृषि, औद्योगिक, खनिज, व्यापार, परिवहन, संचार, रोजगार और प्रति व्यक्ति आय क्षेत्रों के लिए पूर्व–निर्धारित लक्ष्यों की प्राप्ति पर ध्यान केंद्रित करते हैं।

सामाजिक नियोजन के अंतर्गत हम मातृ एवं शिशु कल्याण, श्रम कल्याण, शारीरिक रूप से विकलांग कल्याण, स्वास्थ्य एवं शिक्षा कल्याण, पिछड़े वर्गों का कल्याण और विभिन्न सामाजिक मिथकों को दूर करने को शामिल करते हैं। सामाजिक नियोजन एक व्यापक परिकल्पना है जिसमें वित्तीय नियोजन भी शामिल है।

भारत में नियोजन की आवश्यकता और महत्व

भारत एक विशाल देश है और इसकी सामाजिक और आर्थिक समस्याएँ भी बड़ी हैं। यहां लगभग 28.8% लोग गरीबी रेखा से नीचे जीवन यापन करते हैं। यहाँ गरीबी, बेरोजगारी, भीख माँगना, छुआछूत, भाषा बहुलता, सांप्रदायिकता, औद्योगिक तनाव, निरक्षरता, अपराध, बाल शोषण और वित्तीय पिछड़ापन जैसी समस्या बहुत आम हैं। भारत में इन समस्याओं को दूर करने, इन आर्थिक विषमताओं को दूर करने, सामाजिक तनाव को दूर करने, सांस्कृतिक पिछड़ेपन को नियंत्रित करने, गाँवों के पुनर्निर्माण और सामाजिक कल्याण के लिए योजना बनाना आवश्यक है। भारत में विभिन्न क्षेत्रों में नियोजन की आवश्यकता और महत्व का अनुमान निम्नानुसार लगाया जा सकता है–

1. **कृषि क्षेत्र में**– भारत मुख्य रूप से कृषि पर निर्भर है लेकिन हम इस क्षेत्र में बहुत पीछे हैं क्योंकि यहाँ के किसान बीज और खाद की नवीनतम और वैज्ञानिक तकनीकों, उपकरणों से अच्छी तरह वाकिफ नहीं हैं। कृषि और उपज के विकास के लिए नियोजन की सहायता लेना आवश्यक है।
2. **औद्योगिक क्षेत्र में**– औद्योगिक क्षेत्र में भी भारत अन्य देशों की तुलना में काफी पीछे है। वैज्ञानिक जानकारी, वित्त, और साहस के अभाव में औद्योगिक विकास नहीं हो सकता। दूसरी ओर, औद्योगीकरण ने कई समस्याओं को जन्म दिया है जैसे औद्योगिक तनाव, वर्ग संघर्ष, वित्तीय असमानता, मलिन बस्तियां, बेरोजगारी, गरीबी, पर्यावरण प्रदूषण, औद्योगिक असुरक्षा, मजदूरों, महिलाओं और बच्चों का शोषण आदि। सामाजिक और आर्थिक नियोजन ही एकमात्र तरीका है जिससे उपर्युक्त समस्याओं का समाधान किया जा सकता है।
3. **स्वार्थी समूहों पर नियंत्रण हेतु**– आधुनिक भारत में इतने मजबूत स्वार्थी समूह विकसित हो गए हैं जो अपने स्वयं के लाभ में रुचि रखते हैं। इन समूहों के साथ पिछड़े वर्ग के लोग प्रतिस्पर्धा करने की स्थिति में नहीं हैं। इससे आम जनता और पिछड़े वर्गों का शोषण होता है। राज्य संचालित योजनाओं में इन लोगों का शोषण नगण्य होता है और इन स्वार्थी समूहों पर नियंत्रण लगाया जाता है।
4. **ग्राम आधारित योजनाओं का पुनर्गठन हेतु**– ग्रामीण विकास के माध्यम से ग्रामीण जनता के जीवन का पुनर्गठन योजना बनाकर उन्हें समृद्ध और खुशहाल बनाया जा सकता है।
5. **सामाजिक कल्याण में सहायता हेतु**– नियोजन से ही समाज कल्याण संभव है। यहाँ हम अनुसूचित वर्ग, अनुसूचित जनजाति और पिछड़े वर्गों से

संबंधित विभिन्न सामाजिक और आर्थिक समस्याओं को देखते हैं। नियोजन से ही विकास संभव है। यहाँ मातृ एवं शिशु कल्याण, श्रम कल्याण, शारीरिक एवं मानसिक रूप से वंचित लोगों के कल्याण, परिवार नियोजन, स्वास्थ्य सुविधाओं और शिक्षा की सुविधाओं में वृद्धि करना आवश्यक है। इन सबके लिए सामाजिक नियोजन आवश्यक है।

6. **सामाजिक क्षेत्र में**– भारत में हमें जातिवाद और अस्पृश्यता से संबंधित बहुत सारी समस्याएँ देखने को मिलती हैं। यहाँ अपराध, बाल शोषण, सफेदपोश अपराध, आत्महत्या, वेश्यावृत्ति, भीख माँगना, सांप्रदायिकता, जनसंख्या, मुद्रास्फीति, गरीबी, युवा अशांति और भ्रष्टाचार जैसी समस्याएँ आमतौर पर देखी जाती हैं। इसके परिणामस्वरूप व्यक्तियों, परिवार और समाज में मतभेदों की दर बढ़ जाती है। इन सभी समस्याओं के समाधान के लिए और समाज के पुनर्निर्माण के लिए सामाजिक नियोजन आवश्यक है।
7. **राष्ट्रीय एकता के लिए**– भारत में विभिन्न मूल, जाति और उप–जाति के लोग रहते हैं और विभिन्न संस्कृतियाँ हैं। उन्हें एक साथ लाने के लिए और राष्ट्रीय एकता के लिए सामाजिक नियोजन आवश्यक है क्योंकि सामाजिक नियोजन की सहायता से ही इन सभी हितों की रक्षा की जा सकती है और लड़ाई की स्थिति को टाला जा सकता है।

उपर्युक्त क्षेत्रों के अलावा, धर्मों में पारंपरिक मिथकों और अंधविश्वासों को दूर करने के लिए, शारीरिक रूप से वंचित, विकलांग लोगों की रक्षा के लिए और अनाथों और भिखारियों को आश्रय प्रदान करने के लिए सामाजिक नियोजन की आवश्यकता है, जिसे ध्यान में रखते हुए भारत सरकार ने 1951 से पंचवर्षीय योजनाएँ शुरू कीं।

5.2.1 भारत में पंचवर्षीय योजना

भारत सरकार ने पंचवर्षीय योजना के माध्यम से वित्तीय और सामाजिक विकास को गति दी है और सामाजिक कल्याण के लिए नियोजित प्रयास किए हैं। विभिन्न पंचवर्षीय योजनाओं के नीचे दिए गए उल्लेख से यह स्पष्ट होता है।

प्रथम पंचवर्षीय योजना 1951–1956

दिसंबर 1946 में श्री के.सी. नियोगी की अध्यक्षता में सलाहकार योजना बोर्ड ने योजना आयोग की स्थापना का सुझाव दिया। 15 मार्च 1950 को इस सलाह को ध्यान में रखते हुए राष्ट्रीय योजना आयोग का गठन किया गया और श्री जवाहर लाल नेहरू को इसके अध्यक्ष के रूप में नामित किया गया। 16 महीने की चर्चा के बाद पंचवर्षीय योजना प्रस्तुत की गई। यह योजना पाँच साल के समय यानी 1 अप्रैल, 1951 से 31 मार्च, 1956 तक के लिए बनाई गई थी, इसे पहली पंचवर्षीय योजना के रूप में जाना जाता है। इस योजना के दौरान कुल 1960 करोड़ खर्च किए गए।

इस योजना के उद्देश्य निम्नलिखित थे–

(1) विभाजन के कारण आए शरणार्थियों को बसाना। (2) द्वितीय विश्व युद्ध और विभाजन के कारण उत्पन्न समस्याओं को हल करना (3) खाद्यान्न और कच्चे माल के

उत्पादन में वृद्धि करना। (4) देश की अर्थव्यवस्था में सुधार करना और अर्थव्यवस्था में स्थिरता लाना। (5) रोजगार प्रदान करने के लिए औद्योगिक खंड का विकास करना। (6) देश में समाजवादी प्रतिमान स्थापित करना। (7) पुनर्गठन के माध्यम से ग्रामीण क्षेत्र में सहायता शिक्षा, चिकित्सा, परिवहन, कृषि और उद्योग जैसी सुविधाएँ प्रदान करना। (8) समाज कल्याण के कार्यक्रम को प्रोत्साहित करना।

योजना का व्यय– प्रथम पंचवर्षीय योजना में कुल 1960 करोड़ व्यय किये गये। कृषि एवं सामुदायिक विकास हेतु 290 करोड़, सिंचाई एवं बाढ़ नियंत्रण हेतु 434 करोड़, ऊर्जा 149 करोड़, ग्रामीण एवं लघु उद्योग 42 करोड़, उद्योग एवं खनिज 55 करोड़, परिवहन एवं संचार 518 करोड़ तथा अन्य मद में 472 करोड़ रुपये रखे गए थे।

योजना की उपलब्धियाँ– इस योजना के दौरान राष्ट्रीय आय में 18% की वृद्धि हुई। कृषि क्षेत्र में 12.2% की वृद्धि देखी गई है। उद्योगों का विकास हुआ, सिंचित भूमि में वृद्धि हुई और बिजली उत्पादन 28 लाख किलोवाट हो गया। 1950–51 के दौरान 2.25 करोड़ छात्र थे जो इस योजना के अंत तक 3.14 करोड़ हो गए। लगभग 5 लाख शरणार्थियों का पुनर्वास किया गया और उन्हें भूमि और रोजगार प्रदान किया गया, 28 हजार शरणार्थियों को व्यावसायिक प्रशिक्षण दिया गया। अनुसूचित जनजातियों के लिए 19.83 करोड़, अनुसूचित जाति के लिए 7.8 करोड़, पूर्व–अपराधी जनजातियों के लिए 1.10 करोड़ और 2.03 करोड़ पिछड़े वर्गों के कल्याण के लिए खर्च किए गए। अगली अवधि के दौरान, विकलांगों, अनाथों, महिलाओं और बच्चों के विकास, स्वास्थ्य, शिक्षा प्रदान करने के लिए दुर्गा बाई देशमुख की अध्यक्षता में केंद्रीय समाज कल्याण बोर्ड की स्थापना की गई थी।

दूसरी पंचवर्षीय योजना 1956–1961

देश में दूसरी पंचवर्षीय योजना 1 अप्रैल 1956 से 31 मार्च 1961 तक लागू की गई थी। इस योजना का मुख्य उद्देश्य था (1) राष्ट्रीय आय में 25% की वृद्धि करके आम लोगों के जीवन स्तर को ऊपर उठाना। (2) प्रमुख और भारी उद्योगों का विकास (3) लोगों को अधिक से अधिक रोजगार के अवसर प्रदान करना, (4) लोगों के बीच समान आय और संपत्ति का वितरण करना एवं समाज में वित्तीय असमानता को समाप्त करना। इस योजना का मुख्य उद्देश्य समाज के समाजवादी ढाँचे को स्थापित करना था जिससे सहकारिता और भाईचारे का विकास हो और आर्थिक समस्या कम हो।

योजना का व्यय– इस योजना के दौरान कुल 4,672 करोड़ खर्च किए गए, जिसमें से 549 करोड़ कृषि और संबंधित कार्यों पर, 430 करोड़ सिंचाई और बाढ़ नियंत्रण पर, 452 करोड़ बिजली उत्पादन पर, 1261 करोड़ परिवहन और संचार पर, 273 करोड़ रुपये, शिक्षा और वैज्ञानिक अनुसंधान, स्वास्थ्य पर तथा अन्य क्षेत्रों पर 1,767 करोड़ रुपये खर्च किए गए।

इस योजना की उपलब्धियाँ– इस योजना के दौरान आय में 20% की वृद्धि, कृषि उत्पादन में 48.7% की वृद्धि और सार्वजनिक क्षेत्र के उद्योगों के उत्पादन में 8.4% की वृद्धि हुई है। 2.80 करोड़ हेक्टेयर भूमि सिंचित हो गई और स्कूलों में छात्रों

की संख्या 4.46 करोड़ हो गई, बिजली उत्पादन 56.6 लाख किलोवाट हो गया तथा 830 करोड़, विभिन्न सामाजिक सेवाओं के लिए इस योजना के दौरान खर्च किए गए। 1,72,000 शरणार्थी परिवारों का पुनर्वास किया गया और उन्हें घर बनाने के लिए ऋण प्रदान किया गया, उन्हें प्रशिक्षण और रोजगार प्रदान किया गया। अनुसूचित जनजातियों के कल्याण हेतु 43 करोड़, भूतपूर्व अपराधी जनजातियों के लिए 4 करोड़, पिछड़े वर्ग के लिए 5.86 करोड़, श्रम कल्याण के लिए 1.2 करोड़, औद्योगिक कॉलोनियों के लिए 24.2 करोड़, स्लम और हरिजन कल्याण के लिए 9.9 करोड़ खर्च किए गए। इस तरह प्रथम पंचवर्षीय योजना की तुलना में द्वितीय पंचवर्षीय योजना में समाज कल्याण पर अधिक धन व्यय किया गया।

तीसरी पंचवर्षीय योजना 1961–66

तीसरी पंचवर्षीय योजना 1 अप्रैल 1961 को लागू की गई थी। इन योजनाओं के उद्देश्य निम्नलिखित थे– (1) राष्ट्रीय आय में 5% वार्षिक की दर से 25% की वृद्धि करना। (2) देश को खाद्यान्न के मामले में आत्मनिर्भर बनाना और उद्योगों के लिए आवश्यक कच्चे माल की आपूर्ति बढ़ाना। (3) स्थानीय संसाधनों के माध्यम से देश की आवश्यकता को पूरा करने के लिए लोहा, रासायनिक उद्योग, ईंधन और बिजली जैसे बुनियादी उद्योगों का विस्तार करना। (4) देश में मानव शक्ति का अधिकतम उपयोग और रोजगार के अवसरों में वृद्धि करना। (5) आय और संपत्ति के बीच के अंतर को कम करना और वित्तीय शक्ति का समान वितरण सुनिश्चित करना।

योजना का व्यय – इस योजना के दौरान सार्वजनिक क्षेत्र पर कुल 8,577 करोड़ खर्च किए गए, जिसमें से 1,089 करोड़ कृषि और सामुदायिक विकास के लिए, 665 करोड़ कृषि और बाढ़ नियंत्रण पर खर्च किए गए। 1,252 करोड़ बिजली पर, 241 करोड़ ग्रामीण और लघु उद्योग पर, 1,726 करोड़ उद्योगों और खनिजों के लिए, 2,112 करोड़ परिवहन और संचार पर खर्च किए गए, शिक्षा और वैज्ञानिक अनुसंधान पर 660 करोड़, स्वास्थ्य पर 226 करोड़, अन्य मदों पर 606 करोड़ खर्च किए गए। निजी क्षेत्र हेतु 4100 करोड़ निर्धारित किए गए थे।

योजना की उपलब्धि– इस योजना के दौरान भारत–पाक युद्ध, विदेशी सहायता में कमी और कम वर्षा के कारण कई उतार–चढ़ाव आए हैं। राष्ट्रीय आय, कृषि और औद्योगिक उत्पादन में पहले कुछ वर्षों में वृद्धि हुई है लेकिन बाद में इनमें कमी देखी गई है। स्कूल जाने वाले छात्रों की संख्या 6.60 करोड़ हो गई है। बिजली उत्पादन 101. 71 लाख किलोवाट और सिंचित क्षेत्र 3.1 करोड़ हेक्टेयर हो गया है।

योजना के कुल खर्च का 17% यानी 1300 करोड़ समाज कल्याण कार्यक्रमों पर खर्च किया गया। इस योजना के तहत माता एवं बाल कल्याण पर 24 करोड़, शरणार्थियों के पुनर्वास के लिए 74 करोड़ और पिछड़े वर्गों के विकास पर 114 करोड़ रुपये खर्च किए गए। इस राशि से इन लोगों को स्वास्थ्य, शिक्षा और घर की सुविधा प्रदान की गई। इस योजना में परिवार नियोजन पर 24.9 करोड़, जलापूर्ति, स्वच्छता पर 105.7 करोड़ और श्रम कल्याण पर 40.4 करोड़ रुपये खर्च किए गए। इस योजना के

दौरान गंदी कॉलोनियों को हटाने, ध्वस्त किए गए प्रतिष्ठानों को फिर से स्थापित करने, मजदूरों के लिए घर और अपराध में कमी के प्रयास भी किए गए थे।

योजना–अवकाश

तीसरी पंचवर्षीय योजना के बाद चौथी पंचवर्षीय योजना को अप्रैल 1966 में लागू किया जाना था लेकिन भारत–पाक युद्ध, लगातार दो वर्षों तक सूखा, मुद्रा का अवमूल्यन, मूल्य वृद्धि और संसाधनों में कमी के कारण इसे तीन साल बाद लागू किया गया था। इन तीन वर्षों के दौरान, एक वर्षीय वार्षिक–योजनाएँ लागू की गईं।

चौथी पंचवर्षीय योजना, 1969–74

1 अप्रैल 1969 से 31 मार्च 1976 तक चतुर्थ पंचवर्षीय योजना को क्रियान्वित किया गया। इस योजना के उद्देश्य निम्नलिखित थे– (1) देश का समग्र आर्थिक विकास सुनिश्चित करना (2) कृषि में 5% वृद्धि और औद्योगिक उत्पादन में 8–9% वार्षिक वृद्धि सुनिश्चित करना, (3) विदेशी सहायता को कम करना और आत्मनिर्भर बनना, (4) देश के विकास को गति देना तथा सामाजिक समानता एवं न्याय सुनिश्चित करना, (5) बेरोजगारी को रोकना, (6) आय में असमानता को दूर करना, (7) सालाना 7% निर्यात बढ़ाना, (8) सामाजिक सेवाओं का विस्तार और प्रोत्साहित करना, (9) बढ़ती जनसंख्या को रोकना और परिवार नियोजन कार्यक्रम को बड़े पैमाने पर लागू करना।

योजना का व्यय– इस योजना के दौरान इस 24882 करोड़ में से 15902 करोड़ सार्वजनिक क्षेत्र एवं 8980 करोड़ प्राइवेट क्षेत्र हेतु रखे गए।

पाँचवीं पंचवर्षीय योजना, 1974–79

पाँचवी पंचवर्षीय योजना 1 अप्रैल, 1974 को लागू की गई, जो मार्च, 1979 तक चलने वाली थी लेकिन 1977 में कांग्रेस पार्टी की हार और आम चुनाव में जनता पार्टी की जीत के कारण नई सरकार ने 31 मार्च, 1978 को निर्धारित समय से एक वर्ष पूर्व इस योजना को बंद कर दिया। यह योजना केवल चार वर्षों के लिए थी और इन योजनाओं के मुख्य उद्देश्य इस प्रकार थे : (1) गरीबी हटाना, (2) आत्मनिर्भर बनना, (3) असमानता कम करना, (4) रोजगार के अवसर बढ़ाना, (5) जनसंख्या वृद्धि पर नियंत्रण रखना, (6) 15 वर्ष तक के प्रत्येक बच्चे की शिक्षा सुनिश्चित करना तथा कृषि और परिवहन उद्योग का विकास करना।

योजनाओं का व्यय– इस योजना के दौरान कुल व्यय 39,426 करोड़ था जिसमें से 4,865 करोड़ कृषि और संबंधित क्षेत्रों पर, 3,877 करोड़ सिंचाई और बाढ़ नियंत्रण पर, 7400 करोड़ बिजली पर, उद्योगों और संचार पर 10,201 करोड़, परिवहन और संचार पर 6,917 करोड़, शिक्षा पर 1,285 करोड़ और अन्य मदों पर 5,703 करोड़ रुपये खर्च किए गए। इस योजना में स्वास्थ्य पर 756 करोड़, परिवार नियोजन पर 516 करोड़, पोषण पर 400 करोड़, शहरी विकास पर 543 करोड़, जलापूर्ति और स्वच्छता पर 1022 करोड़, समाज कल्याण पर 119 करोड़, 256 करोड़ पिछड़े वर्गों के विकास के लिए और श्रम कल्याण पर 57 करोड़ रुपये खर्च किए गए।

छठी पंचवर्षीय योजना, 1980–85

1 अप्रैल 1978 से जनता सरकार ने छठी पंचवर्षीय योजना तैयार की है। इस योजना में 1,16,250 करोड़ रुपये खर्च का प्रावधान था लेकिन जनवरी 1980 में जनता सरकार की हार के कारण एक बार फिर कांग्रेस (आई) सत्ता में आई और 1980 से 1985 तक फिर से छठी पंचवर्षीय योजना बनाई। इस योजना के उद्देश्य निम्नलिखित थे– (1) विकास की अभूतपूर्व दर सुनिश्चित करना, (2) आर्थिक और तकनीकी क्षेत्रों में आधुनिकीकरण को प्रोत्साहित करना, (3) गरीबी और बेरोजगारी को दूर करना, (4) आम आदमी के जीवन में सकारात्मक बदलाव लाना, (5)) क्षेत्रीय असमानता को कम करना, (6) छोटे परिवार के विचार को लागू करना और जनसंख्या को नियंत्रित करना, (7) विकास आदि के लिए समाज के सभी वर्गों का योगदान सुनिश्चित करना।

योजनाओं पर व्यय एवं सामाजिक कल्याण – इस योजना में कुल व्यय 1,09,292 करोड़ था जिसमें से 15,201 करोड़ कृषि और संबंधित क्षेत्रों पर, 10,930 करोड़ सिंचाई और बाढ़ नियंत्रण पर, 30,751 करोड़ बिजली पर, उद्योगों पर 15,002 करोड़ रुपये, खनिज, परिवहन और संचार पर 17678 करोड़, समाज सेवा और अन्य मदों पर 13,788 करोड़ रुपये खर्च किए गए। इस योजना के दौरान शिक्षा पर 3,997, स्वास्थ्य और परिवार कल्याण पर 3,412 करोड़, आवास और शहरी विकास पर 3,839 करोड़ और सामाजिक कल्याण पर 6,688 करोड़ रुपये खर्च किए गए।

सातवीं पंचवर्षीय योजना, 1985–90

सातवीं पंचवर्षीय योजना के दौरान, कुल 34 ट्रिलियन 81 बिलियन 48 मिलियन करोड़ व्यय का प्रावधान था, जिसमें से 18 ट्रिलियन करोड़ सार्वजनिक क्षेत्र पर खर्च किए जाने थे। विकास दर 5.5% वार्षिक, 5% प्रति वर्ष की दर से योजना बनाई गई थी और गरीबी और बेरोजगारी को हटाने को सर्वोच्च प्राथमिकता दी गई थी। इस योजना में आम आदमी को भोजन, कपड़ा, आवास और स्वास्थ्य सुनिश्चित करने का प्रयास किया गया था। कृषि उत्पादन में 4% की दर से, अनाज उत्पादन में 5% की दर से और औद्योगिक उत्पादन में 8% की दर से वृद्धि करने का लक्ष्य रखा गया था।

योजनाओं का व्यय – इस योजना में कुल व्यय 2,18,730 करोड़ था जिसमें से 12,793 करोड़ कृषि पर, 15,247 करोड़ ग्रामीण विकास पर, 3,470 करोड़ विशेष क्षेत्र पर था तथा 16,590 करोड़ सिंचाई और बाढ़ नियंत्रण हेतु था। बिजली पर 61,689 करोड़, उद्योगों और खनिजों पर 29,220 करोड़, परिवहन पर 29,548 करोड़, संचार, सूचना और प्रसारण पर 8,426 करोड़, विज्ञान और प्रौद्योगिकी पर 3,024 करोड़, सामाजिक सेवाओं पर 34,960 करोड़ और अन्य मदों पर 1,513 करोड़ रुपये खर्च किए गए। सार्वजनिक क्षेत्र में सबसे अधिक निवेश (28.2%) बिजली पर और उसके बाद कृषि, ग्रामीण विकास और सिंचाई (22%) और सामाजिक सेवाओं पर (16%) खर्च किया गया। इस प्रकार, कुल मिलाकर, इस योजना व्यय का दो–तिहाई भाग उपर्युक्त मदों पर खर्च किया गया था। इसके द्वारा इस योजना में मुख्य रूप से बिजली, कृषि, ग्रामीण विकास और सामाजिक सेवाओं पर ध्यान केंद्रित किया गया था।

8वीं पंचवर्षीय योजना 1 अप्रैल, 1990 से शुरू होनी थी, लेकिन राजनीतिक अस्थिरता के कारण इसे अप्रैल 1992 में लागू किया गया था। दो वर्षों के बीच जिसमें

वार्षिक योजना को 1990–91 में 61137 करोड़ रुपये तथा 1991–92 में 64698 करोड़ रुपये के रूप में स्वीकार किया गया है। विभिन्न मदों पर करोड़ों रुपये खर्च किए गए।

आठवीं पंचवर्षीय योजना, 1992–97

आठवीं पंचवर्षीय योजना अप्रैल 1992 में शुरू की गई थी। इस योजना में 7,98,000 करोड़ रुपये खर्च करने का प्रावधान रखा गया था, जिसमें से 4,34,100 करोड़ सार्वजनिक क्षेत्र पर खर्च करने का प्रावधान था। इस दौरान विकास की दर 5.16% तय की गई। इस योजना का मुख्य उद्देश्य गरीबी दूर करना, ग्रामीण विकास और जनसंख्या विस्फोट को रोकना तथा सभी को रोजगार के साथ–साथ विकास गतिविधियों में तेजी लाना था। इस योजना के अन्य उद्देश्य 15 से 35 वर्ष की आयु के सभी लोगों को साक्षर बनाने के लिए अनिवार्य प्राथमिक शिक्षा, देश के सभी कोनों में स्वच्छ पेयजल और प्राथमिक स्वास्थ्य सुविधा प्रदान करना था। मानव मल को अपने सिर पर ले जाने की परंपरा को रोकना भी इसका उद्देश्य था। इन उद्देश्यों के अलावा, कुछ अन्य उद्देश्य जैसे खाद्यान्न पर आत्मनिर्भरता, वित्तीय निवेश के लिए घरेलू संसाधनों पर जोर और तकनीकी विशेषज्ञता के माध्यम से विज्ञान और प्रौद्योगिकी के विकास पर ध्यान केंद्रित किया गया था।

नौवीं पंचवर्षीय योजना, 1997–2002

नौवीं पंचवर्षीय योजना 1 अप्रैल, 1997 में शुरू की गई थी। अटल बिहारी वाजपेयी सरकार ने 1 जनवरी 1999 को नौवीं पंचवर्षीय योजना शुरू की थी। जिसमें योजना में कुल 5,59,000 करोड़ रुपए का प्रावधान था। इस योजना में 6.5% प्रतिवर्ष की दर से वित्तीय विकास सुनिश्चित किया गया, 22,300 करोड़ रुपए प्रधानमंत्री की विशेष कार्य योजना पर खर्च किए गए। इन विशेष कार्य योजनाओं के तहत पांच खंडों जैसे खाद्य और कृषि, ढाँचागत विकास, सूचना प्रौद्योगिकी, जल संसाधन प्रबंधन तथा स्वास्थ्य, आवास और शिक्षा को इस योजना में पर्याप्त स्थान दिया गया था। इस योजना का मुख्य उद्देश्य लोगों को समान न्याय और समान विकास प्रदान करना था।

दसवीं पंचवर्षीय योजना, 2002–2007

दसवीं पंचवर्षीय योजना में सार्वजनिक क्षेत्र के लिए 15,92,300 करोड़ रुपये रखे गए लेकिन वास्तविक निवेश 16,53,065 करोड़ रुपये था। दसवीं पंचवर्षीय योजना के मुख्य उद्देश्य थे–

(1) 2002–07 के दौरान सकल घरेलू उत्पादन (जीडीपी) में 8% वार्षिक वृद्धि सुनिश्चित करना, (2) 7.5 बिलियन अमेरिकी डॉलर का विदेशी निवेश सुनिश्चित करना, (3) सार्वजनिक क्षेत्र में 78000 करोड़ का विनिवेश करना (4) इस योजना के दौरान पाँच करोड़ रोजगार के अवसर सुनिश्चित करना, (5) 2007 की आवश्यकता के अनुसार 75% साक्षरता दर प्राप्त करना, (6) बाल मृत्यु अनुपात को 45/1000 तक कम करना, (7) 2007 तक वनीकरण 25% तक बढ़ाना, (8) निवेश की दर को 28.4% सकल घरेलू उत्पाद में लाना। (9) घरेलू बचत दर को सकल करों का 26.8% बनाना। (10) सकल घरेलू उत्पाद के 1.6% द्वारा विदेशी निवेश को बढ़ाना। (11) कर संग्रह को सकल घरेलू

उत्पाद के 8.6% से बढ़ाकर 10.3% करना। (12) अनियोजित व्यय को सकल घरेलू उत्पाद के 11.3 से घटाकर 9% करना।

ग्यारहवीं पंचवर्षीय योजना, 2007–2012

ग्यारहवीं पंचवर्षीय योजना में सार्वजनिक क्षेत्र में कुल 36,44,718 करोड़ रुपये खर्च में से 21,56,571 करोड़ रुपये केंद्रीय योजनाओं के लिए और 14,88,147 करोड़ रुपये राज्यों में विभिन्न योजनाओं के लिए आवंटित किए गए थे। ग्यारहवीं पंचवर्षीय योजना के मुख्य उद्देश्य इस प्रकार हैं : (1) सकल घरेलू उत्पाद की वृद्धि दर 9% निर्धारित की गई। (2) 2016–17 तक प्रति व्यक्ति आय दोगुनी करना। (3) 7 करोड़ रोजगार के नए अवसर सुनिश्चित करना। (4) साक्षर बेरोजगार व्यक्तियों की दर 5% से कम लाई जाए। (5) वर्तमान में प्राथमिक स्कूली बच्चों की स्कूल छोड़ने की दर को 52.2% से घटाकर 20% किया जाए। (6) साक्षरता दर 85% सुनिश्चित करना। (7) नवजात मृत्यु दर घटकर 28/1000 हो जाए। (8) प्रसव के दौरान माता की मृत्यु को 1000 में से 1 तक लाया जाए। (9) वर्ष 2009 तक सभी के लिए स्वच्छ पेयजल सुनिश्चित किया जाए। (10) लिंगानुपात को 2011–12 तक 935 और 2016–17 के अंत तक 950/1000 तक लाना। (11) गरीबी रेखा से नीचे जीवन यापन करने वाले लोगों के लिए 2009 तक पूरी ग्रामीण आबादी के लिए बिजली की आपूर्ति सुनिश्चित की जाए। (12) नवंबर 2007 तक हर गाँव को टेलीफोन सेवाओं से जोड़ा जाए। (13) 2011–12 तक प्रत्येक गाँव को ब्रॉडबैंड से जोड़ा जाए। (14) वर्ष 2009 तक 1000 की आबादी वाले प्रत्येक गाँव को सड़क मार्ग से जोड़ दिया जाए। (15) वनों के लिए 5% की वृद्धि सुनिश्चित की जाए। (16) नदियों को साफ करने के लिए विश्व स्वास्थ्य संगठन द्वारा दिए गए विनिर्देशों के अनुसार स्वच्छ हवा–पानी के उपाय सुनिश्चित किए जाएं, शहरों का प्रदूषित पानी पर्याप्त मात्रा में साफ किया जाय। (17) गरीबी के अनुपात को 10% तक लाया जाए। (18) दशक में बढ़ी हुई जनसंख्या की दर को 2001–2011 के बीच 16.2% तक लाया जाए। (19) 68000 मेगावाट अतिरिक्त बिजली उत्पादन सुनिश्चित किया जाए।

5.2.2 बारहवीं अंतिम पंचवर्षीय योजना एवं नीति आयोग

भारत सरकार की बाहरवीं पंचवर्षीय योजना (2012–17) अंतिम पंचवर्षीय योजना रही। इस पंचवर्षीय योजना का उद्देश्य तेज, टिकाऊ और समावेशी विकास को अपनाना था। 12वीं योजना अवधि के लिये सकल घरेलू उत्पाद की दर का लक्ष्य 8.2 प्रतिशत ही रखा गया क्योंकि विश्व अर्थव्यवस्था की दर काफी कम हो गयी थी। ऐसे में 9% जीडीपी (सकल घरेलू उत्पाद) दर रखना व्यवहारिक नहीं था। योजना अवधि के दौरान गरीबी की दर में 10 प्रतिशत की कमी का उद्देश्य रखा गया। समावेशी विकास के अन्तर्गत गरीबी की दर में गिराव, स्वास्थ्य परिणामों में व्यापक और महत्वपूर्ण सुधार, बच्चों के लिये स्कूल तक सार्वभौमिक पहुंच तथा उच्च शिक्षा तक पहुंच में वृद्धि और कौशल विकास सहित शिक्षा के बेहतर परिणाम का उद्देश्य रखा गया। समावेशी विकास मजदूरी, रोजगार और आजीविका के बेहतर अवसर, पानी, बिजली, सड़क, स्वच्छता और आवास जैसी बुनियादी सुविधाओं के प्रावधानों में सुधार में परिलक्षित होना चाहिये।

समावेशी विकास के अन्तर्गत मनरेगा, सर्व शिक्षा अभियान, मिडडे मील योजना, प्रधानमन्त्री ग्राम सड़क योजना, आइ.सी.डी.एस., नेशनल रूरल हेल्थ मिशन आदि योजनाओं को सरकारी आवंटन में बढ़ावा मिला।

नीति आयोग

60 से अधिक वर्षों तक योजना आयोग भारतीय केन्द्र सरकार के सबसे महत्वपूर्ण संस्थानों में से एक था। प्रधानमन्त्री मोदी जी ने अगस्त 2014 को योजना आयोग के अंत की घोषणा की। जनवरी 2015 में योजना के स्थान पर नीति आयोग नामक एक छोटा व शक्तिशाली थिंक टैंक स्थापित किया गया। नीति आयोग के निर्माण के लिये घोषित दृष्टिकोण आर्थिक नीति निर्माण प्रक्रिया में राज्यों की भागीदारी और बढ़ावा देना है। नीति आयोग का जोर नीचे से ऊपर विकास की भागीदारी के दृष्टिकोण पर आधारित है।

कई दशकों तक सहकारी संघवाद की दिशा में योजना आयोग का राज्य की वार्षिक योजनाओं और सकल बजटीय समर्थन में बड़ा प्रभाव था जो विभिन्न कल्याणकारी योजनाओं के लिये आवंटित घन को मापता है।

हाल के वर्षों में योजना आयोग की भूमिका पर कई प्रश्न उठने लगे। कई विशेषज्ञों ने सवाल किया था कि बाजार अर्थव्यवस्था में निकाय की भूमिका है जिसमें निजी उद्योग प्राथमिक विकास इंजन हैं। 60 से अधिक वर्षों में भारत जनसंख्या, आर्थिक स्थिति, विकास और प्रतिस्पर्धी बाजारों के मामले में बदल गया है वर्तमान स्थिति में सरकार के नीतिगत ढांचे में बदलाव की जरूरत है।

नीति आयोग का निर्माण भारतीय परिदृश्य में संघ राज्य संबंधों को बेहतर बनाने के लिये किया गया। नीति आयोग का लक्ष्य राष्ट्रीय तथा अंतर्राष्ट्रीय विशेषज्ञों के एक सहयोगी समुदाय के माध्यम से नवाचार और उद्यमशीलता समर्थन प्रणाली का निर्माण करना है। इस नये थिंक टैंक का काम केन्द्र, राज्य सरकारों तथा निजी उद्योगों को प्राथमिकता का रोडमैप प्रदान करना है। भारत के प्रधानमन्त्री नीति आयोग के अध्यक्ष होंगे तथा गवर्निंग कांउसिल में सभी राज्य सरकारों के मुख्यमंत्री तथा केंद्र शासित प्रदेशों के उपराज्यपाल शामिल हैं। नीति आयोग तथा योजना आयोग में मुख्य भिन्नता यह है कि योजना आयोग की तरह नीतिआयोग धन आवंटित नहीं कर सकता लेकिन वित्त मंत्रालय से सिफारिश कर सकता है। धन आवंटन का अधिकार केवल वित्त मंत्रालय के पास रहेगा। नीति आयोग अपनी नीतियां व प्रोग्राम राज्य सरकारों पर थोप नहीं सकता केवल सिफारिश कर सकता है।

5.2.3 गरीबी उन्मूलन कार्यक्रम और पंचवर्षीय योजनाएँ

हम अपनी पंचवर्षीय योजनाओं में हमेशा सामाजिक न्याय की बात करते हैं लेकिन हमने इस संबंध में कोई महत्वपूर्ण प्रगति नहीं की है। छठी पंचवर्षीय योजना में यह स्वीकार किया गया है कि देश की 50 प्रतिशत जनसंख्या लंबे समय से गरीबी रेखा से नीचे जीवन यापन कर रही है। छठी योजना के महत्वपूर्ण उद्देश्य हैं जिनमें से एक था 'गरीबी और बेरोजगारी की घटनाओं में वास्तविक कमी'। सातवीं और आठवीं योजनाओं में भी गरीबी के मुद्दे पर प्रकाश डाला गया था। नौवीं योजना में गरीबी हटाने

की दृष्टि से कृषि और ग्रामीण विकास को प्राथमिकता दी गई और दसवीं योजना में भी गरीबी अनुपात को कम करने की बात कही गई थी।

ये योजनाएँ गरीबी दूर करने में थोड़ा सुधार दिखा रही हैं। गाँवो में खेतिहर मजदूरों को ज्यादा मजदूरी दी जा रही है और किसानों को ज्यादा सुविधाएँ दी जा रही हैं, छोटे उद्यमी प्रगति कर रहे हैं। सरकार ने गरीबी उन्मूलन पर कई योजनाएँ लागू की हैं, जिनमें से कई अभी भी जारी हैं। उदाहरण के लिए– स्वर्ण जयंती ग्राम स्वरोजगार योजना (एसजेजीआरवाई), स्वर्ण जयंती शहरी रोजगार योजना (एसजेएसआरवाई), प्रधानमंत्री रोजगार योजना, अन्नपूर्णा योजना, अंत्योदय अन्न योजना, जय प्रकाश नारायण रोजगार गारंटी योजना, महात्मा गाँधी राष्ट्रीय ग्रामीण रोजगार गारंटी योजना, आम ग्रामीण बीमा यज्ञ, रोजगार अवसर कार्यक्रम आदि।

गरीबी रेखा से नीचे जीवन यापन करने वाले लोगों के नवीनतम आँकड़े राष्ट्रीय नमूना सर्वेक्षण संगठन द्वारा 2004–05 के दौरान किए गए सर्वेक्षण के आधार पर जारी किए गए हैं। 1999–2000 के दौरान गरीबी रेखा के नीचे रहने वाली जनसंख्या का प्रतिशत 26.1 था और 2004–05 के दौरान यह घटकर 28.1% हो गया। वर्तमान में ग्रामीण बेरोजगारी और गरीबी को नियंत्रित करने के लिए मुख्य रूप से निम्नलिखित योजनाएँ चल रही हैं–

1. **स्वर्ण जयंती ग्राम स्वरोजगार योजना (एसजेजीआरवाई)**– अप्रैल 1999 में निम्नलिखित छह योजनाओं को शामिल करके इस योजना को शुरू किया गया है :

   (क) स्वतंत्र ग्रामीण विकास कार्यक्रम (आईआरडीपी)।

   (ख) ग्रामीण युवाओं को स्वरोजगार हेतु प्रशिक्षण। (TRYSEM)

   (ग) ग्रामीण महिला एवं बाल विकास योजना (आरडब्ल्यूसीडीएस)।

   (घ) मिलियन वेल स्कीम (MWS)।

   (ङ) उन्नत टूल किट योजना (एटीकेपी)।

   (च) गंगा कल्याण कार्यक्रम (जीडब्ल्यूपी)। इस योजना का उद्देश्य स्वरोजगार करने वाले व्यक्तियों को स्वयं सहायता समूहों में लाकर उन्हें बैंक ऋण एवं सरकारी अनुदान प्रदान कर गरीबी रेखा से ऊपर लाना है।

इस कार्यक्रम के तहत योजना की कुल लागत के 30% की दर से सब्सिडी दी जाती है, अनुसूचित जाति और अनुसूचित जनजाति के लिए अधिकतम सीमा 7,500 है और विकलांगों के लिए यह 50% है जो अधिकतम 10,000 है। स्व–नियोजित समूहों को परियोजना की कुल लागत का 50% अनुदान दिया जाता है। इसके लिए अधिकतम सीमा 1.25 लाख या प्रति व्यक्ति 10,000 जो भी कम हो, निर्धारित है। लघु सिंचाई योजना, स्वरोजगार समूह एवं स्वरोजगार हेतु अनुदान की कोई अधिकतम सीमा नहीं है।

इस योजना के तहत अनुसूचित जाति और अनुसूचित जनजाति से 50%, महिलाओं से 40% और शारीरिक रूप से विकलांग व्यक्तियों से 3% को शामिल करना

अनिवार्य है। उधार देने की योजना के लिए बहु–ऋण सुविधा को प्राथमिकता दी जाती है। 10–20 सदस्यों को लेकर स्वरोजगार समूह बनाया जा सकता है। कम आबादी वाले क्षेत्रों में दूर–दराज के क्षेत्रों जैसे पहाड़ों और रेगिस्तान में शारीरिक रूप से अक्षम लोगों के मामले में यह संख्या घटाकर 5 की जा सकती है।

2. प्रधानमंत्री रोजगार योजना– इस योजना का उद्देश्य उन शिक्षित बेरोजगार युवाओं को रोजगार प्रदान करना है जो छोटे शहरों में रह रहे हैं जहाँ की आबादी 20,000 तक है।

यह योजना शिक्षित बेरोजगार युवाओं को रोजगार प्रदान करने के उद्देश्य से 2 अक्टूबर 1993 को शुरू की गई थी। इस योजना में व्यापार और सेवा उन्मुख रोजगार ऋण के लिए 2,00,000 और 5,00,000 का उद्योग स्थापित करने की अनुमति है। इसमें 12,500 प्रति उद्यमी दिया जाता है। 1 अप्रैल 1994 को इस योजना में SEEUY योजना को भंग कर दिया गया है।

3. ग्रामीण रोजगार अवसर कार्यक्रम– अप्रैल 1995 से ग्रामीण क्षेत्रों और छोटे शहरों में जहाँ की आबादी 20,000 है, विभिन्न योजनाओं में रोजगार प्रदान करने के लिए ग्रामीण और खादी उद्योग द्वारा यह कार्यक्रम शुरू किया गया था। इस योजना का लाभ सभी व्यक्ति, सामाजिक संस्थान, ट्रस्ट और लिमिटेड कंपनियाँ उठा सकती हैं। ऐसी योजनाओं की अधिकतम सीमा 25,00,000 है। लाभार्थी को परियोजना की कुल लागत के अपने योगदान के रूप में 10% निवेश करना होता है (कमजोर वर्ग के लिए यह केवल 5% है)।

4. अन्नपूर्णा योजना– 1 अप्रैल 2000 से प्रभावी, इस योजना के तहत कोई भी वरिष्ठ नागरिक जिसकी उम्र 65 या उससे अधिक है और जो राष्ट्रीय वृद्धावस्था पेंशन योजना के तहत पेंशन पाने के लिए पात्र है लेकिन पेंशन नहीं प्राप्त कर रहा है, इस योजना के तहत अपनी आवश्यकता को पूरा करने के लिए उन्हें खाद्य सुरक्षा प्रदान करने के लिए 10 किलो खाद्यान्न उपलब्ध कराया जाता है।

5. अंत्योदय अन्न योजना– दिसंबर 2000 में शुरू की गई इस योजना का उद्देश्य गरीबी रेखा से नीचे जीवन यापन करने वाले लोगों को सार्वजनिक वितरण प्रणाली के माध्यम से भोजन उपलब्ध कराना था। इस योजना के तहत गरीबी रेखा से नीचे जीवन यापन करने वाले 2 करोड़ परिवारों को हर महीने 35 किलो खाद्यान्न सब्सिडी दरों पर प्रदान किया जाता है। इस योजना के तहत गेहूँ और चावल की कीमत क्रमशः 2 रुपये और 3 रुपये प्रति किलो है।

6. जय प्रकाश नारायण रोजगार गारंटी योजना– विभिन्न जिलों में बेरोजगारों को रोजगार प्रदान करने के लिए यह योजना प्रारंभ की गई है जहाँ अधिकांश लोग गरीबी रेखा से नीचे जीवन यापन कर रहे हैं। जय प्रकाश नारायण की जन्मशती के अवसर पर केंद्र सरकार ने जय प्रकाश नारायण रोजगार गारंटी योजना शुरू की है। योजना के पहले चरण में देश के सबसे पिछड़े 130 जिलों की पहचान करने के लिए ग्रामीण विकास मंत्रालय ने एक कार्यबल का गठन किया गया था।

7. महात्मा गाँधी राष्ट्रीय ग्रामीण रोजगार गारंटी योजना– 2 फरवरी 2006 को शुरू हुए, इस कार्यक्रम के तहत देश के ग्रामीण क्षेत्र में प्रत्येक वयस्क और प्रत्येक परिवार को 100 दिन का अकुशल रोजगार प्राप्त करने का कानूनी अधिकार है। इस योजना में 33 प्रतिशत महिलाओं को लाभ होगा। इस योजना का उद्देश्य ग्रामीण क्षेत्र में अकुशल श्रमिकों हेतु रोजगार सुरक्षा सुनिश्चित करना है। इस कार्यक्रम के तहत ''काम के बदले अनाज योजना'' और ''संपूर्ण ग्रामीण रोजगार योजना'' को भंग कर दिया गया है। इस योजना के तहत, जो व्यक्ति काम करने के लिए तैयार है और पंजीकृत है, लेकिन 15 दिनों के भीतर रोजगार नहीं मिल रहा है, वह केंद्र सरकार के माध्यम से बेरोजगारी मुआवजा पाने हेतु उत्तरदायी है। यह योजना पूरे देश में हर जिले में लागू है।

8. आम आदमी बीमा यज्ञ– ग्रामीण क्षेत्रों में बिना जमीन के किसान को मुफ्त जीवन बीमा प्रदान करने के लिए केंद्र सरकार ने 2 अक्टूबर 2007 को यह योजना शुरू की है। इस योजना के तहत, प्रत्येक को 200 रुपए वार्षिक प्रीमियम का भुगतान करना सुनिश्चित किया जाता है और यह प्रीमियम केंद्र और राज्य सरकार द्वारा 50:50 के आधार पर भुगतान किया जाता है।

5.2.4 आर्थिक सुधारों के सामाजिक परिणाम

भारत सरकार ने आर्थिक नीति अपनाई है और यह उदारीकरण के तहत लोकतंत्र की नीति से संबंधित थी। बाजार को स्वतंत्रता दी गई और मुक्त बाजार लोकतंत्र की राजनीति में प्राथमिकता पाता है 1991 के बाद जब सरकार ने इस नए आर्थिक कार्यक्रम को अपनाया, तो बाजार सरकार के नियंत्रण से मुक्त हो गया।

सामान्यतः गैर–तकनीकी शब्दों में उदारीकरण वह कार्यक्रम है जिसमें आयात और निर्यात के नियम बहुत लचीले होते हैं और इस प्रकार सरकार का प्रभाव नगण्य हो जाता है। अब हम उदारीकरण के अर्थशास्त्र को विस्तार से समझेंगे।

उदारीकरण

1991 में उदारीकरण की शुरुआत से पहले देश की आर्थिक स्थिति खराब थी। हमारे पास विदेशी ऋणों को चुकाने के लिए कोई धन नहीं था। विशेष रूप से यह सरकार के सामने एक प्रकार का राजकोषीय खतरा था। मानसून खराब स्थिति में था और विश्व बाजार में पेट्रोल के दाम आसमान छू रहे थे। आंतरिक और बाह्य ऋण इतने अधिक थे कि इस समस्या को दूर करने के लिए उदारीकरण नीति को अपनाया गया था।

अर्थशास्त्रियों ने उदारीकरण की नीति को तकनीकी शब्दों में समझाया है। इन आर्थिक सुधारों के पक्ष और विपक्ष में समान संख्या में लोग हैं। उदारीकरण के समर्थकों का कहना है कि उदारीकरण में मुक्त बाजार की अवधारणा सरकार और जनता के लिए फायदेमंद है। दूसरी ओर उदारीकरण के आलोचकों का कहना है कि यह आर्थिक नीति देश को बिना किसी वापसी के बिंदु पर ले जाएगी। विदेशी निवेश से स्थानीय बाजार खत्म होगा। भारतीय औद्योगिक क्षेत्र कमजोर हो जाएगा और स्थानीय उद्योग बंद हो जाएँगे। यह सब बहस है। आइए अब हम उदारीकरण को तकनीकी रूप से समझते हैं।

उदारीकरण के अर्थशास्त्र की दो अवधारणाएँ हैं

(1) स्थिरीकरण

(2) संरचनात्मक समायोजन

1. स्थिरीकरण– अर्थशास्त्र में स्थिरीकरण की तुलना चिकित्सा विज्ञान से की जा सकती है। जब किसी व्यक्ति को दिल का दौरा पड़ता है। हम उसे अस्पताल ले जाते हैं और वह जीवन और मृत्यु के दबाव में होता है। डॉक्टर उसे इलाज देकर जान बचाता है और कहता है कि मरीज की हालत स्थिर है। इसका मतलब है कि वह पूरी तरह से स्वस्थ नहीं है लेकिन मरने वाला नहीं है। इसी तरह, अर्थशास्त्रियों ने स्थिरीकरण और उदारीकरण की प्रक्रिया की व्याख्या की है। सरकार कुछ आर्थिक कार्यक्रम तैयार करती है जिसकी मदद से कभी–कभी आर्थिक संकट को दूर किया जा सकता है। इस अवधि के दौरान कम अवधि के ऋणों की किस्त का भुगतान किया जाता है और बढ़ती मुद्रास्फीति को रोका जाता है। स्थिरीकरण का यह कार्यक्रम सरकार द्वारा अंतर्राष्ट्रीय मुद्रा कोष के सुझाव पर अपनाया गया था। सुझाव के पीछे अंतरराष्ट्रीय मुद्रा कोष का विचार यह था कि राजकोषीय घाटे के बजट में सुधार होगा और मुद्रास्फीति में कमी आएगी। अंतरराष्ट्रीय मुद्रा कोष की इस नीति से वामपंथी अर्थशास्त्री सहमत नहीं हैं। वे कहते हैं कि अंतरराष्ट्रीय मुद्रा कोष की इस नीति के परिणामस्वरूप वस्तुओं की माँग कम होगी जिसके परिणामस्वरूप उत्पादन कम होगा और उपयोगिता बाजार सिकुड़ जाएगा।

2. संरचनात्मक समायोजन– संरचनात्मक समायोजन उदारीकरण की दूसरी महत्वपूर्ण अवधारणा है जब सरकार स्थिरीकरण को अपनाती है इसके साथ ही हमें कुछ आर्थिक समायोजन और आर्थिक सुधार भी करने होते हैं। सरकार अंतरराष्ट्रीय मुद्रा कोष और विश्व बैंक द्वारा सुझाए गए कुछ अवांछित नीतिगत सुधारों को जबरदस्ती लागू करती है। यदि सरकार स्थिरीकरण को अपनाती है तो यह आवश्यक हो जाता है कि वे संरचनात्मक समायोजन भी अपनाएँ। संरचनात्मक समायोजन का उद्देश्य इस प्रकार है :

1. बिना बिक्री वाली वस्तु को विपणन योग्य बनाया जाना चाहिए।
2. संरचनात्मक समायोजन के तहत उत्पादन सरकारी क्षेत्र से निजी क्षेत्र में आएगा। निजीकरण संरचनात्मक समायोजन का पक्षधर है।
3. अर्थव्यवस्था को और अधिक खुला बनाया जाना चाहिए।
4. निजी क्षेत्र को प्रोत्साहित करने के लिए सभी प्रयास किए जाने चाहिए।
5. सामान्य अर्थव्यवस्था दर्शन यह है कि संरचनात्मक समायोजन के तहत हमें एक से अधिक बाजार शक्तियों पर भरोसा करना चाहिए।
6. सरकार को सभी नियंत्रण हटा देने चाहिए और बाजार कीमतों पर भरोसा करना चाहिए।
7. सार्वजनिक क्षेत्र को इस उम्मीद के साथ समाप्त किया जाना चाहिए कि निजी क्षेत्र उनकी जगह ले लेगा।

जब भी हम उदारीकरण की आर्थिक नीति पर चर्चा करते हैं तो हमें स्थिरीकरण और संरचनात्मक समायोजन की अवधारणा को ध्यान में रखना चाहिए। आर्थिक उदारीकरण में सरकार का शासन न्यूनतम हो गया है।

उदारीकरण में निम्नलिखित तथ्य महत्वपूर्ण हैं–

(1) लगभग प्रत्येक वस्तु के आयात पर सरकार का कोई नियंत्रण नहीं रहता है और कच्चे माल का आयात किया जा सकता है।

(2) उदारीकरण के परिणामस्वरूप संपूर्ण कर संरचना को बदल दिया जाता है।

(3) नई औद्योगिक नीति उदारीकरण के तहत बनाई जाती है जो औद्योगिक क्षेत्र के नियमितीकरण में सहायक होती है।

(4) विदेशी मुद्रा नीति पूरी तरह से बदल जाती है जिसके परिणामस्वरूप हमारे उद्योगों में विदेशी निवेश को बढ़ावा मिलता है।

हमारी अर्थव्यवस्था में जो भी सुधार हुए हैं वे 1991 के बाद के हैं। उदारीकरण और निजीकरण में बदलाव के आधार पर सरकार ने वित्तीय संकट को नियंत्रित किया है। अब, केंद्र और राज्य सरकारें स्थिरीकरण और संरचनात्मक समायोजन की नीति को ही लागू कर रही है। इन दो नीतियों के कारण वस्तुओं के निर्यात और आयात को और अधिक उदार बना दिया गया है, इस स्वतंत्रता ने वैश्वीकरण की प्रक्रिया को गति दी है। विदेशी निवेश को प्रोत्साहित किया जा रहा है। केंद्र और राज्य सरकार के स्तर पर इस आर्थिक नीति के तहत निजीकरण का विकास हुआ है।

नई आर्थिक प्रणाली

1950–60 के दौरान, श्री जवाहर लाल नेहरू प्रधान मंत्री थे और योजना आयोग के अध्यक्ष ने राजनीतिक आर्थिक नीति प्रस्तुत की जो औद्योगिक–आधुनिकीकरण की नीति थी। इस अवधि के दौरान, नेहरू ने बड़े कारखानों और उद्योगों को बढ़ावा दिया। लेकिन 1991 तक इन सभी योजनाओं की कार्य कुशलता, क्षमता एवं दक्षता में भारी कमी आई। क्योंकि अंतर्राष्ट्रीय संस्थाओं का ऋण नई ऊँचाइयों पर पहुँच गया और फिर इस समस्या के समाधान हेतु यह उदारीकरण प्रक्रिया अस्तित्व में आई और इस उदारीकरण के कारण निजीकरण हुआ।

निजीकरण

सार्वजनिक और निजी क्षेत्र के बीच अंतर प्राचीन ग्रीस में पहली बार प्रस्तुत किया गया था। वहाँ राज्य का आर्थिक नीति में कोई योगदान नहीं था। राज्य का काम शासन करना, युद्ध लड़ना, समाज का विकास करना और लोगों को शांति और सुरक्षा देना था जिससे जनता मजबूत हो। ग्रीस के निजी क्षेत्र को राज्य के शासन से पूरी तरह अलग कर दिया गया था। निजी क्षेत्र परिवार तक ही सीमित था और यह वह परिवार ही था जो अर्थव्यवस्था की देखभाल करता था इसके माध्यम से ग्रीस के सार्वजनिक और निजी क्षेत्रों के बीच एक स्पष्ट अंतर था, सार्वजनिक क्षेत्र राजनीतिक क्षेत्र था और निजी क्षेत्र परिवार और अर्थव्यवस्था का क्षेत्र था।

धीरे–धीरे, वर्तमान में जब लोकतांत्रिक व्यवस्थाएँ प्रस्तुत की गईं तब भी निजी और सार्वजनिक क्षेत्र के बीच का अंतर जस का तस बना हुआ है। भारत पर ब्रिटिश

शासन के दौरान, सरकार ने राजस्व विभाग को अपने पास रखा था, लेकिन उद्योग स्पष्ट रूप से निजी क्षेत्र में ही थे। यह पहली बार था जब ब्रिटिश सरकार ने रेलवे को सरकारी क्षेत्र के अंतर्गत ले लिया, इसका मतलब है कि परिवहन का साधन सरकारी क्षेत्र के अंतर्गत आ गया। जब कांग्रेस ने निर्णय लिया कि देश में समाज के समाजवादी पैटर्न को प्रस्तुत किया जाएगा, तो सरकार ने संविधान में संशोधन करके निजी क्षेत्र के कुछ उद्योगों को अपने नियंत्रण में ले लिया। यह सार्वजनिक क्षेत्र को दी गई प्राथमिकता का आरंभ था। आम तौर पर भारत सरकार ने विभिन्न उद्योगों में आंशिक आर्थिक निवेश अपने पास रखा है और समय के साथ अन्य क्षेत्रों को नहीं छुआ है।

आज के परिदृश्य में शिक्षा क्षेत्र अपने आप में एक उद्योग बन गया है और यह उद्योग लगातार सरकारी सहायता से चल रहा है। चिकित्सा क्षेत्र भी निजी क्षेत्र तक पहुंच गया है। जब हम उदारीकरण में मुक्त बाजार की बात करते हैं तो हमें यह समझना चाहिए कि राज्य सरकार ने सभी आर्थिक गतिविधियों से खुद को अलग कर लिया है। इस नए विकास में राज्य ने एक नई भूमिका निभाई है। कुछ वर्षों के हमारे पिछले अनुभव हमें बताते हैं कि बाजार सब कुछ जानता है लेकिन ऐसा नहीं है और राज्य का हस्तक्षेप बाजार को खराब कर देगा, ऐसा भी नहीं है। कोरिया, ताइवान और सिंगापुर का अनुभव हमें बताता है कि उदारीकरण की प्रक्रिया में राज्य की भूमिका भी महत्वपूर्ण है। निजीकरण में राज्य की प्रमुख भूमिका बाजार की विफलता पर नजर रखना है। राज्य कुछ संस्थागत हस्तक्षेप भी करता है उदाहरण के लिए, राज्य बाजार व्यवहार के लिए कुछ नियम लागू करता है। यह वही राज्य है जो हमारी बाजार नीति में सकारात्मक बदलाव लाता है। एक निजी क्षेत्र परिवहन के साधनों का निर्माण करता है तो सरकार यह सुनिश्चित करती है कि यात्रियों को पूरी सुरक्षा दी जानी चाहिए। यातायात नियम ऐसे होने चाहिए कि लोगों को फुलप्रूफ सुरक्षा मिले। राज्य ऐसा नहीं करता है तो लोगों की सुरक्षा खतरे में पड़ जाती है। कभी–कभी राज्य एक निश्चित रणनीति के माध्यम से बाजार को दिशा देता है, जिसके पीछे सरकार का लक्ष्य विकास की दूरदर्शिता होती है। विदेशी विनिमय दर के नियम केवल सरकार द्वारा निर्धारित किए जाते हैं। इसके बावजूद, ऐसा लगता है कि समय के साथ अर्थव्यवस्था में राज्य का शासन न्यूनतम होगा और निजी क्षेत्र बाजार पर पूर्ण नियंत्रण रखेगा।

इन आर्थिक सुधारों के बाद औद्योगिक क्षेत्र में निजीकरण का विकास बढ़ा है। समय के साथ जो उद्योग सरकारी नियंत्रण में थे, उन्हें निजी क्षेत्र में रखा जा रहा है। इन सुधारों के पीछे का आर्थिक दर्शन यह है कि निजी क्षेत्र में स्थिरीकरण और संरचना समायोजन सरकार के लिए औद्योगिक और वित्तीय गतिविधियों के मामले में फायदेमंद है। ऐसा करने से सरकार अपनी अर्थव्यवस्था को सही आकार में रखेगी। यह निजीकरण अंतरराष्ट्रीय मुद्रा कोष द्वारा दिए गए ऋण के पुनर्भुगतान में सहायक होगा। जब निजीकरण की शुरुआत की गई थी तो उनके घाटे स्पष्ट नहीं थे लेकिन अब यह माना जाता है कि निजीकरण से मौद्रिक मूल्यों के विकास में मदद मिलेगी। धन के विकेंद्रीकरण के कारण सरकार ने इसे निजी क्षेत्र में सार्वजनिक क्षेत्र के अंतर्गत रखा है, इसके परिणामस्वरूप समाज के विभिन्न समूहों के बीच की खाई बढ़ेगी। यह उत्पादन को रोक देगा और सामाजिक न्याय को मार देगा।

वैश्वीकरण

वैश्वीकरण की प्रक्रिया हमारे देश में तथा कई अन्य स्थानों पर अर्थव्यवस्था में सुधार से जुड़ी है। अर्थशास्त्रियों के अनुसार वैश्वीकरण के तीन महत्वपूर्ण आर्थिक दृष्टिकोण हैं। पहले कारक ने अंतरराष्ट्रीय बाजार खोल दिया है अब कोई भी व्यक्ति किसी भी देश में जाकर व्यापार कर सकता है।

दूसरा कारक यह है कि कोई भी अंतर्राष्ट्रीय व्यापार आसानी से किया जा सकता है किसी भी देश का कोई भी व्यक्ति हमारे देश में उद्योग स्थापित कर सकता है या कहीं भी धन निवेश कर सकता है।

तीसरा कारक यह है कि अंतर्राष्ट्रीय व्यापार वित्तीय सहायता का उपयोग हमारी अर्थव्यवस्था में किया जा सकता है। यदि हम आर्थिक निवेश को देखें तो हम पाते हैं कि वैश्वीकरण ने भारत में तीन नई प्रक्रियाओं की शुरुआत की है :

1. खुला अंतर्राष्ट्रीय व्यापार
2. अंतर्राष्ट्रीय निवेश
3. अंतर्राष्ट्रीय वित्त।

हमने अंतरराष्ट्रीय मुद्रा कोष और विश्व बैंक द्वारा शुरू किए गए विभिन्न आर्थिक सुधारों के परिणाम देखे हैं। अब हमारे देश में हर दिन एक नई तकनीक आ रही है। सूचना के नेटवर्क के माध्यम से कवर किया गया पूरा देश वित्तीय सेवाओं के अंतर्गत आ गया है। यहाँ हमें यह उल्लेख करना चाहिए कि वैश्वीकरण ने सांस्कृतिक क्षेत्रों में कुछ नए मानदंड स्थापित किए हैं लेकिन वर्तमान में हम वैश्वीकरण के आर्थिक परिणाम देखेंगे। अब हमारे देश में बहुराष्ट्रीय कंपनियाँ स्थापित हो गई हैं, जिसके फलस्वरूप बाजार में प्रतिदिन नए–नए उत्पाद आ रहे हैं। देश में उपभोक्तावाद बढ़ रहा है। देश में काम करने वाली बहुराष्ट्रीय कंपनियों का मुख्य उद्देश्य मुनाफा कमाना होता है। वे नहीं चाहते कि कोई भी विकासशील देश विकसित हो। दूसरे शब्दों में, देश में जो कुछ भी विदेशी बनाया जा रहा है इसका मुख्य उद्देश्य स्थानीय बाजार को अपने हाथों में लेना है। सरकार ने घरेलू और विदेशी निवेश पर कर (Tax) का समान टैरिफ प्रस्तुत किया है और यह समानता विश्व बैंक और अंतर्राष्ट्रीय मुद्रा कोष की सिफारिश पर प्रस्तुत की गई है। वैश्वीकरण के नाम पर सरकार द्वारा थोपी गई हकीकत में विदेशी निवेशक ही फायदा उठा रहे हैं और राजस्व देश के बाहर जा रहा है। दरअसल, निजीकरण और उदारीकरण की नीति के तहत हमने स्थानीय निवेशक को प्रोत्साहित नहीं किया है और इसके परिणामस्वरूप पूरा मुनाफा विदेशी निवेशक को जा रहा है। हमारी निजीकरण की नीति में एक और दोष है कि हम समझते हैं कि इस फंड से स्थानीय और विदेशी दोनों निवेशकों को लाभ होगा। हमें इस बात पर जोर देना चाहिए कि व्यक्तिगत निवेश का उद्देश्य विकास के लिए होना चाहिए न कि मुनाफे के लिए। तो वास्तव में, वैश्वीकरण का आधार केवल अर्थव्यवस्था है और वैश्वीकरण उत्पादन हेतु विदेशी निवेश है और वैश्वीकरण वित्तीय समायोजन का एक साधन है। वैश्वीकरण के आलोचकों का कहना है कि यह अमेरिका और यूरोप के सांस्कृतिक साम्राज्यवाद से अधिक कुछ भी नहीं है। अब हम इसके सांस्कृतिक और सामाजिक भाग को देखेंगे।

5.2.5 वैश्वीकरण : सांस्कृतिक और सामाजिक पहलू

'अंतर्राष्ट्रीय समाजशास्त्र समूह' नाम का एक पत्र है। इसके 15 जून 2001 अंक में, उन्होंने वैश्वीकरण पर एक लंबी व्याख्या दी है। यह एक विशेष संस्करण है और इसका विषय वैश्वीकरण है। अपने संपादकीय में गोरान थेरबॉर्न ने वैश्वीकरण पर कड़ा नोट लिखा है। इसमें वे कहते हैं कि वैश्वीकरण सबसे महत्वपूर्ण है। इसकी शुरुआत 1930 के मध्य में हुई थी। अगर हम 1980 से पहले अंग्रेजी, फ्रेंच, स्पेनिश और जर्मन के शब्दकोशों को देखें तो हमें वैश्वीकरण जैसी कोई दुनिया नहीं मिलेगी। दरअसल दूसरी ओर अरबी भाषा में हमें चार ऐसे शब्द मिलते हैं जो वैश्वीकरण से मिलते–जुलते हैं। जापान में, इस शब्द को 1980 के करीब प्रस्तुत किया गया था। चीन में, इस शब्द को 1990 में प्रस्तुत किया गया था।

ये सभी उपरोक्त विवरण हमें बताते हैं कि वैश्वीकरण एक पूरी तरह से नई अवधारणा है जिसे 1990 की शुरुआत में विकसित किया गया था। अंतर्राष्ट्रीय समाजशास्त्र के संपादक अतिरिक्त जानकारी देते हैं कि स्वीडन सरकार ने 1990 में एक समिति बनाई थी। इस समिति का उद्देश्य आधुनिकीकरण को लेकर दुनिया भर में अंतरराष्ट्रीय विश्लेषण करना था। इसके लिए कुछ पत्रों का आविष्कार किया गया और उन्हें इस पत्रिका के विशेष संस्करण में रखा गया। संस्करण हमें बताता है कि समाजशास्त्री वैश्वीकरण का विश्लेषण कैसे करते हैं और क्या वे इसका उपयोग करते हैं।

यदि हम आर्थिक तथ्यों को एक तरफ छोड़ दें तो वैश्वीकरण एक ऐसी प्रक्रिया है जो सांस्कृतिक प्रसार के बारे में बताती है। यह एक प्रकार का सांस्कृतिक प्रतिमान या एजेंडा है। वैश्वीकरण के तहत हम पूरी दुनिया में भेदभाव को पहचानते हैं। दूसरी ओर, हम समझते हैं कि अवधारणा के रूप में वैश्वीकरण ने दो तथ्यों पर मुख्य जोर दिया है जो पूरी दुनिया और 1990 में स्थानिक तत्वों की बात करता है। जब वैश्वीकरण की शुरुआत की गई थी तो उन लोगों ने पारंपरिक समाजशास्त्र की आलोचना की है क्योंकि यह केवल राष्ट्र और राज्य तक ही सीमित है। समाजशास्त्र कभी नहीं देखता है कि यह दुनिया वास्तव में कई समाजों की व्यवस्था है।

वैश्वीकरण समाज के सभी क्षेत्रों का अध्ययन करता है और ऐसा करके वह देखता है कि इस संसार में कितनी भिन्नताएँ हैं और कितनी इकाइयाँ हैं जो उन्हें एक साथ लाती हैं। जब वैश्वीकरण सांस्कृतिक पहलुओं का विश्लेषण करता है तो यह वैश्वीकरण सांस्कृतिक प्रक्रिया को देखते हुए पूरी दुनिया में कुछ तत्वों के आदान–प्रदान की वकालत करता है। वे हमें सामाजिक परिवर्तन और पूरी दुनिया को एक साथ लाने के दृश्य के बारे में बताते हैं। भारत जैसे देश में हम वैश्वीकरण की प्रक्रिया देखते हैं। इसने राष्ट्रीय और स्थानीय संस्कृति को प्रभावित किया है और इसके आधार पर यह महसूस होता है कि इस विदेशी संस्कृति को हमारी व्यक्तिगत स्थानीय संस्कृति को खत्म नहीं करना चाहिए। योगेंद्र सिंह दोनों संस्कृतियों के आदान–प्रदान का विश्लेषण करते हैं। उन्हें लगता है कि भारतीय स्थानीय संस्कृति वैश्विक संस्कृति के कुछ तत्वों को अपनाने के बाद भी अपनी पहचान बनाए रखेगी।

वैश्वीकरण एक ऐसी प्रक्रिया है जो दुनिया के संकुचन के लिए जिम्मेदार है। जो कुछ भी राष्ट्रीय स्तर पर था वह अब अंतर्राष्ट्रीय हो गया है। वैश्वीकरण के नाम पर लोग एक टर्म 'ग्लोबल विलेज', जो एक स्पूफ है इसका प्रयोग भी करते हैं। इस वैश्वीकरण के पीछे वैश्विक बाजार और संचार क्रांति है। विश्व बाजार पर कब्जा करने की होड़ है, वे इसके लिए सब कुछ कर रहे हैं। यहां ''वे'' का अर्थ उन देशों से है जो अपने बाजारों का विस्तार कर रहे हैं।

समाजशास्त्र में, वैश्वीकरण का विचार कुछ दशक पहले विकसित किया गया है। वैश्वीकरण का समर्थन करने वाले विद्वान पारंपरिक समाजशास्त्र की आलोचना करते हैं। उनका कहना है कि पारंपरिक समाजशास्त्र अभी भी दुनिया के सभी समाजों को एक मानने के बजाय देश–राज्य के पुराने विचार पर कायम है। हालाँकि वैश्वीकरण की अवधारणा भी सुरक्षित नहीं है, इसकी अपनी कमजोरियाँ हैं। फिर भी कुछ विद्वान यह सवाल उठाते हैं कि क्या वैश्वीकरण साम्राज्यवाद का एक आधुनिक रूप है। उनके बीच क्या अंतर है? भारत जैसे विकासशील देशों में, नई वैश्विक संचार प्रणाली विशेष टेलीविजन चैनलों द्वारा प्रचारित की जा रही अल्ट्रामॉडर्न संस्कृति को इसके आलोचक भी मिले हैं। कुछ विद्वान आधुनिकीकरण और वैश्वीकरण के संबंध के बीच की गलतफहमियों की ओर भी उंगली उठाते हैं।

वैश्वीकरण का अर्थ

वैश्वीकरण कोई पूरी तरह से नई प्रक्रिया नहीं है हालाँकि इसे उपनिवेशवाद और आधुनिकीकरण के समान माना जा सकता है। वास्तव में वैश्वीकरण एक नया विचार है। 1980 के बाद से द्वि–आयामी दुनिया का परिदृश्य बदलने लगा। सोवियत संघ के विघटन के बाद एक बेकाबू किस्म का पूंजीवाद विकसित हुआ जिसे चुनौती नहीं मिली। यह दुनिया को एक आयामी प्रभाव में ले आया। पूंजीवाद ने विश्व मानचित्र पर कुछ अभूतपूर्व सामाजिक और राजनीतिक परिवर्तन किए। दुनिया ने हालांकि प्रयास किया कि इस नई बदली हुई प्रणाली के साथ समायोजन करें। ब्रेटन वुड्स सम्मेलन द्वारा चौथा संरचनात्मक समायोजन कार्यक्रम नई आर्थिक नीति और उदारीकरण कार्यक्रमों को शुरू करने के लिए आयोजित किया गया था। इस बीच सूचना प्रौद्योगिकी ने वैश्विक संचार और संबंधों की आवृत्ति को भी गति दी। बेहतर अवसरों की तलाश में लोगों ने विभिन्न भौगोलिक क्षेत्रों की ओर पलायन करना शुरू कर दिया। इन सभी घटनाओं के परिणामस्वरूप एक नए बुनियादी आर्थिक और राजनीतिक पुनर्निर्माण की वैश्विक स्थिति पैदा हुई। औद्योगिक क्रांति के साथ एक नए प्रकार का वैश्विक एकीकरण विकसित हुआ, जो देश–राज्य की सीमाओं से ऊपर उठ गया। फ्रीडमैन के अनुसार, वैश्वीकरण वास्तव में बाजारों, वित्त और उद्योगों का एकीकरण है। इस एकीकरण के साथ, दुनिया ने मध्य स्तर से सूक्ष्म स्तर तक अनुबंध किया है ताकि हम न्यूनतम लागत के साथ तुरंत दुनिया के हर कोने तक पहुंच सकें। अतीत की अन्य अंतरराष्ट्रीय प्रणालियों की तरह यह दुनिया की घरेलू राजनीति, आर्थिक और विदेश नीतियों को भी एक नया रूप दे रहा है।

प्रत्यक्ष या परोक्ष रूप से अर्थव्यवस्था

वैश्वीकरण के अन्य विभिन्न पहलुओं जैसे, आर्थिक, सामाजिक, राजनीतिक और सांस्कृतिक का मानव जीवन में बहुत महत्व है। आर्थिक वैश्वीकरण को इस प्रकार भी

परिभाषित किया जा सकता है : किसी देश की सरकार की आर्थिक नीतियाँ अंतरराष्ट्रीय वित्तीय बाजारों में होने वाली घटनाओं के आधार पर निर्धारित होती हैं तो यह देश–राज्य की वित्तीय स्वायत्तता को कम करता है। वैश्वीकरण दुनिया को एक संपूर्ण आर्थिक इकाई और बाजार को अपने साधन के रूप में स्वीकार करता है। वैश्वीकृत विश्व की अर्थव्यवस्था की कुछ विशेषताएँ इस प्रकार हैं– खुला, उदार, मुक्त बाजार और मुक्त व्यापार। यह अंतरराष्ट्रीय निवेश और तात्कालिक पूंजी प्रवाह द्वारा बुकमार्क किया गया है। राष्ट्रीय अर्थव्यवस्थाएं सर्वश्रेष्ठ आर्थिक मंडलों के दायरे में आ रही हैं और विश्व व्यापार और वित्तीय बाजारों के साथ एकीकृत हो रही हैं, जो कंप्यूटर की मदद से तुरंत हो रहा है। विश्व के विभिन्न भागों में प्रत्यक्ष विदेशी निवेश की गति और पूंजी प्रवाह को आर्थिक वैश्वीकरण के रूप में देखा जा सकता है। नतीजतन, अंतरराष्ट्रीय कंपनियां उन देशों तक पहुंचने की कोशिश कर रही हैं जहां सस्ता श्रम उपलब्ध है। लोग देश–राज्य की सीमा से भी बाहर आ रहे हैं और अपने कार्यस्थल और आवास को बदल रहे हैं और उन्हें एक नए सांस्कृतिक वातावरण के साथ समायोजित कर रहे हैं।

वैश्विक आर्थिक संस्थान अमीर और गरीब के बीच की खाई को व्यापक बनाते हैं। वैश्वीकरण ने संस्कृति, राष्ट्रीयता, पर्यावरण संबंधों और सामाजिक जीवन की एक नई भावना भी विकसित की है जो हमारे पारंपरिक तरीकों और दुनिया से संबंधित मुद्दों को प्रभावित करती है। सांस्कृतिक संदर्भ में वैश्वीकरण पूरे विश्व में बढ़ते सांस्कृतिक अंतर्संबंधों का सूचक है।

लोगों के प्रवास, पर्यटन, वैश्विक अर्थव्यवस्था और राजनीतिक संस्थानों के कारण इसे दुनिया के विभिन्न हिस्सों में लोगों की जीवन शैली में देखा जा सकता है। वैश्वीकरण स्थानीय संस्कृति के लिए विकल्प उपलब्ध कराता है। मानवाधिकार, लोकतंत्र, बाजार अर्थव्यवस्था, उत्पादन के नए तरीके, उपभोग के लिए नए उत्पाद और आराम की आदतों के बारे में विचार अब स्थानीय संस्कृति के एक नए दृष्टिकोण के साथ प्रस्तुत किए गए हैं। यह प्रकट करता है कि किसी अन्य देश में एक विदेशी के लिए, एक नागरिक के लिए दुनिया में एक नई संस्कृति, ''स्व'' की समझ क्या है। जन–साझेदारी कैसे संभव हो सकती है?

वैश्वीकरण की परिभाषा

वैश्वीकरण एक नया विचार है। इसके विभिन्न पहलुओं का विश्लेषण अभी भी चल रहा है और वैश्वीकरण की कोई सार्वभौमिक रूप से स्वीकार्य परिभाषा नहीं है। इसे परिभाषित करने के लिए कई प्रयास किए जा रहे हैं और उनमें से कुछ नीचे दिए गए हैं–

मैल्कम वाटर्स के अनुसार– वैश्वीकरण एक सामाजिक प्रक्रिया है जिसमें भूगोल के माध्यम से सामाजिक और सांस्कृतिक व्यवस्था को दबा दिया जाता है ताकि लोगों को उनके पश्चिमीकरण के बारे में पता चले।

फ्राइडमैन के अनुसार– वैश्वीकरण वास्तव में बाजारों, अर्थव्यवस्थाओं और उद्योगों का एकीकरण है।

दुनिया इस तरह सिकुड़ रही है कि दुनिया का हर नुक्कड़ इंसान की पहुँच में आ रहा है जो पहले संभव नहीं था। अतीत की अन्य अंतर्राष्ट्रीय प्रणालियों की तरह यह स्थानीय राजनीति, आर्थिक नीतियों और विदेशी संबंधों को एक नया रूप दे रहा है।

वैश्वीकरण सिद्धांत

वैश्वीकरण का सिद्धांत वैश्विक सांस्कृतिक व्यवस्था के प्रकोप का विश्लेषण है। वैश्वीकरण सिद्धांत के अनुसार, सामाजिक और सांस्कृतिक विकास के साथ एक नई वैश्विक संस्कृति का विकास किया जा सकता है। विश्व उपग्रह संचार का अस्तित्व, उपभोग और उपभोक्तावाद का वैश्विक रूप, सार्वभौमिक जीवन शैली में वृद्धि, ओलंपिक खेल, विश्व फुटबॉल टूर्नामेंट, टेनिस जैसे सार्वभौमिक खेलों का विकास, वैश्विक पर्यटन का विस्तार, वैश्विक सेना का विकास, विश्व स्वास्थ्य समस्याओं के प्रति जागरूकता का विकास राष्ट्र संघ या संयुक्त राष्ट्र जैसी प्रणालियों का विकास, वैश्विक राजनीतिक क्रांतियों का विकास, मानव अधिकारों के विचार का विस्तार, मुख्य रूप से वैश्वीकरण पूरी दुनिया को एक मानने की चेतना फैलाता है।

वैश्वीकरण एक तरह से अंतरराष्ट्रीय संबंधों का समाजशास्त्र है। इसे विश्व व्यवस्था के सिद्धांत के रूप में भी देखा जा सकता है। विश्व–व्यवस्था जो वैश्विक आर्थिक अन्योन्याश्रयता का विश्लेषण करती है, यह भी दावा करती है कि सांस्कृतिक वैश्वीकरण आर्थिक वैश्वीकरण का परिणाम है। पहले कहा गया था कि यह देश–राज्य का एक उद्योगपति समाज में अभिसरण है। लेकिन यह विचार वैश्वीकरण के विचार से बहुत अलग है। समकालीन वैश्वीकरण के विचार के अनुसार, वैश्वीकरण वास्तव में भेदभाव और एकरूपता की दो बहुत ही विपरीत प्रक्रियाओं की एक रैली है। एक ओर स्थानीयकरण और वैश्वीकरण के बीच जटिल अंतःक्रियाएँ हैं दूसरी ओर वैश्वीकरण का जोरदार विरोध हो रहा है। ये वैश्वीकरण के आलोचक हैं। अपनी आलोचना में वे आरोप लगाते हैं, ''विश्व समाजों की एक प्रणाली है'' और पारंपरिक समाजशास्त्र देश–राज्य की पारंपरिक व्यवस्था पर अधिक जोर देता है। वैश्वीकरण के सिद्धांत के साथ कई समस्याएँ हैं, जिन्हें कुछ उदाहरणों के साथ समझाया जा सकता है। आर्थिक और सांस्कृतिक वैश्वीकरण को विभाजित करने वाली रेखा कैसे खींची जा सकती है? वैश्वीकरण और आधुनिकतावाद को कैसे अलग किया जा सकता है?

वैश्वीकरण 1990 से समाजशास्त्रियों के ज्ञान का एक हिस्सा बन गया है। ''समकालीन समाजशास्त्र'' नामक पत्रिका ने सितंबर 1996 में पुस्तकों के विषय पर एक सर्वेक्षण प्रकाशित किया।

इसके निष्कर्ष इस प्रकार हैं : वैश्विक, वैश्विकता और वैश्वीकरण जैसे शब्द नारीवाद, अंतर्राष्ट्रीय अर्थव्यवस्था, आप्रवास, रंगभेद, अंतरराष्ट्रीय निगम, खाद्य वस्तुओं के उत्पादन और वितरण, केंद्रीय बैंक और अंतर्राष्ट्रीय मौद्रिक प्रणाली, अमेरिकी विदेश नीति और विकास तथा तीसरी दुनिया के शहरों आदि के बारे में शीर्षकों में पाए जाते हैं। यह एक अकाट्य सत्य है कि आज दुनिया एक ऐसा ग्रह बन गई है जहाँ फैशन के सामान राष्ट्रीय सीमाओं से परे निर्मित किए और बेचे जा रहे हैं। एक इलेक्ट्रॉनिक

मेल दुनिया के किसी भी कोने में भेजा या प्राप्त किया जा सकता है। एक व्यक्ति ई–कॉमर्स के माध्यम से दुनिया के दूसरे हिस्से से कुछ भी खरीद सकता है और इसके लिए मास्टर कार्ड के माध्यम से भुगतान कर सकता है। कमोडिटी चेन, साइबर सोसाइटी का विकास, पर्यावरण का समाजशास्त्र, योग्य रोजगार और काम, अंतर्राष्ट्रीय श्रम विभाग, इंटरनेट, बहुराष्ट्रीय कंपनियों आदि को नए उपनिवेशवाद के रूप में रेखांकित किया जा सकता है।

वैश्वीकरण का प्रभाव

वैश्वीकरण में नकारात्मक और सकारात्मक दोनों प्रकार की ऊर्जा होती है। यह दोधारी तलवार है। वैश्वीकरण के कारण विभिन्न क्षेत्रों में सकारात्मक परिवर्तन देखा जा रहा है जबकि कुछ क्षेत्रों में नकारात्मक परिवर्तन हुए हैं। यहां तक कि नुकसान और विनाश की स्थिति को भी कभी नकारा नहीं जा सकता। इसलिए वैश्वीकरण के वैज्ञानिक और तार्किक मूल्यांकन के लिए दोनों पहलुओं को समझने की जरूरत है। वैज्ञानिक, चिकित्सा और इसी तरह के आविष्कार सभी के लिए उपलब्ध हैं। अधिकांश क्षेत्रों में अंतरराष्ट्रीय संगठनात्मक सहयोग बढ़ रहे हैं। हरित क्रांति, महिला आंदोलन, स्थानीय समुदायों के सशक्तिकरण की चिंता और स्वदेशी जैसे आंदोलनों के माध्यम से लोगों में अखंडता की भावना विकसित हो रही है। वे अब गैर सरकारी संगठनों के माध्यम से अंतरराष्ट्रीय संगठनों में शामिल हो रहे हैं और एक अंतरराष्ट्रीय शासन प्रणाली के लिए मार्ग प्रशस्त कर रहे हैं। वैश्वीकरण के कई नकारात्मक प्रभाव भी हैं। बेरोजगारी में वृद्धि होती है यह तर्क दिया जाता है कि बहुराष्ट्रीय कंपनियाँ जो आमतौर पर विकसित देशों से संचालित होती हैं। श्रम और कच्चे माल के लिए अविकसित देशों का उपयोग करती हैं। अतः विकसित देशों के पास डेटा और सूचना प्रौद्योगिकी, जिनका उपयोग उत्पादन और वित्तीय लेनदेन के लिए किया जाता है का संग्रह है। इन कंपनियों के वित्तीय लेनदेन और बहुराष्ट्रीय कंपनियों के प्रबंधन को संचालित करने के लिए लंबी दूरी के संचार का उपयोग किया जाता है।

सैटेलाइट, टेलीविजन, इंटरनेट, ई–मेल द्वारा हर पल स्क्रीन पर दूरसंचार के माध्यम से सेवाओं और वस्तुओं की एक नई छवि प्रस्तुत की जा रही है। फैशन की एक नई दुनिया प्रस्तुत की जा रही है। इसके साथ एक नया वैश्विक स्तर बनाया जा रहा है। सांस्कृतिक चीजों, खाने की आदतों, कपड़ों, संगीत, कला और फिल्मों के माध्यम से एक नया स्वाद भी विकसित किया जा रहा है जो एक नए वैश्विक व्यवहार को प्रोत्साहित कर रहा है और लोगों की स्थानीय पहचान को नष्ट कर रहा है।

वैश्वीकरण के प्रभावों को मुख्य रूप से निम्नलिखित बिंदुओं द्वारा समझाया जा सकता है–

विश्व अर्थव्यवस्था का एकीकरण– आज उदारीकरण, खुली अर्थव्यवस्था और मुक्त व्यापार की व्यवस्था लागू है, जिसका सीधा अर्थ है ''विश्व अर्थव्यवस्था का एकीकरण''।

साझा मुद्रा– वैश्वीकरण ने मुद्रा को एकीकृत कर दिया है। 2001 में, यूरोप के सभी देशों ने ''यूरो'' नामक एक नई साझा मुद्रा को अपनाया, जिसने मुद्रा लेनदेन की

समस्याओं को कम किया। लोगों को मुद्रा के आदान–प्रदान से भी छुटकारा मिला। नवंबर 2003 में सार्क देशों का एक सम्मेलन हुआ जिसमें एशिया में आम मुद्रा के प्रस्ताव पर भी विचार किया गया। यदि निकट भविष्य में यह संभव हुआ तो इसे अँधेरे में उजाला माना जाएगा।

विकासशील और अविकसित देशों की अर्थव्यवस्थाएँ मुख्य रूप से कृषि पर निर्भर हैं। विशाल मानव पूंजी भी इस पर निर्भर करती है। विश्व के लिए कृषि क्षेत्र को उदार बनाना इन देशों के लिए आत्मघाती कदम होगा लेकिन इसके लिए उन पर दबाव बनाया जा रहा है।

अर्थव्यवस्थाओं के एकीकरण का एक नकारात्मक पहलू है। इस संदर्भ में कुछ निम्नलिखित तथ्य हैं : दक्षिण एशियाई देशों के कानकुन सम्मेलन में विकसित और अविकसित देशों पर अपने कृषि क्षेत्र को उदार बनाने का दबाव डाला जाता है। तर्क दिया गया कि इससे उनकी जीडीपी बढ़ेगी।

तीन प्रमुख क्षेत्र– कृषि क्षेत्र, औद्योगिक क्षेत्र और रोजगार क्षेत्र तीन प्रमुख क्षेत्र हैं। अधिकांश राष्ट्रों ने औद्योगिक और रोजगार क्षेत्रों में उदारवादी दृष्टिकोण अपनाया, लेकिन कृषि प्रधान देशों ने जैसे भारत ने अभी तक इस सेक्टर को दुनिया के लिए नहीं खोला है। इसके लिए लगातार दबाव बनाया जा रहा है।

विश्व बाजार का एकीकरण– बीसवीं शताब्दी ने औपनिवेशिक शासन के अंत को चिह्नित किया। स्वतंत्रता आंदोलनों के बाद कई राष्ट्र औपनिवेशिक नियमों से मुक्त हो गए थे। इस सदी ने दो विश्व युद्ध भी देखे। तो 20वीं सदी को देशों एवं राज्यों के राष्ट्रीय संघर्ष के रूप में देखा जा सकता है। गहन राष्ट्रवाद इन्हीं क्रांतियों की उपज था। राष्ट्र निर्माण की प्रक्रिया में राष्ट्रवाद ने राष्ट्रीय बाजारों को फिर से स्थापित किया।

1980 के दशक में, राजनीतिक उपनिवेशवाद ने आर्थिक उपनिवेशवाद को जन्म दिया। इसे वैश्विक प्रणाली से नामित किया गया। मुक्त बाजार प्रणाली, खुली अर्थव्यवस्था, उदारीकरण की नीति, नई सूचना प्रौद्योगिकी आदि ने इसकी समृद्धि के लिए उपजाऊ भूमि प्रदान की। दुनिया के बाजार एकीकृत हो रहे हैं, जिसका नकारात्मक और सकारात्मक प्रभाव है। एकीकरण के बाद सभी बाजार सभी के लिए खुले हैं, जो व्यापार और वाणिज्य में असीमित अवसर प्रदान करते हैं। विकासशील और अविकसित देशों के मानव संसाधन रोजगार के नए अवसर प्रदान कर रहे थे और विदेशी मुद्रा राष्ट्रीय खजाने में जमा हो रही थी। इसके नकारात्मक प्रभाव भी पड़ते हैं। देश–राज्य की नीतियाँ बाजारों के दबाव से तय होती हैं। प्रत्यक्ष राष्ट्रीय मुद्दों में बाजारों का हस्तक्षेप बढ़ा है। मजबूत अर्थव्यवस्था में बाजार बहुराष्ट्रीय या अंतरराष्ट्रीय कंपनियों के पिंजरे में फंसा हुआ है। लघु और कुटीर उद्योगों को किनारे कर दिया गया है।

मंडी बाजार में आर्थिक रूप से कमजोर वर्गों का योगदान नगण्य हो गया है, जिससे शोषण और बेरोजगारी बढ़ रही है। विज्ञापन के सहारे उत्पादन के हिसाब से बाजार बनाया जा रहा है। इससे उपभोक्तावाद भी बढ़ा है।

राष्ट्रवाद बनाम वैश्वीकरण : अन्य तथ्यों की तरह, राष्ट्रवाद एक ऐतिहासिक तथ्य है, सार्वजनिक जीवन के विकास की प्रक्रिया में, कुछ ऐतिहासिक तथ्यों की परिपक्वता ने राष्ट्रवाद की घटना शुरू की। वहीं ई.एच.कार का भी कहना था, ''राष्ट्र का उदय हुआ जब मध्य युग समाप्त हुआ।'' ए आर देसाई का मानना है कि सामाजिक, आर्थिक और सांस्कृतिक विकास के विशिष्ट युगों के दौरान राष्ट्रों ने जन्म लिया। आधुनिक समय के राष्ट्र सामाजिक अस्तित्व के प्राचीन युगों से निम्नलिखित तरीकों से भिन्न हैं :

एक राष्ट्र के सभी सदस्य एक अर्थव्यवस्था में कुछ जैविक संबंधों वाले भूभाग पर एक–दूसरे से संबंधित होते हैं। उनके पास सामूहिक आर्थिक अस्तित्व का अभाव होता है। वे आम तौर पर एक आम भाषा का उपयोग करते हैं। टेलेक्स, टेलीप्रिंटर, टेलीविजन, रेडियो, ऑप्टिकल फाइबर, इंटरनेट, सॉफ्टवेयर और हार्डवेयर जैसी आधुनिक तकनीक का उनका ज्ञान पुरानी तकनीक की तुलना में अधिक प्रभावी है। नई तकनीक का मूल आधार कंप्यूटर है। इंटरनेट दुनिया का सबसे बड़ा कंप्यूटर नेटवर्क है जिसकी पहुँच दुनिया के कोने–कोने में है। यह वास्तव में दुनिया की मौलिक सोच को बदल रहा है। ई–बैंकिंग और ई–लर्निंग का व्यापक रूप से उपयोग किया जा रहा है। दुनिया के किसी कोने में बैठा कोई भी व्यक्ति कहीं से भी पैसा जमा कर सकता है या निकाल सकता है। उसी तरह व्यक्ति संसार के किसी भी कोने में बैठकर भी प्रशिक्षण प्राप्त कर सकता है। विभिन्न टीवी चैनल हमारे घर पर दुनिया की खबरें प्रसारित कर रहे हैं और दुनिया एक परिवार की तरह अनुबंधित है।

सैटेलाइट ने दुनिया को एक तार आईटी यानी सूचना प्रौद्योगिकी के माध्यम से जोड़ा है, सूचना प्रौद्योगिकी के अधिकांश उपकरण विकास और ज्ञान को बढ़ाने का मार्ग प्रशस्त कर रहे हैं। सूचना प्रौद्योगिकी के संकेतकों के व्यावहारिक आंकड़ों के आधार पर, निम्नलिखित प्रस्ताव किया जा सकता है : वैश्वीकरण और सूचना प्रौद्योगिकी के बीच एक संबंध है। उच्च वैश्वीकरण दर वाले राष्ट्रों में सूचना प्रौद्योगिकी के संकेतकों के उपयोग की दर भी उच्च होती है।

ई–पत्रकारिता– आईटी क्रांति ने वैश्वीकरण को और गति दी है। मीडिया स्कॉलर मार्शल मैक्लोहन की पुस्तक ''द मीडियम इज मैसेज'' के माध्यम से यह स्पष्ट किया है कि सूचना प्रणाली सूचना से अधिक महत्वपूर्ण है। सूचना निर्णायक शक्ति के रूप में उभरी है। इसकी प्रणाली न केवल विचारधारा से मुक्त है, बल्कि विचारधाराओं को सूचना प्रणाली द्वारा नियंत्रित किया जा रहा है। आर्थिक, सामाजिक और राजनीतिक, सूचना प्रणाली की प्रत्येक प्रणाली में महत्वपूर्ण भूमिका होती है। शेयर बाजारों को त्वरित सूचना प्रणाली द्वारा नियंत्रित किया जा रहा है, न कि तीव्र विकास दर से। सूचना और सूचना प्रणाली वैश्विक स्तर पर एकीकृत हो रही हैं।

टेलेक्स, टेलीफोन और टेलीग्राफ जैसी सूचनाओं का विस्तार अब पुराना हो चुका है। ई–मेल, ई–फैक्स, सेलुलर फोन और कंप्यूटर डेटा बैंक दौड़ में अग्रणी हैं। कंप्यूटर नेटवर्किंग ने अपना विस्तार शुरू कर दिया है। विदेश संचार निगम लिमिटेड, राष्ट्रीय सूचना विज्ञान केंद्र और सी–डॉट जैसे संगठनों द्वारा सूचना का प्रवाह तीव्र गति से चल

रहा है। बहु–आयामी प्रौद्योगिकी को समाचारों की विशाल दुनिया से जोड़कर, सूचना प्रौद्योगिकी का एक नया मार्ग प्रशस्त किया जा रहा है जहां व्यवसायों के लेन–देन की खबरें सर्वविदित होती हैं, जहां उपभोक्ता को बकवास नहीं माना जाता है, बल्कि उसकी रुचि अनुसार सशक्त जानकारी प्रस्तुत की जाती है। ई–पत्रकारिता, जीवन का अनिवार्य हिस्सा बन गया है। इसने अपनी उपयोगिता और गुणवत्ता को भी साबित किया है। यह दुनिया के लिए वरदान है, लेकिन इसका दूसरा पक्ष भी है। वैश्वीकरण द्वारा बच्चे को वयस्क बनाने वाली सूचना प्रौद्योगिकी की भी आलोचना हो रही है।

अपनी पुस्तकों, 'मास कम्युनिकेशन एंड अमेरिकन एम्पायर' (1969) और 'द माइंड मैनेजर्स' (1973) में, शिलर ने स्थलीय वर्चस्व को प्रस्तुत करते हुए मीडिया की भूमिका को रेखांकित किया है। उनका मानना है कि ''सुपर हाईवे'' के नाम पर जो भी बदलाव हो रहे हैं, वह सार्वजनिक संपत्तियों की कीमत पर हो रहे हैं। कॉर्पोरेट लाभ के लिए रेडियो स्पेक्ट्रम फ्रीक्वेंसी का उपयोग किया जा रहा है। रेडियो स्पेक्ट्रम फ्रीक्वेंसी एक राष्ट्रीय संपत्ति और प्राकृतिक संसाधन है। रेडियो स्पेक्ट्रम को शुरू में जनता के लिए एक संसाधन के रूप में इस्तेमाल किया गया था, लेकिन बाद में इसका दुरुपयोग शुरू हुआ। जिन लोगों को लाइसेंस बाँटे गए, वे जनता से किए अपने वादों को भूल गए। उन्होंने इसे अपने व्यावसायिक लाभ के लिए इस्तेमाल करना शुरू कर दिया। कमोबेश यही स्थिति भारत में है

आर्थिक उदारीकरण के कारण भारत में रेडियो स्पेक्ट्रम आवृत्ति का उपयोग व्यावसायिक हितों के लिए किया जाता है, विशेष रूप से मीडिया और दूरसंचार के क्षेत्र में। संचार के विभिन्न माध्यमों से जनता को उपभोक्ता बनाया जा रहा है, जनता का मिजाज और मनोविज्ञान बदल रहा है। उपभोक्ता को नई वस्तुओं की भूख हो गई है। उपभोक्तावादी संस्कृति का विस्तार हो रहा है। शिलर के मतों की श्रंखला में एक महत्वपूर्ण प्रश्न उठता है, वह यह है कि सूचना प्रौद्योगिकी ने दुनिया के लाभ के लिए असीम संभावनाएँ पैदा की लेकिन संचार के आधुनिक साधनों का दुरुपयोग भी किया जा रहा है। तो सवाल उठता है– जवाबदेह कौन है? उदारीकरण या उसके दुराचारी! यह विचारणीय विषय है।

सांस्कृतिक बहुलवाद – जब विभिन्न संस्कृतियों के लोग एक साथ रहते हैं और उनके सह–अस्तित्व की धारणा का समर्थन भी किया जा रहा है, तो ऐसे राज्य को सांस्कृतिक बहुलवादी राज्य कहा जाता है। भारत इसका सर्वोच्च उदाहरण है। यहाँ विभिन्न समाज एक साथ रहते हैं, भारत की सांस्कृतिक परंपराओं में भागीदारी करते हुए भी अपनी सांस्कृतिक और धार्मिक परंपराओं का अभ्यास करने के लिए स्वतंत्र हैं।

वैश्वीकरण के इस युग में, विभिन्न संस्कृतियों के लोगों के बीच व्यवहार अपरिहार्य है। ये अंतःक्रियाएँ वैश्विक समाज की स्वीकृति हैं। इसने देशों के बीच यातायात को भी बढ़ाया है। व्यापार, वाणिज्य, राजनीतिक, सामाजिक और अन्य कारणों से भी यातायात में वृद्धि हुई है। इससे सांस्कृतिक बहुलवाद को बढ़ावा मिला है। आज आंतरिक सांस्कृतिक सापेक्षता को प्रोत्साहित किया जा रहा है और इसके पीछे कारण हैं : संचार, प्रवास, पर्यटन, विदेशी कंपनियाँ आदि। वैश्वीकरण के कारण, विकसित और विकासशील

देशों में बड़े शहरों में प्रवास बढ़ा है। इसलिए लोगों के सामने जो समस्या पैदा हो गई है, वह यह है कि अपनी पारंपरिक संस्कृति, राष्ट्रीयता, नागरिकता और सामाजिक जीवन के साथ तालमेल बिठाते हुए अपने मूल स्थानों पर अपना जीवन यापन कैसे किया जाए। कुछ समाजशास्त्रियों का मानना है कि वैश्वीकरण बहुसंस्कृतिवाद को प्रोत्साहित कर रहा है। एक देश की विभिन्न प्रकार की आवश्यक वस्तुओं का दूसरे देशों में उपभोग किया जाता है और इस प्रकार एक देश की संस्कृति दूसरे देशों तक भी पहुँच रही है। विदेशी संस्कृति हवाई मार्गों से हमारे घरों तक पहुँच रही है। केबल टीवी चैनल इसके वाहक हैं। कुछ लोग इसे सांस्कृतिक हमला मानते हैं।

भाषाई प्रभुत्व – वैश्वीकरण के दुष्परिणामों में से एक कमजोर राष्ट्रों की भाषाओं का अवसान होना भी है। हिंदी उस सीमा तक प्रभावित नहीं होगी क्योंकि यह राष्ट्र की आंतरिक शक्ति है। लेकिन कमजोर, कम आबादी वाले और गरीब देशों की भाषाएँ निश्चित रूप से पराजित होंगी। यदि वे वैश्विक प्रतिस्पर्धा में शामिल होना चाहते हैं तो उन्हें इंटरनेट पर आना होगा, जिसके लिए अंग्रेजी का ज्ञान आवश्यक है। एकमात्र भाषा जो हमें संपूर्ण आधुनिक ज्ञान प्रदान कर सकती है वह है अंग्रेजी। इंटरनेट जो वैश्वीकरण का सबसे प्रभावी और उभरता हुआ साधन है, भाषा का वाहक बन गया है। बहुराष्ट्रीय और अंतरराष्ट्रीय कंपनियाँ भी यही काम कर रही हैं। विदेशी टीवी चैनलों के माध्यम से हवाई मार्ग से भी अंग्रेजी का हमला हो रहा है।

आज वैश्वीकरण के कारण राष्ट्रवाद और भाषा निरपेक्षता का भविष्य अंधकारमय है। यदि हम वैश्वीकरण के सांस्कृतिक पक्ष से चिपके रहते हैं, तो साम्राज्यवादी संस्कृति से संबंधित मुद्दे हमारा ध्यान आकर्षित करते हैं। संयुक्त राष्ट्र भी भाषाओं के विलुप्त होने के मुद्दे पर चिंतित है। क्या अंग्रेजों और अंग्रेजी का दबदबा रहेगा और अन्य भाषाएँ विलुप्त होने की हद तक आ जाएँगी? यह प्रश्न विशेष रूप से विकासशील या अविकसित देशों की भाषाओं के लिए अपनी प्रासंगिकता खोज रहा है। अंग्रेजी अब अंतरराष्ट्रीय व्यापार की भाषा बन गई है।

बाहरी स्रोत से माल व सेवाएं लेना (आउट सोर्सिंग) – आउट सोर्सिंग वैश्वीकरण का एक एजेंट है। यूरोपीय देशों और अमरीका में पहले से ही गरमागरम बहस चल रही है। इसे शुरू में यूएसए ने शुरू किया था, लेकिन यह इसे खत्म करने की कोशिश कर रहा है क्योंकि इसका फायदा विकासशील देशों को मिल रहा है। नेशनल इंटेलिजेंस काउंसिल अमेरिकन इंटेलिजेंस की एक शाखा है जो सरकार को खुफिया जानकारी प्रदान करती है। इसके प्रमुख रॉबर्ट एल हिक्स ने सरकार को एक रिपोर्ट प्रस्तुत की जो 21 मार्च 2004 को दुनिया भर के समाचार पत्रों में प्रकाशित हुई थी। रिपोर्ट के अनुसार, व्यापार से संबंधित आउटसोर्सिंग नया चलन है। कंपनियों की उत्पादन लागत को कम करने में इससे मदद मिलती है। इसने अमेरिकियों को आगाह भी किया कि विदेशी कंपनियाँ आउटसोर्सिंग के नाम पर तकनीक और सूचनाओं की चोरी कर रही हैं। इसके परिणामस्वरूप विदेशों से कंप्यूटर कोड और हार्डवेयर आयात सुरक्षा से संबंधित गंभीर संकट उत्पन्न हो सकता है।

मिस्टर हिक्स ने अपनी रिपोर्ट में यह भी कहा कि आने वाले पंद्रह वर्षों में अमेरिका से 30 लाख से अधिक रोजगार के अवसर समाप्त हो जाएँगे। 70% से अधिक भारत जाएँगे, 20% फिलीपींस और 10% से कम चीन। यह विकासशील देशों के लिए उत्साहजनक है लेकिन विकसित देशों के लिए सामान्य नहीं है। इसलिए अमेरिका विदेशियों की आउटसोर्सिंग पर प्रतिबंध लगाने के लिए कदम उठा रहा है।

प्रवासन– एक भौगोलिक स्थान से दूसरे देश में या एक देश से दूसरे देश में स्थान परिवर्तन की प्रक्रिया को प्रवासन कहते हैं। पर्यटन और प्रवास में अंतर है। पर्यटन पूरी तरह से अस्थायी है जबकि प्रवास में स्थिरता है।

इससे जुड़ी दो और घटनाएँ हैं : उत्प्रवास और आप्रवास। जब कोई व्यक्ति दूसरे देश में जाने के लिए अपने देश को छोड़ देता है तो उसे उत्प्रवास कहा जाता है, जबकि देश में आने को आव्रजन कहा जाता है। इसके अलावा और भी प्रकार के प्रवास हैं, जिन्हें आंतरिक प्रवासन कहा जाता है, इसमें वह प्रक्रिया शामिल है जब कोई व्यक्ति किसी देश के भीतर किसी बड़े शहर या कस्बे में जाने के लिए अपने मूल निवास को छोड़ देता है।

वैश्वीकरण ने प्रवासन की प्रक्रिया को तेज कर दिया है। एक देश का नागरिक दूसरे देशों में निवेश कर रहा है जिससे उसकी यात्राओं में भी वृद्धि हुई है। विकासशील और अविकसित देशों के कुशल पेशेवर लोग रोजगार के लिए यूरोप और अमरीका की ओर पलायन कर रहे हैं। इस प्रकार वैश्वीकरण ने प्रवासन की प्रक्रिया को तेज कर दिया है।

अनिवासी भारतीयों (एनआरआई) को भारत में निवेश करने के लिए प्रोत्साहित किया जाता है जिसके लिए उन्हें कई कानूनी और प्रशासनिक सुविधाएँ प्रदान की जाती हैं। पूंजी निवेश बढ़ाने के लिए उनके लिए दोहरी नागरिकता की भी वकालत की गई थी। इसने परिणाम भी दिए हैं क्योंकि कई एनआरआई निवेश के लिए भारत आ रहे हैं। हालांकि यह अध्ययन करने की जरूरत है कि विनिवेश मंत्रालय को बंद करने और विदेशी निवेश के लिए प्रावधान बढ़ाने के फैसले का क्या असर होगा। प्रवासन, उत्प्रवास और आव्रजन के अपने बहुआयामी प्रभाव हैं। एक नए देश की नई संस्कृति में समायोजन की समस्या। कार्यात्मक संबंधों का उदय। मूल्यों, मानकों, जीवन शैली, व्यवहार आदि के कारण विभिन्न संस्कृतियों के लोगों में संघर्ष या सामंजस्य। ये वैश्वीकरण के बाद के प्रभाव हैं और इन मुद्दों के समाजशास्त्रीय अध्ययन की आवश्यकता है।

वैश्वीकरण का वाहक मध्यम वर्ग – मध्यम वर्ग समाज का एक ऐसा वर्ग है जिसका जीवन स्तर न तो इतना कम है और न ही इतना ऊँचा। यह समाज के दो छोरों के बीच में है, एक छोर पर उच्च वर्ग है जबकि दूसरे छोर पर गरीब है। इस वर्ग में आमतौर पर सफेदपोश और प्रबंधन से संबंधित नौकरियों में कार्यरत लोग शामिल होते हैं। यूरोपीय पुनर्जागरण के बाद यह नई सामाजिक व्यवस्था लागू हुई। भारत का पुनर्जागरण भी इसी श्रृंखला का हिस्सा है। रोजगार के नए अवसर मिले। कई वर्ग जैसे

अधिवक्ता, डॉक्टर, इंजीनियर, शिक्षक, मध्यम स्तर के उद्यमों के सीईओ आदि अस्तित्व में आए और धीरे–धीरे एक प्रमुख वर्ग का हिस्सा बन गए। इस वर्ग को मध्यम वर्ग कहा जाता है। इसने परिवर्तनों के वाहक की भूमिका भी निभाई।

श्रम का वैश्वीकरण – जब से वैश्वीकरण ने दुनिया को एक बाजार में बदल दिया है, मजदूरों की आवाज को दबा दिया गया है। राष्ट्रीय सरकार को उनकी शक्तियों से वंचित किया जा रहा है। सामाजिक असुरक्षा और वित्तीय पूंजी को बढ़ावा दिया जा रहा है। विकसित देशों में अकुशल श्रमिकों के रोजगार की समस्या उत्पन्न हो गई है। निजीकरण ने रोजगार की गारंटी को कम कर दिया है। कम पढ़े–लिखे या अकुशल लोग अपने उज्ज्वल भविष्य को लेकर संशय में रहते हैं। वे अपने ही समाज से विमुख हो जाते हैं, जो सामाजिक विद्रोह और हिंसा की भावना को पोषित कर रहा है। छोटे और कुटीर उद्योग बड़े कॉरपोरेट उद्यमों से पिछड़ रहे हैं। लघु एवं कुटीर उद्योगों में कार्यरत कारीगरों को बेरोजगारी की समस्या का सामना करना पड़ रहा है। श्रमिक संघ भी निष्प्रभावी हो गए हैं।

5.2.6 सूचना–तकनीक क्रांति के सामाजिक प्रभाव

नए आविष्कारों और खोजों ने समाज में इतनी विकासात्मक प्रक्रियाओं को जन्म दिया है कि इसे एक क्रांति भी कहा जाता है। यह आधुनिक युग विज्ञान का युग है। इसने सामाजिक संरचना को तो बदल ही दिया साथ ही इसने पुरानी विचारधाराओं के आर्थिक ढाँचे को भी धीरे–धीरे समाप्त कर दिया।

ऑगबर्न के अनुसार, ''विज्ञान भौतिक वातावरण में होने वाले परिवर्तनों के साथ हमारा समायोजन करता है और यह समायोजन रीति–रिवाजों और सामाजिक संस्थाओं को भी बदल देता है।''

यह सच है कि विज्ञान ने आधुनिकीकरण के सभी संसाधन दिए हैं, जिनका उपयोग व्यक्ति जरूरत पड़ने पर करता है। लेकिन यह कभी–कभी घातक साबित हो सकता है, इसलिए नागरिकों के प्रति विज्ञान की निम्नलिखित जिम्मेदारियाँ हैं–

(1) संसाधनों का विकास और उचित उपयोग हो।

(2) नए संसाधनों की खोज और विकास हो।

(3) वैज्ञानिक खोजें आम तौर पर एक सही दिशा में साइनपोस्ट अग्रेषण के रूप में काम करती हैं लेकिन कभी–कभी यह विनाशकारी भी हो सकती हैं।

(4) विज्ञान ने न केवल पुराने रीति–रिवाजों को समाप्त कर दिया है बल्कि उत्पादन के नए संसाधन और नई विचारधाराएँ भी बनाई हैं।

(5) विज्ञान ने नई दवाओं और टीकों का आविष्कार करके मानव जन्म दर में वृद्धि की है और मृत्यु दर में कमी की है।

(6) इसने संचार के नए साधन भी विकसित किए जिससे गतिशीलता में वृद्धि हुई जिसके कारण लोग अपने संकुचित क्षेत्र से बाहर निकल आए और समाज में संपर्क बनाने लगे।

(7) टेलीग्राम, टेलीफोन, कंप्यूटर और ईमेल समाज में क्रांतिकारी बदलाव लाए जिसके परिणामस्वरूप उत्पादन में वृद्धि हुई और अपेक्षित उत्पादन हुआ। विज्ञान सामाजिक नियंत्रण की एक महत्वपूर्ण एजेंसी है।

अति हर चीज की हमेशा विनाशकारी होती है और यह विज्ञान के संदर्भ में भी सत्य है। जो हमारे दैनिक जीवन में एक वरदान है उसकी भी कुछ सीमाएँ हैं और इस पर अंकुश लगाने की आवश्यकता है अन्यथा यह अभिशाप में बदल सकता है। इस पर नियंत्रण हेतु निम्न बिंदुओं पर विचार महत्वपूर्ण है–

(i) विज्ञान का सकारात्मक उपयोग।

(ii) विनाशकारी उद्देश्यों हेतु विज्ञान के उपयोग पर नियंत्रण।

प्रौद्योगिकी

यद्यपि सभी मशीनरी और उपकरणों को प्रौद्योगिकी कहा जाता है लेकिन वास्तविक तकनीक वह ज्ञान या संसाधन है जिसके माध्यम से हम जीवन के लिए उपयोगी चीजें प्राप्त करते हैं। उदाहरण के लिए पत्र लिखना हमारा उद्देश्य है तो फाउंटेन पेन हमारा माध्यम है जिसे मशीन से बनाया जा सकता है। तो फाउंटेन पेन बनाने वाली मशीन एक तकनीक है। इसी तरह यदि मशीन बनाना हमारा उद्देश्य है तो जिस विज्ञान या उपकरणों की आवश्यकता होगी वह तकनीक होगी। इसलिए जैसे–जैसे मानव ज्ञान बढ़ता है, तकनीक भी बदलती जाती है। इस आधार पर कार्ल मार्क्स ने स्पष्ट किया, कि उत्पादन के साधनों में परिवर्तन और प्रौद्योगिकी के पैटर्न में परिवर्तन सामाजिक परिवर्तन का एक महत्वपूर्ण कारक है। वर्तमान जीवन में प्रौद्योगिकी में परिवर्तन ने भी समाज के सभी क्षेत्रों को बदल दिया है। कुछ तकनीकी परिवर्तनों के कारण हुए कुछ सामाजिक परिवर्तन निम्नलिखित हैं :

यंत्रीकरण

मशीनीकरण को सबसे महत्वपूर्ण तकनीकी कारक कहा जाता है। वर्तमान युग में मशीनीकरण के विकास ने हमारे दृष्टिकोण, विश्वासों, विचारों और सामाजिक संगठन को पूरी तरह से बदल दिया है। मशीनों की अधिक उपलब्धता से हर कार्य यंत्रीकृत हो गया है और मानव भी मशीन बन गया है। मशीनीकरण ने शिल्प कौशल, पड़ोसियों के प्रति स्नेह, भाईचारा, नैतिकता और सामाजिक व्यवहार को भी लगभग समाप्त कर दिया है। तकनीकी विकास ने घर में रहने वाली महिलाओं को भी औद्योगिक व्यवस्था में ला दिया है। इसने हर व्यक्ति को पूरी तरह से नया वातावरण दिया है और उसके कामकाज में भी बदलाव किया है।

मशीनीकरण ने मुख्य रूप से समाज के दो क्षेत्रों को प्रभावित किया है–

(अ) विशेषज्ञता के क्षेत्र में, और, (ब) जीवन में नए आदर्शों के क्षेत्र में।

पहली श्रेणी में, मशीनीकरण ने काम के समय, आराम के भौतिक संसाधनों, प्रतिस्पर्धा की भावना और राजनीतिक नियंत्रण में वृद्धि की है। इसलिए पुराने शिल्प कौशल का महत्व कम हो रहा है, और नया शिल्प विकसित हो रहा है। नए और जटिल

आर्थिक संबंध भी फैल रहे हैं। सामाजिक मूल्य वह व्यवस्था है जो हमारे लिए एक विशेष अर्थ रखते है। यदि ये मूल्य बदलते हैं, तो सामाजिक संरचना और संगठन भी बदल जाते हैं। मशीनीकरण ने हमारे जीवन की पुरानी व्यवस्था और नियम जो हमारी सामाजिक स्थिरता के लिए महत्वपूर्ण, के सामाजिक मानदंडों में कई बदलाव किए हैं, आज अमीर, ताकतवर, उद्योगपति और राजनीतिक नेताओं को शिक्षित, समाज सुधारक और चरित्रवान व्यक्ति की तुलना में अधिक सम्मानित किया जाता है। आर्थिक सफलता को जीवन की सबसे बड़ी सफलता माना जाता है। मशीनीकरण ने मानव को नवीनता का दीवाना बना दिया है और सामाजिक मूल्यों को इस हद तक बदल दिया है कि क्षणिक सुख–सुविधाओं की पूर्ति हमारा सबसे बड़ा लक्ष्य बन गया है। हम संस्कृति के स्थिर मूल्यों को भूलकर सभ्यता की परिवर्तनशील विशेषताओं के पीछे भाग रहे हैं। मशीनीकरण के कारण हम न तो रूढ़िवादी रह गए हैं और न ही प्रगतिशील, हम बस वही बन गए हैं जो हमारा स्वार्थ हमें बनाना चाहता है। इस तरह मशीनों ने हमारे सामाजिक मूल्यों को बदलते हुए सामाजिक परिवर्तन की स्थिति ला दी है। मानव की पारंपरिक सामाजिक परिस्थितियों में तेजी से हो रहे बदलाव का संबंध भी इस नई तकनीकी व्यवस्था से है। इन परिवर्तनों के पीछे मूल कारण यह है कि मशीनों ने हमें हमारी बढ़ती जरूरतों को पूरा करने के लिए प्राकृतिक बाधाओं को दूर करने की शक्ति दी है। जाहिर है इन्हीं कारणों से सामूहिक जीवन की भावना ने हमारे लिए अपना महत्व खो दिया है।

संचार के उन्नत साधन

संचार के नए साधन महत्वपूर्ण तकनीकी कारकों में से एक हैं जो तेजी से सामाजिक परिवर्तन लाए हैं। संचार की विभिन्न तकनीकों जैसे रेडियो, टेलीविजन, टेलीफोन और टेलीग्राम ने हमारे जीवन को गतिशीलता प्रदान की है। इसने दूरियों को इस हद तक कम कर दिया है कि एक संदेश को सेकंड के भीतर ऐसी जगह पर पहुँचाया जा सकता है जो हजारों मील दूर है। इसलिए विभिन्न संस्कृतियाँ लगातार तेजी से मिल पा रही हैं। अतः संचार के क्षेत्र में हर प्रगति ने एकीकरण की प्रक्रिया की दिशा में हमारी गति को बढ़ा दिया है। रेडियो ने शहरी और ग्रामीण समुदायों के बीच की खाई को पाटने में बहुत योगदान दिया है, राजनीतिक जीवन का विस्तार किया है, और समाज से सामाजिक संबंधों के निर्धारित कारकों को खत्म करने में भी मदद की है। सिनेमा ने हमारे सामाजिक जीवन को जो नया रूप दिया है, वह सर्वविदित है। इसने न केवल हमारे रहन–सहन और पहनावे की समझ को बदल दिया है बल्कि हमारी मानसिकता और विचारों को भी बदला है। समाज में नारी के स्थान को कम करने में भी इसी का योगदान है। दुनिया की विभिन्न तकनीकों ने सामाजिक नियंत्रण को और अधिक प्रभावी बना दिया है।

मूल्य और प्रौद्योगिकी के बीच संबंध

'प्रौद्योगिकी' का अर्थ जो हम समाजशास्त्र में प्राप्त करते हैं, उसे व्यापक रूप से तलाशने की आवश्यकता है। यह शब्द केवल उपकरणों और वैज्ञानिक उपकरणों के

संदर्भ में ही प्रयोग नहीं किया जाता है। यह उचित व्यवहार, विचार, प्रकृति और कार्य को भी इंगित करता है। कारण बहुत स्पष्ट है, गतिविधियों के अभाव में मात्र मशीनों से कुछ भी वांछनीय प्राप्त नहीं किया जा सकता है। तो डिवाइस की क्षमता इस बात पर निर्भर करती है कि इसका उपयोग कैसे किया जाता है। यदि हम विभिन्न समाजों में किसी उपकरण की उत्पादन क्षमता की तुलना करते हैं, तो हमें यह जानकर आश्चर्य होगा कि एक समाज ने एक उपकरण की उत्पादन क्षमता 80 से 90 प्रतिशत तक प्राप्त की, जबकि अन्य समाजों में यह प्रतिशत यह 40 या 50 था। यंत्र की उत्पादन क्षमता में अंतर मशीन के पीछे का आदमी है। एक संदर्भ में मशीन पर काम करने वाले लोगों का व्यवहार और प्रेरणा अच्छी हो सकती है जबकि दूसरे मामले में यह समान नहीं भी हो सकती है। जे एम फोस्टरिटी ने प्रौद्योगिकी को कम महत्व दिया है क्योंकि उन्होंने ठीक ही कहा है, ''तकनीकी विकास एक जटिल प्रक्रिया है। यह भौतिक और प्रत्यक्ष सुधारों की स्वीकृति नहीं है यह एक सांस्कृतिक, सामाजिक और मनोवैज्ञानिक प्रक्रिया को भी संदर्भित करता है।" इसलिए कुछ लेखकों को 'सामाजिक तकनीकी सुधार' शब्द का प्रयोग अधिक उपयुक्त लगता है।''

प्रमुख मूल्यों और इन मूल्यों में योगदान करने वाले उद्यमियों की भूमिका के संबंध में किया गया अवलोकन केस मशीनों पर भी फिट बैठता है। उदाहरण के लिए, किंग्सले डेविस का कथन, ''एक निश्चित समाज की सामान्य विशेषता दुनिया से भागने की प्रवृत्ति है, और दूसरी दुनिया (पारलौकिक) के चिंतन पर जोर दिया जाता है। भौतिकवादी दुनिया को एक बदलती वास्तविकता के रूप में माना जाता है। चूंकि विज्ञान और तकनीक घटनाओं के बीच घनिष्ठ संबंधों पर काम करती है, इसलिए विस्तृत विवरण पर जोर देना एक बड़ी बाधा है।''

प्रोफेसर डीपी मुखर्जी ने भी इस बात पर जोर दिया, "हिंदू मूल्यों की आदर्श प्रक्रिया निम्न आवश्यकताओं के इर्द–गिर्द बुनी गई है। तो इन आवश्यकताओं के उत्पादन की तकनीकों को कैसे कुशल साबित किया जा सकता है जिन्होंने अन्य आवश्यकताओं जैसे संयुक्त आवश्यकताओं, अनगिनत आवश्यकताओं को जन्म दिया है? ये समूह हिंदू मानदंडों के अनुसार कैसे प्रासंगिक हो सकते हैं? वे अर्थशास्त्र के खिलाफ कैसे खड़े हो सकते हैं जो आवश्यकता और संतुष्टि की नींव पर आधारित है? अगर शरीर से आत्मा का अलग होना अस्तित्व के लिए खतरनाक है तो गाँधीजी और उनके साथ सभी हिंदू सवाल उठाएँगे : सभ्यता के लिए मशीनें क्यों जरूरी हैं? मशीनों के लिए यह आक्रोश क्यों?"

इस विषय पर हम दूसरे संदर्भ में सोच सकते हैं, ''मशीन की पूर्ण उपयोगिता एक लचीले व्यवहार तथा नई तकनीकों और विचारों के स्वागत की माँग करती है। कुछ संस्कृतियाँ नवीनता और अपने लिए परिवर्तन को सकारात्मक महत्व देती हैं। यह तथ्य जो नया और अलग है, इसके निरीक्षण और सत्यापन के पीछे का कारण संतोषजनक भी है।

दूसरी ओर कुछ संस्कृतियाँ हैं जो आधुनिकीकरण के प्रति अनुकूल दृष्टिकोण नहीं अपनाती हैं और आधुनिकीकरण और परिवर्तन के सभी प्रयासों को हतोत्साहित करती हैं। यह तर्कसंगत नहीं है और निरीक्षण के लिए व्यावहारिक भी नहीं है।

उपरोक्त चर्चा इस तर्क को बहुत अच्छी तरह से स्थापित करती है कि मूल्य और प्रौद्योगिकी के बीच घनिष्ठ संबंध है। जब हम उन परिवर्तनों के बारे में सोचते हैं जो प्रौद्योगिकी की शुरुआत करते हैं, तो हमें यह ध्यान में रखना चाहिए कि प्रौद्योगिकी प्रतिबद्धता और माँग दोनों है। जब प्रौद्योगिकियों की माँगो को स्वीकार कर लिया जाता है तो हम उम्मीद कर सकते हैं कि प्रतिबद्धताओं को पूरा किया जाएगा।

सामाजिक परिवर्तन पर प्रौद्योगिकी कैसे कार्य करती है?

ऑगबर्न ने भौतिक संस्कृति में परिवर्तन की प्रणाली का व्यापक अध्ययन किया। उन्होंने दो व्यवस्थाओं के बारे में बताया है।

पहले यांत्रिक आविष्कार में संचय की प्रवृत्ति होती है। ऑगबर्न ने इस प्रक्रिया का वर्णन इस प्रकार किया है, ''पत्थर के उपयोग को हड्डियों के उपयोग के साथ मिलाया जाता है ताँबे के उपयोग को पीतल के उपयोग के साथ मिलाया जाता है, और पीतल के उपयोग को लोहे के उपयोग के साथ मिलाया जाता है ताकि सामग्री की धारा संस्कृति निरंतर प्रवाहित होती रहे।''

लेकिन ऑगबर्न ने यह भी चिह्नित किया कि सभी भौतिक संस्कृतियाँ एकजुट नहीं होती हैं। जिस क्षण किसी उत्पाद का उपयोग कम होता है, उसे बनाने की कला भी धीरे–धीरे समाप्त हो जाती है। तो भौतिकवादी अर्थव्यवस्था के एकत्रीकरण की प्रक्रिया को पसंद आधारित एकीकरण कहा जाता है। आने वाले कुछ वर्षों में विभिन्न प्रकार के यांत्रिक आविष्कारों का फिर से विभिन्न प्रकारों में विस्तार होता है।

ऑगबर्न ने सामाजिक परिवर्तनों की प्रक्रिया का अध्ययन किया जो तीन दृष्टिकोणों में तकनीकों से प्रभावित होते हैं–

(i) भौतिक आविष्कारों का फैलाव या विभिन्न प्रभाव, (ii) विभिन्न आविष्कारों के प्रभावों का अभिसरण या एकीकरण, (iii) सर्पिल या गोलाकार संचय।

(i) फैलाव – एक यांत्रिक आविष्कार का प्रत्यक्ष और उत्पन्न सामाजिक प्रभाव हो सकता है। ऑगबर्न ने रेडियो के 150 सामाजिक प्रभावों का उल्लेख किया। ये प्रभाव मनोरंजन, शिक्षा और संस्कृति के फैलाव से संबंधित हैं। कोई भी आविष्कार किसी एक सामाजिक प्रभाव तक ही सीमित नहीं होता और यह पूरे समाज को प्रभावित करता है।

किसी भी यांत्रिक अविष्कार के प्रत्यक्ष प्रभावों के साथ–साथ कुछ उत्पन्न होने वाले प्रभाव भी होते हैं। ''जब कोई आविष्कार किसी संस्था या रीति–रिवाजों को प्रभावित करता है तो वह वहाँ नहीं रुकता बल्कि जारी रहता है। हर प्रभाव हार में मोतियों की तरह पूर्ववर्ती इसका अनुसरण करता है। '' उदाहरण के लिए, पनबिजली के उत्पादन ने कई ग्रामीण क्षेत्रों में बिजली के उपयोग का विस्तार किया। इन क्षेत्रों में, इसने कुटीर उद्योगों और छोटे उद्योगों को भी बढ़ाया और अंततः इन क्षेत्रों के लोगों की जीवन शैली, व्यवहार और विश्वासों में परिवर्तन आया। तो ग्रामीण क्षेत्रों में परिवर्तन बिजली के विस्तार से संबंधित हो सकते हैं।

(ii) अभिसरण – यह ध्यान में रखा जाना चाहिए कि ग्रामीण क्षेत्रों में औद्योगिक इकाइयों की वृद्धि का एकमात्र कारण बिजली का विस्तार नहीं है। सरकार

की नीतियों के अनुसार बड़ी औद्योगिक इकाइयों की सहायक इकाइयों के रूप में ग्रामीण क्षेत्रों में छोटे उद्योगों की स्थापना की गई। इस तरह ''प्राथमिक कारण अन्य कारणों में से एक है जो प्रेत प्रभाव उत्पन्न करता है।'' क्योंकि यह परिवर्तन के प्रभाव का संग्रह है और सामाजिक परिवर्तन को त्वरित बनाता है। यह हमें अभिसरण की अवधारणा के करीब लाता है और विभिन्न आविष्कारों के प्रभावों के संयोजन के साथ भी। उदाहरण के लिए, टेलीफोन की सुविधा, तेजी से परिवहन और आरामदायक आवासों ने लोगों को अपने कार्यस्थलों से दूर रहने के लिए प्रेरित किया। इसने शहरों का विस्तार किया और उपनगरीय क्षेत्रों का विकास किया। तो यह संभव है कि आविष्कारों का समूह एकजुट हो जाए और उत्पन्न होने वाले प्रभाव भी परिवर्तन उत्पन्न करें जिन्हें एकल प्रभाव भी कहा जाता है।

(iii) सर्पिल– अब तक हम केवल निकलने वाले प्रभावों के बारे में ही सोच रहे थे। इसका अर्थ है कि एक सामाजिक परिवर्तन कई सामाजिक परिवर्तन उत्पन्न करता है। लेकिन कभी–कभी एक सामाजिक प्रभाव दूसरे परिवर्तन को जन्म देता है जो बदले में पिछले परिवर्तन को फिर से उत्पन्न करता है। ऑगबर्न ने इसे सर्पिल विकास कहा है। गुन्नार मिर्डल इस प्रक्रिया को ''सर्पिल संचय विकास'' की प्रक्रिया कहते हैं। इस प्रक्रिया का वर्णन इस उदाहरण से भी किया जा सकता है। भारत में औद्योगिक विकास पूंजी की कमी से बाधित था। सरकार बड़े पैमाने पर संचय और विदेशी सहायता की मदद से इसे हल करने का प्रयास करती है। औद्योगिक प्रगति, जो अतिरिक्त पूंजी निवेश का परिणाम है, अतिरिक्त रोजगार, अतिरिक्त आय और अंततः अतिरिक्त पूंजी के संचय की माँग करती है। तो अतिरिक्त पूंजी निवेश का निकलने वाला प्रभाव पूंजी की प्रगति को बढ़ाने के लिए रिटर्न देता है।

प्रौद्योगिकी का सामाजिक प्रभाव

प्रौद्योगिकी हमारी आधुनिक जीवन शैली को एक तरह से प्रभावित करती है जो अतिसंवेदनशील है। हमारी जीवन शैली, विचारधाराएँ और हमारी सामाजिक संस्थाएँ सभी मशीनीकरण से प्रभावित हैं। अब नई सभ्यताओं का विकास तकनीकी आधार की कमी के बिना हो रहा है। यद्यपि तकनीकी और वैज्ञानिक प्रगति ने मनुष्य को लाभान्वित किया है, लेकिन इसने उसके खिलाफ समस्याएँ भी खड़ी कर दी हैं। उदाहरण के लिए, जब इंग्लैंड में औद्योगिक क्रांति हुई, तो इसने विकास की प्रगति को तेज कर दिया, लेकिन इसने लोगों को अपने घर से बाहर रहने के लिए मजबूर कर दिया और ऐसी समस्याएँ पैदा कीं जो पहले कभी नहीं देखी गई थीं। इसी तरह परमाणु ऊर्जा के विकास ने मानव को गरीबी मिटाने की शक्ति तो दी लेकिन इसने उसे मानव जाति को नष्ट करने की शक्ति भी दी। वास्तव में तकनीकी परिवर्तनों में दूरगामी सामाजिक परिवर्तन होते हैं। हम इन प्रभावों पर विभिन्न दृष्टिकोणों से भी सोच सकते हैं।

उपकरणों के बढ़ते और निरंतर उपयोग ने श्रम उत्पादकता में आश्चर्यजनक रूप से कई गुना वृद्धि की है और इसका अर्थ यह भी है कि प्रति व्यक्ति प्रति घंटे उत्पादन अप्रत्याशित तीव्रता के साथ बढ़ा है। यह औद्योगिक और कृषि श्रमिकों के लिए सत्य है। इसलिए आज माल की अधिक मात्रा उपलब्ध है। तकनीकी आविष्कारों के लिए इसके दो उद्देश्य हैं – या तो वे मानव आवश्यकताओं को सीधे संतुष्ट करने के लिए

टिप्पणी

नए उत्पाद बनाना चाहेंगे या उनका लक्ष्य पुराने उत्पादों में सुधार करना होगा। तो तकनीक हमारी खुशियों को बढ़ाती है और बढ़े हुए उत्पादों में हमें नए उत्पाद देकर हमारी जीवन शैली को आसान बनाती है।

आधुनिक तकनीक ने कई विशिष्ट रोजगार के अवसर पैदा किए हैं जो विशेषज्ञता और ज्ञान की माँग करते हैं। इस तरह, ''इंजीनियर, जो मशीनों और कारखानों के लिए नक्शा तैयार करता है, वहाँ कई प्रकार के कुशल निर्माण मजदूर, प्लंबर, इलेक्ट्रीशियन हैं जो निर्माण, संचालन और सर्विसिंग में शामिल हैं।'' कुछ ऐसे लोग हैं जो औद्योगिक प्रतिष्ठानों, विज्ञापन, बिक्री और लेखा के प्रबंधन और प्रशासन में कुशल हैं। दूसरे शब्दों में, प्रौद्योगिकी ने पुरानी बंद सामाजिक शिक्षा व्यवस्था को पेशेवरों के नए वर्गों और एक खुली वर्ण संरचना द्वारा बदल दिया है।

आधुनिक तकनीक ने विभिन्न विचारों से मानव जीवन की गति को तेज कर दिया है। उदाहरण के लिए, हम उन कारणों के बारे में सोच सकते हैं जिन्होंने जीवन की सामान्य गति को बढ़ा दिया है– ''कृत्रिम प्रकाश की कमी ने कुछ परियोजनाओं को दिन के उजाले में करने के लिए मजबूर किया लेकिन अब वे रात में किए जा रहे हैं। परिवहन की धीमी गति ने आराम दिया लेकिन यह पर्याप्त आरामदायक नहीं था। संचार के धीमे साधनों ने लेन–देन की गति को धीमा कर दिया। मनोरंजन के व्यावसायिक साधन जैसे नाटक, सिनेमा, आकाशवाणी और अन्य मनोरंजन की कमी ने लोगों को सोचने का समय दिया। कम जनसंख्या वाले ग्रामीण क्षेत्रों ने अधिक सामाजिक संपर्क दिया जो शहरी भीड़ में संभव नहीं है।" स्थानीय उत्पादन प्रणाली को नष्ट करके आधुनिक औद्योगीकरण ने पारिवारिक बंधन को तोड़ दिया है। तकनीक के कारण लोगों ने कृषि को छोड़ा, शहरों की ओर पलायन किया और इस प्रक्रिया में अपने मूल निवास से दूर हो गए लेकिन तकनीक ने उन्हें राहत भी दी है।

घरेलू कामों जैसे खाना पकाने, सिलाई, धुलाई आदि से महिलाएँ बाहर आईं हैं। इससे महिलाओं के घर से बाहर आने की संभावना भी बढ़ गई और उनके लिए अपनी स्वतंत्र आय के लिए कारखानों और कार्यालयों में काम करना संभव हो पया। इस वातावरण ने महिलाओं को एक नया सामाजिक जीवन दिया। प्रौद्योगिकी ने लोगों की सोच, रीति–रिवाजों, विश्वासों और दर्शन को भी प्रभावित किया। वैज्ञानिक आविष्कार और खोजें भी कर्मकांड, जाति और धर्म के प्रति लोगों की सोच को बदल देती हैं। निकट भविष्य में नक्षत्रों की खोज से उनकी धारणाओं में भी तेजी से बदलाव आ सकता है। ऐसा लगता है कि आधुनिक पुरुष–महिलाएँ अधिक गंभीर हैं और कृत्रिम उत्तेजनाओं के लिए उत्सुक हैं और वे सांस्कृतिक और आध्यात्मिक लाभ से अधिक पूंजीगत लाभ पसंद करते हैं। शीघ्र शारीरिक सुख प्रदान करने वाले गुणों को अधिक महत्व दिया जाता है। मनुष्य अपने दर्शन में व्यावहारिक हो गया है। वह विश्वास के आधार पर कुछ भी स्वीकार नहीं करता है। वह तर्क और अनुभव के मापदंड पर हर धारणा, विचार और विश्वास का परीक्षण करता है। दूसरे शब्दों में, उपयोगिता इस आधुनिक दुनिया में अमूर्त मूल्यों से अधिक व्यक्ति की सोच को प्रभावित करती है। प्रौद्योगिकी से सरकार भी प्रभावित है, सामाजिक संबंधों को बदलकर प्रौद्योगिकी ने

सरकार को सामाजिक सुरक्षा और कल्याण कार्यक्रमों को निष्पादित करने के लिए एक नया कार्य दिया है। प्रौद्योगिकी और उद्योगवाद का अन्य उपोत्पाद, व्यापार, सरकार के नियंत्रण में है। मशीनीकरण तकनीक ने बड़े औद्योगिक प्रतिष्ठानों को जन्म दिया जिनकी उत्पादन क्षमता बहुत अधिक है। इन बड़े उद्यमों में अधिक वित्तीय क्षमताएँ होती हैं। यदि उन्हें मुक्त कर दिया जाता है तो वे गलत प्रकार की प्रतियोगिता में शामिल हो सकते हैं। इसलिए सरकार को इन गतिविधियों को नियंत्रित करने के लिए कदम उठाने होंगे।

कई अन्य परिवर्तन हैं जो तकनीकी परिवर्तनों के कारण होते हैं। इन परिवर्तनों में से कुछ परिवर्तनों पर प्रकाश डाला जा सकता है। नए शहरों और महानगरों की स्थापना और परिवहन सुविधाओं में सुधार ने पड़ोस को समाप्त कर दिया है। सार्वजनिक मान्यताओं की उपेक्षा की जाती है और शहरी जीवन शैली ने ग्रामीण क्षेत्रों में अपनी जगह बना ली है। परोक्ष रूप से, प्रौद्योगिकी ने लोकतांत्रिक मूल्यों को उन्नत किया है और नए लोकतांत्रिक मूल्यों का विस्तार किया है।

अपनी प्रगति जांचिए

1. भारत की प्रथम पंचवर्षीय योजना कब लागू की गई?

   (क) 1947–1952 में (ख) 1951–1956 में

   (ग) 1948–1953 में (घ) 1950–1955 में

2. वैश्वीकरण ने भारत में कितनी नई प्रक्रियाओं की शुरुआत की?

   (क) छह (ख) पांच

   (ग) चार (घ) तीन

5.3 सामाजिक नीतियाँ और कार्यक्रम तैयार करना

नियोजित परिवर्तन वास्तव में हमारे युग की आवश्यकता है। यह जनहित की स्थिति के सिद्धांतों को प्राप्त करने का एकमात्र माध्यम है। यह पारंपरिक सामाजिक रीति–रिवाजों, अंधविश्वासों और कई अन्य सामाजिक समस्याओं से पीड़ित समाज में क्रांतिकारी परिवर्तन लाने का एक अचूक हथियार है। यह न केवल अविकसित या पिछड़े देशों के लोगों के लिए बल्कि विकसित राष्ट्रों के लिए भी अंधेरे में प्रकाश के समान है। आज विश्व में मानव समाज असंतोष, आक्रोश और हताशा से प्रस्त है ऐसे में मानव संसाधन का भौतिक, सामाजिक और आर्थिक विकास अति महत्वपूर्ण है एवं इस हेतु नियोजित परिवर्तन ही एकमात्र साधन है, जो सामाजिक विषमता, आक्रोश और दमनकारी वातावरण की समस्याओं को हल कर सकता है। सामाजिक और आर्थिक परिवेश में क्रांतिकारी परिवर्तन नियोजित परिवर्तनों के बुनियादी आदर्शों में एक प्रमुख मोड़ है, जिन्होंने पैटर्न स्थापित करने में एक प्रमुख भूमिका निभाई है।

5.3.1 नीति और परियोजना कार्यान्वयन

मानव क्षमताओं के विस्तार के रूप में विकास के मूल उद्देश्य को आधुनिक विकास साहित्य में कभी भी पूरी तरह से जनरअंदाज नहीं किया गया लेकिन मुख्य रूप से सकल राष्ट्रीय उत्पाद और संबंधित चर के विस्तार के अर्थ में अर्थिक विकास के विस्तार पर ध्यान केन्द्रित किया गया। मानव क्षमताओं का विस्तार स्पष्ट रूप से आर्थिक विकास (प्रति व्यक्ति वास्तविक आय की वृद्धि के सीमित अर्थ में भी) द्वारा बढ़ाया जा सकता है लेकिन आर्थिक विकास के अलावा कई अन्य प्रभाव हैं जो उस दिशा में काम करते हैं और मानव क्षमताओं पर आर्थिक विकास का प्रभाव उस वृद्धि की प्रकृति के आधार पर अत्यंत परिवर्तनशील हो सकता है।

असमानता व भागीदारी के मुद्दे भारत में विशेष रूप से महत्वपूर्ण हैं जहां सामाजिक विभाजन (वर्ग, जाति और असमानता के अन्य स्रोतों के बीच लिंग के आधार पर) व्यापक हैं और आर्थिक विकास और सामाजिक अवसरों दोनों पर भारी असर डालते हैं। भारत में सामाजिक असमानतायें अडिग न सही पर काफी अगम्य मानी जाती हैं किन्तु उनसे लड़ने की गुंजाइश काफी हद तक संभव है। हाल के दशकों में, पिछड़ी जातियों की मुक्ति के लिये सामाजिक आंदोलनों के माध्यम से, महिलाओं के राजनीतिक प्रतिनिधित्व में प्रगति और ग्रामीण स्तर पर सत्ता संरचनाओं में आमूल चूल परिवर्तन के द्वारा परिवर्तन की संभावनाएं पहले ही प्रदर्शित की जा चुकी हैं। भारत में विकास और लोकतंत्र का भविष्य काफी हद तक इस बात पर निर्भर करेगा कि इन क्षेत्रों में आगे की संभावनायें किस हद तक साकार होती हैं।

भारत की स्वतंत्रता के बाद देश के संविधान रचयिताओं ने पिछड़े तथा दलित वर्गों के सामाजिक व आर्थिक उत्थान को संविधान में विशिष्ट दर्जा दिया। दलितों और आदिवासियों तथा अन्य पिछड़े वर्गों के बीच विकास की खाई पाटने के प्रयास 1950 से पहले के हैं जब भारतीय संविधान ने आरक्षण की नीति के माध्यम से सार्वजनिक सेवा, चुनावी सीट में और शिक्षा, रोजगार के क्षेत्र में अनुसूचित जाति और अनुसूचित जनजाति के लिये अवसर प्रदान किये। यह प्रभावी कदम अनुसूचित जाति और अनुसूचित जनजाति के पक्ष में अधिनियमित कानूनों की श्रृंखला में पहला था।

आर्थिक दृष्टिकोण से अब तक स्वीकृत सबसे महत्वपूर्ण नीतियां आदिवासी उपयोजना (TSP) और विशेष घटक योजना (SCP) जिसे अब अनुसूचित जाति उपयोजना (SCSP) कार्यकारी बजट नीतियां कहा जाता है जिसके अनुसार सरकार में केन्द्रीय मंत्रालयों में इनके लिए धन और संसाधन आरक्षित किये जाने हैं।

इन योजनाओं के अतिरिक्त भारत सरकार द्वारा पंचवर्षीय योजनाओं के माध्यम से कई सामाजिक नीतियां व कार्यक्रम रखे गये हैं जिसमें सभी आर्थिक व सामाजिक विकास से हीन वर्गों का अतिरिक्त ध्यान रखा गया है जैसे कि न्यूनतम आय गारंटी रोजगार योजना (मनरेगा), बच्चों के लिये मिड के मील प्रधानमंत्री सड़क योजना इत्यादि।

महात्मा गांधी राष्ट्रीय ग्रामीण रोजगार गारंटी अधिनियम

राष्ट्रीय ग्रामीण रोजगार गारंटी अधिनियम 2005 (नरेगा जिसे बाद में महात्मा गांधी राष्ट्रीय ग्रामीण रोजगार गारंटी अधिनियम या 'मनरेगा' के रूप में बदल दिया गया), एक भारतीय श्रम कानून और सामाजिक सुरक्षा उपाय है जिसका उद्देश्य 'काम के अधिकार' की गारंटी देना है। यह अधिनियम 23 अगस्त 2005 को तत्कालीन प्रधानमंत्री डॉ. मनमोहन सिंह की यूपीए सरकार द्वारा पारित किया गया था। इसका उद्देश्य प्रत्येक परिवार के कम से कम एक वयस्क सदस्य को, जो स्वेच्छा से अकुशल शारीरिक श्रम करने के लिये आता है, एक वित्तीय वर्ष में कम से कम 100 दिनों का रोजगार प्रदान करके ग्रामीण क्षेत्रों में आजीविका सुरक्षा को बढ़ाना है। महिलाओं को मनरेगा के अंतर्गत उपलब्ध कराई गयी नौकरियों में से एक तिहाई की गारंटी दी गयी थी। अप्रैल 2008 से नरेगा को भारत के सभी जिलों में शामिल कर लिया गया। विश्व विकास रिपोर्ट 2014 में, विश्व बैंक ने इसे ग्रामीण विकास का अद्‌भुत उदाहरण बताया था। मनरेगा का अन्य उद्देश्य टिकाऊ संपत्ति (जैसे सड़क, नहर, तालाब और कुएं) बनाना है। आवेदक के निवास के 5 किमी के भीतर रोजगार उपलब्ध कराया जाना है और न्यनतम मजदूरी का भुगतान किया जाना है। यदि आवेदन करने के 15 दिनों के भीतर काम नहीं दिया जाता तो आवेदक बेरोजगारी भत्ते का हकदार है। इस प्रकार मनेरेगा के अंतर्गत रोजगार एक कानूनी अधिकार है।

वित्तीय वर्ष 2021–22 में सरकार द्वारा रु. 73,000 करोड़ रुपये मनरेगा बजट के लिये आवंटित किये गये। इससे एक वित्तीय वर्ष पहले बजट आवंटन 61,500 करोड़ रुपये था जिसे लॉकडाउन के बाद सरकार ने अतिरिक्त बजट द्वारा इसे 1.11 लाख करोड़ तक कर दिया था।

सर्वशिक्षा अभियान

सर्वशिक्षा अभियान भारत सरकार का एक कार्यक्रम है जिसका उद्देश्य प्रारंभिक शिक्षा को "समयबद्ध तरीके से" सार्वभौमिक बनाना है जो भारत के संविधान में 86वां संशोधन है। 6 से 14 वर्ष की आयु के बच्चों के लिये मुफ्त और अनिवार्य शिक्षा एक मौलिक अधिकार (अनुच्छेद–21A) है। इस कार्यक्रम का नेतृत्व पूर्व प्रधानमन्त्री अटल बिहारी बाजपेयी ने किया था। सर्वशिक्षा अभियान वर्ष 2000–2001 से चालू है। हालांकि इसकी जड़े 1993–94 तक जाती हैं जब सार्वभौमिक प्राथमिक शिक्षा के उद्देश्य को प्राप्त करने के उद्देश्य से जिला प्राथमिक शिक्षा कार्यक्रम (डीपीइपी) शुरू किया गया था।

सर्वशिक्षा अभियान का प्रारंभिक परिव्यय रु 7000 करोड़ था और 2011–12 में भारत सरकार ने इस योजना के लिये 21,000 करोड़ रुपये आवंटित किये। जैसे–जैसे कार्यक्रम लोकप्रिय हुआ फंड भी बढ़ता गया।

सर्वशिक्षा अभियान के कार्यक्रमों में अन्य बातों के साथ नये–नये स्कूल खोलना, वैकल्पिक स्कूली शिक्षा सुविधायें, अतिरिक्त कक्षाओं का निर्माण, शौचालय तथा पेयजल, मुफ्त पाठ्यपुस्तकों का प्रावधान आदि था।

2018 में राष्ट्रीय माध्यमिक शिक्षा अभियान के साथ सर्व शिक्षा अभियान को समग्र शिक्षा अभियान बनाने के लिये शुरु किया गया था। इसे भारत के 2019 के

अंतिरम केन्द्रीय बजट में ₹ 38572 करोड़ का बजट आवंटित किया गया। समग्र शिक्षा स्कूली शिक्षा क्षेत्र के लिये एक व्यापक कार्यक्रम है जो पूर्व से विस्तारित है– स्कूल से कक्षा 12 तक। मिशन में चार योजनाएं शामिल हैं– साक्षर भारत, सर्वशिक्षा अभियान, राष्ट्रीय माध्यमिक शिक्षा अभियान और शिक्षक शिक्षा पर केन्द्र प्रायोजित योजना।

2021 में समग्र शिक्षा अभियान के हिस्से के रूप में निपुण भारत मिशन शुरू किया गया ताकि यह सुनिश्चित किया जा सके कि ग्रेड 3 तक भारत के सभी बच्चों के लिये मूलभूत साक्षरता व संख्यात्मक कौशल का सार्वभौमिक अधिग्रहण हो।

राष्ट्रीय स्वास्थ्य मिशन

राष्ट्रीय स्वास्थ्य मिशन को भारत सरकार द्वारा 2013 में राष्ट्रीय ग्रामीण स्वास्थ्य मिशन और राष्ट्रीय शहरी स्वास्थ्य मिशन को मिलाकर शुरु किया गया था। इसे मार्च 2018 में आगे बढ़ा दिया गया और मार्च 2020 तक जारी रखा गया। इसका नेतृत्व मिशन निदेशक करते हैं और इसकी निगरानी भारत सरकार द्वारा नियुक्त राष्ट्रीय स्तर के मानिटरों द्वारा की जाती है। मुख्य कार्यक्रम घटकों में ग्रामीण तथा शहरी क्षेत्रों में स्वास्थ्य प्रणाली सुदृढ़ीकरण में शामिल हैं– प्रजनन– मातृ–नवजात, बाल और किशोर स्वास्थ्य, संक्रामक तथा गैर संक्रामक रोग। राष्ट्रीय स्वास्थ्य लोगों की जरूरतों के प्रति जवाबदेह और उत्तरदायी, एक समान सस्ती और गुणवत्तापूर्ण स्वस्थ्य देखभाल सेवाओं तक सार्वभौमिक पहुंच की उपलब्धि की परिकल्पना करता है। इसके अन्तर्गत कुछ प्रमुख कार्यक्रम इस प्रकार हैं–

- **आशा** : (ग्रामीण स्तरीय स्वास्थ्य स्वयंसेवक समुदाय और स्वास्थ्य प्रणाली के बीच एक कड़ी स्थापित करने के मिशन के अंतर्गत मान्यता प्राप्त सामाजिक स्वास्थ्य कार्यकर्त्ता (आशा) नामक सामुदायिक स्वास्थ्य स्वयंसेवक को लगाया गया। आशा आबादी के वंचित वर्गों, विशेष रूप से महिलाओं और बच्चों, जिन्हें ग्रामीण क्षेत्रों में स्वास्थ्य सेवाओं तक पहुंचने में कठिनाई होती है, की स्वास्थ्य संबंधी किसी भी समस्या के हल की पहली कड़ी है।
- **रोगी कल्याण समिति/अस्पताल प्रबंधन सोसाइटी** : एक प्रबंधन संरचना है जो अस्पताल के प्रबंधन के लिये अस्पतालों के ट्रस्टियों के एक समूह के रूप में काम करती है।
- **जननी सुरक्षा योजना** : यह भारत सरकार द्वारा कार्यान्वित एक सुरक्षित मातृत्व हस्तक्षेप योजना है। इसे 12 अप्रैल 2005 को प्रधानमंत्री द्वारा लॉन्च किया गया था। इसका उद्देश्य गरीब गर्भवती महिलाओं के बीच संस्थागत प्रसव को बढ़ावा देना और नवजात मृत्यु दर और मातृ मृत्यु दर को कम करना हैं। विश्व स्वास्थ्य संगठन के अनुसार भारत में संस्थागत प्रसव का अनुपात 2005 और 2016 के बीच लगभग 18% से 52% तक तीन गुना हो गया है।

मध्याहन भोजन योजना

यह एक स्कूली भोजन कार्यक्रम है जिसे देश भर में स्कूली उम्र के बच्चों के पोषण स्तर को बेहतर बनाने के लिये डिजाइन किया गया है। श्रम मंत्रालय द्वारा संचालित 12 लाख से अधिक स्कूलों और शिक्षा गारंटी योजना केन्द्रों में 12 करोड़ बच्चों की सेवा करने वाली मध्याहन भोजन योजना दुनिया में अपनी तरह की सबसे बड़ी योजना है।

सितम्बर 2021 में शिक्षा मंत्रालय द्वारा योजना का नाम बदलकर प्रधानमंत्री पोषण शक्ति निर्माण योजना कर दिया गया है जो इस योजना के लिये नोडल मंत्रालय है। केन्द्र और राज्य सरकारें मध्याहन भोजन योजना की लागत साझा करती हैं, जिसमें केन्द्र 60% और राज्य 40% प्रदान करते हैं।

प्रधानमन्त्री आवास योजना

यह योजना भारत सरकार की एक पहल है जिसमें शहरी गरीबों को 31 मार्च 2022 तक 2 करोड़ किफायती घर बनाने के लक्ष्य के साथ किफायती आवास प्रदान किया जायेगा। इसके दो घटक हैं– शहरी गरीबों के लिये प्रधानमंत्री आवास योजना (शहरी) तथा ग्रामीण गरीबों के प्रधानमंत्री आवास योजना (ग्रामीण) घरों में शौचालय, सौभाग्य योजना, बिजली कनेक्शन उज्जवला योजना, एल.पी.जी. कनेक्शन, पीने के पानी तक पहुंच और जन धन बैंकिग सुविधायें सुनिश्चित करने के लिये यह योजना अन्य योजनाओं के साथ अभिसरण है।

प्रधानमंत्री उज्जवला योजना

1 मई, 2016 को उत्तर प्रदेश के बलिया से 5 करोड़ परिवारों के लिये प्रधानमंत्री द्वारा शुरू की गयी थी। 18000 करोड़ रुपये योजना के क्रियान्वयन के लिये आवंटित किये गये थे। इसलिये इसे वित्तीय वर्ष 2016–17 से 3 वर्षों की अवधि के लिये शुरू किया गया था।

इस योजना का मुख्य उद्देश्य मुख्य रूप से ग्रामीण क्षेत्रों के गरीब परिवारों को स्वच्छ खाना पकाने का ईधन उपलब्ध कराना है। वर्ष 2020 तक वंचित परिवारों को 8 करोड़ एल.पी.जी. कनेक्शन उपलब्ध करवाना इसका लक्ष्य था।

महिला अभिकरण एवं बाल अधिकार

बेटी बचाओ बेटी पढ़ाओ के अंतर्गत यह भारत सरकार का अभियान है जिसका उद्देश्य समाज में बेटी के प्रति जागरूकता पैदा करना और लड़कियों के लिये कल्याणकारी सेवाओं की दक्षता में सुधार करना है। 2011 की जनसंख्या जनगणना में यह पता चला कि भारत में जनसंख्या अनुपात 918 लड़कियां प्रति 1000 लड़कों पर है। यह लिंगानुपात 2001 में प्रति 1000 लड़कों पर 927 लड़कियों से 2011 में गिरकर 918 रह गया। 22 जनवरी 2015 को प्रधानमंत्री द्वारा यह योजना शुरू की गयी जिसका उद्देश्य बाल लिंगानुपात (CSR) में गिरावट के मुद्दे को संबोधित करना है। यह योजना पानीपत, हरियाणा में ₹ 100 करोड़ के प्रारंभिक वित्त पोषण से शुरु की गयी। यह मुख्य रूप से उत्तर प्रदेश, हरियाणा, पंजाब, बिहार और दिल्ली में समूहों को लक्षित करता है।

इसने शुरू में देश भर के 100 जिलों में बहुक्षेत्रीय कार्यवाई पर ध्यान केंद्रित किया जहां बाल लिंगानुपात कम था।

5.3.2 कार्यप्रणाली की निगरानी और मूल्यांकन

निगरानी और मूल्यांकन (एम एंड ई Monitoring and Evaluation) योजना एक दस्तावेज है जो यह बताता है कि एक कार्यान्वयन अनुसंधान परियोजना की निगरानी और मूल्यांकन कैसे किया जाता है, और यह विभिन्न डेटा संग्रह प्रणालियों से प्राप्त रणनीतिक जानकारी को निरंतर आधार पर परियोजना को बेहतर बनाने के निर्णयों से जोड़ता है। एम एंड ई योजना कई मुख्य उद्देश्यों को पूरा करती है ये उद्देश्य हैं–

(i) यह बताते हुए कि कार्यक्रम/परियोजना की उपलब्धियों को कैसे मापा जाएगा (ii) सर्वसम्मति का दस्तावेजीकरण, जिससे पारदर्शिता, जवाबदेही और जिम्मेदारी को बढ़ावा मिले (iii) एम एंड ई के कार्यान्वयन का मार्गदर्शन करना (iv) संस्थागत स्मृति को संरक्षित करना। एम एंड ई योजना एक परियोजना के प्रमुख मानकों पर बनाई गई है, जिसमें निम्न शामिल हैं :

- समग्र लक्ष्य या वांछित परिवर्तन या प्रभाव।
- परियोजना के मुख्य लाभार्थी या दर्शक।
- परिकल्पना या धारणाएं जो परियोजना के उद्देश्यों को विशिष्ट हस्तक्षेपों या गतिविधियों से जोड़ती हैं।
- परियोजना का दायरा और आकार।
- एम एंड ई के लिए भागीदारी और क्षमता की सीमा।
- परियोजना अवधि तथा
- समग्र परियोजना बजट।

परिचालन संदर्भ, कार्यान्वयन एजेंसी क्षमता, दाता आवश्यकताओं और अन्य कारकों के आधार पर प्रत्येक परियोजना की अलग–अलग एम एंड ई आवश्यकताएं होती हैं। एक एम एंड ई योजना तैयार करने में, इन जरूरतों की पहचान करना और उन्हें पूरा करने के लिए उपयोग की जाने वाली विधियों, प्रक्रियाओं और उपकरणों का समन्वय करना महत्वपूर्ण है। यह संसाधनों का संरक्षण करता है और एम एंड ई योजना को सुव्यवस्थित करता है। एक प्रभावी एम एंड ई योजना निम्नलिखित मानकों के अनुरूप होनी चाहिए।

उपयोगिता– यह उपयोगी होनी चाहिए और निर्णय लेने के उद्देश्यों के लिए इच्छित उपयोगकर्ताओं की व्यावहारिक और रणनीतिक जानकारी की जरूरतों को पूरा करना चाहिए, ये जरूरतें प्रोग्राम किए गए प्रदर्शन का आकलन करने से लेकर संसाधन आवंटित करने आदि तक हो सकती हैं।

व्यवहार्यता : यथार्थवादी और व्यावहारिक बनना चाहिए। संसाधनों की कमी को देखते हुए, एम एंड ई योजना को मौजूदा डाटा संग्रह प्रणालियों का सर्वोत्तम उपयोग

करना चाहिए। हालाँकि, यदि नई डाटा संग्रह प्रणालियाँ शामिल हैं, तो संसाधनों (लागत और तकनीकी क्षमता) पर सावधानीपूर्वक विचार किया जाना चाहिए।

नैतिक रूप से सही : एम एंड ई गतिविधियों में शामिल और प्रभावित लोगों के संबंध में नैतिक सिद्धांतों का पालन करना चाहिए।

शुद्धता : निर्णय लेने और कार्यक्रम में सुधार के लिए तकनीकी रूप से सटीक और उपयोगी जानकारी प्रदान करनी चाहिए।

एम एंड ई योजना के प्रमुख घटक

चार प्रमुख घटक हैं जो उस नींव का निर्माण करते हैं जिस पर एम एंड ई योजना बनाई जानी चाहिए। एम एंड ई योजना के लिए इन चार संबंधित प्रश्नों का उत्तर देना महत्वपूर्ण है : (i) परियोजना क्या बदलना चाहती है? और कैसे? (ii) इस परिवर्तन को प्राप्त करने के लिए कौन से विशिष्ट उद्देश्य तैयार किए गए हैं? (iii) संकेतक क्या हैं? उन्हें कैसे मापा जाएगा? (iv) एम एंड ई डाटा कैसे एकत्र और विश्लेषण किया जाएगा?

एक एम एंड ई योजना विकसित करना

एक एम एंड ई योजना स्थापित करने से पहले, टीम को समग्र परियोजना लक्ष्यों और उद्देश्यों को परिभाषित करना चाहिए, अध्ययन के संदर्भ को समझना चाहिए और प्रमुख खिलाड़ियों/हितधारकों की पहचान करनी चाहिए। सबसे उपयुक्त दृष्टिकोण (जैसे एम एंड ई ढाँचा और एम एंड ई के संचालन के लिए डाटा संग्रह विधियों) का भी चयन किया जाना चाहिए। एम एंड ई योजना विकसित करते समय उठाए जाने वाले महत्वपूर्ण कदम नीचे दिए गए हैं। यह ध्यान दिया जाना चाहिए कि ये कदम अनिवार्य रूप से एक दूसरे से स्वतंत्र नहीं हैं, और वास्तव में काफी हद तक ओवरलैप हो सकते हैं। इनमें से कई चरणों को विकसित किया जा सकता है या दूसरों के साथ संयोजन हेतु विचार करने की आवश्यकता हो सकती है।

एम एंड ई योजना विकसित करने में महत्वपूर्ण कदम

हितधारक परामर्श और भागीदारी : आपकी एम एंड ई योजना को विकसित करने और लागू करने की पूरी प्रक्रिया के दौरान हितधारक से परामर्श और भागीदारी नियमित रूप से होनी चाहिए। ये परामर्श संवाद सुनिश्चित करते हैं, परियोजना के लक्ष्यों और उद्देश्यों की स्पष्ट समझ और इनका मूल्यांकन कैसे किया जाएगा साथ ही वे यह भी सुनिश्चित करते हैं कि विभिन्न दृष्टिकोणों को समझा और एकीकृत किया जाए, और यह कि प्रामाणिक जरूरतों को पूरा किया जा रहा है। एम एंड ई योजना के डिजाइन में हितधारकों की भागीदारी उपयुक्त और उपयोगी एम एंड ई संकेतकों के चयन की सुविधा प्रदान करती है। इसके अलावा, हितधारकों की भागीदारी को बढ़ावा देने के लिए अतिरिक्त उपाय करने से भागीदारों के बीच स्वामित्व और जिम्मेदारी की भावना पैदा होती है। हितधारक की भागीदारी इस संभावना को बढ़ाती है कि एम एंड ई योजना द्वारा निर्देशित जानकारी और परिणाम उनकी अपेक्षाओं के अनुरूप होंगे।

एम एंड ई योजना विकसित करना : आपकी एम एंड ई योजना को विकसित करने में सबसे पहले कार्यों में से एक आपकी परियोजना की शोध समस्या, लक्ष्यों और उद्देश्यों को चर में अनुवाद करना है जिसे निष्पक्ष रूप से मापा जा सकता है। विशिष्ट एम एंड ई योजनाएं उस वैचारिक नींव को उजागर और संदर्भित करती हैं जिस पर परियोजना पूरी तरह से बनी है। परियोजना इनपुट, आउटपुट, परिणाम और प्रभाव के बीच अंतर को समझना आवश्यक है, क्योंकि एम एंड ई योजना के तहत मापे जाने वाले संकेतक इस पदानुक्रम को सबसे अधिक प्रतिबिंबित करेंगे। निम्नलिखित क्षेत्रों में प्रमुख प्रश्नों पर सहमति होनी चाहिए : ''परियोजना के अंत में हम क्या जानना चाहते हैं?'' और ''परियोजना के अंत तक हम क्या बदलने की उम्मीद करते हैं?'' फिर, इस सवाल का जवाब देना कि आप अपनी परियोजना में क्या बदलाव की उम्मीद करते हैं, परियोजना प्रबंधन निर्णयों के लिए रणनीतिक जानकारी के साथ–साथ प्रगति का आकलन करने के लिए किन तत्वों की निगरानी और मूल्यांकन किया जाना चाहिए, इसके बारे में निर्णयों का मार्गदर्शन करेगा। आपकी एम एंड ई योजना की दृढ़ता और दायरा इस बात पर निर्भर करेगा कि आप क्या करने के लिए प्रतिबद्ध हैं और आपकी परियोजना किन परिणामों या परिणामों के लिए जवाबदेह है। एम एंड ई योजना विकसित करने से आपकी टीम को निम्नलिखित की स्पष्ट तस्वीर मिलती है :

- परियोजना गतिविधियों को अपेक्षित आउटपुट, परिणामों और जनसंख्या–स्तर के प्रभावों से कैसे जोड़ा जाता है।
- स्वास्थ्य प्रणाली के विभिन्न स्तरों द्वारा विभिन्न प्रकार की जानकारी कैसे एकत्र और उपयोग की जाएगी।
- किन तत्वों को मापने की आवश्यकता है (जैसे संसाधन, सेवा आँकड़े, कवरेज और गुणवत्ता, लागत, और परियोजना से जुड़े परिणाम)।
- किन उपयुक्त संकेतकों का चयन किया जाना है।

अन्य समान परियोजनाओं के साथ मानकीकरण और तुलना को सक्षम करने के लिए, संकेतक अंतरराष्ट्रीय/राष्ट्रीय मानकों के अनुरूप होने चाहिए। उन्हें संग्रह करने के लिए व्यवहार्य और यथार्थवादी भी होना चाहिए। पहचाने गए डाटा स्रोतों को संकेतकों को मापने के लिए आवश्यक जानकारी प्रदान करनी चाहिए। उदाहरण के लिए, आपकी टीम को यह निर्धारित करना चाहिए कि क्या आप मौजूदा डाटा संग्रह प्रणालियों का उपयोग करेंगे या यदि नई प्रणालियों को विकसित करने की आवश्यकता है। आपकी टीम को यह भी निर्धारित करना होगा कि जानकारी कैसे दर्ज, विश्लेषित और रिपोर्ट की जाएगी। इसके अलावा आपकी टीम को उपयोग की जाने वाली विधियों और उपकरणों का निर्धारण करते समय तकनीकी दक्षताओं, लागतों और समय के संदर्भ में उपलब्ध संसाधनों पर भी ध्यान से विचार करना चाहिए।

कार्यान्वयन के लिए जिम्मेदारियाँ बांटनी चाहिए– एम एंड ई योजना विकसित करने के बाद, विभिन्न हितधारकों की भूमिकाओं और जिम्मेदारियों को स्पष्ट रूप से वर्णित किया जाना चाहिए। यह कदम निर्धारित करेगा कि एम एंड ई योजना को विशेष रूप से कैसे लागू किया जाएगा और कौन सी रिपोर्टिंग प्रणाली को अपनाया

जाएगा। योजना के कार्यान्वयन में डाटा संग्रह योजना शामिल होनी चाहिए (अर्थात विशिष्ट डाटा के संग्रह के लिए कौन जिम्मेदार है प्रत्येक चरण में गुणवत्ता नियंत्रण सुनिश्चित करना, कितनी बार डाटा एकत्र किया जाएगा, डेटा का प्रारूप (जैसे कच्चा (Raw डाटा) सारांश), कौन से संसाधन प्रत्येक चरण में आवश्यक होगा, जो डेटा का विश्लेषण करेगा) और प्रसार योजना।

लक्ष्य निर्धारित करना– सभी हितधारकों के परामर्श से लक्ष्य निर्धारित किया जाना चाहिए ताकि हर कोई यह समझ सके कि परियोजना ने क्या हासिल करने के लिए प्रतिबद्ध किया है। लक्ष्य निर्धारित करके, आपके पास एक ठोस उपाय होगा जिसके द्वारा यह निर्धारित किया जा सकता है कि परियोजना अपेक्षित रूप से आगे बढ़ रही है या नहीं। लक्ष्य निर्धारण की प्रक्रिया को इस प्रश्न का उत्तर देने पर ध्यान केंद्रित करना चाहिए : ''संसाधनों को देखते हुए वास्तविक रूप से क्या हासिल किया जा सकता है और एक उल्लेख अनुसंधान परियोजना वातावरण जिसमें परियोजना संचालित हो रही है, की निगरानी और मूल्यांकन किया जा सकता है?''

विचार करने वाले कारकों में शामिल हैं– आधारभूत स्तर, पिछले रुझान, विशेषज्ञ राय, शोध के निष्कर्ष, कहीं और क्या हासिल किया है, ग्राहक अपेक्षाएं, लक्ष्यों को प्राप्त करने की क्षमता और रसद। विशिष्ट परियोजना लक्ष्य निर्धारित करते समय, आपको समय के साथ इंगित किए जाने वाले संभावित परिवर्तनों की दिशा भी तय करनी होगी। रिपोर्टिंग प्रणाली को परिभाषित करना, परिणामों का प्रसार और उपयोग एम एंड ई योजना को विकसित करने की प्रक्रिया के दौरान, अनुसंधान परियोजना से निष्कर्षों का उपयोग सुनिश्चित करने के लिए अंतिम उपयोगकर्ताओं की जानकारी की जरूरतों को संबोधित किया जाना चाहिए। प्रारंभिक निष्कर्ष रणनीतिक रूप से समयबद्ध उपयोगकर्ता बैठकों और/या कार्यशालाओं के दौरान तैयार और प्रस्तुत किए जाने चाहिए। जानकारी को विशिष्ट हितधारकों के हितों और जरूरतों के अनुरूप बनाया जाना चाहिए। प्रासंगिक जानकारी इनपुट और फीडबैक मांगेगी जो निर्णय लेने और परियोजना सुधार को प्रभावित कर सकती है

सूचना रिपोर्टिंग और उपयोग की योजना बनाने में कुछ व्यावहारिक विचार नीचे दिए गए हैं–

- उपयोगकर्ताओं की सूचना आवश्यकताओं के सापेक्ष एम एंड ई प्रसार योजना तैयार करें। यह ध्यान रखना महत्वपूर्ण है कि डाटा रिपोर्ट की सामग्री और प्रारूप उनके इच्छित उपयोग के अनुसार अलग–अलग होंगे। उदाहरण के लिए, एम एंड ई प्रक्रियाओं की निगरानी के लिए क्या आवश्यक है? रणनीतिक योजना का संचालन करने के लिए क्या आवश्यक है? आवश्यकताओं का पालन करने के लिए क्या आवश्यक है? समस्याओं की पहचान करने में सहायक बनें। फंडिंग अनुरोध को सही ठहराएं या प्रभाव का मूल्यांकन करें?
- डाटारिपोर्टिंग आवश्यकताओं की आवृत्ति की पहचान करें। उदाहरण के लिए, परियोजना प्रबंधक परियोजना की प्रगति का आकलन करने और नियोजन निर्णय लेने के लिए अक्सर एम एंड ई डाटा की समीक्षा करना चाह सकते

हैं, जबकि दाताओं को जवाबदेही सुनिश्चित करने के लिए वर्ष में केवल एक या दो बार डाटा की आवश्यकता हो सकती है।

- रिपोर्टिंग प्रारूपों को लक्षित दर्शकों के अनुरूप बनाएं। चूँकि रिपोर्टिंग में जटिलता और तकनीकी भाषा के विभिन्न स्तर शामिल हो सकते हैं, रिपोर्ट प्रारूप और मीडिया को विशिष्ट दर्शकों और प्रतिक्रिया माँगने के लिए उपयोग की जाने वाली विभिन्न विधियों के अनुरूप बनाया जाना चाहिए।
- एम एंड ई डाटा को संप्रेषित करने के लिए उपयुक्त आउटलेट और मीडिया चैनलों की पहचान करें। इसे आंतरिक रिपोर्टिंग, जैसे नियमित परियोजना रिपोर्ट, प्रबंधन और दाताओं को प्रगति रिपोर्ट, साथ ही बाहरी रिपोर्टिंग, जैसे सार्वजनिक मंचों, समाचार विज्ञप्ति, ब्रीफिंग और वेबसाइटों पर विचार करना चाहिए।

एम एंड ई योजना का कार्यान्वयन

एम एंड ई योजना का कार्यान्वयन तीन चरणों में होता है, अर्थातः (i) प्रगति की जाँच और माप (ii) स्थिति का विश्लेषण करना और (iii) नई घटनाओं, अवसरों और मुद्दों पर प्रतिक्रिया करना। इन्हें नीचे विस्तार से वर्णित किया गया है।

प्रगति की जाँच और मापन आदर्श रूप से, निगरानी परियोजना की गुणवत्ता, समय और लागत की तीन मुख्य विशेषताओं पर केंद्रित है। प्रोजेक्ट मैनेजर प्रोजेक्ट टीम का समन्वय करता है और उसे हमेशा प्रोजेक्ट की स्थिति के बारे में पता होना चाहिए। प्रगति की जाँच और माप करते समय, परियोजना प्रबंधक को यह पता लगाने के लिए टीम के सभी सदस्यों के साथ संवाद करना चाहिए कि क्या नियोजित गतिविधियाँ समय पर और सहमत गुणवत्ता मानकों और बजट के भीतर लागू की जा रही हैं। किसी लक्ष्य की उपलब्धि को मापा जाता है जो परियोजना की प्रगति को दर्शाता है।

निगरानी के दूसरे चरण में स्थिति का विश्लेषण शामिल है। परियोजना विकास की स्थिति की तुलना मूल योजना से की जाती है और संभावित विचलन के कारणों और प्रभावों की पहचान की जाती है। इन कारणों और किसी भी विचलन के प्रभावों को संबोधित करने के लिए कार्यों की पहचान की जाती है। नई स्थितियों, घटनाओं, अवसरों और मुद्दों पर शीघ्रता से प्रतिक्रिया करना एवं और संभावित कार्यों की पहचान करना महत्वपूर्ण है। यदि उपयुक्त हो, विभिन्न विकल्पों पर विचार किया जाता है और परियोजना टीम के साथ चर्चा की जाती है और आगे बढ़ने के लिए सबसे उपयुक्त मार्ग के संबंध में निर्णय लिया जाता है। एम एंड ई योजना में समायोजन/अद्यतन करने की प्रक्रिया को एम एंड ई योजना की गतिशीलता के रूप में देखा जाना चाहिए तथा इससे जो ज्ञात होता है और समझ आता है उसकी वास्तविकता को हमेशा प्रतिबिंबित करना चाहिए। हर बार मूल एम एंड ई योजना से विचलन की पहचान की जाती है, चाहे इसके लिए किसी और कार्रवाई की आवश्यकता हो या नहीं, एम एंड ई योजना को संशोधित किया जाना चाहिए और तदनुसार दस्तावेज में बदलाव किया जाना

चाहिए। संशोधित योजना नई स्थिति को दर्शाती है और संपूर्ण शोध परियोजना पर विचलन के प्रभाव को प्रदर्शित करना चाहिए। यह परियोजना टीम, दाताओं और सभी हितधारकों के साथ प्रभावी कार्यान्वयन और अच्छे संचार के लिए महत्वपूर्ण है।

एम एंड ई योजना को अपनाने से परियोजना बजट और वित्त के प्रबंधन की सुविधा भी मिलती है। एम एंड ई योजना को अद्यतन करने में निर्णय लेने की प्रक्रिया में पूरी परियोजना टीम (प्रमुख हितधारकों/भागीदारों) को शामिल करना शामिल है, जब भी आवश्यक हो कार्य योजना (लागत सहित) को संशोधित करना और सभी समायोजनों का सावधानीपूर्वक दस्तावेजीकरण करना चाहिए। संबंधित नैतिक समीक्षा बोर्ड (बोर्डों) और संस्थागत समीक्षा बोर्ड (बोर्डों) सहित सभी हितधारकों को संशोधित योजना परिचालित करें, परियोजना पर परिवर्तनों और उनके प्रभाव को उजागर करें। आपकी टीम को सभी संबंधित पक्षों से योजना संशोधनों के लिए उपयुक्त रूप में अनुमोदन प्राप्त करना होगा।

अपनी प्रगति जांचिए

3. नियोजन की दृष्टि से कौन–सा आयोग एक महत्वपूर्ण संस्था है।

(क) योजना (ख) खेल

(ग) वित्त (घ) श्रम

4. एम एंड ई योजना के कितने प्रमुख घटक हैं?

(क) छह (ख) सात

(ग) चार (घ) पांच

5.4 अपनी प्रगति जांचिए प्रश्नों के उत्तर

1. (ख)
2. (घ)
3. (क)
4. (ग)

5.5 सारांश

भारत सरकार ने पंचवर्षीय योजना के माध्यम से वित्तीय और सामाजिक विकास को गति दी है और सामाजिक कल्याण के लिए नियोजित प्रयास किए हैं। विभिन्न पंचवर्षीय योजनाओं के उल्लेख से यह स्पष्ट होता है।

दिसंबर 1946 में श्री के.सी. नियोगी की अध्यक्षता में सलाहकार योजना बोर्ड ने योजना आयोग की स्थापना का सुझाव दिया। 15 मार्च 1950 को इस सलाह को ध्यान में रखते हुए राष्ट्रीय योजना आयोग का गठन किया गया और श्री जवाहर लाल नेहरू

को इसके अध्यक्ष के रूप में नामित किया गया। 16 महीने की चर्चा के बाद पंचवर्षीय योजना प्रस्तुत की गई। यह योजना पाँच साल के समय यानी 1 अप्रैल, 1951 से 31 मार्च, 1956 तक के लिए बनाई गई थी, इसे पहली पंचवर्षीय योजना के रूप में जाना जाता है। इस योजना के दौरान कुल 1960 करोड़ खर्च किए गए।

हम अपनी पंचवर्षीय योजनाओं में हमेशा सामाजिक न्याय की बात करते हैं लेकिन हमने इस संबंध में कोई महत्वपूर्ण प्रगति नहीं की है। छठी पंचवर्षीय योजना में यह स्वीकार किया गया है कि देश की 50 प्रतिशत जनसंख्या लंबे समय से गरीबी रेखा से नीचे जीवन यापन कर रही है। छठी योजना के महत्वपूर्ण उद्देश्य हैं जिनमें से एक था 'गरीबी और बेरोजगारी की घटनाओं में वास्तविक कमी'। सातवीं और आठवीं योजनाओं में भी गरीबी के मुद्दे पर प्रकाश डाला गया था। नौवीं योजना में गरीबी हटाने की दृष्टि से कृषि और ग्रामीण विकास को प्राथमिकता दी गई और दसवीं योजना में भी गरीबी अनुपात को कम करने की बात कही गई थी।

ये योजनाएँ गरीबी दूर करने में थोड़ा सुधार दिखा रही हैं। गाँवो में खेतिहर मजदूरों को ज्यादा मजदूरी दी जा रही है और किसानों को ज्यादा सुविधाएँ दी जा रही हैं, छोटे उद्यमी प्रगति कर रहे हैं। सरकार ने गरीबी उन्मूलन पर कई योजनाएँ लागू की हैं, जिनमें से कई अभी भी जारी हैं। उदाहरण के लिए– स्वर्ण जयंती ग्राम स्वरोजगार योजना (एसजेजीआरवाई), स्वर्ण जयंती शहरी रोजगार योजना (एसजेएसआरवाई), प्रधानमंत्री रोजगार योजना, अन्नपूर्णा योजना, अंत्योदय अन्न योजना, जय प्रकाश नारायण रोजगार गारंटी योजना, महात्मा गाँधी राष्ट्रीय ग्रामीण रोजगार गारंटी योजना, आम ग्रामीण बीमा यज्ञ, रोजगार अवसर कार्यक्रम आदि।

भारत सरकार ने आर्थिक नीति अपनाई है और यह उदारीकरण के तहत लोकतंत्र की नीति से संबंधित थी। बाजार को स्वतंत्रता दी गई और मुक्त बाजार लोकतंत्र की राजनीति में प्राथमिकता पाता है 1991 के बाद जब सरकार ने इस नए आर्थिक कार्यक्रम को अपनाया, तो बाजार सरकार के नियंत्रण से मुक्त हो गया।

अंतर्राष्ट्रीय समाजशास्त्र अंतर्राष्ट्रीय समाजशास्त्र समूह का एक नाम पत्र है। इसके 15 जून 2001 में, आंशिक जोड़य उन्होंने वैश्वीकरण पर एक लंबी व्याख्या दी है। यह एक विशेष संस्करण है और इसका विषय वैश्वीकरण है। अपने संपादकीय में गोरान थेरबॉर्न ने वैश्वीकरण पर कड़ा नोट लिखा है। इसमें वे कहते हैं कि वैश्वीकरण सबसे महत्वपूर्ण है और 21 वीं सदी में सामाजिक दृश्यों के लिए बंद है, इसकी शुरुआत 1930 के मध्य में हुई थी। अगर हम 1980 से पहले अंग्रेजी, फ्रेंच, स्पेनिश और जर्मन के शब्दकोशों को देखें तो हमें वैश्वीकरण जैसी कोई दुनिया नहीं मिलेगी। दरअसल दूसरी ओर अरबी भाषा में हमें चार ऐसे शब्द मिलते हैं जो वैश्वीकरण से मिलते–जुलते हैं। जापान में, इस शब्द को 1980 के करीब प्रस्तुत किया गया था। चीन में, इस शब्द को 1990 में प्रस्तुत किया गया था।

नियोजित परिवर्तन वास्तव में हमारे युग की आवश्यकता है। यह जनहित की स्थिति के सिद्धांतों को प्राप्त करने का एकमात्र माध्यम है। यह पारंपरिक सामाजिक

रीति–रिवाजों, अंधविश्वासों और कई अन्य सामाजिक समस्याओं से पीड़ित समाज में क्रांतिकारी परिवर्तन लाने का एक अचूक हथियार है। यह न केवल अविकसित या पिछड़े देशों के लोगों के लिए बल्कि विकसित राष्ट्र के लिए भी अंधेरे में प्रकाश है। आज विश्व मानवता और युवावस्था जो देश के भौतिक, सामाजिक और आर्थिक संसाधन ,असंतोष, आक्रोश, और हताशा से त्रस्त है। नियोजित परिवर्तन ही एकमात्र साधन है, जो सामाजिक विषमता, आक्रोश और दमनकारी वातावरण की समस्याओं को हल कर सकता है। सामाजिक और आर्थिक परिवेश में क्रांतिकारी परिवर्तन नियोजित परिवर्तनों के बुनियादी आदर्शों में एक प्रमुख मोड़ हैं, जिन्होंने पैटर्न स्थापित करने में एक प्रमुख भूमिका निभाई है।

निगरानी और मूल्यांकन (एम एंड ई) योजना एक दस्तावेज है जो यह बताता है कि एक कार्यान्वयन अनुसंधान परियोजना की निगरानी और मूल्यांकन कैसे किया जाता है, और यह विभिन्न डेटा संग्रह प्रणालियों से प्राप्त रणनीतिक जानकारी को निरंतर आधार पर परियोजना को बेहतर बनाने के निर्णयों से जोड़ता है। एम एंड ई योजना कई मुख्य उद्देश्यों को पूरा करती है–

5.6 मुख्य शब्दावली

- **अतीत** : बीता समय, भूतकाल।
- **उपलब्ध** : मौजूद, उपस्थित।
- **स्वच्छता** : सफाई।
- **समग्र** : संपूर्ण।
- **मुक्त** : निःशुल्क।
- **अवधि** : समय का अंतराल।
- **निर्धारित** : तय।

5.7 स्व–मूल्यांकन प्रश्न एवं अभ्यास

लघु–उत्तरीय प्रश्न

1. भारत में पंचवर्षीय योजनाओं की शुरुआत कब की गई?
2. पहली पंचवर्षीय योजना के मुख्य उद्देश्य क्या थे?
3. वैश्वीकरण से आप क्या समझते हैं?
4. मूल्य और प्रौद्योगिकी के बीच क्या संबंध है?
5. योजना आयोग के मुख्य कार्य क्या हैं?

दीर्घ–उत्तरीय प्रश्न

1. भारत की विभिन्न पंचवर्षीय योजनाओं की विवेचना कीजिए।
2. भारत में ग्रामीण बेरोजगारी और गरीबी को नियंत्रित करने के लिए चलने वाली योजनाओं की समीक्षा कीजिए।
3. आर्थिक सुधारों के सामाजिक परिणामों की व्याख्या कीजिए।
4. प्रौद्योगिकी के सामाजिक प्रभावों का विश्लेषण कीजिए।
5. निगरानी और मूल्यांकन योजना की विस्तारपूर्वक व्याख्या कीजिए।

5.10 सहायक पाठ्य सामग्री

जे.पी. सिंह, *समाजशास्त्र : अवधारणाएं एवं सिद्धांत*, पीएचआई लर्निंग प्रा. लि., दिल्ली, 2013.

जे.पी. सिंह, *आधुनिक भारत में सामाजिक परिवर्तन*, पीएचआई लर्निंग प्रा. लि., दिल्ली, 2016.

श्यामाचरण दुबे, *विकास का समाजशास्त्र*, दिवि पब्लिशर्स, 1996.

डॉ. पूरन चंद्र जोशी, *परिवर्तन और विकास के सांस्कृतिक आयाम*, राजकमल प्रकाशन, 1999.

धीरूभाई शेठ, *सत्ता और समाज*, सं. : अभय कुमार दुबे, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, 2009.

सच्चिदानंद सिन्हा, *भूमंडलीकरण की चुनौतियां*, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली.

साक्षात्कार, अंक 385–390, मध्य प्रदेश शासन साहित्य परिषद, भोपाल, 2012.